सत् शास्त्र प्रकाशन—

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

द्वितीय खण्ड

[तृतीय स्कन्ध]

सम्पादक :

सुदर्शनसिंह 'चक्र'

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान

मथुरा—२८१००१

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

॥ तृतीय स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान् किल ।
क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥१॥

एवं एतत् पुरा पृष्टः मैत्रेयः भगवान् किल क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहं ऋद्धिमत् ॥१॥

ऋद्धमत्	समृद्धिसे पूर्ण	पुरा एव	पहिले इसी प्रकार
स्वगृहं	अपने घरको	एतत् भगवान	यह भगवान
त्यक्त्वा	छोड़कर	मैत्रेयः किल	मैत्रेयसे
वनं प्रविष्टेन	वनमें गए	पृष्टः	पूछा था ॥१॥
क्षत्त्रा	विदुरने		

यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ।
पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥ ॥

यद्वा अयं मन्त्रकृत् वः भगवान् अखिलेश्वरः पौरवेन्द्र गृहं हित्वा प्रविवेश आत्मसात् कृतम् ॥२॥

यद्वा वः	जब तुम पाण्डवोंके	पौरवेन्द्र गृहं	दुर्योधनका घर
मन्त्रकृत्	दूत बनकर	हित्त्वा	त्यागकर
भगवान्	भगवान	आत्मसात् कृतं	अपना ही कर
अखिलेश्वरः	अखिलेश्वर		(समझकर) के
	(श्रीकृष्ण हस्तिनापुर	प्रविवेश	(जिस विदुरके घरमें)
	गये थे तब)		प्रविष्ट हुए थे ॥२॥

राजोवाच-

कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणास सङ्गमः ।
कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥३॥

कुत्र क्षत्तुः भगवता मैत्रेयण आस सङ्गमः कदा वा सह संवाद एतत् वर्णय नः प्रभो ॥३॥

प्रभो	प्रभो !	**वा कदा**	अथवा कब
क्षत्तुः	विदुरजीका	**सह संवादः**	उनके साथ बात चीत हुई
भगवता	भगवान		
मैत्रेयण	मैत्रेयसे	**एतत् नः**	यह मुझसे
कुत्र सङ्गमः	कहाँ मिलना	**वर्णय**	वर्णन कीजिए ॥३॥
आस	हुआ था		

न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः ।
तस्मिन् वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥४॥

न हि अल्प अर्थ उदयः तस्य विदुरस्य अमलात्मनः तस्मिन् वरीयसि प्रश्नः साधुवाद उपबृंहितः ॥४॥

हि तस्य	क्योंकि उन	**न**	नहीं होगा
अमलात्मनः	निर्मल चित्त	**तस्मिन्**	उस (बात चीत) में
विदुरस्य	विदुरजीका	**साधुवाद**	अभिनन्दनसे
अल्प अर्थ	छोटे प्रयोजनको	**उपबृंहितः**	सम्मानित
उदयः	प्रकट करनेवाला (प्रश्न)	**वरीयसि प्रश्नः**	श्रेष्ठ प्रश्न (ही हुआ होगा) ॥४॥

सूत उवाच-

स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ।
प्रत्याह तं सुबहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥५॥

स एवं ऋषिवर्यः अयं पृष्टः राज्ञा परीक्षिता प्रति आह तं सुबहुवित् प्रीतात्मा श्रूयतां इति ॥५॥

राज्ञा परीक्षिता	राजा परीक्षित द्वारा	**ऋषिवर्यः**	ऋषि श्रेष्ठ (शुकदेवजी)
स अयं	वे ये		
सुबहुवित्	अत्यन्त बहुज्ञ		

एवं पृष्टः	इस प्रकार पूछे जानेपर	तं श्रूयतां इति	उनसे सुनो इस प्रकार
प्रीतात्मा	प्रसन्न चित्तसे	प्रति आह	उनसे बोले ॥५॥

श्रीशुक उवाच–

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून्
पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान् विबन्धून्
प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥

यदा तु राजा स्वसुतान् असाधून् पुष्णन् अधर्मेण विनष्ट दृष्टिः भ्रातुः यविष्ठस्य सुतान् विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥

यदा तु	जब तो	यविष्ठस्य	छोटे
विनष्ट दृष्टिः	अन्धे	भ्रातुः	भाईके
राजा	राजा (धृतराष्ट्र) ने	विबन्धून्	अनाथ
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक	सुतान्	पुत्रोंको
असाधून्	दुष्ट	लाक्षाभवने	लाक्षागृहमें
स्वसुतान	अपने पुत्रोंका	प्रवेश्य	भेजकर
पुष्णन्	पोषण करते (पक्ष लेते) हुए	ददाह	जलवा दिया ॥६॥

यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः
केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ।
न वारयामास नृपः स्नुषायाः
स्वास्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥

यदा सभायां कुरुदेव देव्याः केश अभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यं न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैः हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥

यदा	जब	कुरुदेव	युधिष्ठिरकी
सभायां	(द्यूत) सभामें	देव्याः	पटरानी

स्नुषायाः	अपनी पुत्रवधूके	अभिमर्श	खींचनेके
स्वास्रैः	अपने आँसुओंसे	गर्ह्यं	निन्दनीय
कुचकुङ्कुमानि	वक्षस्थलपर लगी केशरको	सुतकर्म	(अपने) पुत्रोंके कर्मको
हरन्त्याः	धोती हुई (रोती हुई) के	नृपः न	राजा (धृतराष्ट्र) ने नहीं
केश	बालोंको	वारयामास	रोका ॥७॥

द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः
सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ।
न याचतोऽदात्समयेन दायं
तमो जुषाणो यदजातशत्रोः ॥८॥

द्यूते तु अधर्मेण जितस्य साधोः सत्य अवलम्बस्य वन आगतस्य न याचतः अदात् समयेन दायं तमः जुषाणः यत् अजातशत्रोः ॥८॥

द्यूते तु	जुएमें तो	याचतः	मांगनेपर
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक	दायं	पैतृक स्वत्व
जितस्य	जीते गये	समयेन	प्रतिज्ञानुसार
साधोः	सत्पुरुष	न अदात्	नहीं दिया
सत्य अवलम्बस्य	सत्यावलम्बी	यत्	जिससे
वन आगतस्य	वनसे लौटे हुए (पाण्डवोंके)	अजातशत्रोः	युधिष्ठिर
		तमः जुषाणः	क्रोधमें आ गये॥८॥

यदा च पार्थप्रहितः सभायां
जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ।
न तानि पुंसाममृतायनानि
राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥९॥

यदा च पार्थ प्रहितः सभायां जगद्गुरुः यानि जगाद कृष्णः न तानि पुसां अमृत अयनानि राजा उरु मेने क्षत पुण्यलेशः ॥९॥

यदा च	जबकि	**अयनानि**	निवास-सी (लगीं, किन्तु)
पार्थ प्रहितः	पाण्डवों द्वारा भेजे गये	**पुण्यलेशः**	पुण्यका लेश भी
जगद्गुरुः	जगद्गुरु	**क्षत राजा**	(जिसका) नष्ट हो गया था (उस)
कृष्णः	श्रीकृष्णने		राजाने
सभायां	सभामें	**तानि**	उन (वचनों) को
यानि जगाद	जो बातें कहीं	**उरु न**	महत्त्वपूर्ण नहीं
पुंसां	(दूसरे) पुरुषोंको	**मेने**	माना ॥९॥
अमृत	अमृतके		

यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो
मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ।
अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्
यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

यदा उपहूतः भवनं प्रविष्टः मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन अथ आह तत् मन्त्रदृशां वरीयान् यत् मन्त्रिणः वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

यदा पूर्वजेन	जब बड़े भाई द्वारा	**वरीयान्**	श्रेष्ठ (विदुरजी)
उपहूतः	बुलाये जानेपर	**अथ यत् आह**	तब जो बोले
भवनं प्रविष्टः	(उनके) भवनमें गये	**तत् मन्त्रिणः**	उसे नीतिज्ञ लोग
किल मन्त्राय	निश्चित सम्मतिके लिए	**वैदुरिकं**	विदुरनीति
पृष्टः मन्त्रदृशां	पूछे जानेपर नीतिज्ञोंमें	**वदन्ति**	कहते हैं ॥१०॥

*विदुरोवाच**–

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं
तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सहानुजो यत्र वृकोदराहिः
श्वसन् रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ॥११॥

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतः दुर्विषहं तव आगः सह अनुजः यत्र वृकोदर अहिः श्वसन् रुषा यत् त्वं अलं बिभेषि ॥११॥

अजातशत्रोः	युधिष्ठिरको	यत्र वृकोदर	जहाँ भीमसेन रूपी
दायं	(उनका) पैतृकस्वत्व	अहिः रुषा	सर्प क्रोधसे
प्रतियच्छ	दे दीजिए	श्वसन्	फूत्कार कर रहा है
तव दुर्विषहं	आपके असहनीय	यत् त्वं	जिससे आप
आगः	अपराधको	अलं बिभेषि	बहुत अधिक डरते
सह अनुजः	भाइयोंके साथ		हैं ॥११॥
तितिक्षतः	(वे)सहन कर रहे हैं,		

पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुन्दो
गृहीतवान् सक्षितिदेवदेवः ।
आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो
विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥१२॥

पार्थाः तु देवः भगवान् मुकुन्दः गृहीतवान् स क्षितिदेवदेवः आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवः विनिर्जिता अशेष नृदेवदेवः ॥१२॥

पार्थाः तु	पाण्डवोंको तो	स्वपुर्यां	(अभी) अपनी
देवः	परमदेव		पुरीमें
भगवान्	भगवान्	अशेष	सम्पूर्ण
मुकुन्दः	मुकुन्दने	नृदेवदेवः	राजाओंको
क्षितिदेवदेवः	पृथ्वीके सम्राट् रूपमें	विनिर्जितः आस्ते	जीतकर (स्थित)
गृहीतवान्	अपना लिया है ।		है ॥१२॥
स यदुदेवदेवः	वे यदुवंशियोंके आराध्यदेव		

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते
गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ।

पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्री-
स्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥

स एष दोषः पुरुषद्विट् आस्ते गृहान् प्रविष्टः यं अपत्य मत्या पुष्णासि कृष्णात् विमुखः गतश्रीः त्यज आशु अशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥

स एष	वह यह		रहे हैं।
पुरुषद्विट्	भगवानका विरोधी	**कृष्णात्**	श्रीकृष्णसे
दोषः वै	(मूर्तिमान) दोष ही (दुर्योधनके रूपमें) है	**विमुखः**	विमुख होनेसे
		गतश्रीः	श्रीहीन
गृहान्	(आपके) घरोंमें	**अशैवं**	अमंगलरूप (इसे)
प्रविष्टः आस्ते	घुस आया है	**कुलकौशलाय**	कुलकी कुशलके लिए
यं अपत्य	जिसे पुत्र	**आशु त्यज**	शीघ्र त्याग
मत्या	मानकर		दीजिए ॥१३॥
पुष्णासि	(आप) पालन कर		

*श्रीशुक उवाच**–

इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन
प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ।
असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः
क्षत्ता सकर्णनुजसौबलेन ॥१४॥

इति ऊचिवान् तत्र सुयोधनेन प्रवृद्ध कोपस्फुरित अधरेण असत्कृतः सत् स्पृहणीय शीलः क्षत्ता सकर्ण अनुज सौबलेन ॥१४॥

तत्र सत्	वह सज्जनों द्वारा	**सकर्ण**	कर्णके साथ
स्पृहणीय	स्पृहा करने योग्य	**अनुज**	दुःशासन
शीलः	शीलवाले	**सौबलेन**	शकुनि सहित
क्षत्ता	विदुरजीसे	**प्रवृद्धकोपः**	बढ़े क्रोधसे

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

स्फुरितअधरेण	फड़कते ओष्ठवाले	असत्कृतः	तिरस्कारपूर्वक
सुयोधनेन	दुर्योधनने	इति ऊचिवान्	यह कहा ॥१४॥

दुर्योधन उवाच*-

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं
दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ।
तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते
निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसान ॥१५॥

क एनं मन्त्र उपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यत् बलिना एव पुष्टः तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतां आशु पुरात् श्वसानः ॥१५॥

एनं जिह्मं	इस कपटी	प्रतीपः	उलटा चलता
दास्याः सुतं	दासी पुत्रको	परकृत्य	शत्रुका काम करता
क मन्त्र	किसने सलाह देनेके लिए	आस्ते	रहता है ।
		आशु	शीघ्र
उपजुहाव	बुलाया है ?	पुरात्	नगरसे
यत् बलिना एव	जिनके टुकड़े खाकर ही	श्वसानः	श्वास लेते हुए ही (बिना मारे)
पुष्टः	मोटा हुआ है,	निर्वास्यतां	निकाल दो ॥१५॥
तस्मिन्	उन्हींसे		

श्रीशुक उवाच*-

स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणै-
भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ।
स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां
गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स इत्थं अति उल्बण कर्ण बाणैः भ्रातुः पुरः मर्मसु ताडितः अपि स्वयं धनुः द्वारि निधाय मायां गत व्यथः अयात् उरु मानयानः ॥१६॥

स इत्थं	वे (विदुरजी) इस प्रकार		द्वारपर
		निधाय	रखकर
भ्रातुः पुरः	भाईके सामने ही	**मायां**	(भगवानकी) मायांको
अति उल्बण	अत्यन्त कठोर		
कर्णबाणैः	कानोंको वाण जैसे लगनेवाले (वाक्योंसे)	**उरु मानयानः**	प्रबल मानकर
		गत व्यथः	व्यथा रहित
ताडितः अपि	मारे जानेपर भी	**अयात्**	(वहांसे) चले गये ॥१६॥
स्वयं	स्वयं		
धनुः द्वारि	(अपना) धनुष		

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो
गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां
स्वधिष्ठतो यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥

स निर्गतः कौरवपुण्य लब्धः गजाह्वयात् तीर्थपदः पदानि अन्वाक्रमत् पुण्य चिकीर्षया उर्व्यां स्वधिष्ठितः यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥

कौरवपुण्य लब्धः	कौरवोंको (जो) पुण्योंसे मिले थे	**तीर्थपदः**	तीर्थपाद (भगवान)
		सहस्रमूर्तिः	सहस्रमूर्तिके
स	वे (विदुरजी)	**पदानि**	स्थानोंमें
गजाह्वयात्	हस्तिनापुरसे	**यानि स्वधिष्ठितः**	वे (भगवान) स्वयं (मूर्ति रूपमें) जहां विराजमान हैं(वहाँ)
निर्गतः	निकलकर		
पुण्यचिकीर्षः	पुण्य करनेकी इच्छासे	**अन्वाक्रमत्**	घूमने लगे ॥१७॥
उर्व्यां	पृथ्वीपर		

पुरेषु पण्योपवनाद्रिकुञ्जे-
ष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरःसु ।

अनन्तलिङ्गैः समलङ्कृतेषु
चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥

पुरेषु पुण्य उपवन अद्रि कुञ्जेषु अपङ्कतोयेषु सरित् सरःसु अनन्तलिङ्गैः समलङ्कृतेषु चचार तीर्थायतनेषु अनन्यः ॥१८॥

अनन्तलिङ्गैः	भगवान अनन्तकी प्रतिमाओंसे	कुञ्जेषु	कुञ्जोंमें
समलङ्कृते	सुशोभित	अपङ्कतोयेषु	निर्मल जलवाली
पुरेषु	नगरोंमें	सरित्	नदियों,
पुण्य	पवित्र	सरःसु	सरोवरोंमें तथा
उपवनेषु	उपवनोंमें,	तीर्थायतनेषु	तीर्थोंके मन्दिरोंमें
अद्रि	पर्वतोंमें,	अनन्यः	अकेले ही
		चचार	घूमने लगे ॥१८॥

गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाऽऽप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥

गां पर्यटन् मेध्य विविक्त वृत्तिः सदा आप्लुतः अधः शयनः अवधूतः अलक्षितः स्वैः अवधूत वेषः व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥

गां पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमते हुए	स्वैः अवधूत	अपने असज्जित होनेसे
मेध्य	पवित्र	अलक्षितः	(किसीसे) पहिचाने न जाकर
विविक्त	ऐकान्तिक	हरितोषणानि	भगवानको सन्तुष्ट करनेवाले
वृत्तिः	वृत्तिसे	व्रतानि	व्रतोंको
सदा आप्लुतः	सदा स्नान करते	चेरे	करते रहे ॥१९॥
अधः शयनः	नीचे (पृथ्वीपर) सोते		
अवधूत	असज्जित		
वेषः	वेषमें रहते		

इत्थं व्रजन् भारतमेव वर्षं
कालेन यावद्गतवान् प्रभासम् ।

तावच्छशास क्षितिमेकचक्रा-
मेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥

इत्थं व्रजन् भारतं एव वर्षं कालेन यावत् गतवान् प्रभासं तावत् शशास क्षितिं एकचक्रां एक आतपत्रां अजितेन पार्थः ॥२०॥

इत्थं	इस प्रकार	अजितेन	भगवान श्रीकृष्णकी सहायतासे
भारतं	भारत	पार्थः	युधिष्ठिर
वर्षं एव	वर्षमें ही	एक आतपत्रां	एक छत्र
व्रजन्	घूमते हुए	एकचक्रां	अखण्ड
यावत्	जितने	क्षितिं	भूमण्डलके
कालेन	समयमें	शशास	शासक हो गये थे ॥२०॥
प्रभासं	प्रभास		
गतवान्	पहुँचे		
तावत्	तबतक		

तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं
वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्
सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥

तत्र अथ शुश्राव सुहृत् विनष्टिं वनं यथा वेणुज वह्नि संश्रयं संस्पर्धया दग्धं अथ अनुशोचन् सरस्वतीं प्रत्यक् इयाय तूष्णीम् ॥२१॥

अथ	तदनन्तर		(ऐसे ही)
तत्र सुहृत्	वहाँ (अपने) सम्बन्धियोंका	सस्पर्धया	परस्परकी स्पर्धासे
		दग्धं	भस्म हो गये थे
विनष्टिं	विनाश	अथ अनुशोचन्	अब शोक करते हुए
शुश्राव	सुना	तूष्णीं	चुपचाप
यथा वनं	जैसे वन-	प्रत्यक्	प्रतीची
वेणुज	बाँसोंकी रगड़से उत्पन्न	सरस्वतीं	सरस्वतीके पास
		इयाय	पहुँचे ॥२१॥
वह्नि संश्रयं	अग्नि लगनेसे		

तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च
पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य
यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥

तस्यां त्रितस्य उशनसः मनोः च पृथोः अथ अग्नेः असितस्य वायोः तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यत् श्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥

तस्यां	उस (सरस्वती) में	सुदासस्य	सुदासका
यत् त्रितस्य	जो त्रितका	गवां	गायोंका
उशनसः	उशनाका	गुहस्य	स्वामी कार्तिकका
मनोः	मनुका	श्राद्धदेवस्य	श्राद्धदेवका
च पृथोः	तथा पृथुका	तीर्थं स	तीर्थ थे उन (ग्यारहहो तीर्थोंका)
अथ अग्नेः	और अग्निका	आसिषेवे	यथाविधि सेवन किया ॥२२॥
असितस्य	असितका		
वायोः	वायुका		

अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः
कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि
यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥२३॥

अन्यानि च इह द्विजदेव देवैः कृतानि नाना आयतनानि विष्णोः प्रत्यङ्ग मुख्य अङ्कित मन्दिराणि यत् दर्शनात् कृष्णं अनुस्मरन्ति ॥२३॥

अन्यानि च	दूसरे भी	अङ्कित	(चक्रसे) चिह्नित
द्विजदेव	ब्राह्मणों (तथा)	यत् मन्दिराणि	जिन मन्दिरोंके
देवैः	देवताओं द्वारा	दर्शनात्	दर्शनसे
कृतानि	बनाये	कृष्णं	श्रीकृष्णका
विष्णोः	भगवान (विष्णु) के	अनुस्मरन्ति	बार बार स्मरण होता है (उनका भी सेवन किया) ॥२३॥
नाना आयतनानि	अनेक मन्दिर थे		
मुख्य प्रत्यङ्ग	शिखरोंपर		

ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं
सौवीरमत्स्यान् कुरुजाङ्गलांश्च ।
कालेन तावद्यमुनामुपेत्य
तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥२४॥

ततः तु अतिव्रज्य सुराष्ट्रं ऋद्धं सौवीर मत्स्यान् कुरुजाङ्गलान् च कालेन तावत् यमुनां उपेत्य तत्र उद्धवं भागवतं ददर्श ॥२४॥

ततः तु	वहांसे तो	कालेन	समयमें
ऋद्धं	सम्पन्न	यमुनां	यमुनाके
सुराष्ट्रं	सौराष्ट्र,	उपेत्य	पास पहुँचे (तो)
सौवीर	सौवीर,	तत्र भागवतं	वहां भगवान श्रीकृष्णके पार्षद
मत्स्यान् च	मत्स्यप्रदेश तथा		
कुरुजाङ्गलान्	कुरुजाङ्गलको	उद्धवं	उद्धवको
अतिव्रज्य	पार करके	ददर्श	देखा ॥२४॥
तावत्	तबतकके		

स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं
बृहस्पतेः प्राप्तनयं प्रतीतम् ।
आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं
स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥२५॥

स वासुदेव अनुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राप्तनयं प्रतीतं आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानां अपृच्छत् भगवत् प्रजानाम् ॥२५॥

स वासुदेव	वे श्रीकृष्णके	आलिङ्ग्य	आलिंगन करके
अनुचरं	सेवक	स्वानां	उनके अपनों तथा
प्रशान्तं	अत्यन्त शान्त		
बृहस्पतेः	बृहस्पतिसे	भगवत्	भगवान्‌की
नयं	नीतिशास्त्रकी	प्रजानां	आश्रितोंका
प्राप्त	शिक्षा प्राप्त थे,	भद्रं	कुशल
प्रतीतं	(उनको) पहिचानकर	अपृच्छत्	पूछने लगे ॥२५॥
गाढं	दृढ़		

विदुरोवाच*-

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्य-
पाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ।
आसात उर्व्याः कुशलं विधाय
कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥२६॥

कच्चित् पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्य पाद्म अनुवृत्ति इह किल अवतीर्णौ आसात् उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥२६॥

स्वनाभ्य	अपनी नाभिसे (उत्पन्न)	उर्व्याः	पृथ्वीका
पाद्म	कमलसे प्रगट ब्रह्माजीके	कुशलं	मंगल
अनुवृत्ति	अनुरोधसे	विधाय	सम्पन्न करके
इह किल	इस पृथ्वीपर निश्चय	कृतक्षणौ	विश्राम करते हुए
अवतीर्णौ	अवतार धारण किए	शूरगेहे	शूर (वसुदेवजीके पिता) के घरमें
पुराणौ	पुराण-	कच्चित्	कहीं
पुरुषौ	पुरुष (बलराम-श्रीकृष्ण)	कुशलं	कुशलपूर्वक
		आसात	(सानन्द) हैं ॥२६॥

कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो
भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ।
यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति
वरान् वदान्यो वरतर्पणेन ॥२७॥

कच्चित् कुरूणां परमः सुहृत् नः भामः स आस्ते सुखं अङ्ग शौरिः यः वै स्वसॄणां पितृवत् ददाति वरान् वदान्यः वर तर्पणेन ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अङ्ग	प्रियवर !
नः कुरूणां	हम कुरुवंशियोंके
परम	परम
सुहृत्	सुहृद
स भामः	वे सम्मान्य
शौरिः	वसुदेवजी
यः वदान्यः वै	जो परमोदार तो
पितृवत्	पिताके समान
स्वसृणां	अपनी (कुन्ती आदि) बहिनोंको
वर	उनके पतियोंको
तर्पणेन	सन्तुष्ट करते हुए
वरान्	अभिलषित वस्तुयें
ददाति	देते हैं
कञ्चित्	कहीं
सुखं	सुखपूर्वक तो
आस्ते	हैं ॥२७॥

कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां
प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ।
यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे
आराध्य विप्रान् स्मरमादिसर्गे ॥२८॥

कच्चित् वरूथाधिपतिः यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखं अङ्ग वीरः यं रुक्मिणी भगवतः अभिलेभे आराध्य विप्रान् स्मरं आदि सर्गे ॥२८॥

आदि सर्गे	पूर्वजन्ममें जो
स्मरं	कामदेव थे
यं विप्रान्	जिन्हें ब्राह्मणोंकी
आराध्य	पूजा करके
रुक्मिणी	रुक्मिणीदेवीने
भगवतः	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा
अभिलेभे	प्राप्त किया
अङ्ग	प्रिय उद्धवजी !
यदूनां	यदुवंशियोंके
वरूथाधिपतिः	सेनापति (वे)
वीरः प्रद्युम्नः	वीर प्रद्युम्न
कच्चित्	क्या
सुखं आस्ते	सुखपूर्वक हैं ॥२८॥

कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोज-
दाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ।
यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो
नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥२९॥

कच्चित् सुखं सात्वत वृष्णि भोज दाशार्हकाणां अधिपः स आस्ते यं अभिषिञ्चत् शतपत्रनेत्रः नृपासन आशां परिहृत्य दूरात् ॥२९॥

सात्वत	सात्वत्	आशां	आशा
वृष्णि	वृष्णि	दूरात्	दूरसे ही
भोज	भोज	परिहृत्य	छोड़ चुके थे किन्तु
दाशार्हकाणां	दशार्हवंशीय यादवोंके	यं शतपत्रनेत्रः	जिनका कमललोचन (भगवानने)
अधिपः	राजा (उग्रसेन)	अभिषिञ्चत्	अभिषेक किया
स नृपासन	वे (जो) राज्य-सिंहासन (पानेकी)	कच्चित्	क्या
		सुखं आस्ते	सुखसे हैं ॥२९॥

कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष
आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ।
असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या
देवं गुहं योऽम्बिका धृतोऽग्रे ॥३०॥

कच्चित् हरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्ते अग्रणी रथिनां साधु साम्ब असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गुहं यः अम्बिकया धृतः अग्रे ॥३०॥

सौम्य	सौम्य !	धृतः	(पुत्र रूपमें) अपनाये गये थे,
हरेः	श्रीहरिके		
सदृक्ष	समान ही	यः व्रताढ्या	जिनको बहुत व्रत करने वाली
सुतः	उनके पुत्र		
रथिनां	रथियोंके	जाम्बवती	महारानी जाम्बवतीने
अग्रणी	अग्रणी		
साम्ब	साम्ब	असूत	जन्म दिया था
अग्रे यः	पूर्व जन्ममें जो	कच्चित्	क्या
अम्बिकया	पार्वतीजी द्वारा	साधु आस्ते	अच्छी तरह हैं॥३०॥

क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते
यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ।
लेभेऽञ्जसाधोक्षजसेवयैव
गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥३१॥

क्षेमं स कच्चित् युयुधान आस्ते यः फाल्गुनात् लब्धः धनू रहस्यः
लेभे अञ्जसा अधोक्षज सेवया एव गतिं तदीयां यतिभिः दुरापाम् ॥३१॥

स युयुधान	वे सात्यकि	यतिभिः	यतियोंके लिए भी
यः फाल्गुनात्	जिन्होंने अर्जुनसे	दुरापां	दुर्लभ
धनू रहस्यः	धनुर्वेदका रहस्य	तदीयां	उन (भगवानकी)
लब्ध	पाकर	गतिं	गतिको
अञ्जसा	सरलतासे	लेभे	प्राप्त कर लिया,
अधोक्षज	भगवान हृषीकेशकी	कच्चित्	क्या
सेवया एव	सेवासे ही	क्षेमं आस्ते	कुशलपूर्वक हैं ॥३१॥

कच्चिद् बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते
श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ।
यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसु-
ष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥३२॥

कच्चित् बुधः स्वस्ति अयनं इव आस्ते श्वफल्कपुत्रः भगवत् प्रपन्नः
यः कृष्ण पाद अङ्कित मार्ग पांसुषु अचेष्टत प्रेम विभिन्नः धैर्यः ॥३२॥

यः भगवत्	जो भगवानके	विभिन्न धैर्यः	धैर्य त्यागकर
प्रपन्नः	शरणागत	अचेष्टत	लोटने लगे थे
बुधः श्वफल्कपुत्रः	बुद्धिमान अक्रूरजी	अयनं	घरमें
कृष्ण पाद	श्रीकृष्णके चरणोंसे	स्वस्ति	कुशलकी
अङ्कित	चिह्नित	इव	भाँति*
मार्ग पांसुषु	मार्गकी धूलिमें	कच्चित् आस्ते	क्या हैं ॥३२॥
प्रेम	प्रेम (की अधिकता)से		

कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या
विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ।

---

* कोई बुद्धिमान् भक्त घरमें कुशल मानकर सुखी नहीं रह सकता। वह गृहसे विरक्त ही होगा। अतः वह घरमें सकुशलकी भाँति ही रह सकता है।

या वै स्वगर्भेण दधार देवं
त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥

कच्चित् शिवं देवक भोज पुत्र्या विष्णु प्रजाया इव देवमातुः या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितान अर्थम् ॥३३॥

या भोज	जो भोजवंशी	**यज्ञवितान**	यज्ञ प्रसारके
देवक	देवककी	**अर्थं**	अर्थको (धारण किये है, वैसे)
पुत्र्या	पुत्री (देवकीजी)	**स्वगर्भेण**	अपने गर्भमें
विष्णु प्रजाया	जिनके पुत्र स्वयं विष्णु (वामन) हुए (उन)	**देवं वै**	भगवान श्रीकृष्णको ही
देवमातुः इव	देवमाता अदितिके समान	**दधार**	धारण किया (वे)
यथा त्रयी	जैसे वेद	**कच्चित्**	क्या
		शिवं	मंगलपूर्वक हैं ॥३३॥

अपिस्विदास्ते भगवान् सुखं वो
यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ।
यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं
मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥३४॥

अपिस्वित् आस्ते भगवान् सुखं वः यः सात्वतां कामदुघः अनिरुद्धः यं आमनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्व तुरीय तत्त्वम् ॥३४॥

यं ह	जिनको ही	**वः सात्वतां**	आप यदुवंशियोंकी
शब्दयोनिं	वेदोंका आदिकारण	**कामदुघः**	कामनाओंको पूर्ण करनेवाले
मनोमयं	मनोमय		
सत्त्व	अन्तःकरणका	**यः भगवान्**	जो भगवान
तुरीय	चौथा	**अनिरुद्धः**	अनिरुद्ध हैं
तत्त्वं	तत्त्व (अहङ्कार)	**अपिस्वित्**	क्या
आमनन्ति स्म	कहा जाता है	**सुखं आस्ते**	सुखपूर्वक हैं ॥३४॥

अपिस्विदन्ये च निजात्मदैव-
मनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ।
हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्ण-
गदादयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥३५॥

अपिस्वित् अन्ये च निज आत्मदेवं अनन्य वृत्त्या सम अनुव्रता ये हृदीक सत्यात्मज चारुदेष्ण गद आदयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥३५॥

सौम्य	सौम्य !	**हृदीक**	हृदीक
अन्ये च	दूसरे भी	**सत्यात्मज**	सत्यानन्दन
निज आत्मदेवं	अपने हृदयेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) का	**चारुदेष्ण**	चारुदेष्ण
		गद आदयः	गद आदि
		अपिस्वित्	क्या
अनन्य वृत्त्या ये	अनन्य भावसे जो	**स्वस्ति**	कुशलपूर्वक
सम अनुव्रता	भली प्रकार अनुसरण करनेवाले	**चरन्ति**	विचरण करते हैं ॥३५॥

अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां
धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ।
दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां
साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥३६॥

अपि स्व दोर्भ्यां विजय अच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतं दुर्योधनः अतप्यत यत् सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजय अनुवृत्त्या ॥३६॥

यत् सभायां	जिनकी सभामें	**विजय**	अर्जुन (और)
विजय	विजयकी	**अच्युताभ्यां**	श्रीकृष्ण रूपी
अनुवृत्त्या	अनुसरिणी	**स्व दोर्भ्यां**	अपनी दोनों भुजाओंसे
साम्राज्यलक्ष्म्या	साम्राज्य लक्ष्मीको देखकर	**अपि सेतुं**	क्या मर्यादाकी
		धर्मेण	धर्मपूर्वक
दुर्योधनः	दुर्योधन	**परिपाति**	रक्षा करते हैं ? ॥३६॥
अतप्यत	संतप्त हुआ था, (वे)		
धर्मः	धर्मराज (युधिष्ठिर)		

किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी
भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ।
यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे
मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥३७॥

किं वा कृत अघेषु अघं इति अमर्षी भीमः अहिवत् दीर्घतमं व्यमुञ्चत् यस्य अङ्घ्रिपातं रणभूः न सेहे मार्गं गदाया चरतः विचित्रम् ॥३७॥

गदाया	गदाके	अघं	कठोर व्यवहार
विचित्रं	विचित्र	इति	ऐसा माननेवाले
मार्गं	पैंतरे	अमर्षी	असहिष्णु
चरतः	लेते	भीमः	भीमसेनने
यस्य	जिनके	अहिवत्	सर्पके समान
अङ्घ्रिपातं	चरणाघातको	दीर्घतमं	अत्यन्त दीर्घ
रणभूः	युद्ध भूमि		(क्रोध)
न सेहे	नहीं सहपाती थी	किं वा	क्या
	(वे)	व्यमुञ्चत्	छोड़ दिया ॥३७॥
अघेषु	पापीके प्रति		

कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां
गाण्डीवधन्वोपरतारिरास्ते ।
अलक्षितो यच्छरकूटगूढो
मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥३८॥

कच्चित् यशोधा रथयूथपानां गाण्डीव धन्वा उपरत अरि आस्ते अलक्षितः यत् शरकूट गूढः माया किरातः गिरिशः तुतोष ॥३८॥

यत्	जिनके	अलक्षितः	(अतः) पहिचानमें
शरकूट	बाणोंकी पर्वताकार		न आनेवाले
	(झड़ी) में	गिरिशः	शङ्करजी
गूढः	छिप गये	तुतोष	सन्तुष्ट हो गये थे
माया किरातः	मायासे किरात बने		(वे)

रथयूथपानां	रथसेनाके सेना-पतियोंका	उपरत अरि	शत्रुओंके समाप्त हो जानेपर
यशोधा	यश बढ़ानेवाले	आस्ते	(प्रसन्न) हैं ॥३८॥
गाण्डीव धन्वा	गाण्डीव धनुषवाले (अर्जुन)		

यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः
पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षिणीव ।
रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं
परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥३९॥

यमाः उतस्वित् तनयौ पृथायाः पार्थैः वृतः पक्ष्मभिः अक्षिणी इव रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात् सुपर्णाः इव वज्रिवक्त्रात् ॥३९॥

पृथायाः	कुन्तीके (द्वारा) तथा	वक्त्रात्	मुखसे
पार्थैः	कुन्तीके पुत्रों द्वारा	सुपर्णा इव	दो गुरुड़ोके समान
पक्ष्मभिः	पलकों द्वारा	मृधे	युद्धमें
अक्षिणी इव	आँखोके समान	परात्	शत्रुओंसे
वृतः	सुरक्षित	स्वरिक्थं	अपना स्वत्व
यमाः	दोनों (नकुल-सहदेव)	उद्दाय	छीन लाकर
तनयौ	माद्रीके पुत्र	उतस्वित्	क्या अब
वज्रि	इन्द्रके	रेमात	क्रीड़ा करते हैं॥३९॥

अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे
राजर्षिवर्येण विनापि तेन ।
यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये
धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥४०॥

अहो पृथापि ध्रियते अर्भक अर्थे राजर्षि वर्येण विनापि तेन यः तु एकवीरः अधिरथः विजिग्ये धनुः द्वितीयः ककुभः चतस्रः ॥४०॥

अहो	अहो	तेन राजर्षि वर्येण	उन राजर्षि श्रेष्ठ (पाण्डु) के
पृथापि	कुन्ती भी	विनापि	बिना भी
अर्भक अर्थे	बालकोंके लिए		

ध्रियते	(किसी प्रकार) देह धारण किये हैं	धनुः द्वितीयः	केवल धनुष लेकर
यः तु	जिन्होंने तो	चतस्रः	चारो
एकवीरः	अकेले वीर	ककुभः	दिशाओंको
अधिरथः	अधिरथीने	विजिग्ये	जीत लिया ॥४०॥

सौम्यानुशोचे तमधःपतन्तं
भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ।
निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या
अहं स्वपुत्रान् समनुव्रतेन ॥४१॥

सौम्य अनुशोचे तं अधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः निर्यापितः येन सुहृत् स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान् समअनुव्रतेन ॥४१॥

सौम्य	सौम्य !	स्वपुत्रान्	अपने पुत्रोंका
तं परेताय	उस मरे हुए	समनुव्रतेन	समर्थन करते हुए
भ्रात्रे	भाईसे	सुहृत्	(अपने) हितचिन्तक
यः	जिसने	अहं	मुझे
विदुद्रुहे	द्रोह किया है	स्वपुर्या	अपनी पुरीसे
तं अधःपतन्तं	उस अधःपतनकी ओर जाते	निर्यापितः	निकलवा दिया है ॥४१॥
अनुशोचे	के लिए शोक है		
येन	जिसने		

सोऽहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन
दृशो नृणां चालयतो विधातुः ।
नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादा-
च्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥४२॥

सः अहं हरेः मर्त्य विडम्बनेन दृशः नृणां चालयतः विधातुः न अन्य उपलक्ष्यः पदवीं प्रसादात् चरामि पश्यन् गत विस्मयः अत्र ॥४२॥

मर्त्य विडम्बनेन	मनुष्य लीला करते हुए	विधातुः	जगद्विधाता (भगवानकी)
हरेः	श्रीकृष्णकी	पदवीं	लीलाको
प्रसादात्	कृपासे	पश्यन्	देखते हुए
सः अहं	वह मैं	अन्य	दूसरोंसे
गत विस्मयः	आश्चर्य रहित	न उपलक्ष्यः	पहिचानमें न आता
दृशः	अपनी दृष्टिसे ही	अत्र	यहाँ (तीर्थोंमें)
नृणां	मनुष्योंको	चरामि	घूम रहा हूँ ॥४२॥
चालयतः	संचालित करते		

नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां
महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ।
वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशो-
ऽप्युपैक्षताघं भगवान् कुरूणाम् ॥४३॥

नूनं नृपाणां त्रिमद उत्पथानां महीं मुहुः चालयतां चमूभिः वधात् प्रपन्न आर्ति जिहीर्षया ईशः अपि उपैक्षत अघं भगवान् कुरूणाम् ॥४३॥

त्रिमद	(धन, जाति, विद्या) तीनोंके गर्वसे	प्रपन्न	शरणागत (पृथ्वी तथा देवताओंकी)
उत्पथानां	कुमार्गपर चलनेवाले,	आर्ति	संकटको
चमूभिः	सेनाके द्वारा	जिहीर्षया	दूर करनेके लिए ही
मुहुः महीं	बार बार पृथ्वीको	नूनं	निश्चय
चालयतां	कम्पित करनेवाले	ईशः अपि	समर्थ होकर भी
नृपाणां	राजाओंके	भगवान्	भगवान (श्रीकृष्ण)ने
वधात्	वधसे	कुरूणां	कौरवोंके
		अघं	अपराधोंकी
		उपैक्षत	उपेक्षा की ॥४३॥

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय
कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।
नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं
परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥४४॥

अजस्य जन्म उत्पथ नाशनाय कर्माणि अकुर्तुः ग्रहणाय पुसां ननु अन्यथा कः अर्हति देह योगं परः गुणानां उत कर्मतन्त्रम् ॥४४॥

ननु	निश्चय ही	**ग्रहणाय**	(अपनी ओर) आकर्षित करनेके लिए हैं
अजस्य	अजन्मा (श्रीकृष्ण) का	**अन्यथा**	अन्यथा
जन्म	अवतार	**कः गुणानां**	कौन गुणोंसे
उत्पथ	कुमार्गगामियोंके	**परः**	परे
नाशनाय	विनाशके लिए (हुआ)	**उत**	हुआ (सामान्य महापुरुष भी)
अकर्तुः	(उन) अकर्ताके	**कर्मतन्त्रं**	कर्मबन्धयुक्त
कर्माणि	कर्म (चरित)	**देह**	शरीरका
पुंसां	पुरुषोंको	**योगं अर्हति**	संयोग स्वीकार करेगा ॥४४॥

तस्य प्रपन्नाखिललोकपाना-
मवस्थितानामनुशासने स्वे ।
अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य
वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥

तस्य प्रपन्न अखिल लोकपानां अवस्थितानां अनुशासने स्वे अर्थाय जातस्य यदुषु अजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥

सखे	मित्र !	**यदुषु**	यदुकुलमें
प्रपन्न	शरणागत	**जातस्य**	उत्पन्न
अखिल	समस्त	**तस्य तीर्थकीर्तेः**	उन पुण्य श्लोक
लोकपानां	लोकपालोंके (तथा)	**अजस्य**	अजन्माकी
स्वे अनुशासने	अपनी आज्ञामें	**वार्तां कीर्तय**	लीला वर्णन कीजिए ॥४५॥
अवस्थितानां	स्थित (भक्तों)		
अर्थाय	के लिए		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ।
प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥१॥

इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रिय आश्रयां प्रतिवक्तुं न च उत्सेह औत्कठ्यात् स्मारित ईश्वरः ॥१॥

इति भागवतः	इस प्रकार भगवद्भक्त	ईश्वरः	अपने स्वामीके
क्षत्त्रा	विदुरजी द्वारा	स्मारित	स्मरण कराये जानेसे
प्रिय आश्रयां	प्रियसे सम्बन्धित	प्रतिवक्तुं	उत्तर देनेका
वार्तां पृष्टः	कथा पूछे जानेपर	उत्सेह	उत्साह
औत्कण्ठ्यात्	उत्कण्ठासे	न च	नहीं ही हुआ ॥१॥

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ।
तन्नेच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया ॥२॥

यः पञ्चहायनः मात्रा प्रातराशाय याचितः तत् न इच्छत् रचयन् यस्य सपर्यां बाल लीलया ॥२॥

यः पञ्चहायनः	जो पांच वर्षके थे तब	प्रातराशाय	कलेऊ करनेके लिए
बाल लीलया	बालक्रीड़ामें	याचितः	बुलाये जानेपर
यस्य सपर्यां	जिनकी पूजा (का खेल)	तत् न इच्छत्	उसे (कलेऊकी) इच्छा नहीं करते
रचयन्	बनाते (खेलते हुए)		थे ॥२॥
मात्रा	माताके द्वारा		

स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः ।
पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥३॥

स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः पृष्टः वार्तां प्रतिब्रूयात् भर्तुः पादाः अनुस्मरन् ॥३॥

स	वही (उद्धवजी)	**पृष्टः**	पूछे जानेपर
तस्य	उन (अपने आराध्य श्रीकृष्ण) की	**भर्तुः**	अपने स्वामीके
		पादाः अनुस्मरन	चरणोंका चिन्तन करनेमें लगकर
कालेन	दीर्घकालके द्वारा	**कथं प्रतिब्रूयात्**	कैसे उत्तर दे सकते थे ॥३॥
सेवया	सेवा करते हुए		
जरसं	बुढ़ापेमें		
गतः	पहुंच गये		

स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम् ।
तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः ॥४॥

स मुहूर्तं अभूत् तूष्णीं कृष्ण अङ्घ्रि सुधया भृशं तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः ॥४॥

कृष्ण अंघ्रि	श्रीकृष्णके चरणोंकी	**साधु**	भली प्रकार
		निर्वृतः	आनन्दमग्न हुए
सुधया	सुधामें	**स मुहूर्तं**	वे (उद्धवजी) घड़ी भर
तीव्रेण	तीव्र		
भक्तियोगेन	भक्तियोगसे	**तूष्णीं अभूत्**	चुप हो गये ॥४॥
भृशं निमग्नः	अत्यन्त डूबकर		

पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन्मीलद्दृशा शुचः ।
पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥५॥

पुलक उद्भिन्न सर्व अङ्गः मुञ्चन् मीलत् दृशा शुचः पूर्ण अर्थः लक्षितः तेन स्नेह प्रसर सम्प्लुतः ॥५॥

सर्व अङ्गः	सम्पूर्ण अंग	**मीलत् दृशा**	बन्द नेत्रोंसे
पुलक उद्भिन्न	रोमाञ्चित हो गया	**शुचः मुञ्चन्**	आँसू बहा रहे थे

स्नेह प्रसर	प्रेम प्रवाहमें	पूर्ण अर्थः	कृतकृत्य
सम्प्लुतः	डूब गये थे	लक्षितः	समझ लिया ॥५॥
तेन	इससे (विदुरने उन्हें)		

शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ।
विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥६॥

शनकैः भगवत् लोकात् नृलोकं पुनः आगतः विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रति आह उद्धव उत्स्मयन् ॥६॥

शनकैः	धीरे-धीरे	नेत्रं विमृज्य	नेत्र पोंछकर
भगवत् लोकात्	भगवान्‌के लोकसे	उत्स्मयन्	विस्मित होकर
पुनः नृलोकं	फिर मनुष्य लोकमें	विदुरं प्रति	विदुरसे
आगतः उद्धव	आये उद्धव	आह	बोले ॥५॥

उद्धव उवाच–

कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ।
किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥७॥

कृष्ण द्युमणि निम्लोचे गीर्णेषु अजगरेण ह किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेषु अहम् ॥७॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण रूपी	गतश्रीषु	शोभा रहित
द्युमणि	सूर्यके	नः	हमारे
निम्लोचे	छिप जानेपर	गृहेषु	घरोंकी
अजगरेण	(कालरूपी)	नु ह	अब तो
	अजगर द्वारा	किं कुशलं	क्या कुशल
गीर्णेषु	निगल लिए	ब्रूयां	बतलावें ॥७॥

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥

दुर्भगः बत लोकः अयं यदवः नितरां अपि ये संवसन्तः न विदुः हरिं मीना इव उडुपम् ॥८॥

बत अयं	निश्चय यह	**हरिं**	श्रीहरिको
लोकः दुर्भगः	लोक भाग्यहीन है	**न विदुः**	नहीं जान सके
यदवः अपि	यदुवंशी तो	**उडुपं**	चन्द्रमाको
नितरां	अत्यन्त (भाग्यहीन) हैं	**मीना इव**	मछलियोंकी भाँति ॥८॥
ये संवसन्तः	जो साथ रहते हुए		

विशेष—

अमृत-मन्थनसे पहिले अमृतमय चन्द्र समुद्रमें ही था; किन्तु मछलियाँ उसे भी कोई चमकीली मछली ही समझती थीं। उसमें अमृत है, यह नहीं जान सकीं; ऐसे ही यदुवंशी श्रीकृष्णको भी अपने समान ही समझते रहे। यह नहीं जान सके कि वे मोक्षदाता हैं।

इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः।
सात्वसामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥९॥

इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढाः एक आरामाः च सात्वताः सात्वतां ऋषभं सर्वे भूत आवासं अमंसत ॥९॥

सात्वताः	यदुवंशी	**भूत आवासं**	सर्व भूतमय (भगवान) को
इङ्गितज्ञाः	संकेत समझनेवाले	**सात्वतां**	यदुवंशियोंमें
पुरुप्रौढाः	बहुत चतुर थे	**ऋषभं**	श्रेष्ठ (एक यादव मात्र)
च एक आरामाः	और एक साथ क्रीड़ा करते थे (फिर भी)	**अमंसत**	माना ॥९॥
सर्वे	सबने		

देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसाश्रिताः।
भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥१०॥

देवस्य मायया स्पृष्टा ये च अन्यत् असत् आश्रिताः भ्राम्यते धीः न तत् वाक्यैः आत्मनि उप्त आत्मनः हरौ ॥१०॥

देवस्य	भगवानकी
मायया	मायासे
स्पृष्टा	ग्रस्त
ये च	जो भी
अन्यत्	दूसरे
असत् आश्रिताः	असदावलम्बी थे
तत्	उन (शिशुपालादिके)
वाक्यैः	वाक्योंसे
आत्मनः	अपने
आत्मनि	प्राणोंको
हरौ	श्रीकृष्णको
उप्तं	समर्पित करने वालोंकी
धीः	बुद्धि
भ्राम्यते न	भ्रममें नहीं पड़ती ॥१०॥

प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ।
आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥११॥

प्रदर्श्य अतप्त तपसां अवितृप्त दृशां नृणां आदाय अन्तरधात् यः तु स्वबिम्बं लोक लोचनम् ॥११॥

अतप्त तपसां	कभी तपस्या न करनेवाले
नृणां	मनुष्योंको
स्वबिम्बं	अपना स्वरूप
प्रदर्श्य	दर्शन कराके
अवितृप्त दृशां	उनके नेत्रोंके अतृप्त रहते
यः तु	जो यह
अन्तरधात्	अन्तर्धान हो गये (मानो)
लोक लोचनं	सब लोगोंके नेत्रोंको
आदाय	लेकर (चले गये) ॥११॥

यन्मर्त्यलीलोपयिकं स्वयोग-
मायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥१२॥

यत् मर्त्यलीला उपयिकं स्व योगमायाबलं दर्शयता गृहीतं विस्मापनं स्वस्य च सौभगऋद्धेः परं पदं भूषण भूषण अङ्गम् ॥१२॥

स्व	अपनी	स्वस्य च	उनको स्वयंको भी
योगमाया बलं	योगमायाकी शक्ति	विस्मापनं	विस्मित करनेवाला
दर्शयता	दिखलाते हुए	भूषण	आभूषणोंको भी
यत् मर्त्यलीला	जो मनुष्य लीलाके	भूषणं	सुन्दर करनेवाला
उपयिकं	उपयुक्त (रूप)	अङ्ग	वह श्रीअङ्ग
गृहीतं	ग्रहण किया था	परं पदं	सौन्दर्यकी पराकाष्ठा
सौभगऋद्धेः	सौन्दर्य सम्पत्तिमें		था ॥१२॥

यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये
निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ।
कात्स्न्र्येन चाद्येह गतं विधातु-
रर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥१३॥

यत् धर्मसूनोः बत राजसूयः निरीक्ष्य दृक् स्वस्त्ययनं त्रिलोकः कात्स्न्र्येन च अद्य इह गतं विधातुः अर्वाक् सृतौ कौशलं इति अमन्यत ॥१३॥

यद् धर्मसूनोः	जब युधिष्ठिरके	कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण
राजसूये	राजसूय यज्ञमें	कौशलं	कुशलताको
दृक्	दृष्टिके लिए	अद्य इह	आज यहाँ
स्वस्त्ययनं	मंगल निवास (रूपको)	बत अर्वाक्	निश्चित नीचे (छोटा)
निरीक्ष्य	देखकर (लोगोंने)	गतं च	पहुँचा हुआ
विधातुः	ब्रह्माकी	इति अमन्यत	ऐसा मान लिया ॥१३॥
त्रिलोकः	त्रिलोकीको		
सृतौ	बनानेकी		

यस्यानुरागप्लुतहासरासे-
लीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।
व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्त-
धियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥१४॥

यस्य अनुराग हास रास लीला अवलोक प्रतिलब्ध मानाः व्रजस्त्रियः दृग्भिः अनुप्रवृत्त धियः अवतस्थुः किल कृत्य शेषाः ॥१४॥

यस्य अनुराग हास	जिनकी प्रेमपूर्ण हास्य
रास	विनोद
लीला अवलोक	लीलामय चितवनसे
मानाः प्रतिलब्ध	सम्मान प्राप्ता
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियाँ
दृग्भिः	आखोंके (और)
धियः अनुप्रवृत्त	बुद्धिके उधर ही लग जानेसे
किल कृत्य	निश्चित कर्मको
शेषाः	अधूरा छोड़कर
अवतस्थुः	(पुतलीके समान) स्थिर रह जाती थीं ॥१४॥

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपै-
रभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ।
परावरेशो महदंशयुक्तो
ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः ॥१५॥

स्व शान्तरूपेषु इतरैः स्वरूपैः अभ्यर्द्यमानेषु अनुकम्पित आत्मा पर अवर ईशः महत् अंश युक्तः हि अजः अपि जातः भगवान् यथा अग्निः ॥१५॥

पर अवर	चर-अचरके
इशः	स्वामी (भगवान्ने)
स्व शान्तरूपेषु	अपने शान्त रूप (महात्माओंको)
इतरैः	दूसरे (राजसिक-तामसिक)
स्वरूपैः	अपने ही रूपोंसे
अभ्यर्द्यमानेषु	उत्पीड़ित होनेपर
हि अनुकम्पित	क्योंकि करुणापूर्ण
आत्मा	हृदय होकर
महत् अंश	महान अंश (बलरामजी)
युक्तः	सहित
अजः अपि	अजन्मा होनेपर भी
भगवान्	भगवानने
जातः	जन्म लिया
यथा अग्निः	जैसे अग्नि (सर्व व्यापक रहते भी आधार काष्ठादिमें पैदा हो जाता है) ॥१५॥

मां खेदयत्येतदजस्य जन्म-
विडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ।
व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं
पुराद् व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥१६॥

मां खेदयति एतत् अजस्य जन्म विडम्बनं यत् वसुदेव गेहे व्रजे च वासः अरिभयात् इव स्वयं पुरात् व्यवात्सीत् यत् अनन्तवीर्यः ॥१६॥

अजस्य	अजन्मा होकर	**व्रजे वासः**	व्रजमें निवास है
यत्	जो	**च यत्**	तथा जो
वसुदेव गेहे	वसुदेवजीके घरमें	**पुरात्**	(मथुरा) नगरको
जन्म	जन्म लेनेकी	**व्यवात्सीत्**	त्यागकर (काल-यवनके सामनेसे) उजाड़ना (द्वारिका बसाना है)
विडम्बनं	लीला करना है		
स्वयं अनन्तवीर्यं	स्वयं अनन्त पराक्रम होनेपर भी		
अरिभयात्	शत्रुसे (कंससे) भयभीतके	**एतत्**	ये (लीलायें)
		मां खेदयति	मुझे खिन्न करती हैं ॥१६॥
इव	समान		

दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्
यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ।
तातास्ब कंसादुरुशङ्कितानां
प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥१७॥

दुनोति चेतः स्मरतः मम एतत् यत् आह पादाः अभिवन्द्य पित्रोः तात अम्ब कंसात् उरु शङ्कितानां प्रसीदतं नः अकृत निष्कृतीनाम् ॥१७॥

एतत् स्मरतः	इसे स्मरण करनेपर	**आह**	कहा था कि
मम चेतः	मेरा चित्त	**तात अम्ब**	पिताजी माताजी
दुनोति	व्यथित हो जाता है	**कंसात्**	कंससे
यत् पित्रोः	जो माता-पिताके	**उरु शङ्कितानां**	बहुत आशंकित
पादाः अभिवन्द्य	चरणोंकी वन्दना करके	**निष्कृतीनां**	(आपके उपकारों) का बदला

अकृत नः	न दे सकनेवाले हम (दोनों भाइयों) पर	प्रसीदतं	(आप दोनों) प्रसन्न हों ॥१७॥

को वा अमुष्याङ्घ्रिसरोजरेणुं
विस्मर्तुमीशीत पुमान् विजिघ्रन् ।
यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमे-
र्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥१८॥

कः वा अमुष्य अङ्घ्रि सरोजरेणुं विस्मर्तुं ईशीत पुमान् विजिघ्रन् यः विस्फुरत् भ्रू विटपेन भूमेः भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥१८॥

यः	जिन्होंने	पादसरोजरेणुं	चरण-कमलकी रजको
कृतान्तेन	काल स्वरूप	विजिघ्रन	सूँघने (सेवन करने) वाला
विस्फुरत्	फड़कती हुई	कः वा	कौन-सा
विटपेन	घनी टेढ़ी	पुमान्	मनुष्य
भ्रू	भौंहोंसे ही	विस्मर्तुं	(उसे) भूलनेमें
भूमेः भारं	पृथ्वीका भार	ईशीत	समर्थ हो सकता है ॥१८॥
तिरश्चकार	तिरस्कृत (दूर) कर दिया था		
अमुष्य	उनके		

दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये
चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्
योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥१९॥

दृष्टा भवद्भिः ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतः अपि सिद्धिः यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यक् योगेन कः तत् विरहं सहेत ॥१९॥

यां	जिस (गति) की	योगेन	योगके द्वारा (पानेकी)
सम्यक्	भली प्रकार किये		

योगिनः	योगी लोग
संस्पृहयन्ति	स्पृहा (इच्छा) करते हैं
चैद्यस्य	शिशुपालकी
कृष्णं	श्रीकृष्णसे
द्विषतः अपि	द्वेष करनेपर भी (वही)
सिद्धिः	गति हुई
ननु भवद्भिः	निश्चय आप लोगोंने
राजसूये	राजसूय यज्ञमें
दृष्टा	(इसे) देखा
तत्	उन्हीं (भगवान) के
विरहं	वियोगको
कः सहेत	कौन सह सकता है ॥१९॥

तथैव चान्ये नरलोकवीरा
य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ।
नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं
पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥२०॥

तथा एव च अन्ये नरलोक वीरा य आहवे कृष्ण मुख अरविन्दं नेत्रैः पिबन्तः नयन अभिरामं पार्थ अस्त्रपूताः पदं आपुः अस्य ॥२०॥

तथा एव	वैसे ही
अन्ये च	दूसरे भी
नरलोक वीरा	पृथ्वीके वीर
य आहवे	जो युद्धमें
नयन अभिरामं	नयनाभिराम
कृष्ण मुख	श्रीकृष्णके मुखरूपी
अरविन्दं	कमलको
नेत्रैः पिबन्तः	नेत्रोंसे पीते (देखते) हुए
पार्थ	अर्जुनके
अस्त्रपूताः	अस्त्रसे पवित्र हुए (मारे गये)
अस्य	(वे) इन (भगवान) के
पदं	धामको
आपुः	प्राप्त हुए ॥२०॥

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः
स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः
किरीटकोटयेडितपादपीठः ॥२१॥

स्वयं तु असाम्य अतिशयः त्र्यधीशः स्वाराज्य लक्ष्म्या आप्त समस्त कामः बलिं हरद्भिः चिर लोकपालैः किरीट कोटि ईडित पादपीठः ॥२१॥

स्वयं तु	स्वयं तो (भगवान श्रीकृष्ण)
अतिशयः	सर्वश्रेष्ठ हैं,
असाम्य	उनकी समताका कोई नहीं
त्र्यधीशः	तीनों लोकोंके स्वामी हैं
स्वाराज्य लक्ष्म्या	अपने स्वतः सिद्ध ऐश्वर्यसे
आप्त समस्त कामः	सम्पूर्ण रूपसे पूर्ण काम हैं,
लोकपालैः	लोकपालों द्वारा
बलिं हरद्भिः	उपहार देते समय
चिर	बहुत देरतक
किरीट कोटि	मुकुटकी नोकसे (उनकी)
पादपीठः	चरण रखनेकी चौकी
ईडित	बन्दित होती थी ॥२१॥

तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो
विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ।
तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये
न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥२ ॥

तत् तस्य कैङ्कर्यं अलं भृतान् नः विग्लापयत् अङ्ग यत् उग्रसेनं तिष्ठन् निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयत् देव निधारय इति ॥२२॥

अंग	प्रिय (विदुरजी !)
तत् तस्य	ऐसे उन (श्रीकृष्ण) का
कैङ्कर्यं	सेवाभाव
नः भृतान्	हम (उनके) सेवकोंको
अलं	अत्यन्त
विग्लापयत्	व्यथित करता है
यत् परमेष्ठिधिष्ण्ये	जो राजसिंहासन-पर
निषण्णं	बैठे
उग्रसेनं	उग्रसेनके
तिष्ठन्	सामने खड़े होकर
इति	इस प्रकार
न्यबोधयत्	निवेदन करते थे
देव निधारय	देव (हमारी प्रार्थना) सुनिये ॥२२॥

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अहो बकी यं स्तन कालकूटं जिघांसया पाययत् यदपि असाध्वी लेभे गतिं धातृ उचितां ततः अन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अहो	आश्चर्यकी बात है कि	यदपि	यद्यपि (वह)
यं जिघांसया	जिनको मारनेके लिए	असाध्वी	दुष्टा थी (फिर भी)
स्तन कालकूटं	स्तनमें लगे कालकूट विषको	ततः धातृ	उनसे धायके लिए
पाययत्	पिलाया (उस)	उचितां	उचित(मिलने योग्य)
बकी	पूतनाने	गतिं लेभे	गतिको प्राप्त हुई
		कं वा	किस उनसे(अधिक)
		दयालुं	दयालुकी
		शरणं व्रजेम	शरणमें जावें ॥२३॥

मन्येऽसुरान् भागवतांस्त्र्यधीशे
संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ।
ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्र-
मंसेसुनाभायुधमापतन्तम् ॥२४॥

मन्ये असुरान् भागवतांन् त्र्यधीशे संरम्भ मार्ग अभिनिविष्ट चित्तान् ये संयुगे अचक्षत तार्क्ष्यपुत्रं अंसे सुनाभ आयुधं आपतन्तम् ॥२४॥

असुरान्	असुरोंको (मैं)	तार्क्ष्यपुत्र	गरुड़के
भागवतांन्	भगवद्भक्त	अंसे	कन्धेपर (बैठे)
मन्ये	मानता हूँ (क्योंकि वे)	सुनाभ आयुध	चक्रायुध (भगवानका)
त्र्यधीशे	त्रिभुवननाथमें	आपतन्तं	(अपनी ओर) झपटते हुए
संरम्भ मार्ग	द्वेषके मार्गसे		
अभिनिविष्ट	प्रविष्ट	अचक्षत	दर्शन करते
चित्तान्	चित्तवाले (हैं)		है ॥२४॥
ये संयुगे	जो युद्धमें		

वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने ।
चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥२५॥

वसुदेवस्य देवक्यां जातः भोजेन्द्र बन्धने चिकुर्षुः भगवान् अस्याः शं अजेन अभियाचितः ॥२५॥

अस्या शं	इस (पृथ्वी) का कल्याण	भोजेन्द्र	कंसके
चिकुर्षुः	करनेकी इच्छासे	बन्धने	कारागारमें
अजेन	ब्रह्मा द्वारा	वसुदेवस्य	वसुदेवकी (पत्नी)
अभियाचितः	प्रार्थना किये जानेपर	देवक्यां	देवकीसे
भगवान्	भगवान	जातः	उत्पन्न हुए ॥२५॥

ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता ।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥

ततः नन्दव्रजं इतः पित्रा कंसात् विबिभ्यता एकादश समाः तत्र गूढार्चिः सबलः अवसत् ॥२६॥

ततः कंसात्	तदनन्तर कंससे	तत्र गूढार्चिः	वहाँ अपने तेजको छिपाये
विबिभ्यता	अत्यन्त डरते हुए	एकादश समाः	ग्यारह वर्ष
पित्रा	पिताके द्वारा	सबलः	बलरामजीके साथ
इतः	यहाँ (मथुरा) से	अवसत्	रहे ॥२६॥
नन्दव्रजं	नन्दजीके व्रज (गोकुल पहुँचाये गये)		

परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन् व्यहरद्विभुः ।
यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥२७॥

परीतः वत्सपैः वत्सान् चारयन् व्यहरत् विभुः यमुना उपवने कूजत् द्विज संकुलित अङ्घ्रिपे ॥२७॥

वत्सपैः	(वहाँ) बछड़ोंके रखवालोंसे	वत्सान्	बछड़ोंको
परीतः	घिरे हुए	चारयन्	चराते हुए
		विभुः	सर्वव्यापक भगवान

यमुना उपवने	यमुनातटके उपवनमें	द्विज संकुलिते	पक्षियोंसे भरे
		अङ्घ्रिपे	वृक्षों (के बीच)
कूजत्	कूजन करते (चहचहाते)	व्यहरत्	विहार करते रहे ॥२७॥

कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ।
रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥२८॥

कौमारीं दर्शयन् चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसां रुदन् इव हसन् मुग्ध बालसिंह अवलोकनः ॥२८॥

व्रजौकसां	व्रजवासियोंको	हसन्	(कभी) हँसते थे
प्रेक्षणीयां	देखने ही योग्य	बालसिंह	सिंह-शावकके समान*
कौमारीं चेष्टां	बाल लीला		
दर्शयन्	दिखलाते हुए	मुग्ध अवलोकनः	(कभी) मुग्ध दृष्टिसे देखते थे ॥२८॥
रुदन् इव	(कभी) रोते-से थे,		

स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् ।
चारयन्ननुगान् गोपान् रणद्वेणुररीरमत् ॥२९॥

स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सित गोवृषं चारयन् अनुगान् गोपान् रणत् वेणु अरीरमत् ॥२९॥

स एव	वही (भगवान कुछ बड़े होनेपर)	चारयन्	चराते हुए
		अनुगान्	(अपने) अनुगत
सित गोवृषं	श्वेत सांड़ों (तथा)	गोपान्	गोपबालकोंको
लक्ष्म्या	लक्ष्मीकी	रणत् वेणु	वंशी बजाते हुए
निकेतं	निवास	अरीरमत्	रिझाने लगे ॥२९॥
गोधनं	गायोंको		

प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ।
लीलया व्यनुदत्तांस्तान् बालः क्रीडनकानिव ॥३०॥

---

* सिंह-शिशु न डरता, न आक्रमण करता, कोई नया प्राणी या व्यक्ति दीखनेपर उसे कुतूहलपूर्वक देखता रहता है ।

प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः लीलया व्यनुदत् तान्तान् बालः क्रीडनकान् इव ॥३०॥

भोजराजेन	कंसके द्वारा	**बालः**	बालक
प्रयुक्तान्	भेजे	**क्रीडनकान् इव**	खिलौनोंको जैसे (तोड़ते हैं)
मायिनः	मायावी	**लीलया**	खेलमें ही
कामरूपिणः	इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले	**व्यनुदत्**	मार डाला ॥३०॥
तान्तान्	उन उन (राक्षसोंको)		

विपन्नान् विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ।
उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥३१॥

विपन्नान् विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपं उत्थाप्य अपाययत् गावः तत् तोयं प्रकृतिः स्थितम् ॥३१॥

विषपानेन	विष (मिश्रित यमुनाजल) पीलेनेसे	**निगृह्य**	नियन्त्रित करके (निकालकर)
विपन्नान्	मरे हुए (ग्वालबालोंको)	**तत् तोयं**	उस (यमुना) जलको
उत्थाप्य	(जीवित करके) उठा दिया	**प्रकृतिः स्थितं**	स्वाभाविक (निर्विष) करके
भुजगाधिपं	नागराज (कालिय) को	**गावः**	गायोंको
		अपाययत्	पिलाया ॥३१॥

अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ।
वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन् सद्व्ययं विभुः ॥३२॥

अयाजयत् गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः वित्तस्य च उरुभारस्य चिकीर्षन् सद्व्ययं विभुः ॥३२॥

विभुः	भगवानने	**उरुभारस्य**	बहुत सामग्रियोंका
वित्तस्य च	धनका और	**सद्व्ययं**	उत्तम उपयोग

चिकुर्षुः	करनेकी इच्छासे	गोसवेन	(गोवर्धन पूजन रूप)
द्विजोत्तमैः	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा		गौयज्ञ
गोपराजं	गोपराज नन्दबाबासे	अयाजयत्	कराया ॥३२॥

वर्षतीन्द्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ।
गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥३३॥

वर्षति इन्द्रे व्रजः कोपात् भग्नमाने अति विह्वलः गोत्र लीला आतपत्रेन त्रातः भद्र अनुगृह्णता ॥३३॥

भद्र	भद्र !	व्रजः	व्रज (के लोगों) की
भग्नमाने	मान भंग होनेसे	लीला आतपत्रेन	खेलके छत्ते
कोपात्	क्रोधसे		(के समान)
इन्द्रे वर्षति	इन्द्रके (घोर) वृष्टि	गोत्र	पर्वत (उठाकर)
	करनेपर	अनुगृह्णता	कृपा करके
अति विह्वलः	अत्यन्त व्याकुल	त्रातः	रक्षा की ॥३३॥

शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन् रजनीमुखम् ।
गायन् कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥३४॥

शरत् शशिकरैः मृष्टं मानयन् रजनीमुखं गायन् कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डल मण्डनः ॥३४॥

शरत्	शरदऋतुके	मण्डनः	भूषित करते
शशिकरैः	चन्द्रकिरणोंमें	कलपदं	सुन्दर स्वरमें
मृष्टं	उज्ज्वल	गायन्	गाते हुए
रजनीमुखं	सायंकालका	रेमे	विहार करते
मानयन्	सम्मान करते हुए		रहे ॥३४॥
स्त्रीणां मण्डल	(स्त्री) गोपियोंके		
	मण्डलको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

उद्धव उवाच-

ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रो-
श्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ।
निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं
हतं व्यकर्षद् व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥१॥

ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोः चिकीर्षया शं बलदेव संयुतः निपात्य तुङ्गात् रिपु यूथनाथं हतं व्यकर्षत् व्यसुं ओजसः उर्व्यां ॥१॥

ततः स	फिर वे (श्रीकृष्ण)	तुङ्गात्	ऊँचे (मंच) से
स्वपित्रोः	अपने माता-पिताकी	निपात्य	गिराकर
शं चिकीर्षया	शान्ति-सुख चाहते हुए	हतं	मरनेपर
बलदेव संयुतः	बलरामजीके साथ	ओजसः उर्व्यां	आवेशमें पृथ्वीपर
पुरं आगत्य	नगर (मथुरा) में आकर	व्यसुं	(उसके) निष्प्राण देहको
रिपु यूथनाथं	शत्रुओंके समुदायके स्वामी (कंस) को	व्यकर्षत्	घसीटने लगे ॥१॥

सान्दीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ।
तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥२॥

सान्दीपनेः सकृत् प्रोक्तं ब्रह्म अधीत्य सविस्तरं तस्मै प्रादात् वरं पुत्रं मृतं पञ्चजन उदरात् ॥२॥

सान्दीपनेः	(महर्षि) सान्दीपनि द्वारा	सकृत् प्रोक्तं	एक ही बार कहे गये

ब्रह्म सविस्तरं	वेदोंका विस्तारके साथ	मृतं पुत्रं	मरे पुत्रको
अधीत्य	अध्ययन करके	तस्मै वरं	उन (गुरुजी) को वरदानके रूपमें
पञ्चजन	(असुर) पञ्चजनके	प्रादात्	प्रदान किया ॥२॥
उदरात्	(निगलकर) पेटमें पहुँचकर		

समाहुता भीष्मककन्यया ये
श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ।
गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं
जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥३॥

समाहुता भीष्मक कन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषया एषां गान्धर्व वृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत् सुपर्णः ॥३॥

ये	जो (राजा लोग)	स्वभागं	अपने भाग (रुक्मिणीको)
भीष्मक कन्यया	भीष्मककी पुत्री (रुक्मिणी)	मिषतां	पानेके लिए
श्रियः	की शोभासे(अथवा)	एषां मूर्ध्नि	उन (आये हुए नृपों) के सिरपर
सवर्णेन	सगे भाई (रुक्मी) के	पदं दधत्	पैर रखकर
समाहुता	बुलानेपर	सुपर्णः	गरुड़ (के अमृत हरणके समान)
बुभूषया	उसे प्राप्त करने (आये थे)	जह्रे	हरण कर लिया ।३।
गान्धर्व वृत्त्या	गान्धर्व-विधिसे		

ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा
स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ।
तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञा-
ञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥४॥

ककुद्मतः अविद्धनसः दमित्वा स्वयं वरे नाग्नजितीं उवाह तद् भग्नमानान् अपि गृध्यतः अज्ञान् जघ्ने अक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥४॥

अविद्धनसः	बिना नाथे हुए	अपि	भी
ककुद्मतः	(सात) सांड़ोंका	गृध्यतः	(सत्याजीको) चाहते हुए
दमित्वा	दमन करके	शस्त्रभृतः	शस्त्र लेकर (लड़ते)
स्वयं वरे	स्वयंवरमें	अज्ञान्	मूर्खों (राजाओं) को
नाग्नजितीं	नग्नजित नन्दिनी (सत्या) से	अक्षतः	(स्वयं) बिना घायल हुए
उवाह	विवाह किया	स्वशस्त्रैः	अपने शस्त्रोंसे
तद् भग्नमानान्	उन (सांड़ोंसे) मान भंग होनेपर	जघ्ने	मार दिया ॥४॥

प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया
विधित्सुराच्छद्द्रु द्युतरुं यदर्थे ।
वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषान्धः
क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥५॥

प्रियं प्रभुः ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुः आच्छत् द्युतरुं यत् अर्थे वज्रया द्रवन्तं सगणः रुषा अन्धः क्रीडामृगः नूनं अयं वधूनाम् ॥५॥

ग्राम्य इव	विषयी पुरुषोंकी भाँति	रुषा अन्धः	क्रोधसे अन्धे हुए
प्रियाया	अपनी प्रिया (सत्यभामा) का	सगणः	अपने गणोंके साथ
प्रियं विधित्सुः	प्रिय करनेके लिए	वज्री आद्रवत	इन्द्र दौड़ पड़े
द्युतरुं	कल्पवृक्ष	नूनं अयं	निश्चय ये (इन्द्र)
आच्छत्	छीन लाये	वधूनां	अपनी पत्नी (शचीके)
यत् अर्थे	जिसके लिए	क्रीड़ामृगः	खिलौने (बन गये) थे ॥५॥

सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं
दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ।
आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं
दत्त्वा तदन्तःपुरमाविवेश ॥६॥

सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभ उन्मथितं धरित्र्या आमन्त्रितः तत् तनयाय शेषं दत्त्वा तत् अन्तःपुरं आविवेश ॥६॥

खं	आकाशको	धरित्र्या	पृथ्वीके द्वारा
वपुषा	(अपने विशाल) शरीरसे	आमन्त्रितः	बुलाये जानेपर
		तत् तनयाय	उसके पुत्रको
ग्रसन्तं	ढक देनेवाले	शेषं दत्त्वा	शेष (राज्य) देकर
सुतं	पुत्र (नरकासुर) को	तत् अन्तःपुरं	उसके अन्तःपुरमें
सुनाभ	चक्र द्वारा	आविवेश	प्रवेश किया ॥६॥
उन्मथितं	मरा देखकर		

तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः
कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ।
उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्ष-
व्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ॥७॥

तत्र आहृताः ता नरदेव कन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिं आर्तबन्धुं उत्थाय सद्यः जगृहुः प्रहर्ष व्रीडा अनुराग प्रहित अवलोकैः ॥७॥

तत्र कुजेन	वहाँ भौमासुर द्वारा	प्रहर्ष	अत्यन्त हर्ष
आहृताः	हरण की हुई	व्रीडा अनुराग	लज्जा, प्रेम
ता नरदेवकन्याः	उन राजकन्याओंने	प्रहित	भरी
आर्तबन्धुं	दीनबन्धु	अवलोक	चितवन द्वारा
हरिं दृष्ट्वा	श्रीकृष्णको देखकर	जगृहुः	(उन्हें पति रूपमें) ग्रहण कर लिया ॥७॥
सद्यः	तत्काल		
उत्थाय	उठकर खड़ी होकर		

आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ।
सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥८॥

आसां मुहूर्त एकस्मिन् नाना आगारेषु योषितां सविधं जगृहे पाणीन् अनुरूपः स्वमायया ॥८॥

आसां योषितां	इन स्त्रियोंके	एकस्मिन्	एक ही
नाना आगारेषु	अनेकों घरोंमें	मुहूर्तं	मुहूर्तमें

सविधं	विधिपूर्वक	**पाणीन् जगृहे**	(उनका) पाणिग्रहण किया ॥८॥
स्वमायया	अपनी मायासे		
अनुरूपः	(उनके) अनुरूप होकर		

तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ।
एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥९॥

तासु अपत्यान् अजनयत् आत्मतुल्यानि सर्वतः एकैकस्यां दश दश प्रकृतेः विबुभूषया ॥९॥

प्रकृतेः	अपनी लीलाका (सन्तानका)	**दश दश**	दस दस
विबुभूषया	विस्तार करनेके लिए	**सर्वतः**	सब प्रकारसे
तासु एकैकस्यां	उन (रानियों) में एक एक से	**आत्मतुल्यानि**	अपने समान
		अपत्यान्	पुत्र
		अजनयत्	उत्पन्न किए ॥९॥

कालमागधशाल्वादीननीकैरुन्धतः पुरम् ।
अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥

काल मागध शाल्व आदीन् अनीकैः रुन्धतः पुरं अजीघनत् स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥

काल	कालयवन,	**रुन्धतः**	घेरे जानेपर
मागध	जरासन्ध,	**स्वपुंसां**	अपने जनोंमें
शाल्व	शाल्व	**दिव्यं तेज**	(अपना) दिव्य तेज
आदीन्	आदि द्वारा	**आदिशत्**	देकर
अनीकैः	सेनाओंसे	**स्वयं**	स्वयं (उन्हें)
पुरं	मथुरापुरीके	**अजीघनत्**	मरवाया ॥१०॥

शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ।
अन्यांश्च दन्तवक्त्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥११॥

शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलं एव च अन्यान् च दन्त वक्त्रादीन् अवधीत् कान् च घातयत् ॥११॥

शम्बरं	शम्बर	अन्यांन् च	दूसरे भी
द्विविदं	द्विविद	दन्त वक्त्रादीन्	दन्तवक्त्र आदिको
बाणं	बाणासुर	अवधीत्	मार दिया
मुरं च	मुर एवं	कांन् च	कुछको
बल्वलं एव	बल्वलको भी	घातयत्	मरवा दिया ॥११॥

अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ।
चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥१२॥

अथ ते भ्रतृ पुत्राणां पक्षयोः पतितान् नृपान् चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषां आपततां बलैः ॥१२॥

अथ ते	फिर आपके	येषां	जिनकी
भ्रातृ पुत्राणां	भाइयोंके पुत्रोंके	बलैः	सेनाओंके
पक्षयोः	पक्षोंमें	कुरुक्षेत्रं	कुरुक्षेत्रमें
पतितान्	आये हुए	आपततां	आनेसे
नृपान्	राजाओंको (भी मरवा दिया)	भूः चचाल	पृथ्वी हिलने लगी थी ॥१२॥

सकर्णदुःशासनसौबलानां
कुमन्त्रपाकेन हृतश्रियायुषम् ।
सुयोधनं सानुचरं शयानं
भग्नोरुमुर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥१३॥

सकर्ण दुःशासन सौबलानां कुमन्त्र पाकेन हृत श्रिया आयुषां सुयोधनं स अनुचरं शयानं भग्न उरुं उर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥१३॥

सकर्ण	कर्णके साथ	आयुषां	आयुके
दुःशासन	दुःशासन	हृत	नष्ट होनेसे
सौबलानां	शकुनिकी	अनुचरं	अनुचरोंके साथ
कुमन्त्र	बुरी सलाहके	सुयोधनं	दुर्योधनको
पाकेन	परिणाम स्वरूप	भग्न उरुं	जाँघें टूट जानेपर
श्रिया	शोभा (एवं)	उर्व्यां	पृथ्वीपर

शयानं	सोता (मरा)	न ननन्द	प्रसन्न नहीं
पश्यन्	देखकर (भगवान)		हुए ॥१३॥

कियान् भुवोऽयं क्षपितोरुभारो
यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ।
अष्टादशाक्षौहिणीको मदंशै-
रास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४॥

कियान् भुवः अयं क्षपितः उरुभारः यत् द्रोण भीष्म अर्जुन भीम मूलैः अष्टादश अक्षौहिणिकः मदंशैः आस्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४॥

यत्	(भगवान सोचने लगे) यदि	अयं भुवः	यह पृथ्वीका
द्रोण	द्रोणाचार्य,	उरु भारः	भारी भार
भीष्म	भीष्मपितामह,	क्षपितः	दूर हो गया
अर्जुन	अर्जुन,	कियान्	कितना (दूर हुआ)
भीम	भीमसेन	मदंशैः	मेरे अंशवाले
मूलैः	द्वारा	यदूनां	यदुवंशियोंकी
अष्टादश	अठारह	दुर्विषहं	दुःसह
अक्षौहिणिकः	अक्षौहिणीका	बलं आस्ते	सेना तो (अभी) है ही ॥१४॥

मिथो यदैषां भविता विवादो
मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ।
नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो
मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

मिथः यत् एषां भविता विवादः मध्वा मदात् ताम्र विलोचनानां न एषां वध उपायः इयान् अतः अन्यः मयि उद्यते अन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

यत् एषां	जो इनमें	मिथः	परस्पर
मध्वा मदात्	शराबके नशेसे	स्वयं विवादः	स्वयं झगड़ा
ताम्र विलोचनानां	लाल आँखों वालोंमें	भवितास्म	होवे तो
		मयि अन्तर्दधते	मेरे अन्तर्धान होनेके

उद्यते	प्रस्तुत होनेपर	उपायः	उपाय
इयान् अतः	इसको छोड़कर	एषां वध न	इनके वधका नहीं
अन्यः	दूसरा कोई		है ॥१५॥

एवं सञ्चिन्त्य भगवान् स्वाराज्ये स्थाप्य धर्मजम् ।
नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥

एवं संचिन्त्य भगवान् स्वाराज्ये स्थाप्य धर्मजं नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥

एवं	इस प्रकार	साधूनां वर्त्म	सत्पुरुषोंका मार्ग
संचिन्त्य	सोचकर	दर्शयन्	दिखलाते हुए
भगवान्	भगवानने	सुहृदः	सम्बन्धियोंको
धर्मजं	युधिष्ठिरको	नन्दयामास	आनन्दित
स्वाराज्ये	अपने राज्यपर		किया ॥१६॥
स्थाप्य	बैठाकर		

उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ।
स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥१७॥

उत्तरायां धृतः पूरोः वंशः साधु अभिमन्युना स वै द्रौणि अस्त्र संछिन्नः पुनः भगवता धृता ॥१७॥

उत्तरायां	उत्तरामें	द्रौणि अस्त्र	अश्वत्थामाके
अभिमन्युना	अभिमन्युके द्वारा		अस्त्रसे
साधु	श्रेष्ठ	संछिन्नः	कट गया था
पूरोः वंशः	पुरुका वंश	भगवता	भगवानके द्वारा
धृतः	स्थापित हुआ था	पुनः धृता	फिर रक्षित
स वै	वह तो		हुआ ॥१७॥

अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः ।
सोऽपि क्ष्मामनुजैः रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ॥१८॥

अथ अयाजयत् धर्मसुतं अश्वमेधैः त्रिभिः विभुः सः अपि क्ष्मां अनुजैः रक्षन् रेमे कृष्णं अनुव्रतः ॥१८॥

अथ विभुः	फिर भगवानने	अनुव्रतः	अनुगामी रहकर
धर्मसुतं	युधिष्ठिरसे	अनुजैः	भाइयोंके साथ
त्रिभिः	तीन	क्ष्मां रक्षन्	पृथ्वीकी रक्षा करते हुए
अश्वमेधैः	अश्वमेध यज्ञ		
अयाजयत्	करवाये	रेमे	आनन्दसे रहने लगे ॥१८॥
सः अपि	वे (युधिष्ठिर) भी		
कृष्णं	श्रीकृष्णके		

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ।
कामान् सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥१९॥

भगवान् अपि विश्वात्मा लोक वेद पथ अनुगः कामान् सिषेवे द्वार्वत्यां असक्तः साख्यं आस्थितः ॥१९॥

विश्वात्मा	विश्वात्मा	साख्यं	विवेकका
भगवान् अपि	भगवान्ने भी	आस्थितः	आश्रयण करके
लोक	लोकाचार	असक्तः	अनासक्त रहते हुए
वेद	वैदिक	द्वार्वत्यां	द्वारिकामें
पथ	मर्यादाके	कामान्	भोगोंका
अनुगः	पीछे चलते (पालन करते) हुए	सिषेवे	उपभोग किया ॥१९॥

स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ।
चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥२०॥

स्निग्ध स्मित अवलोकेन वाचा पीयूष कल्पया चरित्रेण अनवद्येन श्रीनिकेतन च आत्मना ॥२०॥

स्निग्ध	मधुर	अनवद्येन	निर्दोष
स्मित	मुसुकानपूर्वक	चरित्रेण च	चरित्रसे तथा
अवलोकेन	देखनेसे	श्रीनिकेतन	शोभाधाम
पीयूष कल्पया	अमृत समान	आत्मना	अपने स्वरूपसे ॥२०॥
वाचा	वाणीसे		

इमं लोकममुं चैव रमयन् सुतरां यदून् ।
रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥२१॥

इमं लोकं अमुं च एव रमयन् सुतरां यदून् रेमे क्षणदया दत्तक्षण स्त्री क्षण सौहृदः ॥२१॥

इमं लोकं	इस लोकको	स्त्री	रानियोंको
अमुं च	परलोक (स्वर्ग) को भी	दत्तक्षण क्षण सौहृदः	अवसर देकर सामयिक प्रेम करते हुए
सुतरां	विशेषतः		
यदून्	यदुवंशियोंको (तथा)	रेमे	आनन्दित किया ॥२१॥
क्षणदया	रात्रिमें		

तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान् बहून् ।
गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥

तस्य एवं रममाणस्य संवत्सर गणान् बहून् गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥

तस्य एवं	उनके इस प्रकार	योगेषु	संयोगोंसे
बहून्	बहुत	विरागः	वैराग्य
संवत्सर गणान्	वर्षों तक	समजायत	उत्पन्न हो गया ॥२२॥
रममाणस्य	विहार करते हुए		
गृहमेधेषु	गृहस्थ सम्बन्धी		

दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ।
को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥२३॥

दैव आधीनेषु कामेषु दैव आधीनः स्वयं पुमान् कः विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरं अनुव्रतः ॥२३॥

दैव आधीनेषु	दैवके वशवर्ती	पुमान्	पुरुष
कामेषु	भोग हैं;	दैव आधीनः	दैवके वशवर्ती है ।
स्वयं	स्वयं		(अतः)

योगेश्वरं	योगेश्वर (श्रीकृष्ण) का	कः योगेन	कौन (भोगोंके) संयोगपर
अनुव्रतः	अनुवर्ती	विस्रंभेत	विश्वास करेगा ॥२३॥

पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ।
कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥२४॥

पुर्यां कदाचित् क्रीडद्भिः यदुभोज कुमारकैः कोपिता मुनयः शेपुः भगवन् मत कोविदाः ॥२४॥

कदाचित्	किसी समय	कोपिता	क्रुद्ध कर दिये गये
पुर्यां	नगरमें	भगवन् मत	भगवानके मतको
क्रीडद्भिः	खेलते हुए	कोविदा	जाननेवाले
यदुभोज कुमारकैः	यदु तथा भोज वंशी बालकों द्वारा	मुनयः	मुनियोंने
		शेपुः	शाप दे दिया ॥२४॥

ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः ।
ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥२५॥

ततः कतिपयैः मासैः वृष्णि भोज अन्धक आदयः ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैः देव विमोहिता ॥२५॥

ततः	उसके पश्चात्	संहृष्टा	प्रसन्न होकर
कतिपयैः मासैः	कुछ महीने बाद	रथैः	रथोंपर बैठकर
देव विमोहिता	भावीसे विमोहित	प्रभासं	प्रभास
वृष्णिभोज अन्धक आदयः	वृष्णि, भोज-अन्धकादि वंशीय	ययुः	गये ॥२५॥

तत्र स्नात्वा पितृन्देवानृषींश्चैव तदम्भसा ।
तर्पयित्वाथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥२६॥

तत्र स्नात्वा पितॄन् देवान् ऋषीः च एव तत् अम्भसा तर्पयित्वा अथ विप्रेभ्यः गावः बहुगुणाः ददुः ॥२६॥

तत्र स्नात्वा	वहाँ स्नान करके	अथ	पश्चात्
तत् अम्भसा	वहाँके जलसे	विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको
पितॄन्	पितरोंका,	बहुगुणाः	बहुत गुणवाली
देवान्	देवताओंका,	गावः	गायें
ऋषीन् च	ऋषियोंका भी	ददुः	दान कीं ॥२६॥
तर्पयित्वा एव	तर्पण करके ही		

हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान् ।
यानं रथानिभान् कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥२७॥

हिरण्यं रजतं शय्यां वासांसि अजिन कम्बलान् यानं रथान् इभान् कन्या धरां वृत्तिकरीं अपि ॥२७॥

हिरण्यं	स्वर्ण	यानं रथान्	सवारी (के लिए) रथ
रजतं	चाँदी	इभान्	हाथी
शय्यां	शय्या	कन्या	कन्या
वासांसि	वस्त्र	वृत्तिकरीं	जीविका निर्वाह योग्य
अजिन	(मृग) चर्म	धरां अपि	भूमि भी ॥२७॥
कम्बलान्	कम्बल		

अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ।
गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥२८॥

अन्नं च उरुरसं तेभ्यः दत्त्वा भगवत् अर्पणं गो विप्र अर्थ असवः शूराः प्रणेमुः भुवि मूर्धभिः ॥२८॥

उरुरसं	बहुत रसवाले	अर्थ असवः	के लिए ही प्राण धारण करनेवाले
अन्नं च	भोजन भी	शूराः	उन वीरोंने
भगवत् अर्पणं	भगवानको अर्पण करके	भुवि	पृथ्वीमें
तेभ्यः	उनको	मूर्धभिः	मस्तक रखकर
दत्त्वा	देकर	प्रणेमुः	(उन्हें) प्रणाम किया ॥२८॥
गो विप्र	गौ-ब्राह्मणों		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ।
तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥१॥

अथ ते तत् अनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीं तया विभ्रंशित ज्ञाना दुरुक्तैः मर्म पस्पृशुः ॥१॥

अथ तत्	तदनन्तर उन (ब्राह्मणों) की
अनुज्ञाता	अनुमति पाकर
ते भुक्त्वा	उन लोगोंने भोजन करके
वारुणीं च	मदिरा भी
पीत्वा तया	पीकर उस (शराब) से
विभ्रंशित ज्ञाना	समझ नष्ट हो जानेसे
दुरुक्तैः	दुर्वचनोंसे
मर्म	हृदयको
पस्पृशुः	चोट पहुँचाने लगे ॥१॥

तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ।
निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥२॥

तेषां मैरेय दोषेण विषमीकृत चेतसां निम्लोचति रवा आसीत् वेणूनां इव मर्दनम् ॥२॥

मैरेय दोषेण	शराबके दोषसे
विषमीकृत	बिगड़ी हुई
चेतसां	बुद्धिवाले
तेषां	उन लोगोंमें
निम्लोचति रवा	सूर्यास्त होते समय
वेणूनां इव	बाँसोंके (परस्पर रगड़नेके) समान
मर्दनं	संघर्ष
आसीत्	होने लगा ॥२॥

भगवान् स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ।
सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥३॥

भगवान् स्वात्म मायाया गतिं तां अवलोक्य सः सरस्वतीं उपस्पृश्य वृक्षमूलं उपाविशत् ॥३॥

भगवान्	भगवान्ने	सरस्वतीं	सरस्वतीके (जलसे)
स्वात्म मायाया	अपनी मायाकी	उपस्पृश्य	आचमन करके
तां गतिं	वह अवस्था	वृक्षमूलं	पेड़की जड़के पास
अवलोक्य सः	देखकर वे	उपाविशत्	बैठ गये ॥३॥

अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ।
बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥४॥

अहं च उक्तः भगवता प्रपन्न आर्ति हरेण ह बदरीं त्वं प्रयाहि इति स्व कुलं संजिहीर्षुणा ॥४॥

प्रपन्न	शरणागतके	भगवता ह	भगवानने बल देकर
आर्ति	दुःखको	अहं च	मुझसे तो
हरेण	हरण करनेवाले	इति	ऐसा
स्व कुलं	अपने कुलका	उक्तः	कह दिया था
संजिहीर्षुणा	सहार करनेकी इच्छा होनेपर	त्वं बदरीं प्रयाहि	तुम बदरीनाथ चले जाओ ॥४॥

अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम ।
पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥५॥

अथ अपि तत् अभिप्रेतं जानन् अहं अरिन्दम पृष्ठतः अन्वगमं भर्तुः पाद विश्लेषण अक्षमः ॥५॥

अथ अपि	इतनेपर भी	पाद विश्लेषण	चरणोंसे पृथक होनेमें
अरिन्दम	शत्रु दमनकर्ता (विदुरजी)	अक्षमः	असमर्थ होकर
तत् अभिप्रेतं	उनके अभिप्रायको	पृष्ठतः	(उनके) पीछे
जानन् अहं	जानते हुए मैं	अन्वगमं	गया ॥५॥
भर्तुः	अपने स्वामीके		

अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन् दयितं पतिम् ।
श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥६॥

अद्राक्षं एकं आसीनं विचिन्वन् दयितं पतिं श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतं केतं अकेतनम् ॥६॥

दयितं पतिं	(अपने) प्रिय स्वामीको	**अकेतनं**	जिनका कोई आश्रय नहीं
विचिन्वन्	ढूँढ़ते हुए	**सरस्वत्यां**	सरस्वती किनारे
श्रीनिकेतं	(उन) शोभाधाम	**एकं आसीनं**	अकेले बैठे
कृत केतं	सबके आश्रय	**अद्राक्षं**	देखा ॥६॥

श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् ।
दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥७॥

श्याम अवदातं विरजं प्रशान्त अरुण लोचनं दोर्भिः चतुर्भिः विदितं पीत कौशाम्बरेण च ॥७॥

विरजं	निर्मल	**लोचनं**	नेत्र हैं
अवदातं	सुन्दर	**चतुर्भिः दोर्भिः च**	चार भुजाओं तथा
श्याम	श्याम वर्ण	**पीत कौशाम्बरेण**	पीले रेशमी वस्त्रसे
प्रशान्त	अत्यन्त शान्त	**विदितं**	(दूरसे) पहिचान लिए गये ॥७॥
अरुण	रतनारे		

वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् ।
अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥८॥

वाम ऊराः अधिश्रित्य दक्षिण अङ्घ्रि सरोरुहं अपाश्रित अर्भक अश्वत्थं अकृशं त्यक्त पिप्पलम् ॥८॥

वाम ऊराः	बायीं जाँघपर	**अपाश्रित**	नीचे बैठे थे,
दक्षिण	दाहिने	**पिप्पलं**	पोषण (आहारादि)
अङ्घ्रि सरोरुहं	चरण-कमलको (रखे)	**त्यक्त**	छोड़ देनेपर भी
अर्भक अश्वत्थं	छोटेसे पीपलके	**अकृशं**	दुर्बल या खिन्न नहीं थे ॥८॥

तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखः ।
लोकाननुचरन् सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥९॥

तस्मिन् महाभागवतः द्वैपायन सुहृत् सखा लोकान् अनुचरन् सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥९॥

तस्मिन्	उसी समय	सिद्ध	सिद्ध (मैत्रेयजी)
यदृच्छया	संयोगवश	लोकान् अनुचरन्	लोकमें घूमते हुए
महाभागवतः	महाभागवत	आससाद	आ पहुँचे ॥९॥
द्वैपायन सुहृत् सखा	व्यासजीके प्रिय मित्र		

तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः
प्रमोदभावानतकन्धरस्य ।
आशृण्वतो मामनुरागहास-
समीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥१०॥

तस्य अनुरक्तस्य मुनेः मुकुन्द प्रमोद भाव आनत कन्धरस्य आशृण्वतः मां अनुराग हास समीक्षया विश्रमयन् उवाच ॥१०॥

तस्य	उन	मां	मुझे
अनुरक्तस्य	(भगवानके) अनुरागी	अनुराग हास	प्रेम भरी मुसुकानसे
		समीक्षया	देखते हुए
प्रमोद भाव	आनन्द और भक्तिसे	विश्रमयन्	आनन्दित करते
आनत कन्धरस्य	कन्धे (सिर) झुकाये	मुकुन्द	भगवान श्रीकृष्ण
मुनेः	मुनि (मैत्रेयजी) के	उवाच	बोले ॥१०॥
आशृण्वतः	सुनते हुए		

श्रीभगवानुवाच–

वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते
ददामि यत्तद् दुरवापमन्यैः ।
सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां
मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥११॥

वेद अहं अन्तः मनसि ईप्सितं ते ददामि यत् तत् दुरवापं अन्यैः सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत् सिद्धि कामेन वसो त्वया इष्टः ॥११॥

ते अन्तः मनसि	तुम्हारी मनकी आन्तरिक
ईप्सितं	अभिलाषा
अहं वेद	मैं जानता हूँ।
यत् ददामि	जो (साधन) दे रहा हूँ,
तत् अन्यैः	वह दूसरोंके लिए
दुरवापं	दुष्प्राप्य है।
पुरा वसो	पहिले (तुम) वसु थे
मत् सिद्धि कामेन	मुझे पानेकी इच्छासे
विश्वसृजां	प्रजापतियों (तथा)
वसूनां सत्रे	वसुओंके यज्ञमें
त्वया	तुम्हारे द्वारा
इष्टः	(मैं) आराधित हुआ था ॥११॥

स एष साधो चरमो भवाना-
मासादितस्ते मदनुग्रहो यत्।
यन्मां नृलोकान् रह उत्सृजन्तं
दिष्ट्या ददृश्वान् विशदानुवृत्त्या ॥१२॥

स एष साधो चरमः भवानां आसादितः ते मत् अनुग्रहः यत् यत् मां नृलोकान् रह उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान् विशद अनुवृत्त्या ॥१२॥

साधो	साधु स्वभाव उद्धव
स एष	वह यह
ते भवानां	तुम्हारा जन्मोंमें
चरमः	अन्तिम है
यत् मत्	क्योंकि मेरा
अनुग्रहः	अनुग्रह
आसादितः	(तुमने) प्राप्त किया है,
यत् मां	जो मुझे
रह	एकान्तमें
नृलोकान्	मनुष्यलोक
उत्सृजन्तं	छोड़ते समय
दिष्ट्या	सौभाग्यवश
विशद	प्रशस्त
अनुवृत्त्या	अनुगमनसे
यत् ददृश्वान्	जो (तुमने) दर्शन पाया ॥१२॥

पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये
पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे।
ज्ञानं परं मन्महिमावभासं
यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ॥१३॥

पुरा मया प्रोक्तं अजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय मम आदि सर्गे ज्ञानं परं मत् महिमा अवभासं यत् सूरयः भागवतं वदन्ति ॥१३॥

पुरा	पहिले	**अवभासं**	प्रकट करनेवाला
आदि सर्गे	सृष्टिके प्रारम्भमें	**परं ज्ञानं**	परम ज्ञानका
मम नाभ्ये	मेरी नाभिसे निकले	**प्रोक्तं**	उपदेश किया था
पद्मे	कमलपर	**यत् सूरयः**	जिसे विद्वान लोग
निषण्णाय	बैठे हुए	**भागवतं**	भागवत
अजाय मया	ब्रह्मासे मैंने	**वदन्ति**	कहते हैं ॥१३॥
मत् महिमा	मेरी महिमाको		

*उद्धव उवाच**–

इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः
प्रतिक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ।
स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तं
मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥१४॥

इति आदृत उक्तः परमस्य पुंसः प्रतिक्षण अनुग्रह भाजनः अहं स्नेह उत्थरोमा स्खलित अक्षरः तं मुञ्चन् शुचः प्राञ्जलिः आबभाषे ॥१४॥

परमस्य पुंसः	परम पुरुषके	**स्नेह उत्थरोमा**	स्नेहसे रोमाञ्चित होकर
इति आदृत	इस प्रकार आदर करके	**स्खलित अक्षरः**	गद्गद् स्वरसे
उक्तः	कहे जानेपर	**मुञ्चन् शुचः**	आँसू बहाते हुए
प्रतिक्षण	सर्वदा (उनका)	**प्राञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
अनुग्रह भाजनः	कृपापात्र	**तं आबभाषे**	उनसे प्रार्थना की ॥१४॥
अहं	मैंने		

कोन्वीश ते पादसरोजभाजां
सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन्
भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥१५॥

कः नु ईश ते पाद सरोजभाजां सुदुर्लभः अर्थेषु चतुर्षु अपि इह तथा अपि न अहं प्रवृणोमि भूमन् भवत् पाद अम्भोज निषेवण उत्सुकः ॥१५॥

ईश ते	स्वामिन् ! आपके
पाद सरोजभाजां	चरण-कमलके आश्रितोंके लिए
चतुर्षु अर्थेषु	चारो ही पुरुषार्थोंमें
अपि कः नु	भला कौन-सा
सुदुर्लभः	अत्यन्त दुर्लभ है,
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
भवत् पाद अम्भोज	आपके चरणों-कमलोंकी
निषेवण	सेवाके लिए
उत्सुकः अहं	उत्सुक मैं
भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु
न प्रवृणोमि	(उनमें कोई) नहीं पाना चाहता ॥१५॥

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते
दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः
स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥१६॥

कर्माणि अनीहस्य भवः अभवस्य ते दुर्ग आश्रयः अथ अरि भयात् पलायनं कालात्मनः यत् प्रमदा अयुत आश्रयः स्वात्मन् रतेः खिद्यति धीः विदां इह ॥१६॥

अनीहस्य	इच्छाहीन (होनेपर भी)
ते कर्माणि	आपके कर्म,
अभवस्य	अजन्मा (होनेपर भी)
भवः	जन्म लेना,
अथ कालात्मनः	और कालस्वरूप (होनेपर भी)
अरिभयात्	शत्रुके भयसे
पलायनं	भागना (तथा)
दुर्ग आश्रयः	(द्वारिकाके) दुर्गमें शरण लेना,
स्वात्मन् रतेः	आत्माराम (होनेपर भी)
यत् प्रमदा अयुत	जो सहस्रों स्त्रियोंका
आश्रयः	साथ रखना है
इह	इन (विषयों) में
विदां	विद्वानोंकी भी
धीः	बुद्धि
खिद्यति	चक्करमें पड़ जाती है ॥१६॥

मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत्त्व-
मकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ।
पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्त-
स्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥१७॥

मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत् त्वं अकुण्ठित अखण्ड सदा आत्मबोधः पृच्छेः प्रभो मुग्ध इव प्रमत्तः तत् नः मनः मोहयति इव देव ॥१७॥

वा मन्त्रेषु	अथवा मन्त्रणाके समय	**प्रभो**	स्वामी !
मां	मुझे	**मुग्ध**	भोले
उपहूय	बुलाकर	**प्रमत्त इव**	प्रमादी (लोगोंकी) भाँति
यत् त्वं	जो आप	**पृच्छेः**	पूछते थे
सदा अकुण्ठित	नित्य अकुण्ठित (सावधान)	**देव**	देव !
अखण्ड	अखण्ड	**तत् नः मनः**	वही मेरे मनको
आत्मबोधः	ज्ञान स्वरूप हैं,	**मोहयति इव**	मोहित-सा करता हैं ॥१७॥

ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं
प्रोवाच कस्मै भगवान् समग्रम् ।
अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्त-
र्वदाञ्जसा यद् वृजिनं तरेम ॥१८॥

ज्ञानं परं स्वात्म रहः प्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान् समग्रं अपि क्षमं नः ग्रहणाय भर्तः वद अञ्जसा यत् वृजिनं तरेम ॥१८॥

स्वात्म रहः प्रकाशं	अपने स्वरूपका गूढ रहस्य प्रकट करनेवाला	**कस्मै प्रोवाच**	ब्रह्माजीको उपदेश किया था
समग्रं	सम्पूर्ण	**अपि नः**	यदि मैं (उसे)
परं ज्ञानं	परम ज्ञान	**ग्रहणाय**	ग्रहण करने (समझने) में
भगवान्	भगवान् (आपने)	**क्षमं**	समर्थ होऊँ (तो)

वद	(आप) कहें	**वृजिनं**	(संसारूप) दुःखसे
यत् अञ्जसा	जिससे सरलतासे	**तरेम**	पार हो सकूँ ॥१८॥

इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान् परः ।
आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥

इति आवेदित हार्दाय मह्यं स भगवान् परः आदिदेश अरविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥

इति	इस प्रकार	**अरविन्दाक्ष**	कमललोचनने
हार्दाय	हृदयकी बात	**आत्मनः**	आत्माके
आवेदित	निवेदित (करनेपर)	**परमां**	परम
मह्यं स	मुझसे उन	**स्थितिं**	स्वरूपका
भगवान् परः	भगवान परम पुरुष	**आदिदेश**	उपदेश किया ॥१९॥

स एवमाराधितपादतीर्था-
दधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ।
प्रणम्य पादौ परिवृत्य देव-
मिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥२०॥

स एवं आराधित पादतीर्थात् अधीत तत्त्व आत्म विबोध मार्गः प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवं इह आगतः अहं विरह आतुर आत्मा ॥२०॥

एवं	इस प्रकार		करके
पादतीर्थात्	तीर्थपाद (श्रीकृष्ण) से	**परिवृत्य**	(उनकी) परिक्रमा करके
आत्म तत्त्व	आत्म तत्त्वके	**अहं विरह आतुर**	मैं (उनके) वियोगसे व्याकुल
विबोध मार्ग	जाननेके मार्गको	**आत्मा**	चित्त
अधीत	समझकर	**इह आगतः**	यहाँ आया हूँ ॥२०॥
स आराधित	उनकी सेवा (स्तुति) करके		
पादौ प्रणम्य	चरणोंमें प्रणाम		

सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभो ।
गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥२१॥

स अहं तत् दर्शन आह्लाद वियोग आर्ति युतः प्रभो गमिष्ये दयितं तस्य बदर्य आश्रम मण्डलम् ॥२१॥

प्रभो	विदुरजी !	**तस्य दयितं**	उनके प्रिय
तत् दर्शन आह्लाद	उनके दर्शनजन्य आनन्द (एवं)	**बदर्य आश्रम मण्डल**	बदरीनाथ आश्रम स्थानको
वियोग आर्ति	वियोगजन्य दुःख	**गमिष्ये**	जाऊँगा ॥२१॥
युतः	युक्त		
स अहं	वह मैं		

यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ।
मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥२२॥

यत्र नारायणः देवः नरः च भगवान् ऋषिः मृदु तीव्रं तपः दीर्घं तेपाते लोक भावनौ ॥२२॥

यत्र भगवान्	जहाँ भगवान	**मृदु**	कोमल (तथा)
नारायणः	नारायण	**तीव्रं तपः**	तीव्र तप
देवः च	देव तथा	**दीर्घं**	दीर्घ समयसे
नर ऋषि	नर ऋषि	**तेपाते**	कर रहे हैं ॥२२॥
लोक भावनौ	लोगोंपर कृपा करनेके लिए		

श्रीशुक उवाच–

इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधम् ।
ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥२३॥

इति उद्धवात् उपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधं ज्ञानेन शमयत् क्षत्ता शोकं उत्पतितं बुधः ॥२३॥

उद्धवात्	उद्धवसे	शोकं	शोकको
इति	इस प्रकार	बुधः	बुद्धिमान
सुहृदां	सम्बन्धियोंका	क्षत्ता	विदुरजीने
दुःसहं वधं	दुःसह वध	ज्ञानेन	ज्ञानके द्वारा
उपाकर्ण्य	सुनकर	शमयत्	शान्त कर
उत्पतितं	उत्पन्न हुए		दिया ॥२३॥

स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः ।
विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥२४॥

स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः विश्रम्भात् अभ्यधत्त इदं मुख्यं कृष्ण परिग्रहे ॥२४॥

कौरवर्षभः	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित !	व्रजन्तं	गमनोद्यत (उद्धव) से
कृष्ण परिग्रहे	श्रीकृष्णके परिकरोंमें	विश्रम्भात्	श्रद्धापूर्वक
		स इदं	उन (विदुर) ने यह
मुख्यं	प्रमुख	अभ्यधत्त	कहा ॥२४॥
महाभागवतं तं	महाभागवत उन		

विदुर उवाच–

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं
यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ।
वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णो-
र्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥२५॥

ज्ञानं परं स्वात्म रहः प्रकाशं यत् आह योगेश्वर ईश्वरः ते वक्तुं भवान् नः अर्हति यत् हि विष्णोः भृत्याः स्व भृत्य अर्थकृतः चरन्ति ॥२५॥

स्वात्म	अपने स्वरूपका	यत् योगेश्वर	जो योगेश्वरोंके
रहः प्रकाशं	गूढ़ रहस्य प्रकट करनेवाला	ईश्वरः	स्वामी (श्रीकृष्ण)ने
		ते आह	आपसे कहा (उसे)
परं ज्ञानं	परम ज्ञान		

नः वक्तुं	मुझसे (आपको) कहना	स्वभृत्य	अपने सेवकोंका
अर्हति	चाहिए	अर्थ कृतः	कार्य सिद्ध करनेके लिए
हि विष्णोः	क्योंकि श्रीहरिके	चरन्ति	घूमते हैं ॥२५॥
भृत्याः	सेवक		

उद्धव उवाच-

ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषरवोऽन्ति मे ।
साक्षाद्भगवताऽऽदिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥२६॥

ननु ते तत्त्व संराध्य ऋषिः कौषारवः अन्ति मे साक्षात् भगवता आदिष्टः मर्त्यलोक जिहासता ॥२६॥

ननु	निश्चय	मर्त्यलोक	मनुष्यलोक
तत्त्व	(उस) तत्त्वके लिए	जिहासता	छोड़ते समय
ऋषिः	ऋषि	साक्षात्	साक्षात्
कौषारवः	मैत्रेय	भगवता	भगवानने (उनको)
ते संराध्य	आपके द्वारा सेवित होने योग्य हैं	आदिष्टः	आदेश दिया है ॥२६॥
मे अन्ति	मेरे समीप ही		

श्रीशुक उवाच-

इति सह विदुरेण विश्वमूर्ते-
र्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ।
क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां
समुषित औपगविर्निषां ततोऽगात् ॥२७॥

इति सह विदुरेण विश्वमूर्तेः गुण कथया सुधया प्लावितः उरुतापः क्षणं इव पुलिने यमः स्वसुः तां समुषित औपगविः निशां ततः अगात् ॥२७॥

इति	इस प्रकार	विश्वमूर्तेः	विश्वमूर्ति (भगवान) के
विदुरेण सह	विदुरके साथ		

गुण	गुणोंकी	निशां	रात्रि
कथया सुधया	कथारूप अमृतसे	क्षणं इव	एक क्षणकी भाँति
उरुतापः	महान ताप	समुषित	बिताकर
प्लावितः	नष्ट करके	औपगविः	उद्धव
यमस्वसुः	यमराजकी बहिन यमुनाके	ततः	वहाँसे
तां पुलिने	उस पुलिनपर	अगात्	चले गये ॥२७॥

राजोवाच-

निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजे-
ष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ।
स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्
हरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥२८॥

निधनं उपगतेषु वृष्णि भोजेषु अधिरथ यूथप यूथपेषु मुख्यः स तु कथं अवशिष्ट उद्धवः यत् हरिः अपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥२८॥

वृष्णि भोज	वृष्णि भोजवंशी	त्र्यधीशः	त्रिलोकीनाथ
अधिरथ यूथप	अतिरथियोंके भी यूथपति	हरिः अपि	श्रीकृष्णने भी
यूथपेषु मुख्यः	और उनके यूथपोंके भी प्रधानों नायकोंके	आकृतिं	अपना वह रूप
निधनं उपगतेषु	मारे जानेपर	तत्यज	त्याग दिया
यत्	जबकि	स उद्धवः	वे उद्धवजी
		तु कथं	तो कैसे
		अवशिष्ट	बचे रह गये ॥२८॥

श्रीशुक उवाच-

ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवाञ्छितः ।
संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्षन्देहमचिन्तयत् ॥२९॥

ब्रह्म शाप अपदेशेन कालेन अमोघ वाञ्छितः संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्षन् देहं अचिन्तयत् ॥२९॥

अमोघ वाञ्छितः	अमोघ संकल्प (भगवान) ने
ब्रह्म शाप	ब्राह्मणोंके शापके
अपदेशेन	बहाने रूप
कालेन	कालके द्वारा
स्वकुलं	अपने कुलका
संहृत्य	संहार कराके
देहं	अपने शरीरको
त्यक्षन्	छोड़ते समय
नूनं	निश्चय (यह)
अचिन्तयत्	सोचा ॥२९॥

अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् ।
अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः ॥३०॥

अस्मात् लोकात् उपरते मयि ज्ञानं मत् आश्रयं अर्हति उद्धव एव अद्धा सम्प्रति आत्मवतां वरः ॥३०॥

अस्मात्	इस
लोकात्	लोकसे
मयि	मेरे
उपरते	चले जानेपर
मत् आश्रयं	मेरे आश्रयका (मेरा)
ज्ञानं	ज्ञान
सम्प्रति	इस समय
आत्मवतां वरः	आत्म संयमियोंमें श्रेष्ठ
उद्धव एव	उद्धव ही
अद्धा	धारणके अधिकारी
अर्हति	हो सकते हैं ॥३०॥

नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ।
अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥३१॥

न उद्धवः अणु अपि मत् न्यूनः यत् गुणैः नार्दितः प्रभुः अतः मत् वयुनं लोकं ग्राहयन् इह तिष्ठतु ॥३१॥

उद्धवः	उद्धव
अणु अपि	एक अणु भी
मत् न्यूनः	मुझसे कम
न यत्	नहीं हैं क्योंकि (वे)
प्रभुः	समर्थ
गुणैः	(प्रकृतिके) गुणोंसे
न अर्दितः	रौंदे नहीं गये।
अतः	अतः
मत् वयुनं	मेरे ज्ञानको
लोकं	लोगोंको
ग्राहयन्	ग्रहण कराते (शिक्षा देते)
इह	यहाँ (संसारमें)
तिष्ठतु	बने रहें ॥३१॥

एवं त्रिलोकगुरुणा सन्दिष्टः शब्दयोनिना ।
बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥३२॥

एवं त्रिलोक गुरुणा सन्दिष्टः शब्दयोनिना बदरि आश्रमं आसाद्य हरिं इजे समाधिना ॥३२॥

शब्द योनिना	वेदोंके मूलकारण	आसाद्य	जाकर
त्रिलोक गुरुणा	जगद्गुरु (श्रीकृष्ण) द्वारा	समाधिना	एकाग्र होकर
		हरिं	श्रीहरिकी
एवं	इस प्रकार	इजे	आराधना करने लगे ॥३२॥
सन्दिष्टः	आदेश दिये जानेपर		
बदरि आश्रमं	बदरीनाथ		

विदूरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ।
क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥३३॥

विदुरः अपि उद्धवात् श्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः क्रीडया उपात्त देहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥३३॥

विदुरः अपि	विदुर भी	कृष्णस्य	श्रीकृष्णके
उद्धवात्	उद्धवसे	श्लाघितानि	प्रशंसनीय
क्रीडया	लीलासे	कर्माणि च	कर्मोंको
उपात्त देहस्य	शरीर धारण किये	श्रुत्वा	सुनकर ॥३३॥
परमात्मनः	परमात्मा		

देहन्यासं च तस्यैवं धीराणां धैर्यवर्धनम् ।
अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥३४॥

देहन्यासं च तस्य एवं धीराणां धैर्यवर्धनं अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लव आत्मनां ॥३४॥

तस्य एवं	उन (श्रीकृष्ण) का इस प्रकार	धीराणां	धीर (पुरुषों) के लिए
देहन्यासं	शरीर अन्तर्धान कर लेना	धैर्य वर्धनं	धैर्य बढ़ानेवाला
		च अन्येषां	तथा दूसरे

पशूनां	पशुप्राय	दुष्करतरं	अत्यन्त दुष्कर
विक्लव	अधीर		है ॥३४॥
आत्मनां	चित्त लोगोंके लिए		

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ।
ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥३५॥

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसा ईक्षितं ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेम विह्वलः ॥३५॥

कुरुश्रेष्ठ	परीक्षित !	ध्यायन्	सोच करके
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	भागवते	भागवत (उद्धव) के
मनसा	मनसे	गते	चले जानेपर
ईक्षितं	देखे (स्मरण	प्रेम विह्वलः	प्रेमसे व्याकुल होकर
	किये गये)	रुरोद	रोने लगे ॥३५॥
आत्मानं च	अपनेको भी		

कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ।
प्रापद्यत स्वःसरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥३६॥

कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिः भरतर्षभः प्रापद्यत स्वः सरितं यत्र मित्रासुतः मुनिः ॥३६॥

भरतर्षभः	भरतवंशमें श्रेष्ठ	स्वः सरितं	गंगा किनारे
सिद्ध	सिद्ध (विदुर)	प्रापद्यत	पहुँचे
कालिन्द्याः	यमुना किनारेसे	यत्र	जहाँ
कतिभिः	कुछ	मुनिः	मुनि
अहोभिः	दिनोंमें	मित्रासुतः	मैत्रेय थे ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां
मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।
क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः
पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥१॥

द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयं आसीनं अगाध बोधं क्षत्ता उपसृत्य अच्युत भाव शुद्धः पप्रच्छ सौशील्य गुण अभितृप्तः ॥१॥

द्युनद्या द्वारि	गंगाद्वार (हरिद्वार) में	अभितृप्तः	सन्तुष्ट होकर
अगाध बोधं	अगाध ज्ञान	अच्युतभाव शुद्धः	भगवद् भावसे शुद्ध
मैत्रेयं	मैत्रेयजीको	कुरूणां ऋषभः	कुरुकुलमें श्रेष्ठ
आसीनं	बैठे देखकर	क्षत्ता	विदुरने
सौशील्य गुण	शील तथा गुणोंसे	उपसृत्य	समीप जाकर
		पप्रच्छ	पूछा ॥१॥

विदुर उवाच-

सुखाय कर्माणि करोति लोको
न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा ।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं
यदत्र युक्तं भगवान् वदेन्नः ॥२॥

सुखाय कर्माणि करोति लोकः न तैः सुखं वा अन्यत् उपारमं वा विन्देत भूयः तत एव दुःखं यत् अत्र युक्तं भगवान् वदेन नः ॥२॥

लोकः	लोग	भूयः	फिर
सुखाय	सुख पानेके लिए	तत एव	उस (कर्म) से भी
कर्माणि	कर्म	दुःखं विन्देत	दुःख मिलता है
करोति	करते हैं	अत्र यत्	इस विषयमें जो
तैः सुखं वा	उनसे सुख अथवा	युक्तं	उपयुक्त हो
अन्यत्	उससे भिन्न (दुःख) की	भगवान्	भगवान् (आप) वह
उपरमं वा	निवृत्ति भी	नः वदेत्	मुझे बतलावें ॥२॥
न	नहीं होती		

जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवा-
दधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं
भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥३॥

जनस्य कृष्णात् विमुखस्य दैवात् अधर्म शीलस्य सुदुःखितस्य अनुग्रहाय इह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥३॥

दैवात्	दुर्भाग्यवश	नूनं	निश्चय ही
कृष्णात्	श्रीकृष्णसे	जनार्दनस्य	भगवान जनार्दनके
विमुखस्य	विमुख	भव्यानि	भव्य
अधर्म शीलस्य	अधर्ममें लगे	भूतानि	भक्त
सुदुःखितस्य	अत्यन्त दुःखी	इह	इस (पृथ्वी) पर
जनस्य	लोगोंपर	चरन्ति	विचरण करते हैं ॥३॥
अनुग्रहाय	अनुग्रह करनेके लिए		

तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः
संराधितो भगवान् येन पुंसाम् ।
हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते
ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥

तत् साधुवर्य दिश वर्त्म शं नः संराधितः भगवान् येन पुंसा हृदि स्थितः यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥

साधुवर्य	साधु शिरोमणे !
तत् शं	वह शान्तिका
वर्त्म नः	मार्ग मुझे
दिश	बतलाइये
येन	जिसके द्वारा
संराधितः	आराधना करनेपर
भक्तिपूते	भक्तिसे पवित्र
पुंसां	पुरुषोंके
हृदि	हृदयमें
स्थितः	स्थित होकर
भगवान्	भगवान्
सतत्त्वाधिगमं	तत्त्वज्ञान सहित
पुराणं	सनातन
ज्ञानं	ज्ञान
यच्छति	प्रदान करते हैं ॥४॥

करोति कर्माणि कृतावतारो
यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः
संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥५॥

करोति कर्माणि कृत अवतारः यानि आत्मतन्त्रः भगवान् त्र्यधीशः यथा ससर्ज अग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतः विधत्ते ॥५॥

आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र
त्र्यधीशः	त्रिलोकीनाथ
अवतारः कृतः	अवतार लेकर
यानि कर्माणि	जो जो कर्म
करोति	करते हैं,
यथा अग्र	जैसे पहिले
निरीहः	इच्छा रहित होनेपर भी
इदं	इस (संसार) की
ससर्ज	सृष्टिकी
संस्थाप्य	(इसकी) स्थापना करके
जगतां	जगतके (जीवोंकी)
वृत्तिं	आजीविकाका
विधत्ते	विधान करते हैं ॥५॥

यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य
शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ।
योगेश्वराधीश्वर एक एत-
दनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽऽसीत् ॥६॥

यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्त वृत्तिः योगेश्वर अधीश्वर एक एतत् अनुप्रविष्टः बहुधा यथा आसीत् ॥६॥

यथा पुनः	जैसे फिर	**योगेश्वर अधीश्वर**	योगेश्वरेश्वर
इदं	इस (संसार) को	**एक**	एक (होनेपर भी)
स्वे ख	अपने (भीतर) के आकाशमें	**एतत्**	इस (संसार) में
निवेश्य स	प्रविष्ट करके वे	**अनुप्रविष्टः**	प्रत्येक (प्राणि पदार्थ) में प्रविष्ट होकर
निवृत्त वृत्तिः	सब वृत्तियोंको मिटाकर	**यथा बहुधा**	जैसे अनेक रूप
गुहायां	योगमायामें ही	**आसीत्**	हो गये हैं ॥६॥
शेते	शयन करते हैं		

क्रीडन् विधत्ते द्विजगोसुराणां
क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ।
मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः
सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥७॥

क्रीडन् विधत्ते द्विज गो सुराणां क्षेमाय कर्माणि अवतार भेदैः मनः न तृप्यति अपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेः चरित अमृतानि ॥७॥

द्विज गो	ब्राह्मण, गौ,	**विधत्ते**	करते हैं
सुराणां	देवताओंके	**सुश्लोक मौलेः**	उत्तम श्लोक शिरोमणिके
क्षेमाय	कल्याणके लिए	**चरित अमृतानि**	(उन) अमृतमय चरितोंको
क्रीडन्	खेलते (लीला करते) हुए	**शृण्वतां अपि**	सुनते हुए भी
अवतारभेदैः	भिन्न भिन्न अवतारोंमें	**नः मनः**	मेरा मन
कर्माणि	(जो) कर्म (लीला)	**न तृप्यति**	नहीं तृप्त होता ॥७॥

यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो
लोकानलोकान् सहलोकपालान् ।

अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्व-
निकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥८॥

यैः तत्त्व भेदैः अधिलोकनाथः लोकान् अलोकान् सह लोकपालान् अचीक्लृपत् यत्र हि सर्वसत्त्व निकाय भेदः अधिकृतः प्रतीतः ॥८॥

अधिलोकनाथः	सम्पूर्ण लोकोंके स्वामीने	**हि यत्र**	क्योंकि जहाँ (इन लोकोंमें)
यैः तत्त्वभेदैः	जिन तत्त्वोंसे	**सर्वसत्त्व**	सब प्राणी
सहलोकपालान्	लोकपालोंके साथ	**निकाय**	समुदाय
लोकान्	लोकोंको	**भेदः अधिकृतः**	(अधिकारानुसार) भेद स्वीकार करके
अलोकान्	लोकरहित भाग (लोकालोक पर्वतके बहि; भाग) की	**प्रतीतः**	(बने) प्रतीत हो रहे हैं ॥८॥
अचीक्लृपत्	रचनाकी		

येन प्रजानामुत आत्मकर्म-
रूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ।
नारायणो विश्वसृडात्मयोनि-
रेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥९॥

येन प्रजानां उत आत्म कर्म रूप अभिधानां च भिदां व्यधत्त नारायणः विश्वसृड् आत्मयोनिः एतत् च नः वर्णय विप्रवर्य ॥९॥

विप्रवर्य	विप्र श्रेष्ठ !	**कर्म रूप अभिधानां**	कर्म, रूप तथा नामोंका
येन	जिस आधारपर	**भिदां व्यधत्त**	भेद-विधान किया
आत्मयोनिः	स्वयम्भू	**एतत् च**	यह सब
विश्वसृड्	विश्वस्रष्टा	**नः वर्णय**	मुझे बतलाइये ॥९॥
नारायणः	नारायणने		
प्रजानां उत	प्रजाके तथा		
आत्म च	अपने भी		

परावरेषां भगवन् व्रतानि
श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ।

अतृप्नुम क्षुल्लसुखावहानां
तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥१०॥

पर अवरेषां भगवन् व्रतानि श्रुतानि मे व्यास मुखात् अभीक्ष्णं अतृप्नुम क्षुल्लसुख आवहानां तेषां ऋते कृष्ण कथा अमृत ओघात् ॥१०॥

भगवन्	भगवन् !	आवहानां	देनेवाले
पर अवरेषां	बड़े-छोटोंके	कृष्ण कथा	श्रीकृष्णकी कथारूपी
व्रतानि मे	धर्मोंका मैंने	अमृत ओघात्	अमृत-प्रवाहको
व्यास मुखात्	व्यासजीके मुखसे	ऋते	छोड़कर
अभीक्ष्णं	बार-बार	तेषां	उन (सुखोंसे)
श्रुतानि	सुना है	अतृप्नुम	(मेरी) अरुचि हो
क्षुल्लसुख	तुच्छ सुख		गयी है ॥१०॥

कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्
सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ।
यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो
भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

कः तृप्नुयात् तीर्थपदः अभिधानात् सत्रेषु वः सूरिभिः ईड्यमानात् यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातः भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

तीर्थपदः	तीर्थपाद (भगवान) के	ईड्यमानात्	(जिसकी) स्तुति हुआ करती है
अभिधानात्	गुणानुवादसे	यः पुरुषस्य	जो पुरुषके
कः तृप्नुयात्	कौन तृप्त हो सकता है	कर्णनाडीं यातः	कानोंमें जाकर
		भवप्रदां	जन्म-मरण देनेवाली
सत्रेषु	यज्ञोंमें	गेहरतिं	गृहासक्तिको
वः सूरिभिः	आप (जैसे) ज्ञानियोंके द्वारा	छिनत्ति	काट देता है ॥११॥

मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां
सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।

यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादै-
र्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥

मुनिः विवक्षुः भगवद् गुणानां सखा अपि ते भारतं आह कृष्णः यस्मिन् नृणां ग्राम्यसुख अनुवादैः मतिः गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥

भगवद् गुणानां	भगवानके गुणोंका	यस्मिन्	जिसमें
विवक्षुः	वर्णन करनेकी इच्छासे	ग्राम्यसुख	विषय सुखोंके
ते सखा	आपके मित्र	अनुवादैः	उल्लेख द्वारा
मुनिः कृष्णः अपि	मुनि श्रीकृष्ण द्वैपायानने भी	नृणां मतिः	मनुष्योंकी बुद्धि
		हरेः	श्रीहरिकी
भारतं	महाभारतको	कथायां	कथामें
आह	कहा (बनाया) है	गृहीता	लगायी गयी है ॥१२॥

सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना
विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ।
हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य
समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥१३॥

सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्ति अन्यत्र करोति पुसः हरेः पदानुस्मृति निर्वृतस्य समस्त दुःख अत्ययं आशु धत्ते ॥१३॥

सा	वह (भगवत्कथा) रुचि	हरेःपदानुस्मृति	श्रीहरि चरणोंके बार बार स्मरणमें
श्रद्दधानस्य	श्रद्धालु	निर्वृतस्य	आनन्दमग्नका
पुंसः	पुरुषमें	आशु	शीघ्र
विवर्धमाना	बढ़ती हुई	समस्त दुःख	सम्पूर्ण दुःखोंका
अन्यत्र	दूसरी ओरसे	अत्ययं धत्ते	अन्त कर देती है ॥१३॥
विरक्ति	विरक्त		
करोति	कर देती है,		

ताञ्छोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे
हरेः कथायां विमुखानघेन ।

क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषा-
मायुर्वृथावादगतिस्मृतीनाम् ॥१४॥

तान् शोच्यान् अविदः अनुशोचे हरेः कथायां विमुखान् अघेन क्षिणोति देवः अनिमिषः तु येषां आयुः वृथावाद गति स्मृतीनाम् ॥१४॥

तान् अविदः	उन अज्ञानी	**विमुखान्**	(जो) विमुख हैं,
शोच्यान्	शोचनीयोंके लिए	**देवः अनिमिषः तु**	कालदेव तो
अनुशोचे	(मैं) बार बार शोक करता हूँ	**वृथावाद**	व्यर्थ वाद-विवाद,
		गति	क्रिया (तथा)
हरेः कथायां	श्रीहरिकी कथासे	**स्मृतिः**	चिन्तनमें लगे
अघेन	पापोंके द्वारा (पापी होनेसे)	**येषां आयुः**	जिनकी आयुको
		क्षिणोति	घटा रहे हैं ॥१४॥

तदस्य कौषारव शर्मदातु-
र्हरेः कथामेव कथासु सारम् ।
उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो
शिवायः न कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥

तत् अस्य कौषारव शर्मदातुः हरेः कथां एव कथासु सारं उद्धृत्य पुष्पेभ्य इव आर्तबन्धुः शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥

कौषारव	मैत्रेयजी !	**पुष्पेभ्य इव**	पुष्पोंसे सारकी भाँति
तत् अस्य	अतः इन	**उद्धृत्य**	छाँटकर
शर्मदातुः	शान्तिदायी	**आर्तबन्धुः**	दुःखीके सहायक
तीर्थकीर्तेः	पवित्र कीर्ति	**नः शिवाय**	हमारे कल्याणके लिए
हरेः कथां एव	श्रीहरिकी कथा ही (जो)	**कीर्तय**	वर्णन कीजिए ॥१५॥
कथासु सारं	सब कथाओंका सार है		

स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे
कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ।

चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि
यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥

स विश्व जन्म स्थिति संयम अर्थे कृत अवतारः प्रगृहीत शक्तिः चकार कर्माणि अति पूरुषाणि यान् ईश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥

स ईश्वरः	उन सर्व समर्थने	**अवतारः कृतः**	अवतार लेकर
विश्व	विश्वकी	**यान्**	जिन
जन्म	उत्पत्ति,	**अति पूरुषाणि**	अति मानव
स्थिति	स्थिति,	**कर्माणि**	कर्मोंको
संयम अर्थे	प्रलयके लिए	**चकार तानि**	किया, उनको
प्रगृहीत शक्तिः	(अपनी) माया शक्तिको स्वीकार करके	**मह्यं**	मुझसे
		कीर्तय	वर्णन कीजिए ॥१६॥

श्रीशुक उवाच–

स एवं भगवान् पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः ।
पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥१७॥

स एवं भगवान् पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविः मुनिः पुंसां निःश्रेयस अर्थेन तं आह बहु मानयन् ॥१७॥

एवं पुंसां	इस प्रकार पुरुषोंके	**स भगवान्**	उन भगवान
निःश्रेयस	परम कल्याणके	**मुनिः**	मुनि
अर्थेन	प्रयोजनसे	**कौषारविः**	मैत्रेयजीने
क्षत्त्रा	विदुरजीके	**तं बहु मानयन्**	उनका आदर करते
पृष्टः	पूछनेपर	**आह**	कहा ॥१७॥

मैत्रेय उवाच–

साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान् साध्वनुगृह्णता ।
कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥

साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान् साधु अनुगृह्णता कीर्तिं वितन्विता लोके आत्मनः अधोक्षज आत्मनः ॥१८॥

साधो	साधु स्वभाव (विदुर)	अधोक्षज	(भगवान) हृषीकेशमें
त्वया	तुमने	आत्मनः	लगे चित्तवाले
लोकान्	लोगोंपर	आत्मनः	आपकी
साधु अनुगृह्णता	उत्तम अनुग्रह करते हुए	कीर्तिं	कीर्ति (इससे)
		लोके	संसारमें
साधु पृष्टं	अच्छा पूछा	वितन्विता	फैलेगी ॥१८॥

नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे ।
गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥१९॥

न एतत् चित्रं त्वयि क्षत्तः बादरायण वीर्यजे गृहीतः अनन्य भावेन यत् त्वया हरिः ईश्वरः ॥१९॥

बादरायण	व्यासजीके	त्वया	तुमने
वीर्यजे	वीर्यसे उत्पन्न	अनन्य भावेन	अनन्य भावसे
क्षत्तः	विदुर	ईश्वरः	सर्वसमर्थ
त्वयि	तुम्हारे लिए	हरिः	श्रीहरिकी
एतत् चित्रं	यह आश्चर्यकी बात	गृहीतः	शरण ले रखी
न यत्	नहीं है, क्योंकि		है ॥१९॥

माण्डव्यशापाद्भगवान् प्रजासंयमनो यमः ।
भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥२०॥

माण्डव्य शापात् भगवान् प्रजा संयमनः यमः भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवती सुतात् ॥२०॥

माण्डव्य शापात्	माण्डव्य ऋषिके शापसे	भगवान्	भगवान
		यमः	यमराज
प्रजा संयमनः	प्रजाका नियन्त्रण रखनेवाले	भ्रातुः क्षेत्रे	भाईकी पत्नी

भुजिष्यायां	भोग पत्नी (दासी) में	जातः	(आप) उत्पन्न हुए हैं ? ॥२०॥
सत्यवती सुतात्	सत्यवती नन्दन व्यासजीसे		

भवान् भगवतो नित्यं सम्मतः सानुगस्य च ।
यस्य ज्ञानोपदेशाय माऽऽदिशद्भगवान् व्रजन् ॥२१॥

भवान् भगवतः नित्यं सम्मतः सानुगस्य च यस्य ज्ञान उपदेशाय मा आदिशत् भगवान् व्रजन् ॥२१॥

भवान्	आप	व्रजन्	(इस लोकसे) जाते समय
सानुगस्य च	अनुयायी (भक्तों) के साथ	यस्य	जिस (आप) को
भगवतः	भगवान्के	ज्ञान उपदेशाय	ज्ञानोपदेश करनेका
नित्यं सम्मतः	सदा प्रिय हैं	मा आदिशत्	मुझे आदेश दिया है ॥२१॥
भगवान्	भगवान्ने		

अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः ।
विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥२२॥

अथ ते भगवत् लीला योगमाया उपबृंहिता विश्व स्थिति उद्भव अन्त अर्था वर्णयामि अनुपूर्वशः ॥२२॥

अथ ते	इसलिए आपसे	अन्त अर्था	प्रलय प्रयोजनवाली
योगमाया	योगमायासे	भगवत् लीला	भगवानकी लीला
उपबृंहिताः	विस्तारित	अनुपूर्वशः	यथाक्रम
विश्व	संसारकी	वर्णयामि	वर्णन करता हूँ ॥२३॥
स्थिति उद्भव	स्थिति, सृष्टि,		

भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ।
आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

भगवान् एक आस इदं अग्र आत्म आत्मनां विभुः आत्म इच्छा अनुगतः आत्मा नाना मति उपलक्षणः ॥२३॥

नाना मति उपलक्षणः	(सृष्टिकालमें) अनेक बुद्धियोंकी उपाधिसे		अनुगत (प्रविष्ट) होनेवाले
आत्मा	(भिन्न प्रतीत होने वाला) आत्मा	विभुः	सर्वव्यापक
आत्म इच्छा अनुगतः	अपनी इच्छासे ही (इन बुद्धियोंमें)	भगवान्	भगवान
		इदं	इस (सृष्टिसे) से
		अग्र	पहिले
		एक	अकेले
		आत्मनां	अपने आपमें
		आत्मा आस	स्वयं थे ॥२३॥

विशेष :—

उस समय न कार्य था, न कारण। अतः केवल अद्वितीय तत्त्व था।

स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद् दृश्यमेकराट्।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥२४॥

स वा एष तदा द्रष्टा न अपश्यत् दृश्यं एकराट् मेने असन्तं इव आत्मानं सुप्त शक्तिः असुप्त दृक् ॥२४॥

स वा	वह ही	असुप्त दृक्	ज्ञानका लोप नहीं हुआ था (पर)
एष तदा	ये (भगवान) उस समय	सुप्त शक्तिः	सब शक्तियाँ सोयी थीं (अतः)
द्रष्टा	देखनेवाले बने (किन्तु)	आत्मानं	अपनेको
एकराट्	(उन) अद्वितीय स्वयं प्रकाशने	असन्तं इव	असत् (न होने) जैसा
दृश्यं न	दृश्य नहीं	मेने	मानने लगे ॥२४॥
अपश्यत्	देखा		

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिःसदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥२५॥

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सत् असत् आत्मिकाः माया नाम महाभाग यया इदं निर्ममे विभुः ॥२५॥

महाभाग	महाभाग !
एतस्य	इस
संद्रष्टुः	देखना चाहनेवाले
विभुः	सर्वव्यापक भगवानकी
सा वा	निश्चय वह
सत् असत् आत्मिका	कारण-कार्य स्वरूपिणी
माया नाम	माया नामकी
शक्तिः	शक्ति है
यया इदं	जिसके द्वारा इस (संसार) का
निर्ममे	निर्माण किया ॥२५॥

कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥२६॥

कालवृत्त्या तु मायायां गुण मय्यां अधोक्षजः पुरुषेण आत्मभूतेन वीर्यं आधत्त वीर्यवान् ॥२६॥

कालवृत्त्या तु	काल-शक्तिसे तो
गुण मय्यां	गुणमयी
मायायां	मायामें (क्षोभ होनेपर)
अधोक्षजः	इन्द्रियातीत (भगवान) ने
आत्मभूतेन	अपने अंश
वीर्यवान्	चिदाभास रूप
पुरुषेण	पुरुष द्वारा
वीर्यं	वीर्य (संस्कार)
आधत्त	स्थापित किया ॥२६॥

ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ।
विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥२७॥

ततः अभवन् महत्तत्त्वं अव्यक्तात् कालचोदितात् विज्ञान आत्मा आत्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जन् तमोनुदः ॥२७॥

ततः	तब
कालचोदितात	कालकीप्रेरणासे
अव्यक्तात्	अव्यक्त (माया) से
विज्ञान आत्मा	विज्ञानस्वरूप
तमोनुदः	अज्ञान नाशक
आत्मदेहस्थं	अपने स्वरूपमें (सूक्ष्म रूपसे) स्थित
विश्वं	विश्वको
व्यञ्जन्	व्यक्त करता
महत्तत्त्वं	महत्तत्त्व
अभवन्	उत्पन्न हुआ ॥२७॥

सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ।
आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥२८॥

सः अपि अंश गुण कालात्मा भगवत् दृष्टि गोचरः आत्मानं व्यकरोत् आत्मा विश्वस्य अस्य सिसृक्षया ॥२८॥

सः अपि	उसने भी	अस्य विश्वस्य	इस विश्वकी
अंश	चिदाभास	सिसृक्षया	सृष्टि करनेके लिए
गुण कालात्मा	गुण (एवं) कालके वशमें	आत्मानं	अपनेको
भगवत् दृष्टि		आत्मा	स्वयं ही
गोचरः	भगवानकी दृष्टिमें आनेपर	व्यकरोत्	विकारी(रूपांन्तरित) किया ॥२८॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ।
कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

महत्तत्त्वात् विकुर्वाणात् अहं तत्त्वः व्यजायत कार्यकारण कर्त्रात्मा भूत इन्द्रिय मनोमयः ॥२९॥

विकुर्वाणात्	परिणामी होते	भूत इन्द्रिय मनोमयः	(पंच) भूत, इन्द्रिय और मनवाला
महत्तत्त्वात्	महत्तत्त्वसे		
कार्यकारण कर्त्रात्मा	कार्य, कारण, कर्ता स्वरूप	अहं तत्त्वः	अहं तत्त्व
		व्यजायत	उत्पन्न हुआ ॥२९॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ।
अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ।
वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥३०॥

वैकारिकः तैजसः च तामसः च इति अहं त्रिधा अहं तत्त्वात् विकुर्वाणात् मनः वैकारिकात् अभूत् वैकारिकाः च ये देवाः अथ अभिव्यञ्जनं यतः ॥३०॥

अहं	अहं तत्त्व
त्रिधा	तीन रूप है
वैकारिकः च	वैकारिक तथा
तैजसः च	तैजस एवं
तामसः	तामस
इति	इस प्रकार
अहं तत्त्वात्	अहं तत्त्वसे
विकुर्वाणात्	परिणामी होनेपर
वैकारिकात्	वैकारिक (अहं) से
मनः	मन
अभूत्	उत्पन्न हुआ (और)
वैकारिकाः च	वैकारिकसे ही
ये देवाः	जो देवता उत्पन्न हुए
यतः	जिनसे
अर्थ अभिव्यञ्जनः	विषयोंका ज्ञान होता है ॥३०॥

विशेष :—

माया सत् असदात्मिका होनेसे अनिर्वचनीय है; किन्तु गुणात्मिका है। त्रिगुणोंका स्वरूप है। उसमें क्षोभ होनेपर प्रथम जो महत्तत्त्व हुआ, वह विज्ञानात्मा-बुद्धि तत्त्व है। उससे जब अहंकार उत्पन्न हुआ तब त्रिगुणोंके अनुसार उसके तीन भेद हो गये। सात्विक अहं वैकारिक, इससे मन तथा इन्द्रियोंके अधिदेवता उत्पन्न हुए। राजस अहं तैजस, इससे इन्द्रियां और तामस अहंसे पञ्च तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) हुईं।

तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च।
तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥३१॥

तैजसात् इन्द्रियाणि एव ज्ञान कर्ममयानि च तामसः भूतसूक्ष्म आदिः यतः खं लिङ्गं आत्मनः ॥३१॥

तैजसात्	तैजस (अहंकार) से
ज्ञान च	
कर्ममयानि	ज्ञानमय तथा कर्ममय
इन्द्रियाणि एव	इन्द्रियाँ ही हुईं
तामसः	तामस (अहंकार) से
भूतसूक्ष्म आदिः	भूतसूक्ष्म (तन्मात्राओंमें) प्रथम (शब्द) हुआ
यतः आत्मनः	
लिङ्गं	जिससे आत्माका (विभुत्व)चिह्नवाला
खं	आकाश हुआ॥३१॥

कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः।
नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥३२॥

काल माया अंश योगेन भगवत् वीक्षितं नभः नभसः अनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन् निर्ममे अनिलम् ॥३२॥

भगवत् वीक्षितं	भगवानकी दृष्टि पड़नेपर	**स्पर्शं**	स्पर्श
		अनुसृतं	उत्पन्न हुआ
काल माया अंश	काल, माया, चिदाभासके	**विकुर्वन्**	उस (स्पर्शके) विकारी होनेपर
योगेन	संयोगसे	**अनिलं**	(उससे) वायु
नभसः	आकाशसे	**निर्ममे**	निर्मित हुआ ॥३२॥

अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ।
ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥३३॥

अनिलः अपि विकुर्वाणात् नभसा उरुबलान्वितः ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिः लोकस्य लोचनम् ॥३३॥

उरुबलान्वितः	अत्यन्त बलशाली	**रूपतन्मात्रं**	रूप तन्मात्रावाले
अनिलः अपि	वायुने भी	**लोकस्य लोचनं**	लोकोंके प्रकाशक
नभसा	आकाशके साथ	**ज्योतिः**	ज्योति (अग्नि) को
विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर	**ससर्ज**	उत्पन्न किया ॥३३॥

अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् ।
आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥३४॥

अनिलेन अन्वितं ज्योतिः विकुर्वत् पर वीक्षितं आधात् अम्भः रसमयं काल माया अंश योगतः ॥३४॥

पर	परमात्माके	**ज्योतिः**	ज्योतिने
वीक्षितं	देखनेपर	**विकुर्वत्**	परिणामी होकर
काल माया अंश योगतः	काल, माया, चिदाभासके संयोगसे	**रसमयं**	रसमय
		अम्भः	जल
		आधात्	उत्पन्न किया ॥३४॥
अनिलेन अन्वितं	वायुसे संयुक्त		

ज्योतिषाम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् ।
महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥३५॥

ज्योतिषा अम्भः अनुसंसृष्टं विकुर्वत् ब्रह्म वीक्षितं महीं गन्धगुणं आधात् कालमाया अंश योगतः ।।३५।।

ब्रह्म वीक्षितं	परमात्माकी दृष्टि पड़नेपर	अनुसंसृष्टं	संयुक्त
कालमाया अंश योगतः	काल, माया, चिदंशके योगसे	अम्भः	जलने
ज्योतिषा	तेजसे	विकुर्वत्	विकारी होकर
		गन्धगुणं	गन्ध गुणवाली
		महीं	पृथ्वी तत्त्वको
		आधात्	उत्पन्न किया ।।३५।।

भूतानां नभआदीनां यद्यद्द्रव्यावरावरम् ।
तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान् विदुः ।।३६।।

भूतानां नभ आदीनां यत् यत् भव्य अवर अवरं तेषां पर अनुसंसर्गात् यथा संख्यं गुणान् विदुः ।।३६।।

नभ आदीनां	आकाशादि	अनुसंसर्गात्	अनुप्रविष्ट होनेसे
भूतानां	भूतोंमें	यथा संख्यं	क्रमशः पूर्व-पूर्वके (भूतोंके) भी
यत् यत्	जो जो	गुणान्	गुणोंको
अवर अवरं	पीछे-पीछे	विदुः	जानना चाहिए ।।३६।।
भव्य	उत्पन्न हुए हैं		
तेषां पर	उनमें पहिलोंके		

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ।
नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ।।३७।।

एते देवाः कला विष्णोः काल माया अंश लिङ्गिनः नानात्वात् स्वक्रिया अनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयः विभुम् ।।३७।।

एते काल माया अंश लिङ्गिनः	ये काल माया चेतनांश विशिष्ट	विष्णोः	भगवानकी ही
		कलाः	कला हैं
		नानात्वात्	पृथक-पृथक होनेसे
देवाः	(महतत्त्वादिके) अधिदेवता	स्वक्रिया	अपने कर्ममें
		अनीशाः	असमर्थ थे (अतः)

प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर	प्रोचुः	प्रार्थना करने
विभुं	भगवानसे		लगे ॥३७॥

देवा ऊचुः –

नमाम ते देव पदारविन्दं
प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु
संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥३८॥

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्न ताप उपशमं आतपत्रं यत् मूल केता यतयः अञ्जसा उरु संसार दुःखं बहिः उत्क्षिपन्ति ॥३८॥

देव	देव !	यत्	जिनमें
प्रपन्न	शरणागतके	मूल केत	स्थिर निवास
ताप	संतापको		करनेवाले
उपशमं	शान्त करनेके लिए	यतयः	संयमी (भक्त)
आतपत्रं	छातेके समान	अञ्जसा	सरलतासे
ते पदारविन्दं	आपके चरण-कमलोंमें	उरु	भारी
		संसार दुःखं	संसार रूपी दुःखको
नमाम	(हम) प्रणाम करते हैं	बहिः उत्क्षिपन्ति	दूर फेंक देते हैं ॥३८॥

धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवा-
स्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।
आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रि-
च्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥

धातः यत् अस्मिन् भव ईश जीवाः तापत्रयेण उपहता न शर्म आत्मन् लभन्ते भगवन् तव अङ्घ्रि छायां सविद्यां अत आश्रयेम ॥३९॥

धातः	जगत्कर्ता	अस्मिन्	इस
ईश	सर्वेश	भव यत्	संसारमें क्योंकि

जीवाः	जीववृन्द (दैहिक, दैविक, भौतिक)	**अत भगवन्**	अतः भगवन्
तापत्रयेण	तीनों तापोंसे	**सविद्यां**	ज्ञानमयी
उपहता	उत्पीड़ित	**तव अङ्घ्रि**	आपके चरणोंकी
आत्मनि	चित्तमें	**छायां**	छायाका
शर्म न	शान्ति नहीं	**आश्रयेम**	(हम) आश्रय लेते हैं ॥३९॥
लभन्ते	पाते हैं		

मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडै-
श्छन्दः सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः
पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्ना ॥४०॥

मार्गन्ति यत् ते मुख पद्म नीडैः छन्दः सुपर्णैः ऋषयः विविक्ते यस्य अघमर्ष ओद सरित् वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥४०॥

ऋषयः	ऋषिगण	**अघमर्ष**	पापनाशिनी
विविक्ते	एकान्तमें	**सरित्वरायाः**	सरिता श्रेष्ठ गंगाजीके
छन्दः	वेदमन्त्र रूपी	**ओद पदं**	जलके उद्गम स्थान हैं
सुपर्णैः	पक्षियोंके द्वारा	**तीर्थपदः**	(उन आपके) पावन चरणोंकी
यत् ते	क्योंकि आपके	**प्रपन्नाः**	(हम) शरण हैं ॥४०॥
मुख पद्म	मुख कमल रूपी		
नीडैः	घोंलसों (आश्रय)को		
मार्गन्ति	ढूँढ़ते रहते हैं		
यस्य पदं	जिसके चरण		

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या
संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा
व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥४१॥

यत् श्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या सम्मृज्यमाने हृदये अवधाय ज्ञानेन वैराग्य बलेन धीरा व्रजेम तत् ते अङ्घ्रि सरोज पीठम् ॥४१॥

यत् श्रद्धया	जिसकी श्रद्धा सहित	धीरा	(भक्तजन) धीर हो
श्रुतवत्या	श्रवणादिरूप		जाते हैं
भक्त्या च	भक्तिसे ही	तत् ते	उस आपके
संमृज्यमाने	स्वच्छ होते	अङ्घ्रि सरोज	चरण-कमलकी
हृदये	हृदयमें	पीठं	चौकीकी
अवधाय	धारण करके	व्रजेम	(हम) शरण जाते
वैराग्य बलेन	वैराग्य पुष्ट		हैं ॥४१॥
ज्ञानेन	ज्ञानसे		

विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे
कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश
स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥

विश्वस्य जन्म स्थिति संयम अर्थे कृत अवतारस्य पदाम्बुजं ते व्रजेम सर्वे शरणं यत् ईश स्मृतं प्रयच्छति अभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥

ईश	जगदीश्वर !	सर्वे	हम सब
विश्वस्य	विश्वकी	शरणं	शरण
जन्म स्थिति संयम	उत्पत्ति स्थिति	व्रजेम	जाते हैं
	संहार	यत्	क्योंकि
अर्थे	के लिए	स्मृतं	स्मरण करनेपर
कृतः अवतारस्य	अवतार धारण		(वे)
	किये	स्वपुंसां	अपनेजनोंको
ते	आपके	अभयं	अभय
पदाम्बुजं	चरण-कमलोंकी	प्रयच्छति	देते हैं ॥४२॥

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे
ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां
भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥४३॥

यत् सानुबन्धे असति देह गेहे मम आह इति ऊढ दुराग्रहाणां पुंसां सुदूरं वसतः अपि पुर्यां भजेम तत् ते भगवन् पदाब्जम् ॥४३॥

भगवन् ते	भगवन् ! आपके	मम आह	'यह मेरा है'
तत् पदाब्जं	उन चरण-कमलोंका	इति ऊढ	इस प्रकार बद्धमूल
भजेम	(हम) भजन करते हैं	दुराग्रहाणां	दुराग्रहवालोंके
यत् देह	जो शरीर,	पुंसां	पुरुषोंके
गेहे	घर,	पुर्यां	हृदयमें
सानुबन्धे	सगे-सम्बन्धी (आदि)	वसतः अपि	रहते हुए भी
असति	अत्यन्त तुच्छमें	सुदूरं	(उनसे) बहुत दूर हैं ॥४३॥

तान् वै ह्यसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये
पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं
ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥४४॥

तान् वै हि असत् वृत्तिभिः अक्षिभिः ये पर आहृता अन्तः मनसः परेश अथ न पश्यन्ति उरुगाय नूनं ये ते पदन्यास विलास लक्ष्म्याः ॥४४॥

परेश	परमेश्वर !	अथ	अतः
हि अक्षिभिः	क्योंकि इन्द्रियोंके	नूनं ये	निश्चय जो
असत् वृत्तिभिः	असत (विषयाभिमुख) वृत्तिवाली होनेसे	उरुगाय ते	अनन्तकीर्ति आपके
		पदन्यास विलास	विलासपूर्ण पाद क्षेपकी
ये वै	जो तो	लक्ष्याः	शोभा हैं
अन्तः मनसः	मन-बुद्धिसे	तान् न	उसे नहीं
पर आहृता	बाहर आकर्षित हैं	पश्यन्ति	देख पाते ॥४४॥

पानेन ते देव कथासुधायाः
प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं
यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥४५॥

पानेन ते देव कथा सुधायाः प्रवृद्ध भक्त्या विशद आशया ये वैराग्य सारं प्रतिलभ्य बोधं यथा अञ्जसा अन्वीयुः अकुण्ठ धिष्ण्यम् ॥४५॥

देव ते	देव ! आपकी
कथा सुधायाः	कथामृतको
पानेन	पीनेसे
प्रवृद्ध	बढ़ी हुई
भक्त्या	भक्तिसे
ये विशद	जो निर्मल
आशया	अन्तःकरण हैं
वैराग्य सारं	वैराग्य ही जिसका सार है
बोधं	(वह) ज्ञान
प्रतिलभ्य	प्राप्त करके
यथा अञ्जसा	जैसे सरलतासे ही
अकुण्ठ	वैकुण्ठ
धिष्ण्यम्	धामका
अन्वीयुः	अनुगमन करते हैं ॥४५॥

तथापरे चात्मसमाधियोग-
बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति
तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥४६॥

तथा अपरे च आत्म समाधि योग बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठां त्वां एव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यात् न तु सेवया ते ॥४६॥

तथा अपरे	वैसे ही दूसरे
धीराः च	धैर्यशाली तो
आत्म समाधि	चित्तकी एकाग्रता रूपी
योग बलेन	योगकी शक्तिसे
बलिष्ठां	बलवान
प्रकृतिं	प्रकृतिको
जित्वा	जीतकर
त्वां पुरुषं एव	आप परम पुरुषमें ही
विशन्ति	प्रवेश करते हैं (पर)
तेषां श्रमः	उनको परिश्रम (करना)
स्यात् तु	होता है; किन्तु
ते सेवया	आपकी सेवासे
न	(परिश्रम) नहीं होता ॥४६॥

तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽऽद्य
त्वयानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।

सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं
न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥

तत् ते वयं लोक सिसृक्षया अद्य त्वया अनुसृष्टाः त्रिभिः आत्मभिः स्म सर्वे वियुक्ताः स्व विहार तन्त्रं न शक्नुमः तत् प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥

तत् ते	अतः आपकी	सर्वे	(हम) सब
लोक सिसृक्षया	लोकोंकी सृष्टिकी इच्छासे	स्व विहार	अपनी चेष्टा
		तन्त्रं	करनेमें
त्वया	आपके द्वारा	वियुक्ताः	असमर्थ होनेसे
अद्य	इस समय	तत् ते	उस आपको
अनुसृष्टाः	उत्पन्न किये गये	प्रतिहर्तवे	उपहार देनेमें
वयं त्रिभिः	हम तीन (गुणोंवाले)	शक्नुमः न	समर्थ नहीं हैं ॥४७॥
आत्मभिः स्म	स्वरूप हैं,		

यावद्बलिं तेऽज हराम काले
यथा वयं चान्नमदाम यत्र ।
यथोभयेषां त इमे हि लोका
बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥४८॥

यावत् बलिं ते अज हराम काले यथा वयं च अन्नं अदाम यत्र यथा उभयेषां त इमे हि लोकाः बलिं हरन्तः अन्नं अदन्ति अनूहाः ॥४८॥

अज	अजन्मा प्रभु !	हि इमे	और ये
यथा काले	जैसे समयपर	लोकाः	लोक
वयं ते	हम आपको	बलिं	(आपको) उपहार
यावत्	जब तक	हरन्तः	देते हुए
बलिं हराम	उपहार दे सकें	अन्नं	(अपना) आहार
च यत्र	तथा जहाँ (स्थित होकर)	अदन्ति	खा सकें
		त उभयेषां	वह दोनोंका ही
यथा अन्नं	जैसे आहार	अनूहाः	उपाय कीजिए ।४८॥
अदाम	ग्रहण कर सकें		

त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां
कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।

त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ
रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥४९॥

त्वं नः सुराणां असि स अन्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः त्वं देव शक्त्यां गुण कर्म योनौ रेतः तु अजायां कविं आदधे अजः ॥४९॥

त्वं कूटस्थ	आप कूटस्थ	**गुण**	(सत्वादि) गुणों एवं
पुराणः	सनातन	**कर्म**	कर्मोंकी
पुरुषः	पुरुष	**योनौ**	कारण रूपा
स अन्वयानां	कार्योंके सहित	**अजायां**	माया
नः सुराणां	हम देवताओंके	**शक्त्यां**	शक्तिमें
आद्यः असि	आदिकारण हैं	**रेतः**	(चिदाभास रूप)वीर्य
देव	देव !	**आदधे**	स्थापित
त्वं कविं	आप ज्ञानस्वरूप		किया ॥४९॥
अजः	अजन्माने		

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे
बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या
देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥५०॥

ततः वयं सत् प्रमुखा यत् अर्थे बभूव इमं आत्मन् करवाम किं ते त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रिया अर्थे यत् अनुग्रहाणाम् ॥५०॥

देव	देव	**ते किं**	आपकी क्या
ततः सत् प्रमुखा	अतः महत्तत्त्वादि प्रमुख	**करवाम**	(सेवा) करें ?
		त्वं नः	आप ही हमपर
वयं यत्	हम जिस	**अनुग्रहाणां**	अनुग्रह करनेवाले हैं
अर्थे	प्रयोजनसे	**क्रिया अर्थे**	कर्म करनेके लिए
बभूव	उत्पन्न हुए हैं	**शक्त्या**	(अपनी) शक्तिसे
इमं	उसके सम्बन्धमें	**स्व चक्षुः**	अपना ज्ञान
आत्मन्	अपनेसे	**परिदेहि**	दीजिए ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच*-

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ।
प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥१॥

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनां असमेत्य सः प्रसुप्त लोकतन्त्राणां निशाम्य गतिं ईश्वरः ॥१॥

इति तासां	इस प्रकार उन	**प्रसुप्त**	असमर्थ
सतीनां	विद्यमान	**गतिं सः**	दशा उन
स्वशक्तीनां	अपनी शक्तियोंकी	**ईश्वरः**	समर्थने
असमेत्य	असंगठित होनेसे	**निशाम्य**	देखकर ॥१॥
लोकतन्त्राणां	लोक निर्माणमें		

कालसंज्ञा तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ।
त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥२॥

काल संज्ञा तदा देवीं बिभ्रत् शक्ति उरुक्रमः त्रयोविंशति तत्त्वानां गणं युगपत् आविशत् ॥२॥

तदा उरुक्रमः	तब अनन्त पराक्रम (भगवान) ने	**त्रयोविंशति तत्त्वानां**	तेइस तत्त्वोंके■
काल संज्ञां	काल नामवाली	**गणं युगपत्**	समूहमें एक साथ
देवी शक्ति	दिव्य शक्तिको	**आविशत्**	प्रवेश किया ॥२॥
बिभ्रत्	धारण करके		

---

* अन्य प्रतियोमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

■ महतत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्शादि) पंचमहाभूत मन और दस इन्द्रियाँ ये तेइस तत्त्व हैं । चौबीसवाँ इनमें प्रविष्ट चेतन परमात्मा है ।

सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् ।
भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥३॥

सः अनुप्रविष्टः भगवान् चेष्टा रूपेण तं गणं भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥३॥

सः भगवान्	उन भगवानने	**चेष्टा रूपेण**	क्रिया शक्तिसे
तं गणं	उन तत्त्वोंमें	**भिन्नं**	(उन) पृथक-पृथक
अनुप्रविष्टः	प्रवेश करके		(तत्त्वोंको)
सुप्तं	(जीवोंके) सोये हुए	**संयोजयामास**	परस्पर मिला
कर्म	अदृष्ट (प्रारब्ध) को		दिया ॥३॥
प्रबोधयन्	जगाते हुए		

प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः ।
प्रेरितोऽजनयन्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥४॥

प्रबुद्ध कर्मा दैवेन त्रयोविंशतिकः गणः प्रेरितः अजनयत् स्वाभिः मात्राभिः अधिपूरुषम् ॥४॥

प्रबुद्ध कर्मा	अदृष्टके जागने (कार्योन्मुख होने)पर	**स्वाभिः मात्राभिः**	अपने अंशसे
		अधिपूरुषं	पुरुषके आधार (विराट्) को
दैवेन	भगवानके द्वारा	**अजनयत्**	उत्पन्न किया ॥४॥
प्रेरितः	प्रेरित		
त्रयोविंशतिकः			
गणः	तेइसो तत्त्वोंके समुदायने		

परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृग्गणः ।
चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥५॥

परेण विशता स्वस्मिन् मात्रया विश्वसृक्गणः चुक्षोभ अन्योन्यं आसाद्य यस्मिन् लोकाः चर अचराः ॥५॥

परेण	परम पुरुषके	**विशता**	प्रवेश करनेपर
मात्रया	अंशसे	**विश्वसृक्गणः**	विश्वनिर्मातातत्त्व
स्वस्मिन्	अपनेमें	**अन्योन्यं आसाद्य**	एक दूसरेसे मिलकर

चुक्षोभ	परिणामको प्राप्त हुए	चर अचराः	चर अचर
यस्मिन्	जिससे	लोकाः	सब लोक सृष्टि हुई ॥५॥

हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ।
आण्डकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥६॥

हिरण्मयः स पुरुषः सहस्र परिवत्सरान् आण्डकोश उवास अप्सु सर्व सत्त्व उपबृंहितः ॥६॥

सर्व सत्व	सम्पूर्ण जीवोंको	आडकोश	ब्रह्माण्डरूप (अंडमें)
उपबृंहितः	साथ लिए	सहस्र परिवत्सरान्	सहस्र वर्ष*
स हिरण्मयः	वह स्वर्णमय	अप्सु	(कारण) जलमें
पुरुषः	(विराट्) पुरुष	उवास	रहा ॥६॥

स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् ।
विबभाजात्मनाऽऽत्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥७॥

स वै विश्वसृजां गर्भः देव कर्म आत्म शक्तिमान् विबभाज आत्मना आत्मानं एकधा दशधा त्रिधा ॥७॥

स वै विश्वसृजां	वह निश्चय विश्व रचना करनेवाले तत्त्वोंका	आत्मानं	अपनेको ही (उसने)
		एकधा	एक (हृदय) रूपमें
		दशधा	दस (प्राण) रूपमें और
गर्भः देव	गर्भ ज्ञान	त्रिधा	(अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत)तीन रूपोंमें
कर्म	कर्म (तथा)		
आत्म शक्तिमान्	अपनी शक्तिसे सम्पन्न था	विबभाज	विभाजित किया ॥७॥
आत्मना	अपने आपसे		

एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ।
आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥८॥

---

* वृहस्पति ग्रह वक्र न हो तो इसके एक राशिपर रहनेका काल परिवत्सरे कहा जाता है (५।२२।१५)

एष हि अशेष सत्त्वानां आत्मांशः परमात्मनः आद्यः अवतारः यत्र असौ भूत ग्रामः विभाव्यते ॥८॥

एष हि	यह ही	**यत्र असौ**	जिसमें यह
अशेष सत्त्वानां	सम्पूर्ण जीवोंका	**भूत ग्रामः**	प्राणि-पदार्थोंका समूह
परमात्मनः	परमात्माका	**विभाव्यते**	प्रकाशित होता है ॥८॥
आत्मांशः	अपना अंश		
आद्यः अवतारः	पहिला अवतार है		

साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ।
विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥९॥

साध्यात्मः साधिदैवः च साधिभूत इति त्रिधा विराट् प्राणः दशविधः एकधा हृदयेन च ॥९॥

विराट्	विराट्	**त्रिधा**	तीन प्रकारका,
साध्यात्मः	अध्यात्म सहित	**प्राणः**	प्राणोंके द्वारा
साधिदैवः च	आधिदैव सहित तथा	**दशविधः च**	दस प्रकारका एवं
साधिभूत	अधिभूत सहित	**हृदयेन**	हृदयसे
इति	इस प्रकार	**एकधा**	एक प्रकारका है ॥९॥

स्मरन् विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ।
विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥१०॥

स्मरन् विश्वसृजां ईशः विज्ञापितं अधोक्षजः विराजं अतपत् स्वेन तेजसा एषां विवृत्तये ॥१०॥

विश्वसृजां	विश्वस्रष्टा तत्त्वोंके	**विवृत्तये**	वृत्तियोंको जगानेके लिए
ईशः	स्वामी (भगवान) ने	**विराजं**	विराट्को
विज्ञापितं	(उनकी) प्रार्थनाका	**स्वेन तेजसा**	अपने तेजसे
स्मरन्	स्मरण करके	**अतपत्**	तपाया ॥१०॥
अधोक्षजः	हृषीकेश प्रभु		
एषां	इनकी		

अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह ।
निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥

अथ तस्य अभितप्तस्य कति च आयतनानि ह निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥

अथ तस्य	तब उस (विराट्) के	आयतनानि	स्थान
अभितप्तस्य	अत्यन्त तपनेपर	निरभिद्यन्त	प्रकट हुए
कति च ह	कुछ निश्चित	तानि गदतः	उनका वर्णन
देवानां	देवताओंके	मे शृणु	मुझसे सुनो ॥११॥

तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम् ।
वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययासौ प्रतिपद्यते ॥१२॥

तस्य अग्निः आस्य निरभिन्नं लोकपालः अविशत् पदं वाचा स्वांशेन वक्तव्यं यया असौ प्रतिपद्यते ॥१२॥

तस्य	उस (विराट् पुरुषके)	वाचा	वाणीके साथ
		पदं	उस स्थानमें
आस्यं	मुखके	अविशत्	प्रवेश किया
निरभिन्नं	प्रकट होनेपर	यया असौ	जिससे यह
लोकपालः	लोकपाल	वक्तव्यं	बोलने
अग्निः	अग्निने	प्रतिपद्यते	लगा ॥१२॥
स्वांशेन	अपने अंश		

निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ।
जिह्वयांशेन च रसं ययासौ प्रतिपद्यते ॥१३॥

निर्भिन्नं तालु वरुणः लोकपालः अविशत् हरेः जिह्वया अंशेन च रसं यया असौ प्रतिपद्यते ॥१३॥

हरेः	विराट् पुरुषके	वरुणः	वरुण
तालु	तालु	अंशेन च	अपने अंश सहित
निर्भिन्नं	प्रकट होनेपर	जिह्वया	रसनेन्द्रियसे
लोकपालः	लोकपाल	अविशत्	(उसमें) प्रविष्ट हुए,

यया असौ रसं	जिससे यह रस	प्रतिपद्यते	ग्रहण करता है ॥१३॥

निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोरावि शतां पदम् ।
घ्राणेनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१४॥

निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोः आविशतां पदं घ्राणेन अंशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिः यतः भवेत् ॥१४॥

विष्णोः	विराट्के	घ्राणेन	घ्राणेन्द्रिय सहित
नासे	नासिका	आविशत्	प्रविष्ट हुए
निर्भिन्ने	प्रगट होनेपर	यतः	जिससे
पदं	उस स्थानमें	गन्धस्य	गन्धकी
अश्विनौ	अश्विनीकुमार	प्रतिपत्तिः	उपलब्धि
अंशेन	अपने अंश	भवेत्	होती है ॥१४॥

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालोऽविशद्विभोः ।
चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१५॥

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालः अविशत् विभोः चक्षुषा अंशेन रूपाणां प्रतिपत्तिः यतः भवेत् ॥१५॥

विभोः	विराट्के	चक्षुषा	नेत्रेन्द्रिय सहित
अक्षिणी	नेत्र	अविशत्	प्रविष्ट हुए
निर्भिन्ने	प्रकट होनेपर	यतः	जिससे
लोकपालः	लोकपाल	रूपाणां	रूपोंकी
त्वष्टा	सूर्य	प्रतिपत्तिः	उपलब्धि
अंशेन	अपने अंश	भवेत्	होती है ॥१५॥

निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् ।
प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥१६॥

निर्भिन्ना अस्य चर्माणि लोकपालः अनिलः आविशत् प्राणेन अंशेन संस्पर्शं येन असौ प्रतिपद्यते ॥१६॥

अस्य	इस (विराट्) के	प्राणेन	प्राणके साथ
चर्माणि	चर्म	आविशत्	(उसमें) प्रविष्ट हुए
निर्भिन्ना	प्रकट होनेपर	येन	जिससे
लोकपालः	लोकपाल	असौ	यह
अनिलः	वायु	संस्पर्शं	स्पर्श
अंशेन	अपने अंश	प्रतिपद्यते	पाता है ॥१६॥

कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ।
श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥१७॥

कर्णाः अस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुः दिशः श्रोत्रेण अंशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥१७॥

अस्य	इस (विराट्) के	दिशः	दिशायें
कर्णाः	कान	विविशुः	प्रविष्ट हुईं
विनिर्भिन्नौ	उत्पन्न होनेपर	येन शब्दस्य	जिससे शब्दकी
स्वं धिष्ण्यं	अपने स्थानमें	सिद्धिं	सिद्धि (ज्ञान)
अंशेन	अपने अंश	प्रपद्यते	प्राप्त होता है ॥१७॥
श्रोत्रेण	श्रवणेन्द्रियके साथ		

त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः ।
अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥१८॥

त्वचं अस्य विनिर्भिन्नां विविशुः धिष्ण्यं ओषधीः अंशेन रोमभिः कण्डूं यैः असौ प्रतिपद्यते ॥१८॥

अस्य	इस (विराट्) के	रोमभिः	रोमोंके साथ
त्वचं	त्वचा	विविशुः	प्रविष्ट हुईं
विनिर्भिन्नां	प्रगट होनेपर	यैः असौ	जिनसे यह
धिष्ण्यं	उस स्थानमें	कण्डूं	खुजलाहट
ओषधीः	औषधियाँ	प्रतिपद्यते	पाता है ॥१८॥
अंशेन	अपने अंश		

मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ।
रेतसांशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥

मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्व धिष्ण्यं कः उपाविशत् रेतसा अंशेन येन असौ आनन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥

तस्य	उस (विराट्) के	**रेतसा अंशेन**	अपने अंश वीर्यसे
मेढ्रं	लिङ्ग	**उपाविशत्**	प्रविष्ट हुए
विनिर्भिन्नं	उत्पन्न होनेपर	**येन असौ**	जिससे यह
स्व धिष्ण्यं	अपने स्थानमें	**आनन्दं**	आनन्द
कः	प्रजापति	**प्रतिपद्यते**	पाता है ॥१९॥

गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् ।
पायुनांशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥ २०॥

गुदं पुंसः विनिर्भिन्नं मित्रः लोकेश आविशत् पायुना अंशेन येन असौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥

पुंसः	(विराट्) पुरुषके	**पायुना**	पायु इन्द्रिय सहित
गुदं	गुदा	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए
विनिर्भिन्नं	उत्पन्न होनेपर	**येन असौ**	जिससे यह
लोकेश	लोकपाल	**विसर्गं**	मल त्याग
मित्रः	मित्र	**प्रतिपद्यते**	करता है ॥२०॥
अंशेन	अपने अंश		

हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वर्पतिराविशत् ।
वार्तयांशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥

हस्तौ अस्य विनिर्भिन्नाः इन्द्र स्वः पति आविशत् वार्तया अंशेन पुरुषः यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥

अस्य	इस (विराट्) के	**वार्तया**	ग्रहण करनेकी शक्ति सहित
हस्तौ	हाथ		
विनिर्भिन्ना	उत्पन्न होनेपर	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए
स्वः पति	स्वर्गके स्वामी	**यया**	जिससे
इन्द्र	इन्द्र	**पुरुषः**	पुरुष
अंशेन	अपने अंश	**वृत्तिं**	आजीविका
		प्रपद्यते	पाता है ॥२१॥

पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् ।
गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

पादाः अस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशः विष्णुः आविशत् गत्या स्व अंशेन पुरुषः यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

अस्य	इसके	**गत्या**	गति सहित (उसमें)
पादाः	पैर	**आविशत्**	प्रवेश किया
विनिर्भिन्नौ	प्रकट होनेपर	**यया पुरुषः**	जिससे पुरुष
लोकेशः	लोकेश्वर	**प्राप्यं**	गन्तव्यपर
विष्णुः	विष्णुने	**प्रपद्यते**	पहुँचता है ॥२२॥
स्व अंशेन	अपने अंश		

बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् ।
बोधेनांशेन बोद्धव्यप्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥२३॥

बुद्धिं च अस्य विनिर्भिन्नां वागीशः धिष्ण्यं आविशत् बोधेन अंशेन बोधव्यं प्रतिपत्तिः यतः भवेत् ॥२३॥

बुद्धिं च	बुद्धिके भी	**धिष्ण्यं**	इस अपने स्थानमें
अस्य	इस (विराट्) के	**आविशत्**	आविष्ट हुए
विनिर्भिन्नां	उत्पन्न होनेपर	**यतः**	जिससे
वागीशः	वाक्पति	**बोधव्यं**	ज्ञातव्यकी
बोधेन अंशेन	अपने अंश बोध सहित	**प्रतिपत्तिः**	उपलब्धि
		भवेत्	होती है ॥२३॥

हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् ।
मनसांशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

हृदयं च अस्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यं आविशत् मनसा अंशेन येन असौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

अस्य च	इसके तो	**धिष्ण्यं**	इस स्थानमें
हृदयं	हृदय	**मनसा अंशेन**	अपने अंश मन सहित
निर्भिन्नं	प्रगट होनेपर	**चन्द्रमा**	चन्द्र

आविशत्	प्रविष्ट हुए	विक्रियां	विकारोंको
येन असौ	जिससे यह	प्रतिपद्यते	प्राप्त होता है ॥२४॥

आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ।
कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

आत्मानं च अस्य निर्भिन्नं अभिमानः आविशत् पदं कर्मणा अंशेन येन असौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

अस्य	इसके	अभिमानः	अभिमानने
आत्मानं च	अहंकारके भी	आविशत्	प्रवेश किया
निर्भिन्नं	उत्पन्न होनेपर	येन असौ	जिससे यह
अंशेन	अपने अंश	कर्तव्यं	कर्तव्यको
कर्मणा	कर्मके साथ	प्रतिपद्यते	प्राप्त होता है ॥२५॥
पदं	इस स्थानमें		

सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान्धिष्ण्यमुपाविशत् ।
चित्तेनांशेन येनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

सत्त्वं च अस्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यं उपाविशत् चित्तेन अंशेन येन असौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

अस्य	इसके	महान्	महत्तत्त्व (ब्रह्मा)
सत्त्वं च	अन्तःकरण भी	उपाविशत्	प्रविष्ट हुआ
विनिर्भिन्नं	उत्पन्न हुआ	येन असौ	जिससे यह
धिष्ण्यं	इस स्थानमें	विज्ञानं	विशेष-विशेष ज्ञान (स्मृति)
चित्तेन	चित्तरूपी		
अंशेन	अंश सहित	प्रतिपद्यते	पाता है ॥२६॥

शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ।
गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥

शीर्ष्णः अस्य द्यौः धरा पद्भ्यां खं नाभेः उदपद्यत गुणानां वृत्तयः येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥

अस्य	इस (विराट् पुरुष)के	उदपद्यत	उत्पन्न हुआ
शीर्ष्णः	सिरसे	येषु	जिनमें
द्यौः	स्वर्ग,	गुणानां	गुणोंकी
पद्भ्यां	पैरसे	वृत्तयः	वृत्तिवाले
धरा	पृथ्वी,	सुरादयः	देवतादि
नाभेः	नाभिसे	प्रतीयन्ते	देखे जाते हैं ॥२७॥
खं	आकाश		

आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ।
धरां रजःस्वभावेन पणयो ये च ताननु ॥२८॥

आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे धरां रजः स्वभावेन पणयः ये च तान् अनु ॥२८॥

सत्त्वेन	सत्वगुणकी	च ये	तथा जो
आत्यन्तिकेन	प्रधानतासे	तान् अनु	उनके पीछे रहने वाले (पशु, पक्षी आदि)
देवाः	देवता		
दिवं	स्वर्गमें	धरां	पृथ्वीपर
रजः स्वभावेन	रजोगुणी स्वभावके कारण	प्रपेदिरे	रहते हैं ॥२८॥
पणयः	व्यापारी (कर्मशील मनुष्य)		

तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ।
उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥२९॥

तार्तीयेन स्वभावेन भगवत् नाभिं आश्रिताः उभयोः अन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदाः गणाः ॥२९॥

ये	जो	स्वभावेन	स्वभावके कारण
रुद्रपार्षदाः	रुद्रके पार्षद	भगवत नाभिं	भगवानकी नाभिका
गणाः	उनके गण (भूत प्रेतादि) हैं	आश्रिताः	आश्रय लेकर
तार्तीयेन	तीसरे (तमोगुणी)	उभयोः	दोनों (स्वर्ग और पृथ्वी) के

अन्तर	बीचमें	व्योम	आकाशमें (रहते हैं) ॥२९॥

मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरुद्वह ।
यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥३०॥

मुखतः अवतत ब्रह्म पुरुषस्य कुरुद्वह यस्तु उन्मुखत्वात् वर्णानां मुख्यः अभूत् ब्राह्मणः गुरुः ॥३०॥

कुरुद्वह	कुरुश्रेष्ठ (विदुर)	उन्मुखत्वात्	(वेदके) उन्मुख होनेसे
अस्य	इस		
पुरुषस्य	विराट् पुरुषके	वर्णानां	वर्णोंमें
मुखतः	मुखसे	ब्राह्मणः	ब्राह्मण
ब्रह्म	वेद और ब्राह्मण	मुख्यः	मुख्य (और सबका)
अवर्तत	प्रकट हुए	गुरुः	गुरु
यस्तु	जो जो	अभूत्	हुआ ॥३०॥

बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः ।
यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥३१॥

बाहुभ्यः अवर्तत क्षत्रं क्षत्रियः तत् अनुव्रतः यः जातः त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टक क्षतात् ॥३१॥

बाहुभ्यः	(उनकी) भुजाओंसे	यः पौरुषः	जो परम पुरुषके अंशसे
क्षत्रं	क्षत्रिय (रक्षा) वृत्ति और	जातः	उत्पन्न होकर
तत्	उसका	वर्णान्	(दूसरे) वर्णोंको
अनुव्रतः	पालन करनेवाला	कण्टक	काँटों (डाकू, चोर आदि) के
क्षत्रियः	क्षत्रिय वर्ण	क्षतात्	आघातसे
अवर्तत	उत्पन्न हुआ	त्रायते	बचाता है ॥३१॥

विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ।
वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥

विशः अवर्तन्त तस्य उर्वोः लोक वृत्तिकरीः विभोः वैश्यः तत् उद्भवः वार्ता नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥

तस्य	उन	उद्भवः	उत्पन्न
विभोः	विराट् पुरुषके	वैश्यः	वैश्य वर्ण
उर्वोः	जाँघोंसे	अवर्तन्त	हुआ
लोक	लोगोंका	यः नृणां	जो मनुष्योंकी
वृत्तिकरीः	निर्वाह करनेवाली	वार्ता	जीविका
विशः	व्यापार वृत्ति (और)	समवर्तयत्	चलाता है ॥३२॥
तत्	उसीसे		

पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषा धर्मसिद्धये ।
तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥

पद्भ्यां भगवतः जज्ञे शुश्रूषा धर्म सिद्धये तस्यां जातः पुरा शूद्रः यत् वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥

धर्म सिद्धये	धर्मकी सिद्धिके लिए	शूद्रः	शूद्र (भी उत्पन्न हुआ)
भगवतः	भगवानके	यत् वृत्त्या	जिसकी वृत्ति (सेवा) से
पद्भ्यां	पैरोंसे	हरिः	श्रीहरि
शुश्रूषा	सेवा	तुष्यते	सन्तुष्ट होते हैं ॥३३॥
जज्ञे	उत्पन्न हुई		
तस्यां	उन्हींसे		
पुरा	पहिले पहिले		

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम् ।
श्रद्धयाऽऽत्मविशुद्धयर्थं यज्जाताः सह वृत्तिभिः ॥३४॥

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिं श्रद्धया आत्म विशुद्धयर्थं यत् जाताः सह वृत्तिभिः ॥३४॥

एते वर्णाः	ये (चारो) वर्ण	जातः	उत्पन्न हुए (उन)
यत्	जिनसे	स्वगुरुं	अपने गुरु
सह वृत्तिभिः	अपनी वृत्तियोंके साथ	हरिं	श्रीहरिकी

स्वधर्मेण	अपने धर्म (के पालन) से	आत्म	चित्तकी
		विशुद्ध्यर्थं	शुद्धिके लिए
श्रद्धया	श्रद्धा सहित	यजन्ति	यजन करते हैं ॥२४॥

एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः ।
कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥

एतत् क्षत्तः भगवतः दैव कर्म आत्मरूपिणः कः श्रद्दध्यात् उपाकर्तुं योगमाया बल उदयम् ॥३५॥

क्षत्तः	विदुर !	भगवतः	भगवानकी
एतत्	यह	योगमाया बल	योगमायाकी शक्तिके
दैव	काल	उदयं	विस्तारको
कर्म	कर्म	कः उपाकर्तुं	कौन वर्णन करनेमें
आत्मरूपिणः	स्वभाव शक्ति युक्त,	श्रद्दध्यात्	समर्थ हो सकता है ॥३५॥

अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् ।
कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधासतीम् ॥३६॥

अथापि कीर्तयामि अङ्ग यथा मति यथा श्रुतं कीर्तिं हरेः स्वां सत् कर्तुं गिरं अन्य अभिधा असतीम् ॥३६॥

अङ्ग	प्रिय विदुर !	कीर्तिं	सुयशका
अथापि	फिर भी	यथा मति	जैसी बुद्धि है (और)
अन्य अभिधा	दूसरी चर्चासे	यथा श्रुतं	जैसा (गुरुजनोंसे) सुना है
असतीं	अपवित्र हुई		
स्वां गिरं	अपनी वाणीको	कीर्तयामि	वर्णन करता हूँ ॥३६॥
सत् कर्तुं	शुद्ध करनेके लिए		
हरेः	श्रीहरिके		

एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां
सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।
श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां
कथासुधायामुपसम्प्रयोगम् ॥३७॥

एकान्त लाभं वचसः नु पुंसां सुश्लोकमौलेः गुणवादं आहुः श्रुतेः च विद्वद्भिः उपाकृतायां कथासुधायां उपसम्प्रयोगम् ॥३७॥

पुंसां	पुरुषकी	आहुः च	कहा गया है और
वचसः	वाणीका	श्रुतेः	कानोंका (लाभ)
एकान्त	एकमात्र	विद्वद्भिः	विद्वानों द्वारा
लाभं नु	लाभ निश्चित ही	उपाकृतायां	उपकार करके सुनायी
सुश्लोकमौलेः	पुण्य श्लोक शिरोमणि (भगवान) के	कथासुधायां	(भगवत्) कथामृतके
		उपसम्प्रयोगं	सुननेमें लगाना ही है ॥३७॥
गुणवादं	गुणोंका वर्णन		

आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ।
संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्वया ॥३८॥

आत्मना अवसितः वत्स महिमा कविना आदिना संवत्सर सहस्र अन्ते धिया योग विपक्वया ॥३८॥

वत्स	वत्स !	संवत्सर अन्ते	वर्ष तक (चिन्तन करके)
आदिना कविना	आदि कवि (ब्रह्माजी)	आत्मना	भगवानकी
योग विपक्वया	योगसे परिपक्व	महिमा	महिमाका
धिया	बुद्धिसे	अवसितः	पार पा सके ?॥३८॥
सहस्र	एक हजार		

अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी ।
यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥३९॥

अतः भगवतः माया मायिनां अपि मोहिनी यत् स्वयं च आत्मवर्त्म आत्मा न वेद किम् उत अपरे ॥३९॥

अतः	अतः	मायिनां	(बड़े बड़े) मायावियोंको
भगवतः	भगवानकी		
माया	माया	अपि	भी

मोहिनी	मोहमें डालनेवाली है	आत्मा	परमात्मा
यत् स्वयं	जिसे स्वयं	न वेद	नहीं जानते
आत्मवर्त्म	अपने स्वरूपमें लगे	अपरे	दूसरोंकी
च	होनेपर भी	किं उत	फिर चर्चा क्या ॥३९

यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह ।
अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥४०॥

यतः अप्राप्य न्यवर्तन्त वाचः च मनसा सह अहं च अन्य इमे देवाः तस्मै भगवते नमः ॥४०॥

यतः	जिनको	अन्य इमे	दूसरे ये
अप्राप्य	न पाकर	देवाः	देवता
वाचः	वाणी	न्यवर्तन्त	लौट आते हैं
मनसा सह च	मनके साथ ही	तस्मै	उन
अहं च	अहङ्कार (के अधिदेव रुद्र)भी	भगवते	भगवानको
		नमः	नमस्कार ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ।
प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥

एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायन सुतः बुधः प्रीणयन् इव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**बुधः**	बुद्धिमान
मैत्रेयं	मैत्रेयजीके	**द्वैपायन सुतः**	व्यासजीके पुत्र
ब्रुवाणं	कहनेपर	**विदुरः**	विदुरने
भारत्या	अपनी वाणीसे	**प्रत्यभाषत**	उनसे कहा ॥१॥
प्रीणयन् इव	प्रसन्न करते हुए से		

विदुर उवाच-

ब्रह्मन् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः ।
लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥

ब्रह्मन् कथं भगवतः चिन् मात्रस्य अविकारिणः लीलया च अपि युज्येरन् निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**लीलया अपि**	लीलासे भी
भगवतः	भगवान	**गुणाः**	गुण (और)
चिन् मात्रस्य	ज्ञान स्वरूप मात्र	**क्रियाः**	क्रिया
अविकारिणः	निर्विकार	**कथं युज्येरन्**	कैसे सम्बद्ध हो सकते हैं ? ॥२॥
निर्गुणस्य	निर्गुणसे		

क्रीडायामुद्यमोऽभीष्टस्य कामश्चिक्रीडिषान्यतः ।
स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदान्यतः ॥३॥

क्रीडायां उद्यमः अर्भस्य कामः चिक्रीडिषा अन्यतः स्व तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदा अन्यतः ॥३॥

अन्यतः	दूसरेके साथ	**निवृत्तस्य**	रहित
चिक्रीडिषा	खेलनेकी	**स्व तृप्तस्य च**	अपनेमें ही तृप्तका तो (परमात्माका)
कामः	इच्छा (और)		
क्रीडायां	खेलनेका	**कथं**	(खेलनेका प्रयत्न) कैसे हो सकता है ? ॥३॥
उद्यमः	प्रयत्न		
अर्भस्य	बालकका (होता है)		
सदा अन्यतः	सदा दूसरे (द्वितीय तत्त्व) से		

अस्राक्षीद्भगवान् विश्वं गुणमय्याऽऽत्ममायया ।
तथा संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥

अस्राक्षी भगवान् विश्वं गुणमय्या आत्ममायया तथा संस्थापयत् एतत् भूयः प्रति पिधास्यति ॥४॥

गुणमय्या	गुणमयी	**संस्थापयत्**	(विश्वकी) स्थापना करते हैं
आत्ममायया	अपनी मायासे		
भगवान्	भगवान्ने	**भूयः एतत्**	फिर इस (विश्व)का
विश्वं	विश्वकी	**प्रति पिधास्यति**	प्रलय कर देंगे ॥४॥
अस्राक्षी	सृष्टिकी		
तथा	उसी (माया) के द्वारा		

देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः ।
अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥५॥

देशतः कालतः यः असौ अवस्थातः स्वतः अन्यतः अविलुप्त अवबोध आत्मा स युज्येत अजया कथम् ॥५॥

यः असौ	जो यह	**कालतः**	कालसे
देशतः	देशसे	**अवस्थातः**	अवस्थासे

स्वतः	स्वतः	अजया	मायासे
अन्यतः	या किसी दूसरे द्वारा	कथं	कैसे
अविलुप्त	लुप्त न होनेवाले	युज्येत	संयुक्त हो सकता है ॥५॥
अवबोध	ज्ञान स्वरूप		
आत्मा स	आत्मा है, वह		

भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ।
अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥६॥

भगवान् एक एव एष सर्वक्षेत्रेषु अवस्थितः अमुष्य दुर्भगत्वं वावक्लेशः वा कर्मभिः कुतः ॥६॥

एक एव	अकेले ही	दुर्भगत्वं वा	दुर्भाग्य अथवा
एष भगवान्	ये भगवान	कर्मभिः	कर्मों (के फल) से
सर्व क्षेत्रेषु	सब शरीरोंमें	क्लेशः वा	क्लेश ही
अवस्थितः	स्थित हैं	कुतः	कैसे हो सकता है ॥६॥
अमुष्य	इनको		

एतस्मिन्मे मनो विद्वन् खिद्यतेऽज्ञानसङ्कटे ।
तन्नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥७॥

एतस्मिन् मे मनः विद्वन् खिद्यते अज्ञान सङ्कटे तत् नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥७॥

विद्वन्	विद्वन् !	तत् नः	वह मेरा
एतस्मिन्	इस विषयमें	महत्	महान्
अज्ञान सङ्कटे	अज्ञानके संकटसे	मानसं	मानसिक
मे मनः	मेरा मन	कश्मलं	मोहको
खिद्यते	खिन्न हो रहा है	पराणुद	दूर कीजिए ॥७॥
विभो	प्रभो !		

श्रीशुक उवाच–

स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ।
प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥८॥

स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्व जिज्ञासुना मुनिः प्रत्याह भगवत् चित्तः स्ययन् इव गतस्मयः ॥८॥

स मुनिः	वे मुनि (मैत्रेय)	**भगवत् चित्तः**	भगवान्में चित्त लगाकर
तत्त्व जिज्ञासुना	तत्त्वको जाननेकी इच्छासे	**गत स्मयः**	निरभिमान
इत्थं	इस प्रकार	**स्ययन् इव**	मुस्कराते हुएसे
क्षत्त्रा	विदुर द्वारा	**प्रत्याह**	उत्तर देने
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर		लगे ॥८॥

मैत्रेय उवाच–

सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ।
ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥९॥

सा इयं भगवतः माया यत् न येन विरुध्यते ईश्वरस्य बिमुक्तस्य कार्पण्यं उत बन्धनम् ॥९॥

सा इयं	वह यह	**कार्पण्यं**	दीनता और
भगवतः	भगवानकी	**विमुक्तस्य**	नित्य मुक्तका
माया	माया है	**बन्धनं**	बन्धनमें पड़ना
यत् येन	जिसमें,जिसके द्वारा	**विरुध्यते न**	विरोधी बात नहीं होती ॥९॥
ईश्वरस्य	सर्व समर्थकी		

यदर्थेन विनामुष्य पुंस आत्मविपर्ययः ।
प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥१०॥

यत् अर्थेन विना अमुष्य पुंसः आत्म विपर्ययः प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरः छेदनादिकः ॥१०॥

यत् अर्थेन	जो पदार्थोंके	**विपर्ययः**	उलटापना
विना	न होनेपर	**प्रतीयत**	प्रतीत हो रहा है
अमुष्य	इस	**उपद्रष्टुः**	स्वप्न देखनेवालेके
पुंसः	पुरुषका	**स्वशिरः**	अपने ही सिरको
आत्म	अपने स्वरूपसे		

छेदनादिकः	काटने आदिके समान (न होनेपर		भी मिथ्या प्रतीति) है ॥१०॥

यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः ।
दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः ॥११॥

यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिः तत् कृतः गुणः दृश्यते असन् अपि द्रष्टुः आत्मनः न आत्मनः गुणः ॥११॥

यथा जले	जैसे जलमें (पड़े)	दृश्यते	दीखते हैं
चन्द्रमसः	चन्द्रमा (के प्रतिविम्ब) में	द्रष्टुः आत्मनः	(ऐसे ही) द्रष्टा आत्मामें
तत् कृतो	उस (जल) से उत्पन्न	आत्मनः	न अनात्माके
कम्पादिः	कम्पन आदि	गुणः	गुण (न होनेपर भी दीखते हैं) ॥११॥
गुणः	गुण		
असन् अपि	(चन्द्रमामें) न होनेपर भी		

स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया ।
भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥१२॥

स वै निवृत्ति धर्मेण वासुदेव अनुकम्पया भगवत् भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैः इह ॥१२॥

वै स	निश्चय ही वह (माया)	भक्तियोगेन	भक्तियोगसे
निवृत्ति धर्मेण	निवृत्ति धर्मसे	इह शनैः	यहाँ चित्त (से) धीरे-धीरे
वासुदेव	भगवान् श्रीकृष्णकी	तिरोधत्ते	तिरोहित होती
अनुकम्पया	कृपासे (प्राप्त)		है ॥१२॥
भगवत्	भगवान्की		

यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्टात्मनि परे हरौ ।
विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥१३॥

यत् इन्द्रिय उपरामः अथ द्रष्टा आत्मनि परे हरौ विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्य इव कृत्स्नशः ॥१३॥

यत् इन्द्रिय उपरामः	जब इन्द्रियाँ (विषयोंसे) उपराम हो जाती हैं	संसुप्तस्य इव	सोते (पुरुष) के समान
अथ द्रष्टा परे आत्मनि हरौ तदा	तब साक्षी परमात्मा श्रीहरिमें (लग जाती हैं) तब	कृत्स्नशः क्लेशाः विलीयन्ते	समस्त क्लेश विलीन हो जाते हैं ॥१३॥

अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते
गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्द-
परागसेवारतिरात्मलब्धा ॥१४॥

अशेष संक्लेश शमं विधत्ते गुणानुवाद श्रवणं मुरारेः कुतः पुनः तत् चरणारविन्दपराग सेवा रतिः आत्म लब्धा ॥१४॥

मुरारेः	श्रीकृष्णके		रजकी
गुणानुवाद	गुणोंका वर्णन (तथा)	सेवा रतिः	सेवाकी प्रीति
श्रवणं	श्रवण	आत्मलब्धा	अपने चित्तमें आ जाय
अशेष संक्लेश शमं विधत्ते	सम्पूर्ण क्लेशोंकी शान्ति कर देता है	कुतः	फिर पूछना क्या ॥१४॥
पुनः तत् चरणारविन्द	फिर उनके		
पराग	चरण-कमलोंकी		

विदुर उवाच–

संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ।
उभयत्रापि भगवन्मनो मे सम्प्रधावति ॥१५॥

संछिन्नः संशयं मह्यं तव सूक्ति असिना विभो उभय अत्र अपि भगवन् मनः मे सम्प्रधावति ॥१५॥

विभो	प्रभो !	मे मनः	मेरा मन
तव	आपकी	अत्र	इस
सूक्ति असिना	सूक्ति रूपी तलवारसे	उभय	दोनों विषयों (भगवानकी स्वतन्त्रता) में
मह्यं संशयं	मेरा सन्देह	सम्प्रधावति	दौड़ (प्रवेश कर रहा है ॥१५॥
संछिन्नः	पूर्णतः कट गया,		
भगवन्	भगवन् !		

साध्वेतद् व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः ।
आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥१६॥

साधु एतत् व्याहृतं विद्वन् आत्म माया अयनं हरेः आभाति अपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यत् बहिः ॥१६॥

विद्वन्	विद्वन् !	आभाति	प्रतीत हो रही है
एतत्	यह	अपार्थं	अस्तित्वहीन
व्याहृतं	(आपकी) बात	निर्मूलं	कारण हीन (होनेपर भी)
साधु	ठीक है	यत् विश्वमूलं	क्योंकि विश्वका कारण
हरेः	श्रीहरिकी	बहिः न	बाहर नहीं है ॥१६॥
आत्म माया	अपनी माया ही		
अयनं	(इस क्लेशादिका) आधार		

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥१७॥

यः च मूढतमः लोके यः च बुद्धेः परंगतः ताः उभौ सुखं एधेते क्लिश्यन्ति अन्तरितः जनः ॥१७॥

लोके	संसारमें	परंगतः	पार पहुँचा है
यः च	जो भी	ताः उभौ	वही दोनों
मूढतमः	अत्यन्त मूर्ख है	सुखं एधेते	सुखसे बढ़ते हैं,
च यः	और जो	अन्तरितः जनः	मध्यस्थितिके लोग
बुद्धेः	बुद्धिके	क्लिश्यन्ति	कष्ट पाते हैं ॥१७॥

अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः ।
तां चापि युष्मच्चरणसेवयाहं पराणुदे ॥१८॥

अर्थ अभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्य अपि न आत्मनः तां च अपि युष्मत् चरण सेवया अहं पराणुदे ॥१८॥

न आत्मनः	अनात्म	तां	उस (प्रतीति)
अर्थ	पदार्थोंका	च अपि	को भी
अभावं	अभाव	युष्मत्	आपके
प्रतीतस्य अपि	प्रतीत होनेपर भी	चरणसेवया	चरणोंकी सेवासे
विनिश्चित्य	(मुझे) निश्चय हो गया है	अहं पराणुदे	मैं दूर फेंक दूंगा ॥२८॥

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ।
रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥१९॥

यत् सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः रतिः आसः भवेत् तीव्रः पादयोः व्यसन अर्दनः ॥१९॥

यत्	(आपके) जिन चरणोंकी	पादयोः	चरणोंमें
		व्यसनार्दनः	क्लेशोंकी नाशिका
सेवया	सेवासे	तीव्र	तीव्र (उत्कट)
कूटस्थस्य	कूटस्थ	आसः	आनन्ददायिनी
भगवतः	भगवान्	रतिः भवेत्	प्रीति होती है ॥१९॥
मधुद्विषः	मधुसूदनके		

दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ।
यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥२०॥

दुरापा हि अल्प तपसः सेवा वैकुण्ठ वर्त्मसु यत्र उपगीयते नित्यं देवदेवः जनार्दनः ॥२०॥

हि	क्योंकि	वर्त्मसु	मार्ग रूप (महात्माओं) की
अल्प तपसः	कम तप (पुण्य) वालोंके लिए	सेवा	सेवा
वैकुण्ठ	भगवानके	दुरापा	दुर्लभ है

यत्र नित्यं	जहाँ सदा	उपगीयते	वर्णन होता
देवदेवः	देवदेव		है ॥२०॥
जनार्दनः	जनार्दनका		

सृष्ट्वाग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ।
तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशद्विभुः ॥२१॥

सृष्ट्वा अग्रे महत् आदीनि सविकाराणि अनुक्रमात् तेभ्यः विराजं उद्धृत्य तं अनु प्राविशत् विभुः ॥२१॥

अग्रे	पहिले	तेभ्यः	उनसे
महत् आदीनि	महत्तत्त्व आदिको	विराजं	विराट्को
अनुक्रमात्	क्रमानुसार	उद्धृत्य	उत्पन्न करके
सविकाराणि	उनके विकारोंके साथ	विभुः	परमात्माने
		तं अनु	उनमें फिर पीछे
सृष्ट्वा	उत्पन्न करके	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥२१॥

यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्यूरबाहुकम् ।
यत्र विश्व इमे लोकाः सविकासं समासते ॥२२॥

यं आहुः आद्यं पुरुषं सहस्र अङ्घ्रि उरु बाहुकं यत्र विश्व इमे लोकाः सविकासं समासते ॥२२॥

यं सहस्र	जिन हजारों	यत्र विश्व	जिसमें विश्वके
अङ्घ्रि उरु बाहुकं	पैर जंघा भुजाओं वालेको	इमे लोकाः	ये लोक
		सविकासं	पूरे विस्तार सहित
आद्यं पुरुषं	आदि पुरुष	समासते	भली भाँति स्थित
आहुः	(वेदने) कहा है,		हैं ॥२२॥

यस्मिन् दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् ।
त्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥२३॥

यस्मिन् दशविधः प्राणः स इन्द्रिय अर्थ इन्द्रियः त्रिवृत् त्वया इरितः यतः वर्णाः तद् विभूतिः वदस्व नः ॥२३॥

यस्मिन्	जिसमें	यतः वर्णाः	जिनसे सब वर्णोंकी (उत्पत्ति)
दशविधः	दस प्रकारके	त्वया ईरितः	आपने बतलायी
प्राणः	प्राण	तद् विभूतीः	उनकी विभूतियोंका
इन्द्रिय	इन्द्रियाँ	नः वदस्व	मुझसे वर्णन कीजिए ॥२३॥
अर्थ	विषय		
त्रिवृत्	तीन प्रकारके		
इन्द्रियः	इन्द्रियोंके अधिदेवता		

यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ।
प्रजा विचित्राकृतय आसन् याभिरिदं ततम् ॥२४॥

यत्र पुत्रैः च पौत्रैः च नप्तृभिः सह गोत्रजैः प्रजा विचित्र आकृतय आसन् याभिः इदं ततम् ॥२४॥

यत्र पुत्रैः च	जहाँ पुत्रोंसे	आकृतय	आकारवाली
पौत्रैः च	पौत्रोंसे	प्रजा	प्रजा
नप्तृभिः	नातियोंसे	आसन्	उत्पन्न हुई
गोत्रजैः सह	गोत्रमें उत्पन्न (दूसरों) के साथ	याभिः	जिनसे
		इदं	यह संसार
विचित्र	नाना प्रकारकी	ततम्	भर गया ॥२४॥

प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान् प्रजापतीन् ।
सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥

प्रजापतीनां स पतिः चक्लृपे कान् प्रजापतीन् सर्गान् च अनुसर्गान् च मनून् मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥

प्रजापतीनां	प्रजापतियोंके	अनुसर्गान् च	अनुसर्ग (उससे पीछेकी सृष्टि) को
स पतिः	वे स्वामी (ब्रह्माजी) ने	मन्वन्तराधिपान्	मन्वन्तरोंके स्वामी
कान् प्रजापतीन्	किन प्रजापतियोंको	मनून्	मनुओंको
सर्गान् च	सर्ग (मूलसृष्टि) को	चक्लृपे	बनाया ॥२५॥

एतेषामपि वंशांश्च वंशानुचरितानि च ।
उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजासते ॥२६॥

एतेषां अपि वंशान् च वंश अनुचरितानि च उपरि अधः च ये लोकाः भूमेः मित्रात्मज आसते ॥२६॥

मित्रात्मज	मैत्रेयजी !	भूमेः	भूमिके
एतेषां अपि	इन (मनुओं) के भी	उपरि च	ऊपर और
वंशान् च	वंशोंका	अधः	नीचे
वंश अनुचरितानि च	(उन) वंशोंमें हुए लोगोंके चरितोंको	ये लोकाः	जो लोक हैं
		आसते	(भीतर लोक) हैं ॥२६॥

तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ।
तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्त्रिणाम् ।
वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥२७॥

तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय तिर्यङ् मानुष देवानां सरीसृप पतत्रिणां वद नः सर्ग संव्यूहं गार्भ स्वेद द्विज उद्भिदाम् ॥२७॥

तेषां	उनकी		(सरकनेवाले)
संस्थां च	स्थिति तथा	पतत्रिणां	पक्षियोंका
प्रमाणं	प्रमाण (विस्तार)	गार्भ	जरायुज
वर्णय च	वर्णन कीजिए और	स्वेद	स्वेदज
भूर्लोकस्य	पृथ्वीलोकके	द्विज	अण्डज
तिर्यक्	तिर्यक्	उद्भिदां	उद्भिज
मानुष	मनुष्य	सर्ग संव्यूहं	सृष्टिका विस्तार
देवानां	देवताओंका	नः वद	मुझे बतलाइये॥२७॥
सरीसृप	सरीसृप		

गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् ।
सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥२८॥

गुण अवतारः विश्वस्य सर्ग स्थिति अप्यय आश्रयं सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्व उदार विक्रमम् ॥२८॥

विश्वस्य	संसारकी	स्थिति	स्थिति
सर्ग	सृष्टि	अप्यय	प्रलयका

आश्रयं	आधार	श्रीनिवासस्य	भगवान् विष्णुके
गुणावतारः	गुणोंके आधारपर अवतार	उदार विक्रमं	उदार पराक्रमका
		व्याचक्ष्व	वर्णन कीजिए ।२८।
सृजतः	लेते		

वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः ।
ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥२९॥

वर्ण आश्रम विभागान् च रूपशील स्वभावतः ऋषीणां जन्म कर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥२९॥

रूप	वेश	ऋषीणां	ऋषियोंका
शील	आचरण तथा	जन्म कर्मादि	जन्म कर्म आदि (चरित)
स्वभावतः	स्वभावके भेदसे		
वर्ण आश्रम	वर्ण और आश्रमोंका	वेदस्य च	वेदका भी
विभागान् च	विभागोंको भी(कहें)	विकर्षणं	विभागीकरण॥२९॥

यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ।
नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥३०॥

यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो नेष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत् स्मृतम् ॥३०॥

प्रभो	प्रभो	सांख्यस्य वा	ज्ञानका (मार्ग) एवं
यज्ञस्य च	यज्ञोंका भी	भगवत् स्मृतं	भगवान्के द्वारा उपदिष्ट
वितानानि	विस्तार		
योगस्य च	योगका भी	तन्त्रं	पाञ्चरात्र आगम ॥३०॥
पथः	मार्ग		
नैष्कर्म्यस्य च	निष्कर्मता (निवृत्ति) का तथा		

पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ।
जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥३१॥

पाखण्ड पथ वैषम्यं प्रतिलोम निवेशनं जीवस्य गतयः याः च यावतीः गुण कमजा ॥३१॥

पाखण्ड पथ	पाखण्ड मार्गोंके कारण	गुण कर्मजा	गुणों और कर्मसे होनेवाली
वैषम्यं	(होनेवाली) विषमता	जीवस्य	जीवकी
प्रतिलोम	उच्च वर्णकी स्त्रीमें निम्न वर्णके पुरुषसे उत्पन्न लोगोंके	यावतीः	जितनी
		याः च	और जो भी
		गतयः	गतियाँ हैं ॥३१॥
निवेशनं	प्रकार		

धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः ।
वार्तायां दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥३२॥

धर्म अर्थ काम मोक्षाणां निमित्तानि अविरोधतः वार्तायां दण्डनीतिः च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥३२॥

पृथक्	अलग अलग	निमित्तानि	साधन
धर्म	धर्म	वार्तायां	वाणिज्यका
अर्थ	धन	दण्डनीतेः च	दण्डनीतिकी तथा
काम	भोग	श्रुतस्य	शास्त्र श्रवणकी
मोक्षाणां	मोक्षकी (प्राप्तिके)	विधिं	विधि ॥३२॥
अविरोधतः	परस्पर अविरोधी		

श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितृणां सर्गमेव च ।
ग्रहनक्षत्रतारााणां कालावयवसंस्थितिम् ॥३३॥

श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितृणां सर्गं एव च ग्रह नक्षत्र ताराणां काल अवयव संस्थितिम् ॥३३॥

श्राद्धस्य	श्राद्धकी	काल अवयव	काल चक्रमें
विधिं च	विधिको और	ग्रह नक्षत्र ताराणां	ग्रह, नक्षत्र, तारोंकी
ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	संस्थितिम्	स्थितिका (वर्णन कीजिए) ॥३३॥
पितृणां	पितरोंकी		
सर्ग एव	सृष्टिका भी,		

दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम् ।
प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३४॥

दानस्य तपसः वा अपि यत् इष्ट आपूर्तयोः फलं प्रवासस्थस्य यः धर्मः यः च पुंस उत आपदि ॥३४॥

दानस्य च	दानका तथा	फलं	फल है
तपसः अपि	तपस्याका भी	प्रवासस्थस्य	यात्रामें रहनेवालेका
यत् च	जो भी	यः धर्मः	जो धर्म है
इष्ट	देवार्चन निमित्त निर्माणका	यः च	जो भी
		आपदि उत	आपत्तिमें पड़े
आपूर्तयोः	समाजोपयोगी निर्माणका	पुंस	पुरुषका (धर्म) है ॥३४॥

येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ।
सम्प्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ ॥३५॥

येन वा भगवान् तुष्येत् धर्मयोनिः जनार्दनः सम्प्रसीदति वा येषां एतत् आख्याहि च अनघ ॥३५॥

अनघ	निष्पाप (मैत्रेयजी)	तुष्येत्	सन्तुष्ट होते हैं
वा येन	तथा जिस (साधन)से	वा येषां	अथवा जिनपर
धर्मयोनिः	धर्मके मूलकारण	सम्प्रसीदति	प्रसन्न होते हैं
भगवान्	भगवान्	एतत् च	यह भी
जनार्दनः	जनार्दन	आख्याहि	वर्णन कीजिए ॥३५॥

अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ।
अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥३६॥

अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम अनापृष्टं अपि ब्रूयुः गुरवः दीनवत्सलाः ॥३६॥

द्विजोत्तम	ब्राह्मण श्रेष्ठ !	शिष्यानां च	शिष्योंके तथा
दीनवत्सलाः	दीनोंपर स्नेह रखनेवाले	पुत्राणां	पुत्रोंके
		अनापृष्टं अपि	न पूछनेपर भी
गुरवः	गुरुजन	ब्रूयुः	बतलाते हैं ॥३६॥
अनुव्रतानां	अनुगामी		

तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः ।
तत्रेमं क उपासीरन् क उ स्विदनुशेरते ॥३७॥

तत्त्वानां भगवन् तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः तत्र इमं क उपासीरन् क उस्वित् अनुशेरते ॥३७॥

भगवन्	भगवन् !	क उपासरीन्	कौन उपासना
तेषां तत्त्वानां	उन तत्त्वोंका		करते हैं
प्रतिसंक्रमः	प्रलय	उ क	तथा कौन
कतिधा	कितने प्रकारका है	अनुशेरते	(उनमें) सो जाते
तत्र इमं	उनमें (योगनिद्रामें		(लीन होते)
	सोये भगवान्) की	स्वित्	हैं ॥३७॥

पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च।
ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥३८॥

पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ज्ञानं च नैगमं यत् तत् गुरु शिष्य प्रयोजनम् ॥३८॥

पुरुषस्य च	जीवका तो	ज्ञानं च	ज्ञान तथा
संस्थानं वा	तत्त्व तथा	गुरु-शिष्य	गुरु-शिष्यका
परस्य च स्वरूपं	परमात्माका स्वरूप	यत् तद्	जो भी (परस्पर)
नैगमं	श्रुति (उपनिषत्)	प्रयोजनम्	प्रयोजन हैं ॥३८॥
	प्रतिपादित		

निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः।
स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥३९॥

निमित्तानि च तस्य इह प्रोक्तानि अनघ सूरिभिः स्वतः ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिः वैराग्यं एव वा ॥३९॥

अनघ	निष्पाप मैत्रेयजी !	स्वतः	(अन्यथा)
तस्य च	उस (साधन) के भी		अपने आप
निमित्तानि	निमित्त	ज्ञानं	ज्ञान
इह	इस (संसार) में	भक्तिः वा	भक्ति अथवा
सूरिभिः	विद्वानोंने	वैराग्य एव	वैराग्य ही
प्रोक्तानि	बतलाये हैं	कुतः	कैसे हो सकता
पुंसां	पुरुषोंको		है ॥३९॥

एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान् हरेः कर्मविवित्सया ।
ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥४०॥

एतान् मे पृच्छतः प्रश्नान् हरेः कर्म विवित्सया ब्रूहि मे अज्ञस्य मित्रत्वात् अजया नष्ट चक्षुषः ॥४०॥

अजया	मायासे	पृच्छतः	पूछे गये
नष्ट चक्षुषा	विचार दृष्टि लुप्त हुए	एतान् मे	इतने मेरे
मे अज्ञस्य	मुझ अज्ञानीसे	प्रश्नान्	प्रश्नोंको
हरेः	श्रीहरिकी	मित्रत्वात्	(मरे) सुहृद होनेके कारण
कर्म	लीलाको		
विवित्सया	जाननेकी इच्छासे	ब्रूहि	बतलाइये ॥४०॥

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥४१॥

सर्वे वेदाः च यज्ञाः च तपः दानानि च अनघ जीव अभय प्रदानस्य न कुर्वीरन् कलां अपि ॥४१॥

अनघ	अनघ !	जीव	जीवको
सर्वे वेदाः च	सब वेद भी	अभय प्रदानस्य	अभय देनेके
यज्ञाः च	(सब) यज्ञ भी	कलां अपि	एक अंशकी भी
तपः	तपस्या	न कुर्वीरन्	(समता) नहीं कर सकते ॥४१॥
दानानि च	(सब) दान भी		

श्रीशुक उवाच–

स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः
कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ।
प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां
सञ्चोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥४२॥

स इत्थं आपृष्ट पुराण कल्पः कुरु प्रधानेन मुनिप्रधानः प्रवृद्ध हर्षः भगवत् कथायां सञ्चोदितः तं प्रहसन् इव आह ॥४२॥

इत्थं	इस प्रकार	**संचोदितः**	प्रेरित किये जानेपर
कुरु प्रधानेन	कुरुश्रेष्ठ (विदुर) के	**प्रवृद्धहर्षः**	बढ़े हुए हर्षसे
पुराण कल्पः	पुराण विषयक	**प्रहसन् इव**	हँसते हुएसे
आपृष्ट	प्रश्न करनेपर	**तं आह**	उन (विदुर) से
स मुनिप्रधानः	वे मुनियोंमें श्रेष्ठ		बोले ॥४२॥
भगवत् कथायां	भगवान्‌की कथाके लिए		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ।

अथ अष्टमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो
यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।
बभूविथेहाजितकीर्तिमालां
पदे पदे नूतनयस्यभीक्ष्णम् ॥१॥

सत् सेवनीयः बत पूरुवंशः यत् लोकपालः भगवत् प्रधानः बभूव इथ इह अजित कीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्य अभीक्ष्णम् ॥१॥

बत	निश्चय	इथ	इस (वंश) में
पूरुवंशः	पुरुवंश	बभूव	उत्पन्न हुए (जो आप)
सत् सेवनीयः	साधु पुरुषोंसे सेवनीय है	अभीक्ष्णं	निरन्तर
यत्	क्योंकि	अजित कीर्तिमालां	भगवान् अजितकी कीर्तिमालाको
भगवत् प्रधानः	भगवद् भक्तोंमें प्रधान	पदे पदे	पद पदपर
लोकपालः	लोकपाल (धर्मराज)	नूतनयस्य	नवीन बना रहे हैं ॥१॥
इह	इस (संसार) में		

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं
महद्गतानां विरमाय तस्य ।
प्रवर्तये भागवतं पुराणं
यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥२॥

सो अहं नृणां क्षुल्ल सुखाय दुःखं महद् गतानां विरमाय तस्य प्रवर्तये भागवतं पुराणं यत् आह साक्षात् भगवान् ऋषिभ्यः ॥२॥

क्षुल्ल सुखाय	तुच्छ सुखके लिए	स अहं	वह मैं
महद्	महान	भागवतं पुराणं	भागवत पुराणको
दुःखं	दुःखमें	प्रवर्तये	प्रारम्भ करता हूँ
गतानां	पड़े	यत्	जिसे
नृणां	मनुष्योंके	साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्ने
तस्य	उन (दुःखों) को	ऋषिभ्यः	ऋषियोंसे
विरमाय	रोकनेके लिए	आह	कहा है ॥२॥

आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं
सङ्कर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ।
विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य
कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥३॥

आसीनं उर्व्यां भगवन्तं आद्यं सङ्कर्षणं देवं अकुण्ठ सत्त्वं विवित्सवः तत्त्वं अतः परस्य कुमार मुख्या मुनयः अन्वपृच्छन् ॥३॥

अकुण्ठ सत्त्वं	अखण्ड ज्ञान सम्पन्न	तत्त्वं	तत्त्वको
आद्यं	आदि पुरुष	विवित्सवः	जानना चाहते थे
भगवन्तं	भगवान्	अतः कुमारमुख्या	अतः सनत्कुमार प्रमुख
सङ्कर्षणं देवं	संकर्षण देव	मुनयः	मुनियोंने
उर्व्यां	पृथ्वी (पाताल) में	अन्वपृच्छन्	पूछा ॥३॥
आसीनं	विराजमानसे		
परस्य	परमात्माके		

स्वमेव धिष्ण्यं बहु मानयन्तं
यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ।
प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीष-
दुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥४॥

स्वं एव धिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेव अभिधं आमनन्ति प्रत्यक् धृत अक्ष अम्बुज कोशंईषत् उन्मीलन्तं विबुध उदयाय ॥४॥

स्वं एव	अपने ही	वासुदेव अभिधं	वासुदेवके नामसे
धिष्ण्यं यं	स्वरूपकी जिसे	आमनन्ति	शास्त्र बतलाते हैं

बहु मानयन्तं	बहुत सम्मान देते (पूजा करते)	विबुध	देवता (सनकादि मुनियों) को
प्रत्यक् धृत	बन्द किये हुए	उदयाय	प्रसन्न करनेके लिए
अक्ष अम्बुजकोश	कमलकोश जैसे नेत्रोंको	ईषत्	थोड़ा
		उन्मीलयन्तं	खोलते हुए ॥४॥

स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापै-
रुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ।
पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः
सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥५॥

स्वर्धुनि उद् आर्द्रैः स्वजटा कलापैः उपस्पृशन्तः चरण उपधानं पद्मं यत् अर्चन्ति अहिराज कन्याः सप्रेम नाना बलिभिः वर अर्थाः ॥५॥

स्वर्धुनि	(सनकादिने) मन्दाकिनीके	यत्	जिस (पादपीठ) की
उद् आर्द्रैः	जलसे गीली	अहिराज कन्याः	नागराज कुमारियाँ
स्वजटा कलापैः	अपने जटा मण्डलसे	वर अर्थाः	वरदान पानेकी इच्छासे
चरणोपधानं	पादपीठके	नाना बलिभिः	अनेक उपहारोंसे
पद्मं	कमलका	सप्रेम	प्रेम सहित
उप स्पृशन्तः	स्पर्श करते हुए (पूछा)	अर्चन्ति	पूजा करती हैं ॥५॥

मुहुर्गृणन्तो वचसानुराग-
स्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ।
किरीटसाहस्रमणिप्रवेक-
प्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥६॥

मुहुः गृणन्तः वचसा अनुराग स्खलत् पदेन अस्य कृतानि तज्ज्ञाः किरीट साहस्र मणि प्रवेक प्रद्योतित उद्दाम फणा सहस्रम् ॥६॥

सहस्रं फणा	सहस्र फण	साहस्र	सहस्र
उद्दाम	उठाये हुए	किरीट	मुकुटोंमें

मणि प्रवेक	जड़ी मणियोंके प्रकाशसे	अनुराग	प्रेमसे
प्रद्योतित	प्रकाशित हो रहे हैं (ऐसे)	स्खलत् पदेन	गद्गद्
अस्य	इन (शेष भगवान)के	वचसा	वाणीसे
कृतानि	कर्मोंको	मुहुः	बार बार
तज्ज्ञाः	जाननेवाले (सनकादि)	गृणन्तः	स्तवन कर रहे थे ।।६।।

प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन
निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ।
सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः
सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ।।७।।

प्रोक्तं किल एतत् भगवत्तमेन निवृत्ति धर्म अभिरताय तेन सनत्कुमाराय स च आह पृष्टः सांख्यायनाय अङ्ग धृतव्रताय ।।७।।

तेन	उन	प्रोक्तं	कहा
भगत्तमेन	अतिशय ऐश्वर्यवान् भगवान शेषने	अंग	प्रिय (विदुर)
निवृत्ति धर्म	निवृत्ति धर्म	स च	उन्होंने भी
अभिरताय	निरत	पृष्टः	पूछनेपर
सनत्कुमाराय	सनत्कुमारसे	धृतव्रताय	व्रतनिष्ठ
किल एतत्	निश्चय यह (भागवत)	सांख्यायनाय	सांख्यायनसे
		आह	कहा ।।७।।

सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो
विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ।
जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय
पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ।।८।।

सांख्यायनः पारमहंस्य मुख्यः विवक्षमाणः भगवद् विभूतिः जगाद सः अस्मत् गुरवे अन्विताय पराशराय अथ बृहस्पतेः च ।।८।।

पारमहंस्य मुख्यः	परमहंस प्रमुख	अन्विताय	अपने अनुगत
सांख्यायनः	सांख्यायनजीने	अस्मत् गुरवे	मेरे गुरु
भगवद् विभूतिः	भगवान्‌की विभूतियोंका	पराशराय अथ	पराशरजीको तथा
		बृहस्पतेः च	बृहस्पतिजीको भी
दिवक्षमाणः	वर्णन करनेकी इच्छा होनेपर	जगाद	सुनाया ॥८॥

प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो
मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ।
सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स
श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥९॥

प्रोवाच मह्यं स दयालुः उक्तः मुनिः पुलस्त्येन पुराणं आद्यं सः अहं तव एतत् कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यं अनुव्रताय ॥९॥

स दयालुः	उन दयालु (पराशर)	वत्स	वत्स !
मुनिः	मुनिने	सः अहं	वही मैं
पुलस्त्येन	पुलस्त्यजीके	एतत् ते	यह (पुराण) तुम
उक्तः	कहनेपर	श्रद्धाल वे	श्रद्धालु
मह्यं	मुझसे	नित्यं अनुव्रताय	नित्य अनुगतसे
आद्यं पुराणं	(यह) आदि पुराण	कथयामि	कहता हूँ ॥९॥
प्रोवाच	सुनाया		

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद्
यन्निद्रयामीलितदृङ् न्यमीलयत् ।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः
कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥

उद् आप्लुतं विश्वं इदं तदा आसीत् यत् निद्रया अमीलित दृक् न्यमीलयत् अहीन्द्रतल्पे अधिशयान् एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥

तदा	उस समय	उद् आप्लुतं	जलमें डूबा हुआ
इदं विश्वं	यह विश्व	आसीत्	था

यत्	जिस समय
अहीन्द्रतल्पे	शेष शय्यापर
कृतक्षणः	विश्राम करते
अधिशयान	लेटे हुए
एकः	अकेले
स्वात्मरतौ	आत्मानन्दमें मग्न
निरीहः	इच्छाहीन (भगवान) ने
अमीलित दृक्	नित्य जागरूक ज्ञान दृष्टि
निद्रया	योगनिद्रासे
न्यमीलयत	(नेत्र) बन्द कर लिये ॥१०॥

सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः
कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ।
उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे
यथानलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥११॥

सः अन्तः शरीरे अर्पित भूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्ति उदीरयाणः उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे यथा अनलः दारुणि रुद्ध वीर्यः ॥११॥

यथा दारुणि	जैसे लकड़ीमें
अनलः	अग्नि
रुद्ध वीर्यः	अपने (दाहकादि) पराक्रमको छिपाये रहता है (वैसे ही)
भूत सूक्ष्मः	सब प्राणियोंके सूक्ष्म शरीरोंको
अन्तः शरीरे अर्पित	अपने शरीरके भीतर लेकर
कालात्मिकां	काल स्वरूपिणीं
शक्ति	शक्तिको
उदीरयाणः	जगानेके लिए रखकर
सः तस्मिन्	उन (भगवान) ने उस
सलिले	(कारण) जलमें
स्वे पदे	अपने धाममें
उवास	शयन किया ॥११॥

चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु
स्वपन् स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ।
कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो
लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥१२॥

चतुर्युगानां च सहस्रं अप्सु स्वपन् स्वया उदीरतया स्वशक्त्या कालाख्यया आसादित कर्मतन्त्रः लोकान् अपीतान् ददृशे स्वदेहे ॥१२॥

स्वया	अपनी शक्तिके साथ	**आसादित**	(उन्हें) देने के लिए
चतुर्युगानां		**उदीरतया**	जगाये जानेपर
च सहस्रं	सहस्र चतुर्युगी तक	**अपीतान्**	अनन्त
अप्सु	जलमें	**लोकान्**	लोकोंको
स्वपन्	सोते हुए	**स्वदेहे**	अपने शरीरमें
कालाख्यया	काल नामक	**ददृशे**	देखा ॥१२॥
स्वशक्त्या	अपनी शक्ति द्वारा		
कर्म तन्त्रः	(जीवोंके) कर्म विस्तारको		

तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टे-
रन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ।
गुणेन कालानुगतेन विद्धः
सूष्यंस्तदाभिद्यत नाभिदेशात् ॥१३॥

तस्य अर्थ सूक्ष्म अभिनिष्ट दृष्टेः अन्तः गतः अथः रजसा तनीयान् गुणेन काल अनुगतेन विद्धः सूष्यन् तदा अभिद्यत नाभि देशात् ॥१३॥

तस्य	उन (भगवान) की	**तनीयान्**	क्षुभित होकर
अन्तः गतः	अपने भीतर स्थित	**विद्ध**	प्रभावित हुआ
अर्थ सूक्ष्म	सूक्ष्म शरीरोंपर	**सूष्यन्**	सूखते हुए
अभिनिविष्ट दृष्टेः	दृष्टि लग गयी	**नाभि देशात्**	नाभि स्थानसे
तदा	उस समय	**अर्थः**	वह सूक्ष्म शरीरोंका तत्त्व
काल अनुगतेन	कालानुगत		
रजसा गुणेन	रजोगुणसे	**अभिद्यत**	प्रकट हुआ ॥१३॥

स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्
कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं
विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥१४॥

स पद्मकोशः सहसा उद् अतिष्ठत् कालेन कर्म प्रतिबोधनेन स्वरोचिषा तत् सलिलं विशालं विद्योतयन् अर्क इव आत्मयोनिः ॥१४॥

कर्म प्रतिबोधनेन	कर्म शक्तिको जागृत करनेवाले		हुआ
		स्वरोचिषा	अपनी कान्तिसे
कालेन	कालके द्वारा	अर्क इव	सूर्यके समान
स	वह (नाभिसे उत्पन्न तत्त्व)	तत् सलिलं	
		विशालं	उस विस्तृत जलको
पद्मकोशः	कमलकोशके रूपमें	विद्योतयन्	प्रकाशित कर रहा
सहसा	अचानक		था ॥१४॥
उद् तिष्ठत्	जलके ऊपर आया		
आत्मयोनिः	(वह) स्वयं उत्पन्न		

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः
प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता
स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥१५॥

तत् लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत् सर्व गुण अवभासं तस्मिन् स्वयं वेदमयः विधाता स्वयं भुवं यं स्म वदन्ति सः अभूत् ॥१५॥

तत् लोकपद्मं	उस लोकमय कमलमें	तस्मिन् यं	उस (कमल) से जिन्हें
सर्व गुण	समस्त गुणोंको	स्वयं भुवं	स्वयम्भू
अवभासं	प्रकाशित करनेवाले	वदन्ति स्म	कहते हैं
स उ एव	उन्हीं	सः स्वयं	वे स्वयं
विष्णुः	विष्णु (भगवान्) ने	वेदमयः	वेदमय
प्रावीविशत्	(अन्तर्यामी होकर) प्रवेश किया	विधाता	सृष्टिकर्ता
		अभूत	उत्पन्न हुए ॥१५॥

तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकाया-
मवस्थितो लोकमपश्यमानः ।

परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र-
श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥१६॥

तस्यां स च अम्भोरुह कर्णिकायां अवस्थितः लोकं अपश्यमानः परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्त नेत्रः चत्वरि लेभे अनुदिशं मुखानि ॥१६॥

स तस्यां	(ब्रह्माजी) उस	व्योम्नि	आकाशमें
अम्भोरुह		चत्वारि दिशं	चारों दिशाओंमें
कर्णिकायां	कमलकी कर्णिकापर	परिक्रमन्	घूमते हुए
अवस्थितः	बैठे हुए	अनुदिशं	प्रत्येक दिशामें
लोकं	लोकोंको		(एक एक)
अपश्यमानः	न देखकर	चत्वारि मुखानि	चार मुख
विवृत्त नेत्रः	आँखें फैलाये	लेभे	पालिए ॥१६॥

तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्ण-
जलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ।
उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं
नात्मानमद्धाविददादिदेवः ॥१७॥

तस्मात् युगान्त श्वसन अवघूर्ण जल ऊर्मि चक्रात् सलिलात् विरूढं उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानं अद्धा अविदत् आदिदेवः ॥१७॥

युगान्त श्वसन्	प्रलयकालीन वायुसे	कञ्जमु	कमलपर
अवघूर्ण	घूमते	उपाश्रितः	बैठे हुए
जल उर्मि चक्रात्	जल उर्मिचक्र	आदिदेवः	आदिदेव(ब्रह्माजी)ने
	(घूमते जलके	लोकतत्त्वं	लोकका तत्त्व
	समुद्रीय ववण्डर)		(तथा)
	पर	आत्मानं	अपनेको (भी)
विरूढं	स्थित	अद्धा न	भली प्रकार नहीं
तस्मात्	उस	अविदत्	जाना ॥१७॥

क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ
एतत्कुतो वाब्जमनन्यदप्सु ।

अस्ति ह्यधस्तादिह किञ्चनैत-
दधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥१८॥

क एष यः असा अहं अब्ज पृष्ठ एतत् कुतः वा अब्जं अनन्यत् अप्सु अस्ति हि अधः तात् इह किञ्चन एतत् अधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥१८॥

यः अब्ज पृष्ठ	जो कमलपर (बैठा)	हि इह	क्योंकि इसके
असा अहं	यह मैं (हूँ)	अधस्तात्	नीचे
एष क	यह कौन है ?	किञ्चन एतत्	कुछ इसका
वा	तथा	अधिष्ठितं	आधार
अनन्यत् अप्सु	जहाँ पानीके अति-रिक्त कुछ नहीं है	यत्र नु	वहाँ निश्चय
		सता यत्र	स्थिर वस्तु वहाँ
एतत् अब्जं	यह कमल	भाव्यं अस्ति	लगती है ॥१८॥
कुतः	कहाँसे आ गया		

स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनाल-
नाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ।
नार्वाग्गतस्तत्खरनालनाल-
नाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥१९॥

स इत्थं उद्वीक्ष्य तत् अब्जनाल नाडीभिः अन्तः जलं आविवेश न अर्वाक् गतः तत् खरनाल नालनाभिं विचिन्वन् तत् अविन्दत अजः ॥१९॥

स इत्थं	उन (ब्रह्माजी) ने इस प्रकार	आविवेश	प्रवेश करने लगे
		अर्वागतः	नीचे जाते हुए
उद्वीक्ष्य	विचार करके	तत् खरनाल	
तत्	उस	नालनाभिं	उस कमल नालके मूलको
अब्जनाल			
नाडीभिः	उस कमलनालकी नाड़ी (छिद्र) से	विचिन्वन् तत्	ढूँढ़ते हुए उसे
		अजः न	ब्रह्माजी नहीं
अन्तः जलं	जलके भीतर	अविन्दत	जान सके ॥१९॥

तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं
विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ।
यो देहभाजां भयमीरयाणः
परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥२०॥

तमसि अपारे विदुर आत्मसर्गं विचिन्वतः अभूत् सुमहान् त्रिणेमिः यः देहभाजां भयं ईरयाणः परिक्षिणोति आयु अजस्य हेतिः ॥२०॥

विदुर	विदुर !	**अभूत्**	बीत गया
अपारे	(उस) अपार	**यः देहभाजां**	जो शरीरधारियोंको
तमसि	अन्धकारमें	**भयं ईरयाणः**	भय देता हुआ
आत्मसर्गं	अपनी उत्पत्ति स्थानको	**अजस्य हेतिः**	भगवान्का चक्र
		आयुः	(उनकी) आयुको
विचिन्वतः	ढूँढ़ते हुए	**परिक्षिणोति**	क्षीण करता रहता है ॥२०॥
सुमहान्	बहुत अधिक		
त्रिणेमिः	काल		

ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः
स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ।
शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो
न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥२१॥

ततः निवृत्तः अप्रतिलब्ध कामः स्वधिष्ण्यं आसाद्य पुनः स देवः शनैः जित श्वास निवृत्त चित्तः न्यसीदत् आरूढ समाधि योगः ॥२१॥

ततः	तब	**शनैः**	धीरे-धीरे
अप्रतिलब्ध कामः	विफल मनोरथ होकर	**जित श्वास**	प्राण वायुको जीतकर
निवृत्तः पुनः	लौटकर फिर	**निवृत्त चित्तः**	चित्तको (संकल्पहीन) स्थिर करके
स देवः	उन देवता (ब्रह्माजी) ने	**आरूढ समाधि योगः**	योगकी समाधिमें पहुँचकर
स्वधिष्ण्यं	अपने स्थान (कमलपर)	**न्यषीदत्**	स्थिर हो गये ॥२१॥
आसाद्य	बैठकर		

कालेन सोऽजः पुरुषायुषाभि-
प्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ।
स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभात-
मपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥२२॥

कालेन सः अजः पुरुष आयुषाभिः प्रवृत्त योगेन विरूढबोधः स्वयं तत् अन्तः हृदये अवभातं अपश्यता पश्यत यत् न पूर्वम् ॥२२॥

सः अजः	उन ब्रह्माजीको	तत् अन्तः हृदये	उनके हृदयके भीतर
पुरुष आयुषाभिः	पुरुषकी आयु जितने (सौ वर्ष)	स्वयं	स्वयं
		अवभातं	प्रकाशित होते
कालेन	समय तक	यत् पूर्वं	जिसे पहिले
प्रवृत्त योगेन	योगाभ्यास करनेपर	न अपश्यत	नहीं देखा था (उसे),
विरूढ बोधः	ज्ञान प्राप्त हुआ (तब)	अपश्यत	देखा ॥२२॥

मृणालगौरायतशेषभोग-
पर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ।
फणातपत्रायुतमूर्धरत्न-
द्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥२३॥

मृडाल गौर आयत शेष भोग पर्यङ्क एकं पुरुषं शयानं फण आतपत्र अयुत मूर्धरत्न द्युतिभिः हत ध्वान्त युगान्त तोये ॥२३॥

मृडाल गौर	कमल तन्तुके समान श्वेत	अयुत फण आतपत्र	सहस्र फणोंका छत्र (उन)
आयत	विस्तृत		
शेष भोग	शेषनागके शरीररूपी	मूर्धरत्न	फणोंमें लगी मणियोंके
		द्युभिः	प्रकाशसे
पर्यङ्क	शैय्यापर	युगान्त तोये	प्रलय समुद्रका
एकं पुरुषं	अकेले पुरुषको	ध्वान्त हत	अन्धकार नष्ट हो गया है ॥२३॥
शयानं	लेटे हुए,		

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः
सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ।
रत्नोदधारौषधिसौमनस्य-
वनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥२४॥

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरित उत्पल अद्रेः सन्ध्या अभ्रनि इव उरु रुक्म मूर्ध्नः रत्नः दधार औषधि सौमनस्य वनस्रजः वेणु भुज अङ्घ्रिप अङ्घ्रेः ॥२४॥

हरित उत्पल	मरकत मणिके	दधार	धारण किये हैं
अद्रेः	पर्वतकी	औषधि	औषधियों
प्रेक्षां	शोभाको		(तुलसी एवं)
क्षिपन्तं	(अपने श्यामांगकी शोभासे) लज्जित करते	सौमनस्य	पुष्पोंकी
		वन्य स्रजः	वनमाला है
		देणु	बाँसोके समान
सन्ध्या	सन्ध्याकालीन		(लम्बी)
अभ्रनि इव	घटाके समान	भुजा	भुजायें हैं,
उरु रुक्म	बहुमूल्य स्वर्णका	अंघ्रिप	वृक्षोंके समान
रत्नः	रत्नोंसे जड़ा	अङ्घ्रेः	चरण हैं ॥२४॥
मूर्ध्नः	(मुकुट) सिरपर		

आयामतो विस्तरतः स्वमान-
देहेन लोकत्रयसंग्रहेण ।
विचित्रदिव्याभरणांशुकानां
कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम् ॥२५॥

आयामतः विस्तरतः स्वमान देहेन लोकत्रय संग्रहेण विचित्र दिव्य आभरणं अंशुकानां कृतश्रिया उपासित वेष देहम् ॥२५॥

स्वमान	अपने परिमाणसे	संग्रहेण	(अपनेमें) समाहित
आयामतः	सात वित्तेका		किये हैं,
विस्तरतः	विस्तारवाला	विचित्र	अद्भुत
लोकत्रय	तीनों लोकोंको	दिव्य	दिव्य

आभरण	आभूषण	उपासित वेष	उपासना योग्य वेशवाला
अंशुकानां	वस्त्रोंसे	देहं	(वह) शरीर है ॥२५॥
कृत श्रिया	सुशोभित		

पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गै-
रभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम् ।
प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दु-
मयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम् ॥२६॥

पुंसां स्वकामाय विविक्त मार्गैः अभ्यर्चतां कामदुघा अङ्घ्रि पद्मं प्रदर्शयन्तं कृपया नख इन्दु मयूख भिन्न अंगुलि चारु पत्रम् ॥२६॥

स्वकामाय	अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिए	कामदुघा	कामधेनुके समान
बिविक्त मार्गैः	विभिन्न मार्गों (साधनों) से	नख इन्दु	नख चन्द्रकी
अभ्यर्चतां	अचर्ना करनेवाले	मयूख भिन्न	किरणोंसे पृथक-पृथक
पुंसां	पुरुषोंको	अंगुलि	अंगुलियों रूपी
कृपया	कृपापूर्वक	चारुपत्रं	पत्रोंसे सुशोभित
		अंघ्रि पद्मं	चरण-कमलोंको
		प्रदर्शयन्तं	दिखलाते हुए ॥२६॥

विशेष—

भगवान् ऐसे लेटे हैं मानो अपने फैले चरणोंको दिखला रहे हैं कि उपासकोंको इनका आश्रय लेना चाहिए।

मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन
परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ।
शोणायितेनाधरबिम्बभासा
प्रत्यर्हयन्त सुनसेन सुभ्रवा ॥२७॥

मुखेन लोक आर्ति हरस्मितेन परिस्फुरत् कुण्डल मण्डितेन शोणायितेन अधरबिम्ब भासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्रवा ॥२७॥

लोक आर्ति	लोगोंकी विपत्ति	शोणयितेन	अरुणाभ हुए
हरस्मितेन	हारी मुस्कानसे युक्त	सुनसेन	सुन्दर नासिकासे
परिस्फुरत्	चमकते हुए	सुभ्रा	सुन्दर भौंहोंसे युक्त
कुण्डल मण्डितेन	कुण्डलोंसे भूषित	मुखेन	मुखसे
अधर बिम्बभासा	बिम्बा फल जैसे ओष्ठोंकी कान्तिसे	प्रत्यर्हयन्तं	अभिनन्दन करते हुए ॥२७॥

कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा
स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे ।
हारेण चानन्तधनेन वत्स
श्रीवत्सवक्षःस्थलवल्लभेन ॥२८॥

कदम्ब किञ्जल्क पिशङ्ग वाससा स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे हारेण च अनन्त धनेन वत्स श्रीवत्स वक्षस्थल वल्लभेन ॥२८॥

वत्स	वत्स !	हारेण च	हारसे तथा
कदम्ब किञ्जल्क	कदम्ब पुष्प परागके समान	वक्षस्थल	वक्षस्थलपर
		वल्लभेन	लक्ष्मी स्वरूप
पिशङ्ग वाससा	पीले वस्त्रसे	श्रीवत्स	श्रीवत्स चिह्नसे
नितम्बे	नितम्बपर	स्वलंकृतं	भली प्रकार अलंकृत हैं ॥२८॥
मेखलया	करधनीसे		
अनन्त धनेन	अमूल्य		

परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेक-
पर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ।
अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्र-
महीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥२९॥

परार्ध्य केयूर मणि प्रवेक पर्यस्त दोर्दण्ड सहस्र शाखं अव्यक्त मूलं भुवन अङ्घ्रिपेन्द्रं अहीन्द्र भोगैः अधिवीत वल्शम् ॥२९॥

भुवन	संसारमें	सहस्र शाखं	(उस वृक्षकी) सहस्रों शाखायें हैं
अव्यक्त मूलं	अव्यक्त मूल*		
अङ्घ्रिपेन्द्रं	वृक्षराज चन्दनके समान हैं	अहीन्द्र भोगैः	शेष नागके भोगसे
		अधिवीत	घिरे हुए
परार्ध्य	महामूल्य	वल्शं	कन्धोंवाले (जैसे चन्दनकी डालियों– स्कन्धोंमें सर्प लिपटे हों) ॥२८॥
मणिप्रवेक	मणि जटित		
केयूर	बाजूबन्दसे(शोभित)		
पर्यस्त	विशाल		
दोःदण्ड	धुजायें (मानो)		

चराचरौको भगवन्महीध्र-
महीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ।
किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्ग-
माविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥३०॥

चर अचर ओकः भगवन् महीध्रं अहीन्द्र बन्धुं सलिल उपगूढं किरीट साहस्र हिरण्य शृङ्गं आविर्भवत् कौस्तुभ रत्न गर्भम् ॥३०॥

अहीन्द्र बन्धुं	नागराज शेषके बन्धु (वे)	किरीट साहस्र	(शेषके फणोंपर) सहस्र मुकुट
सलिल उपगूढं	जलमें छिपे हुए	हिरण्य शृङ्ग	स्वर्ण शिखरों जैसे हैं
भगवन्	भगवान् (नारायण)	गर्भ	गर्भ (खादान) से
महीध्र	पर्वत (के समान लगते) हैं	आविर्भवत्	प्रकट हुआ
		रत्न	रत्न
चर अचर ओकः	चर-अचरके निवास	कौस्तुभ	कौस्तुभ मणि है ॥३०॥

निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया
स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ।

---

* चन्दन पृथ्वीमें अपनी जड़से रस लेने वाला वृक्ष नहीं है । उसकी जड़ें दूसरे वृक्षकी जड़से रस लेती हैं ।

सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः
परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥३१॥

निवीतं आम्नाय मधुव्रत श्रिया स्वकीर्ति मय्या वनमालया हरिं सूर्य इन्दु वायु अग्नि अगमं त्रिधामभिः परिक्रमत् प्राधनिकैः दुरासदम् ॥३१॥

आम्नाय	वेद (रूपी)	अग्नि	अग्निसे
मधुव्रत	भ्रमरोंकी	अगमं	अगम्य
श्रिया	शोभायुक्त	त्रिधामभिः	तीनों लोकोंमें
स्वकीर्ति मय्या	अपनी कीर्तिमयी	परिक्रमत	घूमनेवाले
वनमालया	वनमाला	प्राधनिकैः	(अपने) प्रधान आयुध चक्रके लिए भी
निवीतं	धारण किये		
हरिं	भगवान् श्रीहरिको देखा	दुरासदं	दुरासद हैं (वे भी उन तक पहुँच नहीं पाते ।) ॥३१॥
सूर्य	सूर्य		
इन्दु	चन्द्र		
वायु	वायु		

तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोज-
मात्मानःमम्भः श्वसनं वियच्च ।
ददर्श देवो जगतो विधाता
नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥३२॥

तर्हि एव तत् नाभिसरः सरोजं आत्मानं अम्भः श्वसनं वियत् च ददर्श देवः जगतः विधाता न अतः परं लोक विसर्ग दृष्टिः ॥३२॥

लोक विसर्ग दृष्टिः	लोकोंकी सृष्टि की इच्छावाले	आत्मानं	(बैठे) अपनेको
		अम्भः	जलको
जगतः विधाता	जगत्कर्ता	श्वसनं च	वायुको तथा
देवः	ब्रह्माने	वियत्	आकाशको
तर्हि एव तत्	उसी समय उन (नारायण) के	ददर्श	देखा
		अतः परं	इसके अतिरिक्त
नाभिसरः	नाभि सरोवरसे	न	(कुछ भी) नहीं
सरोज	(निकले) कमलपर		(देखा) ॥३२॥

स कर्मबीजं रजसोपरक्तः
प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ।
अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्य-
मव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥३३॥

स कर्मबीजं रजसा उपरक्तः प्रजा सिसृक्षन् इयत एव दृष्ट्वा अस्तौत् विसर्ग अभिमुखः तं ईड्यं अव्यक्त वर्त्मनि अभिवेशित आत्मा ॥३३॥

स	वे (ब्रह्माजी)	**दृष्ट्वा**	देखकर
रजसा	रजोगुणसे	**विसर्ग**	सृष्टिको
उपरक्तः	व्याप्त	**अभिमुखः**	प्रवृत्त होकर
कर्मबीजं	कर्म (प्रारब्ध) बीजवाली	**अव्यक्त वर्त्म**	अचिन्त्य गति (भगवान्) में
प्रजा	प्रजाकी	**आत्मा**	चित्त
सिसृक्षन्	सृष्टि करना चाहते थे (अतः)	**अभिवेशित**	लगाकर
इयत एव	इतना ही (जल, वायु, आकाश)	**तं ईड्यं अस्तौत्**	उन पूजनीयकी स्तुति करने लगे ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच-

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुविभासि ॥१॥

ज्ञातः असि मे अद्य सुचिरात् ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतः गतिः इति अवद्यं न अन्यः त्वत् अस्ति भगवन् अपि तत् न शुद्धं माया गुण व्यति करात् यत् उरुः विभासि ॥१॥

सुचिरात्	बहुत समय पश्चात्	भगवन्	भगवन्
अद्य मे	आज मैंने	न अस्ति	नहीं है,
ज्ञातः असि	(आपको) जाना है	अपि तत्	है भी तो वह
ननु	निश्चय	शुद्धं न	शुद्ध नहीं है,
देहभाजां इति	शरीर धारियोंका यह	यत्	क्योंकि
		माया गुण	मायाके गुणोंके
अवद्यं	पाप है (कि)	व्यति करात्	व्यतिक्रमसे (आप ही)
भगवतः	आपका		
गतिः न	स्वरूप नहीं	उरुः	बहुत रूप
ज्ञायते	जानते हैं,	विभासि	प्रतीत होते हैं ॥१॥
त्वत्	आपसे		
अन्यः	भिन्न (कुछ)		

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन
शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्राय ।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं
यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥२॥

रूपं यत् एतत् अवबोध रस उदयेन शश्वत् निवृत्त तमसः सत् अनुग्रहाय आदौ गृहीतं अवतार शतैक बीजं यत् नाभि पद्म भवनात् अहं आविरासम् ॥२॥

यत्	जिसकी
नाभि पद्म	नाभि कमल रूप
भवनात् अहं	भवनसे मैं
आविरासं	प्रकट हुआ
अवबोध रस	ज्ञान शक्तिके
उदयेन	जागृत रहनेसे
शश्वत्	नित्य
निवृत्त तमसः	तमोगुणको दूर किये (आप)
सत् अनुग्रहाय	सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिए
शतैक	सैकड़ों
अवतार बीजं	अवतारोंका मूल
यत् एतत्	जो यह
रूपं	रूप
आदौ	(आपने) पहिले पहिले
गृहीतं	धारण किया है ॥२॥

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप-
मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्
भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

न अतः परं परम यत् भवतः स्वरूपं आनन्दमात्रं अविकल्पं अविद्धवर्चः पश्यामि विश्वसृजं एकं अविश्वं आत्मन् भूत इन्द्रिय आत्मकं अदः न उप आश्रितः अस्मि ॥३॥

यत् भवतः	जो आपका
आनन्द मात्रं	आनन्द मात्र
अविकल्पं	निर्विकल्प
अविद्ध वर्चः	अखण्ड तेजोमय
परम स्वरूपं	परम स्वरूप है (उसे)
अतः परं न	इससे भिन्न नहीं
पश्यामि	देखता हूँ,
विश्वसृजं	विश्वस्रष्टा होनेपर भी
एकं	अद्वितीय
अविश्वं	विश्वातीत
आत्मन्	आपके
भूत इन्द्रिय आत्मकं	भूत, इन्द्रियोंके अधिष्ठान
अदः	इस (रूप) की
त	इसलिए
उप आश्रितः अस्मि	परम आश्रय लेता हूँ ॥३॥

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं
योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥४॥

तत् वा इदं भुवन मङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्मनः दर्शितं त उपासकानां तस्मै नमः भगवते अनुविधेम तुभ्यं यः अनादृतः नरक भाक्भिः असत् प्रसङ्गैः ॥४॥

तत् वा	वह ही	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार
इदं	यह	**अनुविधेम**	बार-बार करता हूँ ।
भुवन मङ्गल	भुवन मंगल	**असत् प्रसङ्गैः**	विषयासक्त
त उपासकानां	आपके उपासक	**नरक भाग्भिः**	नरकके अधिकारियों द्वारा
नः मङ्गलाय	मेरे मंगलके लिए	**यः**	जिस (आप) का
ध्याने	ध्यानमें	**अनादृतः**	आदर नहीं होता ॥४॥
दर्शितं स्म	दर्शन दिया है		
तस्मै	उस		
भगवते	ऐश्वर्यमय		

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं
जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां
नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥५॥

ये तु त्वदीय चरण अम्बुज कोश गन्धं जिघ्रन्ति कर्ण विवरैः श्रुति वातनीतं भक्त्या गृहीत चरणः परया च तेषां न अपैषि नाथ हृदय अम्बुरुहात् स्व पुंसाम् ॥५॥

ये तु	जो तो	**श्रुति वात**	श्रुति रूप वायुसे
त्वदीय	आपके	**नीतं**	लायी हुई
चरण अम्बुजकोश	चरण-कमल कोशकी	**गन्धं**	सुगन्धको
		कर्णविवरैः	कर्ण छिद्रोंसे

जिघ्रन्ति च	सूँघते (सुनते) हैं तथा
परया	परम
भक्त्या	भक्तिसे
चरणः	(आपके) चरण
गृहीत	पकड़ रखे हैं
नाथ	स्वामी !
तेषां स्वपुंसां	उन अपने भक्तोंके
हृदय अम्बुरुहात	हृदय कमलसे
न अपैषि	(आप) दूर नहीं होते ॥५॥

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्नतेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

तावत् भयं द्रविण गेह सुहृत् निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवः विपुलश्च लोभः तावत् मम एतत् असत् अवग्रह आर्तिमूलं यावत् न ते अङ्घ्रि अभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

द्रविण	धन
गेह	घर
सुहृत्	सम्बन्धियोंके
निमित्तं	कारण
तावत्	तब तक
भयं	भय
शोकः	शोक
स्पृहा	लालसा
परिभवः च	पराजय तथा
विपुलः लोभः	बहुत लोभ है
तावत्	तब तक
आर्तिमूलं	दुःखोंकी जड़
मम इति	मेरा है—यह
असत्	झूठा
अवग्रह	दुराग्रह है
यावत् ते	जब तक आपके
अभयं	अभय स्वरूप
अङ्घ्रि	चरणोंका
लोकः	लोग
न प्रवृणीत	आश्रय नहीं लेते ॥६॥

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्ग-
त्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना
लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥

दैवेन ते हतधियः भवतः प्रसङ्गात् सर्व अशुभ उपशमनात् विमुख इन्द्रिया ये कुर्वन्ति कामसुख लेशलवाय दीना लोभ अभिभूत मनसः अकुशलानि शश्वत् ॥७॥

ते दैवेन	वे दैव द्वारा	**काम सुख**	इच्छित सुखके
हतधियः	नष्ट बुद्धि हो गये हैं	**लेशलवाय**	अत्यन्त क्षुद्र भागके लिए
ये सर्व अशुभ	जो सब अमंगलोंके	**दीना**	दीन बने
उपशमनात्	नष्ट कर देनेवाले	**लोभ अभिभूत**	लोभाक्रान्त
भवतः	आपके	**मनसः**	मनसे
प्रसङ्ग	प्रसंग (श्रवण-कीर्तनादि) से	**शश्वत**	निरन्तर
विमुखा	विमुख होकर	**अकुशलानि**	दुष्कर्म
इन्द्रिया	इन्द्रियोंके	**कुर्वन्ति**	करते रहते हैं ॥७॥

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः
शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण
सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥

क्षुत् तृत् त्रिधातुभिः इमा मुहुः अर्द्यमानाः शीत उष्ण वात वर्षैः इतरेतरात् च काम अग्निना अच्युत रुषा च सुर्दुभरेण सम्पश्यतः मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥

उरुक्रम	अनन्त विक्रम	**इतर इतरेत्**	परस्पर एक दूसरेसे
अच्युत	अच्युत !	**काम अग्निना**	कामनारूपी अग्निसे
इमा क्षुत्	इस भूख	**सुदुर्भरेण रुषा**	दुःसह क्रोधसे
तृट्	प्यास	**मुहुः**	बार बार
त्रिधातुभिः	वात, पित्त, कफसे	**अर्द्यमानाः**	रौंदे जाते (लोगोंको)
शीत	सर्दी	**सम्पश्यतः**	देखकर
उष्ण	गर्मी	**मे मन**	मेरा मन
वात	आँधी	**सीदते**	कष्ट पाता है ॥८॥
वर्षैः च	वर्षासे तथा		

यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थ-
मायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत
व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥८॥

यावत् पृथकत्वं इदं आत्मन इन्द्रिय अर्थ मायाबलं भगवतः जन ईश पश्येत् तावत् न संसृतिः असौ प्रति संक्रमेत व्यर्था अपि दुःख निवहं वहती क्रियार्था ॥८॥

ईश	स्वामिन् !	तावत्	तब तक
यावत्	जब तक	असौ संसृति	यह आवागमन
जन	मनुष्य	न प्रति संक्रमेत	निवृत्त नहीं होता
इन्द्रिय	इन्द्रिय और	व्यर्था अपि	व्यर्थ (मिथ्या) होनेपर भी
अर्थ	विषय रूप		
भगवतः	भगवान् (आप) की	क्रिया अर्था	कर्मफल भोग रूप
माया बलं	मायाके प्रभावसे	दुःख निवहं	दुःखोंमें
इदं आत्मन्	इस आत्मामें	वहती	डालता रहता
पृथकत्वं	पार्थक्य (भेद)		है ॥८॥
पश्येत्	देखता है		

अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना
नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव
युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥१०॥

अह्नि आपृतार्त करणा निशि निःशयाना नाना मनोरथ धिया क्षण भग्न निद्राः दैव आहत अर्थ रचना ऋषयः अपि देव युष्मत् प्रसङ्ग विमुखा इस संसरन्ति ॥१०॥

देव	देव !	ऋषयः अपि	ऋषि लोग भी
युष्मत्	आपके	अह्नि	दिनमें
प्रसङ्ग	कथा प्रसङ्गसे	आपृत	(अनेक कार्योंमें) व्यस्त
विमुखा	विमुख		

आर्त करणा	विक्षिप्त चित्त (रहते हैं)	**निद्रा**	निद्रा (ले पाते हैं)
निशि	रात्रिमें	**अर्थ रचना**	प्रयोजन सिद्धिका उद्योग
निःशयाना	अचेत सोते रहते हैं	**दैवहत**	प्रारब्धवश नष्ट होता है
नाना मनोरथ धिया	(उस समय भी) अनेक मनोरथोंमें बुद्धि लगी होनेसे	**इह**	(इस प्रकार) इसी संसारमें
क्षण भग्न	क्षण क्षणमें टूटती	**संसरन्ति**	भटकते रहते हैं ॥१०॥

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥११॥

त्वं भावयोग परिभावित हृत् सरोजे आस्से श्रुत ईक्षित पथः ननु नाथं पुंसां यत् यत् धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत् तत् वपुः प्रणयसे सत् अनुग्रहाय ॥११॥

नाथ	स्वामी	**त यत् यत् धिया**	वे जिस जिस भावसे
ननु	निश्चय	**विभावयन्ति**	(आपका) चिन्तन करते हैं
त्वं पुंसां	आप पुरुषों (भक्तों) के	**उरुगाय**	उत्तम श्लोक !
भावयोग	भक्तियोगसे	**सत्**	(उन) सत्पुरुषों (भक्तों) पर
परिभावित	शुद्ध हुए	**अनुग्राय**	कृपा करके
हृत् सरोजे	हृदय कमलमें	**तत् तत् वपुः**	(आप) वह वह रूप
श्रुत	श्रवणके द्वारा	**प्रणयसे**	धारण कर लेते हैं ॥१२॥
ईक्षित	दिखलाये		
पथः	मार्गसे		
आस्से	आते हैं।		

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै-
रा राधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।

यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको
नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥१२॥

न अति प्रसीदति तथा उपचित उपचारैः आराधितः सुरगणैः हृदि बद्ध कामैः यत् सर्वभूत दयया सत् लभ्यया एकः नाना जनेषु अवहितः सुहृत् अन्तरात्मा ॥१२॥

एकः	अद्वितीय
नाना जनेषु	भिन्न भिन्न प्राणियोंमें
अवहितः	स्थित
सुहृत	(उनके) हितैषी (तथा)
अन्तरात्मा	अन्तरात्मा (आप)
हृदि	हृदयमें
बद्ध कामः	प्रबल कामना लेकर
सुरगणैः	देवताओं द्वारा
उपचित उपचारैः	ढेरों सामग्रियोंसे
आराधितः	पूजित होनेपर
तथा	वैसे
न अति	बहुत नहीं
प्रसीदति	प्रसन्न होते
यत्	जैसे
सत् लभ्यया	सत्पुरुषोंको प्राप्त होनेवाली
सर्वभूत	सब प्राणियोंपर
दयया	दयाके द्वारा (प्रसन्न होते हैं) ॥१२॥

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यै-
र्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो
धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्भ्रियते न यत्र ॥१३॥

पुंसां अतः बिविध कर्णभिः अध्वर आद्यैः दानेन च उग्र तपसा व्रतचर्यया च आराधनं भगवतः तव सत् क्रिया अर्थः धर्मः अर्पितः कर्हिचित् भ्रियते न यत्र ॥१३॥

अतः विविध कर्मभिः	अतः नाना प्रकारके कर्मोंसे
अध्वर आद्यैः	यज्ञादिसे
दानेन च	दानसे तथा
उग्र तपसा च	घोर तपस्यासे एवं
व्रतचर्यया	व्रतोंके पालनसे
धर्मः	(होनेवाले) धर्म (पुण्य) का

भगवतः तव	भगवन् आपको	**यत्र कर्हिचित्**	जहाँ कभी भी (वह धर्म)
अर्पितः	समर्पित	**ध्रियते न**	नष्ट नहीं होता (अक्षय हो जाता है) ॥१३॥
सत् क्रिया	श्रेष्ठ कर्मोंकी		
अर्थः	प्रयोजन (सफलता) है		

शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेद-
मोहाय बोधिषणाय नमः परस्मै ।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीला-
रासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥१४॥

शश्वत् स्वरूप महसा एव निपीत भेद मोहाय बोध धिषणाय नमः परस्मै विश्व उद्भव स्थिति लयेषु निमित्त लीला रासाय ते नम इदं चकृमे ईश्वराय ॥१४॥

शश्वत	निरन्तर	**विश्व**	विश्वकी
स्वरूप महसा एव	अपने स्वरूपके प्रकाशसे ही	**उद्भव स्थिति लयेषु**	सृष्टि स्थिति प्रलयके
भेद मोहाय	भेद भ्रमको	**निमित्त**	लिये
निपीत	नष्ट करते हैं,	**लीला रासाय**	लीला करनेवाले
बोध धिषणाय	ज्ञानके अधिष्ठान	**ईश्वराय**	(आप) सर्वेश्वरको
परस्मै	परम पुरुष	**इदं नम**	यह नमस्कार
नमः	(आपको) नमस्कार	**चकृमे**	करता हूँ ॥१४॥

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥१५॥

यस्य अवतार गुण कर्म विडम्बनानि नामानि ये असु विगमे विवशा गृणन्ति ते न एक जन्म शमलं सहसा एव हित्वा संयन्ति अपावृतं ऋतं तं अजं प्रपद्ये ॥१५॥

यस्य	जिसके
अवतार	अवतारोंके
गुण-कर्म	गुणों कर्मोंको
विडम्बनानि	सूचित करनेवाले
नामानि	नामों (गोविन्द, वासुदेवादि) को
ये असुविगमे	जो प्राण निकलते (मरते) समय
विवशा	विवश होकर भी
गृणन्ति ते	उच्चारण करते हैं वे
सहसा एव	अचानक अप्रभास) ही
न एक जन्म	अनेक जन्मोंके
शमलं	पापोंको
हित्वा	छोड़कर
अपावृत	(मायादि) आवरणोंसे रहित
ऋतं	(परम) सत्य (परमात्मा) को
संयान्ति	प्राप्त करते हैं
तं अजं	उस अजन्मा (आपकी)
प्रपद्ये	शरण लेता हूँ ॥१५॥

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च
स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोह-
स्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥१६॥

यः वा अहं च गिरिशः च विभुः स्वयं च स्थिति उद्भव प्रलय हेतव आत्ममूलं भित्त्वा त्रिपात् ववृध एक उरु प्ररोहः तस्मै नमः भगवते भुवन द्रुमाय ॥१६॥

यः वा	जो तो
एक	अद्वितीय (होनेपर भी)
आत्ममूलं	अपने ही मूलको
भित्त्वा	फोड़कर (प्रकृतिको स्वीकार करके)
अहं च	मेरे रूपमें
गिरिशः च	शङ्करजीके रूपमें
स्वयं विभुः च	स्वयं (अपने) विष्णु रूपसे
स्थिति उद्भव प्रलय हेतव	स्थिति सृष्टि पालन के कारण
त्रिपाद् ववृध	तीन तनोंके रूपमें बढ़े (फिर)
उरु प्ररोह	(मनु प्रजापति आदि) बहुत शाखाओंवाले होगये
तस्मै भगवते	उन भगवान्
भुवन द्रुमाय	विश्व वृक्ष रूपको
नमः	नमस्कार ॥१६॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्त बलवानिह जीविताशां
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥

लोकः विकर्म निरतः कुशले प्रमत्तः कर्मणि अयं त्वत् उदिते भवत् अर्चने स्वे यः तावत् अस्य बलवान् इह जीवित आशां सद्यः छिनत्ति अनिमिषाय नमः अस्तु तस्मै ॥१७॥

त्वत्	आपके (कहे)	**तावत्**	(अतः) ऐसी दशामें
भवत्	आपकी		
अर्चने	अर्चनाको	**यः अस्य**	जो इनकी
स्वे	उनके अपने	**इह**	इसी लोकमें
उदिते	कल्याणके लिए (बतलाया है; किन्तु)	**जीवित आशां**	जीवित रहनेकी आशाको
अयं लोकः	यह लोक	**सद्यः**	तत्काल
विकर्म निरतः	विपरीत (निषिद्ध) कर्मोंमें लगे हैं	**छिनत्ति**	काट देते हैं
		तस्मै	उन
कुशले	(अपने) कल्याण (की ओरसे)	**अनिमिषाय**	कालस्वरूप (आपको)
प्रमत्तः	प्रमादी (असावधान) हैं	**नमः अस्तु**	नमस्कार है ॥१७॥

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्य-
मध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।
तेपे तपो बहुसवोऽवरुरत्समान-
स्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥

यस्मात् विभेमि अहं अपि द्विपरार्ध धिष्ण्यं अध्यासितः सकल लोक नमस्कृतं यत् तेपे तपः बहुसवः अवरुरुत्समानः तस्मै नमः भगवते अधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥

द्विपरार्ध	दोपरार्ध तक
धिष्ण्यं	रहनेवाले
सकल लोक	सब लोकोंसे
नमस्कृतं	नमस्कृत
यत्	जो (सत्यलोक है) उसका
अध्यासितः	अधिष्ठाता (होनेपर भी)
अहं अपि	मैं भी
यस्मात्	जिससे
विभेमि	डरता हूँ
अवरुरुत्समानः	उस (काल) से बचनेके लिए
बहु सवः	बहुत समय तक
तपः तेपे	(मैंने) तपस्या की
तस्मै अधिमखाय	उस अधियज्ञ स्वरूप
भगवते	भगवान्
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार ॥१८॥

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनि-
ष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेह-
स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

तिर्यङ् मनुष्य विबुधादिषु जीव योनिषु आत्म इच्छया आत्मकृत सेतु परीप्सया यः रेमे निरस्त रतिः अपि अवरुद्ध देहः तस्मै नमः भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

आत्म इच्छया	स्वेच्छासे
आत्मकृत सेतु	अपनी बनायी मर्यादाकी
परीप्सया यः	रक्षाके लिए जो
निरस्त रतिः	विषय सुख इच्छा रहित
अपि	होनेपर भी
तिर्यङ्	पशु पक्षी आदि
मनुष्य	मनुष्य
विबुधादिषु	देवता आदि
जीव योनिषु	जीव योनियोंमें
अवरुद्ध देहः	देह (अवतार) धारण करके
रेमे	विहार करते हैं
तस्मै भगवते	उन भगवान्
पुरुषोत्तमाय	पुरुषोत्तमको
नमः	नमस्कार ॥१९॥

योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या
निद्रामुवाह जठरी कृतलोकयात्रः ।

अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां
भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥२०॥

यः अविद्यया अनुपहतः अपि दशार्धवृत्त्या निद्रां उवाह जठरीकृत लोकयात्रः अन्तः जले अहि कशिपुः स्पर्श अनुकूलां भीम उर्ममालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥१९॥

यः	जो
दशार्ध वृत्त्या	पाँच वृत्ति (अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश)
अविद्यया	(वाली) अविद्यासे
अनुपहतः अपि	असंस्पृष्ट होते हुए भी
लोकयात्रः	लोकों तथा उनके व्यवहारको
जठरीकृत	अपने उदरमें लेकर
अन्तःजले	जलके भीतर
भीम उर्ममालिनि	भयंकर तरंगोंवाले प्रलय समुद्रमें
स्पर्श अनुकूलां	स्पर्शके अनुकूल
अहि कशिपुः	शेष शैय्यापर
जनस्य	(पूर्व कल्पके) जीवोंको
सुखं विवृण्वन्	(निद्रा) सुख देनेके लिए
निद्रां उवाह	शयन कर रहे हैं ॥२०॥

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य
लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग-
निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥२१॥

यत् नाभि पद्म भवनात् अहं आसं ईड्य लोकत्रय उपकरणः यत् अनुग्रहेण तस्मै नमः त उदरस्थ भवाय योगनिद्रा अवसान विकसत् नलिन ईक्षणाय ॥२१॥

ईड्य	पूजनीय प्रभो !
यत्	जिस (आपकी)
नाभि पद्म	नाभि कमल रूप
भवनात्	भवनसे
अहं आसं	मैं उत्पन्न हुआ (और)
यत् अनुग्रहेण	जिनकी कृपासे
लोकत्रय	तीनों लोकोंका
उपकरणः	उपकार करने (सृजन) में लगा हूँ
त	उन
भवाय उदर	विश्वको पेटमें लिए

तस्मै	उन	विकसन्	खिलते हुए
योगनिद्रा	योगनिद्राकी	नलिन ईक्षणाय	कमल नेत्रको
अवसान	समाप्तिपर	नमस्त	नमस्कार ॥२१॥

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा
सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन ।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं
स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥

सः अयं समस्त जगतां सुहृद एक आत्मा सत्त्वेन यत् मृडयते भगवान् भगेन तेन एव मे दृशं अनुस्पृशतात् यथा अहं स्रक्ष्यामि पूर्ववत् इदं प्रणत प्रिय असौ ॥२२॥

सः अयं	वह यह (आप)	तेन एव	उसी ही
समस्त जगतां	सम्पूर्ण जगत्के	दृशं मे	दृष्टिसे मुझे
एक सुहृद	एक मात्र हितैषी (और)	अनुस्पृशतां	स्पर्श कीजिए (वही अनुग्रह दृष्टि मुझपर डालिए)
आत्मा	आत्मा हैं		
असौ प्रणत प्रिय	यह शरणागतपर स्नेह करनेवाले	यथा अहं	जिससे मैं
		इदं	इस (विश्व) को
भगवान्	भगवन्	पूर्ववत्	पहिले (कल्प) के समान
यत् सत्त्वेन	जिस ज्ञान (तथा)		
भगेन	ऐश्वर्यसे	स्रक्ष्यामि	निर्मित कर सकूँ ॥२२॥
मृडयते	(विश्वकी) रक्षा करते हैं		

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या
यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो
युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

एष प्रपन्न वरदः रमया आत्मशक्त्या यत् यत् करिष्यति गृहीत गुण अवतारः तस्मिन् स्वविक्रम इदं सृजतः अपि चेतः युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

एष	यह (आप)	**तस्मिन्**	उन
प्रपन्न	शरणागतको	**स्वविक्रम**	आपके पराक्रमोंमें
वरदः	वरदान देनेवाले हैं	**इदं**	इस (जगत) की
आत्म शक्त्या	अपनी शक्ति	**सृजतः अपि**	सृष्टि करते हुए भी
रमया	लक्ष्मीजीके साथ	**चेतः**	(मेरा) चित्त
गृहीत गुण	गुणोंको स्वीकार करके	**युञ्जीत**	लगाये रहिए
		यथा	जिससे
अवतारः	अवतार लेकर	**कर्म शमलं च**	(सृष्टि) कर्मके मल (अभिमान) को
यत् यत्	जो जो		
करिष्यति	करेंगे	**विजह्याम्**	त्याग सकूं ॥२३॥

नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो
विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।
रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे
मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥

नाभि ह्रदात् इह सतः अम्भसि यस्य पुंसः विज्ञान शक्ति अहं आसं अनन्त शक्तेः रूपं विचित्रं इदं अस्य विवृण्वतः मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥

इह अम्भसि सतः	यहाँ (प्रलय समुद्रके) जलके रहते	**इदं**	इस (जगत) के
		विचित्रं रूपं	विचित्र रूपोंको
अनन्त शक्तेः	अनन्त शक्ति	**विवृण्वतः**	बनाते समय
यस्य पुंसः	जिन परम पुरुषको	**अस्य मे**	मेरे मुखसे
नाभिह्रदात्	नाभि सरोवरसे (उत्पन्न)	**निगमस्य**	वेदवाणीका
		गिरां विसर्गः	उच्चारण होना
अहं	मैं (आप की ही)	**मा रीरिष्ट**	बन्द न हो जाय ॥२४॥
विज्ञान शक्ति आसं	विज्ञान शक्ति हूँ		

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्ध-
प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं
माध्व्या गिरापनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥

सः असाः अदभ्र करुणः भगवान् विबृद्ध प्रेमस्मितेन नयन अम्बुरुहं विजृम्भन् उत्थाय विश्वविजयाय च नः विषादं माध्व्या गिरा अपनयतात् पुरुषः पुराणः ॥२५॥

सः असाः	वह ये	**उत्थाय**	उठकर
अदभ्र करुणः	अपार करुणामय	**विश्व विजयाय**	विश्वके उद्भवके लिए
भगवान्	भगवान्	**पुरुषः पुराणः**	पुराण पुरुष
विवृद्ध प्रेम	बढ़े हुए स्नेहसे (पूर्ण)	**माध्व्या गिरा**	(अपनी) मीठी वाणीसे
स्मितेन	मुसुकानसे	**नः विषादं**	मेरे विषादको
नयन अम्बुरुहं	नेत्र पद्मको	**अपनयतात्**	दूर कीजिए ॥२५॥
विजृम्भन	खोलकर		

मैत्रेय उवाच-

स्वसम्भवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ।
यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥२६॥

स्व सम्भवं निशाम्य एवं तपः विद्या समाधिभिः यावन् मनः वचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥२६॥

स्व सम्भवं	अपने उत्पत्ति स्थान (भगवान्) को	**यावत्**	जितनी
एवं तपः	इस प्रकार तप	**मनः वचः**	मन तथा वाणीकी (शक्ति थी)
विद्या	विद्या	**स्तुत्वा**	स्तुति करके
समाधिभिः	समाधिके द्वारा	**स खिन्नवत्**	वे खिन्नसे होकर
निशाम्य	देखकर	**विरराम**	चुप हो गये ॥२६॥

अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः ।
विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥२७॥

अथ अभिप्रेतं अन्वीक्ष्य ब्रह्मणः मधुसूदनः विषण्ण चेतसं तेन कल्प व्यतिकर अम्भसा ॥२७॥

अथ	तदनन्तर	**चेतसा**	चित्तवाला
मधुसूदनः	भगवान मधुसूदनने	**अन्वीक्ष्य**	देखकर (और)
कल्प व्यतिकर	कल्पान्तके	**ब्रह्मणः**	(उन) ब्रह्माजीका
अम्भसा	जलमें	**अभिप्रेतं**	अभीष्ट
तेन	उनको		(जानकर) ॥२७॥
विषण्ण	विषादग्रस्त		

लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः ।
तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥२८॥

लोकसंस्थान विज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः तं आह अगाधया वाचा कश्मलं शमयन् इव ॥१८॥

लोक संस्थान	लोक रचना	**तं कश्मलं**	उन (ब्रह्माजी) के
विज्ञान	की जानकारीके		खेदको
	विषयमें	**शमयन् इव**	शान्त करते हुएसे
परिखिद्यतः	खेद करते हुए	**अगाधया वाचा**	गम्भीर वाणीसे
आत्मनः	चित्तवाले	**आह**	(भगवान)
			बोले ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच–

मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह ।
तन्मयाऽऽपादितं ह्यग्रेयन्मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥

मा वेदगर्भ गाः तन्द्रीं सर्ग उद्यम आवह तत् मया आपादितं हि अग्रे यत् मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥

वेदगर्भ	वेदगर्भ !	**मा गाः**	मत प्राप्त हो
तन्द्रीं	शिथिलता	**सर्ग**	सृष्टिके लिए

उद्यम आवह	उद्योग करो,	तत् मया	वह मेरे द्वारा
यत् भवान्	जो आप	अग्रे हि	पहिले ही
मां प्रार्थयते	मुझसे प्रार्थना कर रहे हैं	आपादितं	किया जा चुका है ॥२९॥

भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ।
ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मन् लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥३०॥

भूयः त्वं तप आतिष्ठ विद्यां च एव मत् आश्रयां ताभ्यां अन्तः हृदि ब्रह्मन् लोकान् द्रक्ष्यसि अपावृतान् ॥३०॥

ब्रह्मन् त्वं	ब्रह्माजी तुम	आतिष्ठ	स्थित हो जाओ
भूयः	फिरसे	ताभ्यां	उन दोनोंसे
तप च	तप तथा	अन्तःहृदि	हृदयके भीतर
मदाश्रयां	मेरे आश्रयवाले (भागवत)	अपावृतान्	स्पष्टतया
		लोकान्	लोकोंको
विद्या एव	ज्ञानपर भी	द्रक्ष्यसि	देखोगे ॥३०॥

तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ।
द्रष्टासि मां ततं ब्रह्मन्मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥३१॥

तत् आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः द्रष्टासि मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकान् त्वं आत्मनः ॥३१॥

ब्रह्मन् तत	ब्रह्माजी ! तब	मां ततं	मुझे व्याप्त (तथा)
भक्तियुक्तः	भक्तियुक्त	मयि त्वं	मुझमें तुम
समाहितः	एकाग्र होकर	आत्मनः	अपनेको तथा
आत्मनि च	अपने तथा	लोकान्	लोकोंको
लोके	लोकमें	द्रष्टासि	देखोगे ॥३१॥

यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् ।
प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥३२॥

यदा तु सर्वभूतेषु दारुषु अग्निं इव स्थितं प्रति चक्षीत् मां लोकः जह्यात् तर्हि एव कश्मलम् ॥३२॥

यदा तु	जिस समय तो	लोकः	लोकोंको
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंमें	प्रति चक्षीत	देखता है
दारुषु	काष्ठमें	तर्हि एव	उसी समय ही
अग्निं इव	अग्निकी भाँति	कश्मलं	(अज्ञानरूप) मल
स्थितं मां	स्थित मुझमें	जह्यात्	त्याग देता है ॥३२॥

यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः ।
स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन् स्वाराज्यमृच्छति ॥३३॥

यदा रहितं आत्मानं भूत इन्द्रिय गुण आशयैः स्वरूपेण मया उपेतं पश्यन् स्वाराज्यं ऋच्छति ॥३३॥

यदा आत्मानं	जब अपनेको	मया उपेतं	मुझसे संयुक्त
भूत, इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रियों	पश्यन्	देखता है (तब)
गुण, आशयैः	गुणों तथा अन्तःकरणसे	स्वाराज्यं	मोक्षपद
रहित स्वरूपेण	रहित स्वरूपतः	ऋच्छति	पा लेता है ॥३३॥

नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः ।
नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥३४॥

नाना कर्म वितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः न आत्मा अवसीदति अस्मिन् ते वर्षीयान् मदनुग्रहः ॥३४॥

नाना कर्म	अनेक प्रकारके कर्मोंके	आत्मा	चित्त
		न अवसीदति	अवसादग्रस्त नहीं होता (यह)
वितानेन	विस्तारके अनुसार		
बह्वीः	बहुत-सी	मत्	मेरा
प्रजा	प्रजाकी	वर्षीयान्	अतिशय
सिसृक्षतः	सृष्टि करनेके	अनुग्रहः	अनुग्रह है ॥३४॥
अस्मिन् ते	इस (कार्य) में तुम्हारा		

ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयास्त्वां रजोगुणः ।
यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥३५॥

ऋषिं आद्यं न बध्नाति पापीयान् त्वां रजोगुणः यत् मनः मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतः अपि ते ॥३५॥

आद्यं ऋषिं	प्रथम ऋषि	**संसृजतः अपि**	उत्पत्ति करते हुए भी
त्वां पापीयान	तुमको पापमय	**ते मनः**	तुम्हारा मन
रजो गुणः	रजोगुण	**मयि**	मुझमें
न बध्नाति	नहीं बाँधेगा	**निर्बद्धं**	दृढ़तासे लगा है ॥३५॥
यत् प्रजाः	क्योंकि प्रजाकी		

ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ।
यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतेन्द्रियगुणात्मभिः ॥३६॥

ज्ञातः अहं भवतातु अद्य दुर्विज्ञेयः अपि देहिनां यत् मां मन्यसे अयुक्तं भूत इन्द्रिय गुण आत्मभिः ॥३६॥

भवतातु	तुम्हारे द्वारा तो	**यत् मां**	क्योंकि मुझे
अहं अद्य	मैं आज	**भूत**	पंचभूत
ज्ञातः	जान लिया गया हूँ	**इन्द्रिय गुण**	इन्द्रिय, गुण
अपि	यद्यपि	**आत्मभिः**	अन्तःकरणसे
देहिनां	शरीरधारियोंके लिए	**अयुक्तं**	रहित
दुर्विज्ञेयः	मुझे जान लेना बहुत कठिन है	**मन्यसे**	मानते हो ॥३६॥

तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः ।
नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥३७॥

तुभ्यं मद् विचिकित्सा यां आत्मा मे दर्शितः अबहिः नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥३७॥

सलिले	जलमें	**मूलं**	जड़को
नालेन	कमल नालके आधारसे	**विचिन्वतः**	ढूँढ़ते हुए
		मद्	अपने (मूलाधार)को
पुष्करस्य	कमलकी	**विचिकित्सायाँ**	जाननेकी इच्छावाले

तुभ्यं	तुमको	अबहिः	बाहर नहीं
मे आत्मा	मैंने अपना स्वरूप		(हृदयमें ही)
		दर्शितः	दिखलाया ॥३७॥

यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् ।
यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥३८॥

यत् चकर्थ अङ्ग मत् स्तोत्रं मत् कथा अभ्युदय अङ्कितं यत् वा तपसि ते निष्ठा स एष मत् अनुग्रहः ॥३८॥

अङ्ग	प्रिय ब्रह्मा	वा यत् ते	अथवा जो तुम्हारी
यत् मत्	जो मेरी	तपसि	तपस्यामें
कथा	कथाओंके	निष्ठा	निष्ठा है
अभ्युदय	वैभवसे	स एष	वह यह
अङ्कितं	युक्त	मत्	मेरा
मत् स्तोत्रं	मेरी स्तुति	अनुग्रहः	अनुग्रह है ॥३८॥
चकर्थ	की है		

प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ।
यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं मानुवर्णयन् ॥३९॥

प्रीतः अहं अस्तु भद्रं ते लोकानां विजय इच्छया यत् अस्तौषीः गुणामयं निर्गुणं माँ अनुवर्णयन् ॥३९॥

अहं प्रीतः	मैं प्रसन्न हुआ	यत् गुणमयं	क्योंकि गुणमय होनेपर
ते भद्रं अस्तु	तुम्हारा कल्याण हो	मां निर्गुणं	मेरा निर्गुण रूपमें
लोकानां	लोकोंकी	अनुवर्णयन्	वर्णन किया
विजय इच्छया	सृष्टि करनेकी इच्छासे		है ॥३९॥

य एतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ।
तस्याशु सम्प्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥४०॥

यः एतेन पुमान् नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् तस्य आशु सम्प्रसीदयं सर्वकामवर ईश्वरः ॥४०॥

यः पुमान्	जो पुरुष	सर्वकाम	सब कामनाओंकी
एतेन	इस	वर	(पूर्तिका) वरदान
स्तोत्रेण मां	स्तोत्रसे मेरी		(देनेमें)
स्तुत्त्वा	स्तुति करके	ईश्वरः	समर्थ (मैं)
भजेत्	आराधना करता है	सम्प्रसीदेयं	पूर्णतः प्रसन्न हो
तस्य	उसपर		जाऊँगा ॥४०॥
आशु	शीघ्र		

पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना ।
राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्ववित्मतम् ॥४१॥

पूर्तेन तपसा यज्ञैः दानैः योग समाधिना राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत् प्रीतिः तत्त्ववित् मतम् ॥४१॥

तत्त्ववित्	तत्त्ववेत्ताओंका	दानैः	दानसे
मतं	मत है कि	योग समाधिना	योगकी समाधिसे
पूर्तेन	पूर्त (समाजोपयोगी	पुंसां राद्धं	पुरुषका सम्पूर्ण
	निर्माण) से	निःश्रेयसं	परम कल्याण
तपसा	तपस्यासे	मत् प्रीतिः	मेरी प्रसन्नता ही
यज्ञैः	यज्ञोंसे		है ॥४१॥

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि ।
अतो मयि रतिं कुर्यादेहादिर्यत्कृते प्रियः ॥४२॥

अहं आत्मा आत्मनां धातः प्रेष्ठः सत् प्रेयसां अपि अतः मयि रतिं कुर्यात् देहादेः यत् कृते प्रियः ॥४२॥

धातः	ब्रह्माजी	अतः देहादेः	अतः शरीर आदि
अहं आत्मनां	मैं आत्माओंका भी	यत् कृते	जिसके लिए
आत्मा	आत्मा हूँ,	प्रियः	प्रिय हैं (उस)
प्रेयसां अपि	प्रियोंमें भी	मयि	मुझसे
प्रेष्ठः सत्	(सबसे) प्रिय हूँ।	रतिं कुर्यात्	प्रीति करे ॥४२॥

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥४३॥

सर्वं वेदमयेन इदं आत्मना आत्मा आत्मयोनिना प्रजाः सृज यथा पूर्वं याः च मयि अनुशेरते ॥४३॥

सर्वं वेदमयेन	सब वेदमय	**मयि अनुशेरते**	मुझमें सो रही है
इदं आत्मना	इस अपने रूपसे	**आत्मयोनिना**	अपनेको कारण बनाकर
यथा पूर्वं	जैसे पहिले थी	**आत्मा**	स्वयं
प्रजाः	प्रजाको	**सृज**	निर्मित करो ॥४३॥
याः च	जो कि (इस समय)		

मैत्रेय उवाच–

तस्मा एवं जगत्स्रस्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ।
व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥४४॥

तस्मा एवं जगत् स्रष्टे प्रधान पुरुष ईश्वरः व्यज्य इदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभः तिरोदधे ॥४४॥

प्रधान	प्रकृति (और)	**एवं इदं**	इस प्रकार इस (जगत) को
पुरुष ईश्वरः	पुरुषके स्वामी	**व्यज्य**	अभिव्यक्ति करवाकर
कञ्जनाभः	भगवान पद्मनाभ	**स्वेन रूपेण**	अपने (साकार) रूपसे
तस्मा	उन	**तिरोदधे**	तिरोहित हो गये ॥४४॥
जगत् स्रष्टे	विश्व स्रष्टा (ब्रह्माजी) को		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ।

अथ दशमोऽध्यायः

विदुर उवाच-

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥१॥

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोक पितामहः प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीः मानसीः विभुः ॥१॥

भगवति	भगवान्के	**दैहिकीः**	(अपने) देहसे
अन्तर्हिते	अन्तर्हित हो जानेपर		(और)
विभुः	व्यापक	**मानसीः**	मनसे
लोक पितामहः	लोक पितामह	**कतिधा**	कितने प्रकारकी
ब्रह्मा	ब्रह्माजीने	**प्रजाः ससर्ज**	प्रजाकी सृष्टिकी ॥१॥

ये च मे भगवन् पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ।
तान् वद स्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥२॥

ये च मे भगवन् पृष्टाः त्वयि अर्था बहुवित्तम तान् वदस्व आनुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्व संशयम् ॥२॥

बहुवित्तम	बहुज्ञ श्रेष्ठ (मैत्रेयजी)	**तान्**	उनको
भगवन्	भगवन् !	**आनुपूर्व्येण**	क्रमशः
ये च मे	और जो मैंने	**वद नः**	बतलाइये, मेरे
त्वयि	आपसे	**सर्व संशयान्**	सब सन्देहोंको
अर्थाः पृष्टाः	प्रयोजनीय बातें पूछी हैं	**छिन्धि**	काट दीजिए ॥२॥

सूत उवाच-

एवं सञ्चोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः ।
प्रीतः प्रत्याह तान् प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥३॥

एवं संचोदितः तेन क्षत्त्रा कौषारवः मुनिः प्रीतः प्रत्याह तान् प्रश्नान् हृदिस्थान् अथ भार्गव ॥३॥

भार्गव	शौनकजी !	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
एवं	इस प्रकार	**तान् हृदिस्थान्**	उन हृदयस्थ
तेन क्षत्त्रा	उन विदुरजी द्वारा	**प्रश्नान्**	प्रश्नोंका
संचोदितः	प्रेरित	**अथ प्रत्याह**	तब उत्तर देने
मुनिः कौषारवः	मुनि मैत्रेयजी		लगे ॥३॥

मैत्रेय उवाच-

विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥४॥

विरिञ्चः अपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः आत्मनि आत्मानं आवेश्य यत् आह भगवान् अजः ॥४॥

अजः भगवान्	अजन्मा भगवान्ने	**आत्मनि**	अपने आत्मामें
यत् आह	जैसा बतलाया था,	**आत्मानं आवेश्य**	चित्त लगाकर
तथा दिव्यं	वैसा दिव्य	**तपः**	तप
	(देवताओंके)	**विरिञ्चः अपि**	ब्रह्माजीने भी
शतं वर्ष	सौ वर्ष तक	**चक्रे**	किया ॥४॥

तद्विलोक्याब्जसम्भूतो वायुना यदधिष्ठितः ।
पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥५॥

तत् विलोक्य अब्ज सम्भूतः वायुना यत् अधिष्ठितः पद्मं अम्भः च तत् कालकृत वीर्येण कम्पितम् ॥५॥

अब्ज सम्भूतः	कमलोद्भव (ब्रह्मा) ने	तत् पद्मं	उस कमल
		अम्भः च	और जलको भी
कालकृत	प्रलयकालीन	कम्पितं	काँपता
वीर्येण वायुना	प्रबल वायुसे	विलोक्य	देखकर ॥५॥
यत् अधिष्ठितं	जिसपर बैठे थे		

तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ।
विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद् वायुं सहाम्भसा ॥६॥

तपसा हि एधमानेन विद्यया च आत्मसंस्थया विवृद्ध विज्ञान बलः न्यपात् वायुं सह अम्भसा ॥६॥

हि तपसा च	क्योंकि तपस्यासे तथा	विज्ञान बलः	विज्ञान शक्ति
		विवृद्ध	बढ़ गयी थी
आत्म संस्थया	आत्म स्थिति	अम्भसा सह वायुं	जलके साथ वायुको
विद्यया	विद्या (आत्मज्ञान)से	न्यपात्	पी लिया ॥६॥

तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ।
अनेन लोकान् प्राग्लीनान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ॥७॥

तत् विलोक्य वियत् व्यापि पुष्करं यत् अधिष्ठितं अनेन लोकान् प्राक्लीन कल्पिता अस्मि इति चिन्तयत् ॥७॥

तत् वियत् व्यापी	उस आकाशव्यापी	अनेन	इससे
पुष्करं	कमलको	प्राक्लीनान्	पहिलेके लीन हुए
यत् अधिष्ठितं	जिसपर बैठे थे	लोकान्	लोकोंकी
वियत् व्यापी	आकाशमें व्यापक	कल्पिता अस्मि	रचना करूँ
विलोक्य	देखकर	इति अचिन्तयत्	ऐसा सोचा ॥७॥

पद्मकोशं तदाऽऽविश्य भगवत्कर्मचोदितः ।
एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥८॥

पद्मकोशं तदा आविश्य भगवत् कर्म चोदितः एकं व्यभांक्षीत् उरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥८॥

भगवत्	भगवानके द्वारा	चोदितः	प्रेरित (ब्रह्मा) ने
कर्म	(सृष्टि) कर्मके लिए	तदा पद्मकोशं	तब(उस)कमलकोशमें

आविश्य	प्रवेश करके	भाव्यं	हो सकता था
एकं	उस एकको (जो)	त्रिधा	तीनों भेदों
द्विसप्तधा	चौदह रूपोंमें था		(भूः, भुवः, स्वः) में
उरुधा	बहुत रूपोंमें	व्यभांक्षीत्	विभक्त किया ॥८॥

एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ।
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥९॥

एतावान् जीव लोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः धर्मस्य हि अनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठि असौ ॥९॥

जीव लोकस्य	जीव लोगोंकी	धर्मस्य हि	धर्माचरणका तो
एतावान्	इतनी ही	विपाकः	परिणाम
संस्थाभेदः	भोग स्थानका भेद	असौ परमेष्ठी	ये ब्रह्माजी (इनके
समाहृतः	(शास्त्रोंमें) वर्णित है		लोकमहः जनः, तपः,
अनिमित्तस्य	निष्काम		सत्य) हैं ॥९॥

विदुर उवाच–

यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।
कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो ॥१०॥

यत् आत्थ बहुरूपस्य हरेः अद्भुत कर्मणः काल आख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथावर्णय नः प्रभो ॥१०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	यथा लक्षणं	(उसका) जैसा
अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा		लक्षण हो
बहुरूपस्य	अनन्त रूप	प्रभो	प्रभो !
हरेः	श्रीहरिकी	नः वर्णय	मुझसे वर्णन
कालाख्यं	काल नामक		कीजिए ॥१०॥
यत् आत्थ	जिस शक्तिका आपने वर्णन किया		

मैत्रेय उवाच–

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयासृजत् ॥११॥

गुण व्यतिकर आकारः निर्विशेषः प्रतिष्ठितः पुरुषः तत् उपादानं आत्मानं लीलया सृजत ॥११॥

गुण	(त्रिगुणमय) विषयोंका	**अप्रतिष्ठितः**	अस्थिर (अनादि अनन्त) है
व्यतिकर	विकारी (रूपा-न्तरित) होना ही	**पुरुषः**	परम पुरुषने
आकारः	(कालका) स्वरूप है (वह)	**लीलया**	लीलासे
निर्विशेषः	निर्विशेष और	**तत् उपादानं**	उस (काल) का उपादान (कारण)
		आत्मानं	अपनेको ही
		असृजत्	बनाया ॥११॥

विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥१२॥

विश्वं वै ब्रह्म तन्मात्रं संस्थितं विष्णु मायया ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेन अव्यक्त मूर्तिना ॥१२॥

विष्णु मायया	भगवान् विष्णुकी मायासे	**ईश्वरेण**	सर्व समर्थ
		अव्यक्त मूर्तिना	अव्यक्त स्वरूप
विश्वं वै	विश्व तो	**कालेन**	कालके द्वारा
ब्रह्म तन्मात्रं	ब्रह्मसे एकीभूत होकर	**परिच्छिन्नं**	पृथक किया गया ॥१२॥
संस्थितं	स्थित था		

यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् ।
सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥१३॥

यथा इदानीं तथा अग्रे च पश्चात् अपि एतत् इदृशं सर्गः नवविधः तस्य प्राकृतः वैकृतः तु यः ॥१३॥

एतत्	यह (जगत)	**तस्य**	उस (जगत) की
यथा इदानीं	जैसा इस समय है	**सर्गः**	सृष्टि
तथा अग्रे च	वैसा ही पहिले (कल्पोंमें) भी था	**नवविधः**	नौ प्रकारकी
		तु यः	तथा जो (दसवीं)
पश्चात् अपि	पीछे (आगामी कल्पोंमें) भी	**प्राकृतः वैकृतः**	प्राकृत वैकृत है ॥१३॥
ईदृशं	ऐसा हो रहेगा,		

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ।
आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥१४॥

काल द्रव्य गुणैः अस्य त्रिविधः प्रति संक्रमः आद्यः तु महतः सर्गः गुण वैषम्य आत्मनः ॥१४॥

अस्य	इस जगतका	**आद्यः तु**	(दस प्रकारकी सृष्टिमें) पहिली तो
प्रति संक्रमः	प्रत्येक संक्रमण (स्थिति)*	**महतः सर्गः**	महत्तत्त्वकी सृष्टि है
काल द्रव्य गुणैः	समय, पदार्थ तथा गुण	**गुण वैषम्यं**	(प्रकृतिके तीनों) गुणोंमें विषमता हो जाना
त्रिविधः	(इस) तीन प्रकारकी होती है ।	**आत्मनः**	इसका स्वरूप है ॥१४॥

द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ।
भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥

द्वितीयः तु अहमः यत्र द्रव्य ज्ञान क्रिया उदयः भूतसर्ग तृतीयः तु तन्मात्रः द्रव्य शक्तिमान् ॥१५॥

द्वितीयः तु	दूसरी तो	**यत्र**	जिसमें
अहमः	अहंकार (की सृष्टि है)	**द्रव्य, ज्ञान, क्रिया**	द्रव्य,ज्ञान, क्रियाका
		उदयः	प्राकट्य होता है ।

---

* विश्वकी प्रत्येक स्थिति १. काल—किसी समय होती है २. किसी पदार्थकी होती है ३. उसके कुछ गुण-दोष होते हैं ।

तृतीयः तु	तीसरी (सृष्टि) तो	तन्मात्रः	तन्मात्रात्मक
द्रव्य शक्तिमान्	द्रव्योंकी शक्तिवाली	भूतसर्गः	भूत सृष्टि है ॥१५॥

चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ।
वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥१६॥

चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गः यः तु ज्ञान क्रियात्मकः वैकारिकः देव सर्गः पञ्चमः यत् मयं मनः ॥१६॥

चतुर्थ सर्गः	चौथी सृष्टि	वैकारिकः	वैकारिक (सात्त्विक अहंकार) से
ऐन्द्रियः	इन्द्रियोंकी है	देव सर्गः	देवताओंकी सृष्टि है
यः तु	जो कि	यत् मयं मनः	मन भी इसी (वैकारिक) मय है ॥१६॥
ज्ञान क्रियात्मकः	ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक हैं		

षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ।
षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥१७॥

षष्ठस्तु तमसः सर्गः यः तु अबुद्धि कृतः प्रभो षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतान् अपि मे शृणु ॥१७॥

प्रभो	प्रभो ! (विदुर)	इमे षट्	ये छ
षष्ठस्तु	छठवीं तो	प्राकृताः सर्गा	प्राकृत सृष्टियाँ हैं
तमसः सर्गः	अविद्याकी सृष्टि है*	वैकृतान् अपि	वैकृत (सृष्टियों) को भी
यः तु	जो कि		
अबुद्धि कृतः	अज्ञानसे उत्पन्न है,	मे शृणु	मुझसे सुनो ॥१७॥

रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ।
सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥१८॥

रजः भाजः भगवतः लीला इयं हरिं एधसः सप्तमः मुख्य सर्गः तु षट्विधः तस्थुषां च यः ॥१८॥

---

* इसमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महामोह ये पांच गाँठें हैं । इस भावकी एक पंक्ति कुछ पाठोमें और है ।

एधसः हरिं	दुःख हारी	**सप्तमः**	सातवीं
भगवतः	भगवानकी	**मुख्य सर्गः तु**	(वैकृतमें) प्रमुख तो
रजः भाजः	रजोगुण स्वीकार किये (ब्रह्मारूप) की	**यः तस्थुषां च**	जो स्थावरोंकी (सृष्टि) हैं
इयं लीला	यह लीला है	**षड् विधः**	छ प्रकारकी है ॥१८॥

वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ।
उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥१९॥

वनस्पति ओषधि लता त्वक्सारा वीरुधः द्रुमाः उत्स्रोतसः तमः प्राया अन्तः स्पर्शा विशेषिणः ॥ ९॥*

वनस्पति	बिना पुष्प आये फलनेवाले (वट, पीपल आदि)	**द्रुमाः**	वृक्ष जो पुष्प आकर फलते हैं ।
ओषधि	फल पकनेपर जो सूख जाती हैं (अन्नादि)	**उत्स्रोतसः**	इनमें रस-संचार (नीचेसे) ऊपर होता है
लता	किसीके सहारे फैलनेवाली	**प्राया तमः**	प्रायः ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं होती
त्वक् सारा	जिनमें भीतर लकड़ी नहीं होती (बांस आदि)	**अन्तः स्पर्शा**	भीतर स्पर्शका अनुभव करते हैं
वीरुधः	क्षुप् जो न पृथ्वीपर फैलते, न बहुत ऊपर जाते (तुलसी आदि)	**विशेषिणः**	(प्रत्येक) विशेष गुण वाला होता है ॥१९॥

तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधो मतः ।
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥२०॥

तिरश्चां अष्टमः सर्गः सः अष्टाविंशत् विधः मतः अविदः भूरि तमसः घ्राणज्ञा हृदि अवेदिनः ॥२०॥

---

* सब तृण (घासें) त्वक्सार वर्गमें हैं ।

अष्टमः सर्गः	आठवीं सृष्टि	**अविदः**	(ये) अज्ञानी हैं
तिरश्चां	तिर्यक् (पशु-पक्षी) की है	**भूरि तमसः**	बहुत तमोगुणवाले
		घ्राणज्ञा	सूंघकर जाननेवाले*
सः अष्टाविंशत्	वह अट्ठाइस	**हृदि**	इनके हृदयमें
विधः	प्रकारकी	**अवेदिनः**	विचारका उदय नहीं
मतः	मानी जाती है		होता ॥२०॥

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ।
द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥२१॥

गौः अजः महिषः कृष्णः सूकरः गवयः रुरुः द्विशफाः पशवः च इमे अविः उष्ट्रः च सत्तमः । २१॥

सत्तमः	श्रेष्ठ सज्जन (विदुर)	**रुरुः च**	चित्तल-मृग तथा
गौः	गायें,	**अविः**	भेड़,
अजः	बकरियां,	**उष्ट्रः**	ऊँट
महिषः	भैंस,	**इमे**	ये
कृष्णः	काला-हिरन,	**पशवः च**	पशु तो
सूकरः	सुअर,	**द्विशफाः**	दो भागोंमें फटे
गवयः	नीलगाय,		खुरके हैं ॥२१॥

खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा ।
एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान् पशून् ॥२२॥

खरः अश्वः अश्वतरः गौरः शरभः चमरी तथा एते च एकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्च नखान् पशून् ॥२२॥

क्षत्तः	विदुर !	**चमरी**	चँवरी (याक)
खरः	गधा,	**एते च**	इतने तो
अश्वः	घोड़ा,	**एकशफाः**	एक खुरवाले हैं
अश्वतरः	खच्चर,	**पञ्च नखान्**	पाँच नखवाले
गौरः	गौर (अरना सांड),	**पशून् शृणु**	पशुओंको सुनो ॥२२
शरभः तथा	साँभर और		

* इस वर्गमें केवल पशु हैं। पक्षियोंको सूँघकर ज्ञान नहीं होता। प्रायः सब पक्षी अत्यन्त क्षीण गन्धग्राही हैं।

श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ।
सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥२३॥

श्वा सृगालः वृकः व्याघ्रः मार्जारः शश शल्लकौ सिंहः कपिः गजः कूर्मः गोधा च मकरादयः ॥२३॥

श्वा	कुत्ता,	**सिंहः**	सिंह,
सृगालः	सियार,	**कपिः**	बन्दर,
वृकः	भेड़िया,	**गजः**	हाथी,
व्याघ्रः	बाघ,	**कूर्मः**	कछुआ,
मार्जारः	बिल्ली,	**गोधा च**	गोह तथा
शश	खरगोश,	**मकरादयः**	मगर आदि ॥२३॥
शल्लकौ	साही,		

कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ।
हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥२४॥

कङ्क गृध्र वट श्येन भास भल्लक बर्हिणः हंस सारस चक्राह्व काक उलूकादयः खगाः ॥२४॥

कङ्क	काँक(चीलकी जाति),	**हंस**	हंस,
गृध्र	गीध,	**सारस**	सारस,
बट	बटेर,	**चक्राह्व**	चकवा,
श्येन	बाज,	**काक**	कौआ,
भास	टिटिहरी,	**उलूकादयः**	उल्लू आदि
भल्लक	कठफोड़वा,	**खगाः**	पक्षी हैं ॥२४॥*
बर्हिणः	मयूर,		

अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ।
रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥

अर्वाक् स्रोतः तु नवमः क्षत्तः एकविधः नृणां रजः अधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुख मानिनः ॥२५॥

---

* पशु-पक्षियोंमें एक एक वर्ग गिनाया गया है। सबके नाम देना सम्भव नहीं है।

क्षत्तः	विदुर !
अर्वाक् स्रोतः तु	अधः स्रोत तो
नवमः	नवम सृष्टि
एक विधः	एक ही प्रकारकी
नृणां	मनुष्योंकी है
रजः अधिकाः	(ये) रजोगुण प्रधान
कर्मपरा	कर्म परायण
दुःखे च	दुःख (दुःखरूप विषयों) में
सुखमानिनः	सुख माननेवाले होते हैं ॥२५॥

वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ।
वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥२६॥

वैकृताः त्रय एव एते देवसर्गः च सत्तम वैकारिकः तु यः प्रोक्तः कौमारः तु उभयात्मकः ॥२६॥

सत्तम	सज्जनोत्तम !
एते त्रय एव	ये तीनों ही (स्थावर, तिर्यक् तथा मनुष्य)
वैकृताः	वैकारिक सृष्टि हैं
च देवसर्गः	तथा देवताओंकी सृष्टि
यः वैकारिकः तु	जिसे वैकारिक (प्राकृत) सृष्टि (पहिले) कहा गया है, वह भी ।
कौमारः तु	सनकादि कुमारोंकी सृष्टि तो
उभयात्मकः	प्राकृत-वैकृत दोनों प्रकारकी है ॥२६॥

देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥

देवसर्गः च अष्टविधः विबुधाः पितरः असुराः गन्धर्वा अप्सरसः सिद्धा यक्ष रक्षांसि चारणाः ॥२७॥

देवसर्ग च	देवताओंकी सृष्टि भी
अष्टविधः	आठ प्रकारकी है
विबुधाः	देवता,
पितरः	पितर,
असुराः	असुर,
गन्धर्वा	गंधर्व,
अप्सरसः	अप्सराएँ,
सिद्धा	सिद्धगण,
यक्ष	यक्ष और
रक्षांसि	राक्षस*
चारणाः	चारण २७॥

* यक्ष-राक्षस एक ही वर्ग है ।

भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः ।
दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥२८॥

भूत प्रेत पिशाचाः च विद्याध्राः किन्नर आदयः दश एते विदुर आख्याताः सर्गाः ते विश्वसृक् कृताः ॥२८॥

विदुर	विदुर !
भूत	भूत,
प्रेत	प्रेत,
पिशाचाः च	पिशाच तथा
विद्याध्राः	विद्याधर-
किन्नर आदयः	किन्नर आदि
एते विश्वसृक्	ये ब्रह्माजीकी
कृता	बनायी
दश सर्गाः	दस प्रकारकी सृष्टि
ते आख्याताः	तुमसे (मैंने) सुनायी ।२८।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च ।
एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ।
सृजत्यमोघसङ्कल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥२९॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान् मन्वन्तराणि च एवं रजः प्लुतः स्रष्टा कल्पादिषु आत्म भूः हरिः सृजति अमोघसङ्कल्पः आत्मा एव आत्मानं आत्मना ॥२९॥

अतः परं	इसके बाद
मन्वन्तराणि	मन्वन्तरोंकी,
वंशान् च	वंशावलियोंका भी
प्रवक्ष्यामि	वर्णन करूँगा ।
एवं	इस प्रकार
कल्पादिषु	कल्पके प्रारम्भमें
स्रष्टा	सृष्टि करनेकी इच्छासे
अमोघ सङ्कल्पः	अमोघ संकल्प
हरिः	श्रीहरि ही
रजः प्लुतः	रजोगुण स्वीकार करके
आत्म भूः	ब्रह्माके रूपमें
आत्मा एव	अपनेको ही
आत्मना	अपने द्वारा
आत्मानं	अपने ही (अनेक) रूपोंमें
सृजति	बनाते हैं ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।

अथ एकादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥१॥

चरमः सत् विशेषाणां अनेकः असंयुतः सदा परमाणुः स विज्ञेयः नृणां ऐक्य भ्रमः यतः ॥१॥

विशेषाणां	(पृथ्वी आदि) विशेष पदार्थोंकी	**असंयुत**	पृथक पृथक है
चरमः	जो अन्तिम	**स परमाणुः**	उसे परमाणु
सत्	सत्ता है (वह)	**विज्ञेयः**	जानना चाहिए
सदा	सदा	**यतः नृणां**	जिससे मनुष्योंको
अनेकः	अनेक	**ऐक्य**	एकताका
		भ्रमः	भ्रम रहता है ॥१॥

विशेष—

पदार्थ हो या शरीर वह असंख्य परमाणुओंका समुदाय है और वे परमाणु परस्पर सटते या मिलते नहीं हैं। मेलेकी भीड़के समान परमाणुओं की एक भीड़में ही पदार्थ, देह आदिका भ्रम होता है। परमाणु सब पृथक-पृथक हैं, स्वतन्त्र हैं और उनकी गति भी स्वतन्त्र है। उनके प्रवाहमें ही पिण्डका भ्रम हो रहा है।

सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ।
कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥२॥

सत एव पदार्थस्य स्वरूप अवस्थितस्य यत् कैवल्यं परम महान् अविशेषः निरन्तरः ॥२॥

सत एव	सत्ता मात्र	**परम महान्**	परम महान् है,
पदार्थस्य	पदार्थका (परमाणुकी)	**कैवल्यं**	वह केवल है
यत्	जो	**निरन्तरः**	उसमें कोई (देश, काल, पदार्थका) भेद नहीं है।
स्वरूप अवस्थितस्य	अपने स्वरूपमें स्थिति है (जिसका परमाणु सूक्ष्मतम अंश है—उस तत्त्वका नाम)	**अविशेषः**	वह निर्विशेष है ॥२॥

एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ।
संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥३॥

एवं कालः अपि अनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम संस्थान भुक्त्या भगवान् अव्यक्तः व्यक्त भुक् विभुः ॥३॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ !	**व्यक्त संस्थान**	व्यक्त पदार्थोंके
एव	इसी प्रकार	**भुक्त्या**	भोगसे
सौक्ष्म्ये च	सूक्ष्मरूप तथा	**कालः अपि**	कालका भी
स्थौल्ये	स्थूलरूप	**अनुमितः**	अनुमान किया जाता है ॥३॥
अव्यक्तः	अव्यक्त		
भगवान्	भगवान्का		

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥४॥

स कालः परमाणुः वै यः भुङ्क्ते परमाणुतां सतः अविशेष भुक् यः तु स कालः परमः महान् ॥४॥

स कालः	वह काल	**यः परमाणुतां**	जो परमाणुके स्वरूपका
परमाणुः वै	परमाणु ही (कहा जाता) है	**भुंक्ते**	भोग करता है।*

* यहाँ कुछ दर्शनों और विज्ञानका (वर्तमान) में मतभेद है न्यायादि परमाणुवादी-दर्शन तथ वर्तमान विज्ञान परमाणु तथा जीव णु (अन्तिम

सतः	सत्ता मात्र	स कालः	वह काल
अविशेष	निर्विशेषका	परमः महान्	परम महान् (काल)
यः तु	जो तो		है ॥४॥
भुक्	भोग करता है		

अणुद्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ।
जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥५॥

अणुः द्वौ परमाणुः स्यात् त्रसरेणुः त्रयः स्मृतः जाल अर्करश्मि अवगतः खं एव अनुपतन् अगात् ॥५॥

द्वौ परमाणुः	दो परमाणु मिलकर	अर्करश्मि	(आती) सूर्यकी
अणुः स्यात्	एक अणु होता है		किरणोंमें
त्रयः	तीन अणु मिलकर	खं एव	आकाशमें ही
त्रसरेणुः स्मृतः	त्रसरेणु कहा जाता है	अनुपतन्	उड़ता
जाल	झरोखेसे	अगात्	हुआ
		अवगतः	जाना जाता है ॥५॥

त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ।
शतभागस्तु वेधःस्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवःस्मृतः ॥६॥

त्रसरेणुः त्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः शतभागः तु वेधः स्यात् तैः त्रिभिः तु लवः स्मृतः ॥६॥

त्रसरेणुः त्रिकं	तीन त्रसरेणु	वेधः स्यात्	वेध होता है
यः कालः	जिस कालको	तैः	उस (वेध से
भुंक्ते स	भोगते हैं वह (काल)	त्रिभिः तु	तीनसे तो
त्रुटिः स्मृतः	त्रुटि कहा जाता है,	लवः स्मृतः	लव कहा जाता
शतभागः तु	(उससे) सौ गुना		है ॥६॥
	भाग तो		

निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ।
क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥७॥

■ कोशिका) को अजर-अमर नित्य मानते हैं; किन्तु क्षणिकवादी बौद्धादि तथा वेदान्त परमाणुको क्षणिक मानता है ।

निमेषः त्रिलवः ज्ञेयः आम्नातः ते त्रयः क्षणः क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥७॥

त्रिलवः	तीन लवका	**पञ्च क्षणान्**	पांच क्षणोंकी
निमेषः	निमेष	**काष्ठां विदुः**	काष्ठा जाननी चाहिए
ज्ञेयः	जानना चाहिए	**दश पञ्च च ता**	पन्द्रह उस (काष्ठा) की
ते त्रयः	वे तीन (निमेष)	**लघु**	लघु होती है ॥७॥
क्षणः	क्षण		
आम्नातः	कहे गये हैं,		

लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ।
ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम् ॥८॥

लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षट् यामः सप्त वा नृणाम् ॥८॥

दश पञ्च च	पन्द्रह	**यामः**	दिन (घटने बढ़नेके अनुसार)या रातका चौथा भाग
लघूनि वै	लघुकी ही	**षट् वा सप्त**	छः या सात नाड़िका होता है ।
नाडिका	नाड़ी (दण्ड)	**प्रहरः**	इसे प्रहर कहते हैं ॥८॥
समाम्नाता	कही गयी है,		
ते द्वे मुहूर्तः	उन दो (नाड़ियों) का मुहूर्त होता है		
नृणां	मनुष्योंका		

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥९॥

द्वादशार्धपल उन्मानं चतुःभिः चतुः अंगुलैः स्वर्ण माषैः कृतः छिद्रं यावत् प्रस्थ जलप्लुतम् ॥९॥

द्वादशार्ध पल	६ पल	**चतुःभिः**	चार मासा
उन्मानं	वजनका	**स्वर्ण**	सोनेकी
माषैः	ताँबेका	**चतुः अंगुलैः**	चार अंगुलकी सलाई बनाकर
प्रस्थजल	एक प्रस्थजल आने योग्य (वर्तन बनाया जाय)	**कृतः छिद्रं**	(उससे उस वर्तनमें) छेद किया जाय

यावत् जलप्लुतम् (वह वर्तन जलमें छोड़नेपर) जितने समयमें जलसे	भर जाय (उतने समयको नाड़ी कहते हैं) ॥९॥

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ।
पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥१०॥

यामाः चत्वारः चत्वारः मर्त्यानां अहनी उभे पक्षः पञ्चदश अहानि शुक्लः कृष्णः च मानद ॥१०॥

मानद	सम्मान देनेवाले विदुर !	**उभे अहनी**	दोनों दिन-रात (होते हैं)
चत्वार चत्वारः	चार चार	**पञ्चदश अहानि**	पन्द्रह दिन-रातका
यामाः	यामोंका	**शुक्लः च कृष्णः**	शुक्ल और कृष्ण
मर्त्यानां	मनुष्योंका	**पक्षः**	(ये दो) पक्ष होते हैं ॥१०॥

तयोः समुच्चयो मासः पितृणां तदहर्निशम् ।
द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥११॥

तयोः समुच्चयः मासः पितृणां तत् अहः निशं द्वौ ताः ऋतुः षट् अयनं दक्षिणं च उत्तरं दिवि ॥११॥

तयोः	उन (दोनों पक्षों) को	**ताः द्वौ ऋतुः**	उन दो (मासोंकी) ऋतु होती है,
समुच्चयः	मिलाकर	**षट् अयनं**	६ (मास) का अयन होता है
मासः	महीना होता है	**दिवि**	आकाशमें
तत्	वे (पक्ष)	**दक्षिणं च उत्तरं**	दक्षिणायन और उत्तरायण ॥११॥
पितृणां	पितरोंका		
अहनी	(कृष्णपक्ष) दिन		
निशं	(शुक्ल पक्ष) रात होती है,		

अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः ।
संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥१२॥

अयने च अहनी प्राहुः वत्सरः द्वादश स्मृतः संवत्सर शतं नृणां परमायुः निरूपितम् ॥१२॥

अयने च	अयनोंको तो (देवताओंका)	**वत्सरः स्मृतः**	वर्ष कहा जाता है।
अहनी प्राहुः	दिन-रात कहा जाता है	**संवत्सर शतं**	सौ वर्ष
द्वादश	ये बारह (देवताओंके दिन-रात, मनुष्यके महीने)	**नृणां परमायुः**	मनुष्यकी परम आयु
		निरूपितं	बतलायी गयी है ॥१२॥*

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ।
संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥१३॥

ग्रह अर्क्ष तारा चक्रस्थः परमाणु आदिना जगत् संवत्सर अवसानेन पर्येति अनिमिषः विभुः ॥१३॥

ग्रह	(चन्द्रादि) ग्रह	**परमाणु आदिना**	परमाणुसे लेकर
अर्क्ष	(अश्विनी आदि) नक्षत्र (तथा)	**संवत्सर अवसानेन**	संवत्सर तकमें
तारा चक्रस्थः	तारामण्डलमें स्थित	**जगत् पर्येति**	जगत (राशि मण्डल रूप पूरे जगतकी) परिक्रमा करते हैं ॥१३॥
अनिमिषः विभुः	काल स्वरूप भगवान् सूर्य		

संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ।
अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥१४॥

संवत्सर परिवत्सर इडावत्सर एव च अनुवत्सर वत्सरः च विदुर एवं प्रभाष्यते ॥१४॥

विदुर	विदुर !	**परिवत्सर एव**	(बृहस्पतिका वर्ष) परिवत्सर और
संवत्सर च	(सूर्यका वर्ष) सम्वत्सर तथा		

---

* यह सौ वर्ष मनुष्यकी सामान्य परमायु है। इससे बहुत अधिक आयुके मनुष्य सदा होते रहे हैं।

इडावत्सर च	(चन्द्रमाका वर्ष) इडावत्सर एवं	**वत्सर एवं**	(नक्षत्र सम्बन्धी वर्ष) वत्सर इस प्रकार
अनुवत्सर	(शनिका वर्ष) अनुवत्सर	**प्रभाष्यते**	कहा जाता है ॥१४॥*

यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन् स्वशक्त्या
पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वं-
स्तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय ॥१५॥

यः सृज्य शक्ति उरुधा उच्छ्वसयन् स्व शक्त्या पुंसः अभ्रमाय दिवि धावति भूत भेदः काल आख्यया गुणमय क्रतुभिः वितन्वन् तस्मै बलि हरत वत्सर पञ्चकाय ॥१५॥

यः सृज्य शक्ति	जो उत्पादक शक्तिको	**काल आख्यया**	काल नामक (शक्तिसे)
स्व शक्त्या	अपनी शक्तिसे	**क्रतुभिः**	यज्ञोंके
उरुधा	अनेक प्रकारसे	**वितन्वन्**	विस्तारको चलाते रहते हैं,
उच्छ्वसयन्	उच्छ्वसित (जीवित) करके	**तस्मै**	उन (सूर्य भगवान्) को
पुंसः	लोगोंको	**पञ्चकाय वत्सर**	पाँचो सम्वत्सर रूपको
अभ्रमाय	सावधान रखनेके लिए	**बलिं हरत**	उपहार देते हैं(उनकी पूजा करते हैं) ॥१५॥
दिवि	आकाशमें		
धावति	दौड़ते रहते हैं		
भूत भेदः	पंच महाभूतोंके एक भेद (ज्योतिके रूपमें)		

विदुर उवाच-

पितृदेव मनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ।
परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद् बहिर्विदः ॥१६॥

---

* जब एक ग्रह बारह राशियोंका भ्रमण पूरा कर लेता है तो उसका एक वर्ष होता है। इसमें शनिका अनुवत्सर सबसे बड़ा ३० का है।

पितृदेव मनुष्याणां आयुः परं इदं स्मृतं परेषां गतिं आचक्ष्व ये स्युः कल्पात् बहिः विदः ॥१६॥

पितृ	पितर	**परेषां**	दूसरोंकी
देव	देवता	**गतिं**	अवस्था
मनुष्याणां	मनुष्योंकी	**आचक्ष्व ये**	बतलाइये जो
परं आयुः इदं	परमायु यह	**कल्पात् बहिः**	कल्पसे बाहर
स्मृतं	आपने बतलायी	**विदः स्युः**	जाने जाते हैं ॥१६॥

भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ।
विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥१७॥

भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतः ननु विश्वं विचक्षते धीराः योग आराद्धेन चक्षुषा ॥१७॥

भगवान्	भगवन् !	**योग आराद्धेन**	योगसिद्ध निर्मल
भगवतः कालस्य	भगवान कालकी	**चक्षुषा**	दृष्टिसे
गतिं ननु	गति निश्चय	**विश्वं**	(पूरे) संसारको
वेद	(आप) जानते हैं	**विचक्षते**	देखते हैं ॥१७॥
धीराः	(क्योंकि) धीर पुरुष		

मैत्रेय उवाच-

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः च इति चतुः युगं दिव्यैः द्वादशभिः वर्षैः स अवधानं निरूपितम् ॥१८॥

कृतं च	सतयुग तथा		सन्ध्यांश सहित
त्रेता	त्रेतायुग	**दिव्यैः**	देवताओंके
द्वापरं च	द्वापरयुग और	**द्वादशभिः**	बारह सहस्र
कलिः इति	कलियुग इस प्रकार	**वर्षैः**	वर्ष तकके
चतुः युगं	ये चारो युग	**निरूपितं**	कहे गये हैं ॥१८॥
स अवधानं	अपनी सन्ध्या और		

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥

चत्वारि त्रीणि द्वे च एकं कृतादिषु यथाक्रमं संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥

चत्वारि	चार
त्रीणि	तीन
द्वे च	दो और
एकं	एक
सहस्राणि	सहस्र (वर्ष)
द्विगुणानि	दुगने सौ (वर्ष सन्ध्या-सन्ध्यांशके)
शतानि च	उतने सहस्रसे
यथा क्रमं	क्रमानुसार
कृतादिषु	सतयुग आदिके (वर्ष)
संख्यातानि	गिनाये गये हैं ॥१९॥

संध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः ।
तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥२०॥

सन्ध्या अंशयोः अन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः तं एव आहुः युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मः विधीयते ॥२०॥

सन्ध्या	(युगकी आदिमें) सन्ध्या तथा
अंशयोः	(उसका) सन्ध्यांश
शत संख्ययोः	सौ वर्षोंकी संख्यावाला
अन्तरेण	(युगके अन्तमें भी सन्ध्या सन्ध्यांश) इनके मध्यमें
यः कालः	जो समय होता है
तज्ज्ञा	उस (कालके) के जाननेवाले
तं एव	उस (मध्यवर्तीकाल) को ही
युगं आहुः	युग कहते हैं,
यत्र	जिसमें
धर्मः	(विशेष विशेष युग) धर्मका
विधीयते	विधान होता है ॥२०॥

धर्मश्चतुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्तते ।
स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥

धर्मः चतुष्पात् मनुजान् कृते समनुवर्तते स एव अन्येषु अधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥

कृते	सतयुगमें	**स एव**	वही (धर्म)
मनुजान्	मनुष्योंमें	**अन्येषु**	दूसरे (युगों) में
धर्मः	धर्म	**अधर्मेण वर्धता**	अधर्म बढ़ते जानेसे
चतुष्पात्	चारों पैरोंसे (पूर्ण)	**पादेन व्येति**	एक-एक पाद क्षीण होता जाता है ॥२१॥
समनुवर्तते	भली प्रकार वर्तमान रहता है		

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ।
तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥२२॥

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिः आब्रह्मणः दिनं तावत् एव निशा तात यत् निमीलयति विश्वसृक् ॥२२॥

तात	तात !	**तावत् एव**	उतनी ही बड़ी (वहाँकी)
त्रिलोक्या बहिः	त्रिलोकीसे बाहर (महर्लोकसे लेकर)	**निशा**	रात्रि होती है
आब्रह्मणः	ब्रह्मलोक तक	**यत्**	जिसमें
युग साहस्रं	(यहाँकी) एक सहस्र चतुर्युगीका	**विश्वसृक्**	विश्वस्रष्टा (ब्रह्मा)
दिनं	दिन होता है ।	**निमीलयति**	सोते हैं ॥२२॥

निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ।
यावद्दिनं भगवतो मनून् भुञ्जंश्चतुर्दश ॥२३॥

निशावसान आरब्धः लोक कल्पः अनुवर्तते यावत् दिनं भगवतः मनून् भुञ्जन् चतुर्दश ॥२३॥

निशावसान	रात्रिका अन्त	**यावत् दिनं**	जब तक दिन रहता है
आरब्धः	प्रारम्भ होनेपर	**चतुर्दश**	चौदह
लोक कल्प	लोक व्यवहार	**मनून्**	मनु (उसमें)
अनुवर्तते	चलता रहता है	**भुञ्जन्**	भोग करते (होते) हैं ॥२३॥
भगवतः	भगवान् ब्रह्माका		

स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ।
मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ।
भवन्ति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥२४॥

स्वं स्वं कालं मनूः भुंक्ते साधिकां हि एक सप्तति मन्वन्तरेषु मनवः तद्वंश्याः ऋषयः सुराः भवन्ति च एव युगपत् सुरेशाः च अनु ये च तान् ॥२४॥

हि साधिकां	क्योंकि कुछ अधिक	तद्वंश्याः	उनके वंशके लोग
एक सप्तति	इकहत्तर (७१$\frac{3}{6}$ चर्तुयुगी)	ऋषयः	सप्तर्षि
		सुराः च	देवता तथा
स्वं स्वं कालं	अपने अपने समयमें	सुरेशाः ये च	इन्द्र एवं जो
मनूः	मनु	तान् अनु	उन (इन्द्रके) अनुयायी (देवतादि)हैं
भुंक्ते	भोग करते हैं ।		
मन्वन्तरेषु	मन्वन्तरोंमें	युगपत् एव	एक साथ ही
मनवः	मनुः	भवन्ति	होते हैं ॥२४॥

एष दैनन्दिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ।
तिर्यङ्नृपितृदेवानां सम्भवो यत्र कर्मभिः ॥२५॥

एष दैनन्दिनः सर्गः ब्राह्मः त्रैलोक्य वर्तनः तिर्यङ् नृ पितृ देवानां सम्भवः यत्र कर्मभिः ॥२५॥

एष	यह	यत्र कर्मभिः	जिसमें कर्मानुसार
त्रैलोक्य वर्तनः	त्रिलोकीमें चलनेवाली	तिर्यङ्	पशु-पक्षी आदि तिर्यक्
		नृ पितृ देवानां	मनुष्य, पितर तथा देवताओंकी
ब्राह्मः	ब्रह्माजीकी		
दैनन्दिनः	दैनिक	सम्भवः	उत्पत्ति होती है ॥२५॥
सर्गः	सृष्टि है		

मन्वन्तरेषु भगवान् बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ।
मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥२६॥

मन्वन्तरेषु भगवान् विभ्रत् सत्त्वं स्वमूर्तिभिः मन्वादिभिः इदं विश्वं अवति उदित पौरुषः ॥२६॥

मन्वन्तरेषु	मन्वन्तरोंमें	स्वमूर्तिभिः	अपनी ही मूर्ति (विभूतियों) द्वारा
भगवान्	भगवान्	उदित पौरुषः	पौरुष प्रकट करके
सत्त्वं	सत्त्वगुणका	इदं विश्वं	इस विश्वकी
विभ्रत्	आश्रय लेकर	अवति	रक्षा करते हैं ॥२६॥
मन्वादिभिः	मनु आदि		

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ।
कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥२७॥

तमः मात्रां उपादाय प्रति संरुद्ध विक्रमः कालेन अनुगत अशेष आस्ते तूष्णीं दिन अत्यये ॥२७॥

कालेन	समयपर	अनुगत	साथ लेकर
दिन अत्यये	(ब्रह्माजीका) दिन बीत जानेपर	विक्रमः	पराक्रम
		प्रति संरुद्ध	रोककर
तमः मात्रां	तमोगुणका सम्पर्क	तूष्णीं	चुप (शान्त)
उपादाय	स्वीकार करके	आस्ते	हो जाते हैं ॥२७॥
अशेष	सम्पूर्ण (जगतको)		

तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः ।
निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥२८॥

तं एव अनुपिधीयन्ते लोका भूः आदयः त्रयः निशायां अनुवृत्तायां निर्मुक्त शशि भास्करम् ॥२८॥

शशि भास्करं	चन्द्र-सूर्यके	त्रयः लोका	तीनों लोक
निर्मुक्त	न रहनेपर	तं एव	उन (ब्रह्माजी) में ही
निशायां	(ब्रह्माजीकी) रात्रि	अनुपिधीयन्ते	लीन हो जाते हैं ॥२८॥
अनुवृत्तायां	आ जानेपर		
भूः आदयः	भूः आदि (भुवः स्वः)		

त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना ।
यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥२९॥

त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षण अग्निना यान्ति उष्मणा महर्लोकात् जनं भृगु आदयः अर्दिताः ॥२९॥

संकर्षण	शेषजीके
अग्निना	(मुखसे निकली) अग्निरूप
शक्त्या	(भगवानकी) शक्तिसे
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीके
दह्यमानायां	जलते समय
उष्मणा	गर्मीसे
अर्दिता	पीड़ित होकर
भृगु आदयः	भृगु आदि (ऋषि)
महर्लोकात्	महर्लोकसे
जनंयान्ति	जनलोक चले जाते हैं ॥२८॥

तावत्त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधितसिन्धवः ।
प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ॥३०॥

तावत् त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधित सिन्धवः प्लावयन्ति उत्कट आटोप चण्डवात इरित उर्मयः ॥३०॥

तावत्	तब तक
कल्पान्तैधित	कल्पान्तमें बढ़े
चण्ड वात	प्रचण्ड वायु
ईरित	प्रेरित
उत्कट आटोप	भयंकर उछाल लेती
उर्मयः	लहरोंवाले
सिन्धवः	समुद्र
सद्यः	तुरन्त
त्रिभुवनं	तीनों लोकोंको
प्लावयन्ति	डुबा देने हैं ॥३०॥

अन्तः स तस्मिन् सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः ।
योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥३१॥

अन्तः स तस्मिन् सलिले आस्ते अनन्त आसनः हरिः योगनिद्रा निमील अक्षः स्तूयमानः जनालयैः ॥३१॥

तस्मिन्	उस
सलिले	जलके
अन्तः स	भीतर वे
अनन्त आसनः	शेषके आसनपर
हरिः	श्रीहरि
योगनिद्रा	योगनिद्रासे
अक्षः निमीलं	नेत्र बन्द करके
जनालयैः	जनलोक निवासियों द्वारा
स्तूयमानः	स्तुत होते
आस्ते	शयन करते हैं ॥३१॥

एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ।
अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयःशतम् ॥३२॥

एवं विधैः अहोरात्रैः कालगति उपलक्षितैः अपक्षितं एव अस्य अपि परम आयुः वयः शतम् ॥३२॥

एवं विधैः	इस प्रकारके	अस्य अपि	इन (ब्रह्माजी)
कालगति	कालकी गतिसे		की भी
उपलक्षितैः	प्रतीत होनेवाले	परम आयुः	परम आयु
अहोरात्रैः	दिन-रातके	वयः शतम्	सौ वर्षकी वय
अपक्षितं एव	व्यतीत होनेसे ही		है ॥३२॥

यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ।
पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥३३॥

यत् अर्धम् आयुषः तस्य परार्धम् अभिधीयते पूर्वः परार्धः अपक्रान्तः हि अपरः अद्य प्रवर्तते ॥३३॥

यत् तस्य	जो उन (ब्रह्माजी)की	पूर्वः परार्धः	पहिला परार्ध
आयुषं	आयुका	हि अपक्रान्तः	क्योंकि बीत गया
अर्धम्	आधा भाग है	अद्य	इस समय
परार्धम्	परार्ध	अपरः	दूसरा (परार्ध)
अभिधीयते	कहा जाता है,	प्रवर्तते	चल रहा है ॥३३॥

पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ।
कल्पो यत्राभवद् ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥३४॥

पूर्वस्य आदौ परार्धस्य ब्राह्मः नाम महान् अभूत् कल्पः यत्र अभवत् ब्रह्मा शब्द ब्रह्म इति यं विदुः ॥३४॥

पूर्वस्य	पहिले	यत्र ब्रह्मा	जिसमें ब्रह्माजी
परार्धस्य	परार्धके	अभवत्	उत्पन्न हुए थे
आदौ	प्रारम्भमें	यं	जिनको
ब्राह्मः नाम	ब्राह्म नामका	शब्द ब्रह्म	शब्द ब्रह्म
महान् कल्पः	महान् कल्प	इति विदुः	इस नामसे जाना
अभूत्	हुआ था		जाता है ॥३४॥

तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद् यं पाद्ममभिचक्षते ।
यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥३५॥

तस्य एव च अन्ते कल्पः अभूत् यं पाद्मं अभिचक्षते यत् हरेः नाभि सरस आसीत् लोक सरोरुहम् ॥३५॥

तस्य एव	उसके ही	**यत् हरेः**	क्योंकि (उसमें) श्रीहरिकी
अन्ते च	अन्तमें तो	**नाभि सरस**	नाभि सरोवरसे
कल्पः अभूत्	वह) कल्प हुआ	**लोक सरोरुहं**	लोकमय कमल
यं पाद्मं	जिसे पाद्म	**आसीत्**	(उत्पन्न)हुआ ॥३५॥
अभिचक्षते	कहा जाता है		

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ।
वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥३६॥

अयं तु कथितः कल्पः द्वितीयस्य अपि भारत वाराह इति विख्यातः यत्र आसीत् सूकरः हरिः ॥३६॥

भारत	विदुर !	**वाराह इति**	वाराह इस नामसे
अयं तु	यह (वर्तमान) तो	**विख्यातः**	प्रसिद्ध है
कल्पः	कल्प	**यत्र हरिः**	जिसमें श्रीहरि
द्वितीयस्य अपि	दूसरे परार्धका ही	**सूकरः**	वाराह
कथितः	बतलाया गया है,	**आसीत्**	हुए थे ॥३६॥

कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ।
अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥३७॥

कालः अयं द्विपरार्ध आख्यः निमेष उपचर्य ते अव्याकृतस्य अनन्तस्य अनादेः जगदात्मनः ॥३७॥

अयं	यह	**अनादेः**	अनादि
द्विपरार्ध आख्यः	दो परार्ध कहा जानेवाला	**जगदात्मनः**	विश्वात्मा भगवानका
		निमेष	निमेष भी
कालः	काल	**उपचर्य ते**	उपचारसे (कल्पित भावसे ही) कहा जाता है ॥३७॥
अव्याकृतस्य	निर्विकार		
अनन्तस्य	अनन्त		

कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः ।
नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥३८॥

कालः अयं परमाणु आदिः द्विपरार्ध अन्त ईश्वरः न एव इशितुं प्रभुः भूम्नः ईश्वरः धाम मानिनाम् ॥३८॥

अयं परमाणु आदिः द्विपरार्ध अन्त कालः	यह परमाणुसे लेकर द्विपरार्ध तकका काल	**न एव**	नहीं ही है,
ईश्वरः	समर्थ होनेपर भी	**धाम मानिनाम्**	शरीरको मैं मानने वालोंका
भूम्नः प्रभुः	सर्वव्यापक प्रभुको	**ईश्वरः**	(यह) स्वामी है ॥३८॥
इशितुं	प्रभावित करनेमें समर्थ		

विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ।
आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥३९॥

विकारः सहितः युक्तैः विशेष आदिभिः आवृतः आण्डकोशः बहिः अयं पञ्चाशत् कोटि विस्तृतः ॥३९॥

विकारः	विकारों (दस इन्द्रिय, मन, पञ्चभूत)	**आदिभिः**	इन सबसे
सहितः	के साथ	**आवृतः**	घिरा हुआ
विशेष	प्रकृतियों (प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार पञ्च तन्मात्रा)	**अयं आण्डकोशः**	यह ब्रह्माण्ड
		बहिः	बाहरसे (मापनेपर)
		पञ्चाशत् कोटि	पचास करोड़ योजन
युक्तैः	से युक्त होकर	**विस्तृतः**	विस्तारवाला है ॥३९॥

दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ।
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥४०॥

दश उत्तर अधिकैः यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् लक्ष्यते अन्तर्गताः च अन्ये कोटिशः हि अण्डराशयः ॥४०॥

दश उत्तर	उत्तरोत्तर दस-दस गुने	**अधिकैः**	बड़े (सात आवरणोंसे घिरा है)

यत्र	(यह) जिसमें	**अण्डराशयः**	ब्रह्माण्डोंकी ढेरियाँ (जिसके)
परमाणुवत्	परमाणुके समान	**अन्तर्गताः**	भीतर
प्रविष्टः	पड़ा है,	**लक्ष्यन्ते**	लक्षित होती हैं ॥४०॥
अन्ये च	दूसरी भी		
कोटिशः	करोड़ों		

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ।
विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥

तत् आहुः अक्षरं ब्रह्म सर्वकारण कारणं विष्णोः धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥

तत् अक्षरं	उस अविनाशी	**साक्षात्**	साक्षात्
सर्वकारण	सबके कारण (प्रकृति) के भी	**परं पुरुषस्य**	परम पुरुष
		महात्मनः	परमात्मा
कारणं	कारणको	**विष्णोः**	विष्णुका
ब्रह्म	ब्रह्म	**धाम**	(वह) धाम (स्वरूप)
आहुः	कहा जाता है		है ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ।
महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्राक्षीन्निबोध मे ॥१॥

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः महिमा वेदगर्भः अथ यथा स्राक्षीत् निबोध मे ॥१॥

क्षत्तः	विदुर !	**वर्णितः**	वर्णनकी
इति ते	इस प्रकार तुमसे	**अथ वेदगर्भः**	अब ब्रह्माजीने
कालाख्यः	काल नामवाले	**यथा स्राक्षीत्**	जैसे सृष्टिकी
परमात्मनः	परमात्माकी	**मे निबोध**	मुझसे सुनो ॥१॥
महिमा	महिमा		

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् ।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥२॥

ससर्ज अग्रे अन्ध तामिस्रं अथ तामिस्रं आदिकृत् महामोहं च मोहं च तमः च अज्ञान वृत्तयः ॥२॥

आदिकृत्	आदिकर्ता (ब्रह्मा)ने	**अथ तामिस्रं च**	तथा तामिस्र (अस्मिता) और
अग्रे	पहिले	**महामोहं च**	महामोह (राग) एवं
अज्ञान वृत्तयः	अज्ञानकी वृत्तियाँ	**मोहं च**	मोह (द्वेष) तथा
अन्ध तामिस्रं	अन्ध तामिस्र (अविद्या)	**तमः**	तम (अभिनिवेश)की
		ससर्ज	सृष्टि की ॥२॥

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत् ॥३॥

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं न आत्मानं बहु मन्यत भगवत् ध्यान पूतेन मनसा अन्यां ततः असृजत् ॥३॥

पापीयसीं	(इस) पापमयी	ततः भगवत्	
सृष्टिं	रचनाको	ध्यान	तब भगवानके
दृष्ट्वा	देखकर		ध्यानसे
आत्मानं	अपना	पूतेन	पवित्र (हुए)
न बहु मन्यत	सम्मान नहीं किया	मनसा	मनके द्वारा
	(अपनेको सम्मान	अन्यां	दूसरी
	योग्य नहीं माना)	असृजत्	रचना की ।३॥

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ।
सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥४॥

सनकं च सनन्दं च सनातनं अथ आत्मभूः सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियान् ऊर्ध्वरेतसः ॥४॥

अथ आत्मभूः	तब ब्रह्माने	सनातनं	सनातनको,
निष्क्रियान्	निवृत्ति परायण	सनत्कुमारं च	और सनत्कुमारको
ऊर्ध्वरेतसः	ब्रह्मचारी	मुनीन्	(इन चार)मुनियोंको
सनकं च	सनकको,		(उत्पन्न किया) ॥४॥
सनन्दं च	सनन्दको,		

तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः ।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥५॥

तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः तत् न ईच्छन् मोक्ष धर्माणः वासुदेव परायणाः ॥५॥

स्वभूः	ब्रह्माने	तत्	उसको (उन)
तान् पुत्रान्	उन पुत्रोंसे	मोक्ष धर्माणः	मोक्ष धर्मी
बभाषे	कहा	वासुदेव	
पुत्रकाः	मेरे छोटे बच्चो !	परायणाः	वासुदेव परायणोंने
प्रजाः सृजत	प्रजाकी सृष्टि करो	इच्छन् न	इच्छा नहीं की । ५॥

सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ।
क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥६॥

सः अवध्यातः सुतैः एवं प्रत्याख्यात अनुशासनैः क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुं उपचक्रमे ॥६॥

सः एवं	उन (ब्रह्माजी) को इस प्रकार	**दुर्विषहं**	दुस्सह
		क्रोधं जातं	क्रोध उत्पन्न हुआ
सुतैः	पुत्रों द्वारा	**नियन्तुं**	(उसे) नियन्त्रित करनेका
अनुशासनैः	(अपनी) आज्ञाके		
प्रत्याख्यात	न मानने से	**उपचक्रमे**	उपक्रम किया ॥६॥
अवध्यातः	अपमानित होनेपर		

धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ।
सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥७॥

धिया निगृह्यमाणः अपि भ्रुवोः मध्यात् प्रजापतेः सद्यः अजायत तन्मन्युः कुमारः नीललोहितः ॥७॥

धिया	बुद्धिसे	**तन्-मन्यु**	उनका क्रोध
निगृह्यमाणः		**सद्यः**	तत्काल
अपि	नियन्त्रित करनेपर भी	**नील लोहितः**	नील-लोहित
		कुमारः	कुमार (के रूपमें)
प्रजापतेः	प्रजापति (ब्रह्माजी)के	**अजायत**	उत्पन्न हो गया ॥७॥
भ्रुवोः मध्यात्	भ्रूमध्यसे		

स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः ।
नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥८॥

स वै रुरोद देवानां पूर्वजः भगवान् भवः नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥८॥

स देवानां पूर्वजः	वे देवताओंके पूर्वज	**मे**	मेरे
भगवान् भव वै	भगवान् भव तो	**नामानि कुरु च**	नाम रखो तथा
रुरोद	रोने लगे—	**स्थानानि**	(रहनेके) स्थान बतलाओ ! ॥८॥
जगद्गुरोः	जगत् पिता		
धातः	विधाता !		

इति तस्य वचः पाद्मो भगवान् परिपालयन् ।
अभ्यधाद् भद्रया वाचा मा रोदीस्तत्करोमि ते ॥९॥

इति तस्य वचः पाद्मः भगवान् परिपालयन् अभ्यधात् भद्रया वाचा मा रोदीः तत् करोमि ते ॥९॥

इति	इस प्रकारकी	**अभ्यधात्**	बोले—
तस्य	उस (कुमार) की	**रोदीः मा**	'रोओ मत !'
वचः	वाणीका (प्रार्थनाका)	**ते तत्**	तुम्हारी वह
परिपालयन्	पालन करते हुए		(प्रार्थना)
भगवान् पाद्मः	भगवान् ब्रह्मा	**करोमि**	(पूरी) करता
भद्रया वाचा	कल्याणमयी वाणीसे		हूँ ।९॥

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ।
ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥१०॥

यत् अरोदीः सुरश्रेष्ठ स उद्वेग इव बालकः ततः त्वां अभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥१०॥

सुरश्रेष्ठ	देवोत्तम !	**ततः त्वां**	इसलिए (तुमको)
बालकः	बालक !	**प्रजाः**	प्रजा
यत्	क्योंकि	**रुद्र इति नाम्ना**	रुद्र इस नामसे
स उद्वेग इव	उद्विग्न हुएके समान	**अभिधास्यन्ति**	पुकारेगी ॥१०॥
अरोदीः	रोये हो		

हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ।
सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥११॥

हृद् इन्द्रियाणि असुः व्योम वायुः अग्निः जलं मही सूर्यः चन्द्रः तपः च एव स्थानानि अग्रे कृतानि मे ॥११॥

हृद्	हृदय,	**वायुः**	वायु,
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां,	**अग्निः**	अग्नि,
असुः	प्राण,	**जलं**	जल,
व्योम	आकाश,	**मही**	पृथ्वी,

सूर्यः	सूर्य,	अग्रे	पहिले ही
चन्द्रः च	चन्द्र तथा	मे कृतानि	मैंने बना दिये
तपः एव	तपस्या भी		हैं ॥११॥
स्थानानि	(ये) स्थान		

मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिव ऋतध्वजः ।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥१२॥

मन्युः मनुः महिनसः महान् शिव ऋतध्वजः उग्ररेता भवः कालः वामदेवः धृतव्रतः ॥१२॥

मन्युः	मन्यु	उग्ररेता	उर्ध्वरेता
मनुः	मनु	भवः	भव
महिनसः	महिनस	कालः	काल
महान्	महान्	वामदेवः	वामदेव
शिव	शिव	धृतव्रतः	धृतव्रत ॥१२॥
ऋतध्वजः	ऋतध्वज		

धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका ।
इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥१३॥

धीः वृत्तिः उशना उमा च नियुत् सर्पिः इला अम्बिका इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यः रुद्र ते स्त्रियः ॥१३॥

धीः	धी	इरावती	इरावती
वृत्तिः	वृत्ति	सुधा	सुधा
उशना	उशना	दीक्षा	दीक्षा
उमा च	उमा तथा	रुद्राण्यः	(ये) रुद्रानियां
नियुत्	नियुत्	रुद्र	रुद्र !
सर्पिः	सर्पि	ते स्त्रियः	तुम्हारी स्त्रियां
इला	इला		हैं ॥१३॥
अम्बिका	अम्बिका		

गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः ।
एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥

गृहाण एतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानाम् असि यत् पतिः ॥१४॥

एतानि नामानि	इन नामोंको	**बह्वीः प्रजा**	बहुत-सी प्रजा
च स्थानानि	तथा स्थानोंको	**सृज यत्**	उत्पन्न करो क्योंकि
सयोषणः	पत्नियोंके साथ	**प्रजानाम् पतिः**	(तुम) प्रजापति
गृहाण	ग्रहण करो।	**असि**	हो ॥१४॥
एभिः	इनके द्वारा		

इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः ।
सत्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥१५॥

इति आदिष्टः स गुरुणा भगवान् नीललोहितः सत्त्व आकृति स्वभावेन ससर्ज आत्मसमाः प्रजाः ॥१५॥

भगवान्	भगवान्	**सत्त्व**	बल
नीललोहितः	नील लोहितने	**आकृति**	रूप
गुरुणा	लोक पिता (ब्रह्माजी) से	**स्वभावेन**	स्वभावमें
		आत्मसमाः	अपने समान
इति	इस प्रकार	**प्रजाः ससर्ज**	प्रजाकी सृष्टि
आदिष्टः	आज्ञा पानेपर		की ॥१५॥

रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद् ग्रसतां जगत् ।
निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ॥१६॥

रुद्राणां रुद्र सृष्टानां समन्तात् ग्रसतां जगत् निशाम्य असंख्यशः यूथान् प्रजापतिः अशङ्कत ॥१६॥

समन्तात्	चारों ओरसे	**असंख्यशः**	अनगिनत
जगत्	संसारको	**यूथान्**	समूहोंको
ग्रसतां	मानो निगल लेंगे	**निशाम्य**	देखकर
रुद्राणां	रुद्रों (और)	**प्रजापतिः**	ब्रह्माजी
रुद्र सृष्टानां	रुद्रके द्वारा उत्पन्न (गणों) के	**अशंकत**	शंकित हो गये ॥१६॥

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ।
मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥१७॥

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिः इदृशीभिः सुरोत्तम मया सह दहन्तीभिः दिशः चक्षुर्भिः उल्बणैः ॥१७॥

सुरोत्तम	देवश्रेष्ठ !	**चक्षुर्भिः**	नेत्रोंसे (यह)
इदृशीभिः	ऐसी	**मया सह**	मेरे सा
प्रजाभिः	सन्तानोंके	**दिशः**	दिशाओंको
सृष्टाभिः	उत्पन्न करनेको	**दहन्तीभिः**	(मानो) जलाये दे रही है ॥१७॥
अलं	बस (बन्द) करो		
उल्बणैः	अत्युग्र		

तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ।
तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥१८॥

तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूत सुख आवह तपसा एव यथा पूर्वं सृष्टा विश्वं इदं भवान् ॥१८॥

ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**तपसा एव**	तपस्यासे ही
सर्वभूत	सब प्राणियोंको	**इदं विश्वं**	इस विश्वको
सुख आवहं	सुख देनेवाला	**यथा पूर्वं**	जैसा पहिले थ
तप आतिष्ठ	तप करो	**सृष्टा**	बनानेवाले (बनोगे) ॥१८॥
भवान्	आप		

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् ।
सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१९॥

तपसा एव परं ज्योतिः भगवन्तं अधोक्षजं सर्वभूत गुहा आवासं अञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१९॥

तपसा एव	तपस्यासे ही	**सर्वभूत गुहा**	सब प्राणियोंकी हृदय गुहामें
पुमान्	पुरुष	**आवासं**	निवास करनेवालेको
परं ज्योतिः	परम प्रकाश	**अञ्जसा**	अनायास
भगवन्तं	भगवान्	**विन्दते**	प्राप्त कर लेता है ॥१९॥
अधोक्षजं	हृषीकेश		

मैत्रेय उवाच-

एवमात्मभुवाऽऽदिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिम् ।
बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥२०॥

एवं आत्मभुवा आदिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिं बाढं इति अमुं आमन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥२०॥

एवं	इस प्रकार	गिरां पतिं	(उन) वाणी-पति (ब्रह्माकी)
आत्मभुवा	ब्रह्माजीसे	परिक्रम्य	परिक्रमा करके
आदिष्टः	आदेश पाकर	तपसे	तप करनेके लिए
बाढं इति	ठीक है ऐसा	वनं विवेश	वनमें चले गये ॥२०॥
अमुं	उन (ब्रह्माजी) से		
आमन्त्र्य	अनुमति लेकर		

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥२१॥

अथ अभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे भगवत् शक्ति युक्तस्य लोक सन्तान हेतवे ॥२१॥

अथ	तदनन्तर	लोक सन्तान	लोककी सन्तति परम्पराके
भगवत् शक्ति	भगवानकी शक्तिसे	हेतवे	कारण
युक्तस्य	युक्त (ब्रह्माजीके)	दश पुत्राः	दस पुत्र
सर्गं	सृष्टिका	प्रजज्ञिरे	उत्पन्न हुए ॥२१॥
अभिध्यायतः	चिन्तन करनेसे		

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥

मरीचिः अत्रि अङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः भृगुः वसिष्ठः दक्षः च दशमः तत्र नारदः ॥२२॥

मरीचिः	मरीचि	अङ्गिरसौ	अंगिरा
अत्रिः	अत्रि	पुलस्त्यः	पुलस्त्य

पुलहः	पुलह	दक्षः	दक्ष
क्रतुः	क्रतु	तत्र	इनमें
भृगुः	भृगु	दशमः	दसवें
वसिष्ठः च	वशिष्ठ और	नारदः	नारदजी थे ॥२२॥

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुवः ।
प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचिकरात्क्रतुः ॥२३॥

उत्सङ्गात् नारदः जज्ञे दक्षः अङ्गुष्ठात् स्वयम्भुवः प्राणात् वसिष्ठः सञ्जातः भृगुः त्वचि करात् क्रतुः ॥२३॥

स्वयम्भुवः	ब्रह्माजीकी	वसिष्ठः	वशिष्ठ
उत्सङ्गात्	गोदसे	त्वचि	त्वचासे
नारदः जज्ञे	नारद उत्पन्न हुए	भृगुः	भृगु
अङ्गुष्ठात्	अँगूठेसे	करात्	हाथसे
दक्षः	दक्ष	क्रतुः	क्रतु
प्राणात्	प्राण (वायु) से	सञ्जातः	उत्पन्न हुए ॥२३॥

पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ।
अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥

पुलहः नाभितः जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोः ऋषिः अङ्गिरा मुखतः अक्ष्णोः अत्रिः मरीचिः मनसः अभवत् ॥२४॥

पुलहः	पुलह	अक्ष्णोः	आँखोंसे
नाभितः जज्ञे	नाभिसे उत्पन्न हुए,	अत्रिः	अत्रि,
कर्णयोः	कानोंसे	मनसः	मनसे
ऋषिः पुलस्त्यः	ऋषि पुलस्त्य,	मरीचिः	मरीचि
मुखतः	मुखसे	अभवत्	(उत्पन्न)हुए ॥२४॥
अङ्गिराः	अंगिरा,		

धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ।
अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥२५॥

धर्मः स्तनात् दक्षिणतः यत्र नारायणः स्वयं अधर्मः पृष्ठतः यस्मात् मृत्युः लोक भयङ्करः ॥२५॥

दक्षिणतः स्तनात्	दाहिने स्तनसे
धर्मः	धर्म (उत्पन्न हुआ)
यत्र	जिससे
स्वयं नारायणः	स्वयं नारायण (अवतीर्ण हुए)
पृष्ठतः	पीठसे
अधर्मः	अधर्म (उत्पन्न हुआ)
यस्मात्	जिससे
लोक भयङ्करः	लोकके लिए भयदायी
मृत्युः	मृत्यु (उत्पन्न) हुई ॥२५॥

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ।
आस्याद्वाक्सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥२६॥

हृदिः कामः भ्रुवः क्रोधः लोभः च अधर दत् छदात् आस्यात् वाक् सिन्धवः मेढ्रात् निर्ऋतिः पायोः अघ आश्रयः ॥२६॥

हृदि	हृदयसे
कामः	काम
भ्रुवः	भौंहोंसे
क्रोधः	क्रोध
अधर दत् छदात्	दांत टकनेवाले (नीचेके) ओष्ठसे
लोभः	लोभ
आस्यात्	मुखसे
वाक्	वाणी (की देवता) सरस्वती
मेढ्रात्	लिंगसे
सिन्धवः	समुद्र
पायोः	गुदासे
अघ आश्रयः	पापका आश्रय (अधिदेव)
निर्ऋतिः	निर्ऋति (उत्पन्न हुआ) ॥२६॥

छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ।
मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥२७॥

छायायाः कर्दमः जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः मनसः देहतः च इदं जज्ञे विश्वकृतः जगत् ।२७॥

छायायाः	छायासे
प्रभुः	समर्थ
देवहूत्याः पतिः	देवहूतिके पति
कर्दमः जज्ञे	कर्दम उत्पन्न हुए
विश्वकृतः	ब्रह्माजीके
देहतः च	शरीरसे और
मनसः	मनसे
इदं जगत्	यह (सम्पूर्ण) ससार
जज्ञे	उत्पन्न हुआ ॥२७॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः ।
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूः हरतीं मनः अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥

क्षत्तः	विदुर !	दुहितरं	बेटी
इति नः श्रुतं	ऐसा हमने सुना है कि	वाचं	सरस्वती
		मनः हरतीं	मनहरण करतीको
तन्वीं	दुबली-सुकुमारी	सकाम	काम मोहित (ब्रह्मा)
अकामां	निष्काम	चकमे	चाहने लगे । २८॥

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ।
मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

तं अधर्मे कृत मतिं विलोक्य पितरं सुताः मरीचि मुख्या मुनयः विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

तं पितरं	उन पिता (ब्रह्मा)को	मरीचि मुख्य	मरीचि प्रमुख
अधर्मे	अधर्मका	मुनयः	मुनिगण
मतिं कृत	संकल्प करते	विश्रम्भात्	विश्वासपूर्वक
विलोक्य	देखकर	प्रत्यबोधयन्	समझाने लगे ॥२९॥
सुताः	उनके पुत्र		

नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ।
यस्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥

न एतत् पूर्वैः कृतं तु अद्य न करिष्यन्ति च अपरे यत् त्वं दुहितरं गच्छेः अनिगृह्य अङ्गजं प्रभुः ॥३०॥

एतत्	ऐसा (अपकर्म)	न अपरे च	न दूसरे ही
पूर्वैः	पहिले (किसीने)	करिष्यन्ति	(आगे) करेंगे
न कृतं तु	नहीं किया है और	यत् त्वं	जो आप
अद्य	आज (वर्तमानमें न कोई करता है)	प्रभुः	समर्थ होनेपर भी

अङ्गजं	अपने देहमें उत्पन्न (कामको)	दुहितरं	पुत्रीके साथ
अनिगृह्य	न रोककर	गच्छेः	सहवास करना चाहते हो ॥३०॥

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ।
यद्वृत्तमनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

तेजीयासां अपि हि एतत् न सुश्लोक्यं जगद्गुरोः यत् वृत्तं अनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

जगद्गुरोः	जगद्गुरो !	क्षेमाय कल्पते	कल्याण पाते हैं (उसे)
हि यत् वृत्तं	क्योंकि जिसके आचारका	तेजीयासां अपि	तेजस्वी होनेपर भी
अनुतिष्ठन्	अनुकरण करनेपर	एतत्	यह काम
वै लोकः	निश्चय ही लोग	सुश्लोक्यं न	अच्छा यश देनेवाला नहीं है ॥३१॥

तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ।
आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

तस्मै नमः भगवते य इदं स्वेन रोचिषा आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुं अर्हति ॥३२॥

य	जिन्होंने	भगवते	भगवानको
आत्मस्थं	अपने भीतर स्थित	नमः	नमस्कार,
इदं	इस (जगत) को	स धर्मं	उन्हें धर्मकी
स्वेन रोचिषा	अपने ही तेजसे	पातुं	रक्षा करनी
व्यञ्जयामास	व्यक्त किया है	अर्हति	चाहिए ॥३२॥
तस्मै	उन		

स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ।
प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ।
तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥३३॥

स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरः दृष्ट्वा प्रजापतीन् प्रजापतिपतिः तन्वं तत्याज व्रीडितः तदा तां दिशः जगृहुः घोरां नीहारं यत् विदुः तमः ॥३३॥

स प्रजापति पतिः	उन प्रजापतियोंके स्वामी (ब्रह्माजी) ने	**तन्वं**	शरीरको
पुरः	अपने सम्मुख	**तत्याज**	छोड़ दिया
इत्थं गृणतः	ऐसा कहते	**तां घोरां**	उस घोर(शरीर)को
पुत्रान्	अपने पुत्र	**दिशः जगृहुः**	दिशाओंने ले लिया
प्रजापतीन्	प्रजापतियोंको	**यत् तमः**	जिस अँधेरेको
दृष्ट्वा	देखकर	**नीहारं**	कुहरा
तदा व्रीडितः	उस समय लज्जित होकर	**विदुः**	जाना जाता है ॥३३॥

कदाचिद् ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥३४॥

कदाचित् ध्यायतः स्रष्टुः वेदा आसन् चतुर्मुखात् कथं स्रक्ष्यामि अहं लोकान् समवेतान यथा पुरा ॥३४॥

कदाचित्	किसी समय	**समवेतान**	सुव्यवस्थित
स्रष्टुः	ब्रह्माजीके (यह)	**लोकान्**	लोकोंकी
ध्यायतः	चिन्तन करते समय कि—	**कथं स्रक्ष्यामि**	कैसे सृष्टि करूँ'
अहं यथा पुरा	'मैं जैसे पहिले थे (वैसे)	**चतुर्मुखात्**	चारों मुखोंसे
		वेदा	वेद
		आसन्	प्रकट हो गये ॥३४॥

चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह ।
धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥३५॥

चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रं उपवेद नयैः सह धर्मस्य पादाः चत्वारः तथा एव आश्रम वृत्तयः ॥३५॥

चातुर्होत्रं	चार (होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा) के द्वारा होनेवाला यज्ञके	**उपवेद**	उपवेद (आयुर्वेद, स्थापत्यवेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद)
कर्मतन्त्रं	कर्मका विस्तार	**नयैः सह**	नीति शास्त्रके साथ

धर्मस्य	धर्मके	आश्रम वृत्तयः	आश्रम एवं उनकी
पादाः चत्वारः	चारो पद		वृत्तियाँ ॥३५॥
तथा एव	वैसे ही		

विदुर उवाच–

स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन् मुखतोऽसृजत् ।
यद् यद् येनासृजद् देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥३६॥

स वै विश्वसृजां ईशः वेद आदीन् मुखतः असृजत् यत् यत् येन असृजत् देवः तत् मे ब्रूहि तपोधन ॥३६॥

तपोधन	तपोधन (मैत्रेयजी !)	असृजत्	उत्पन्न किया
		यत् यत्	जिस जिसको
स वै	वे ही	येन	जिस (मुख) से
विश्वसृजां ईशः	विश्व स्रष्टा (प्रजा- पतियों) के स्वामी हैं	देवः	ब्रह्मादेवने
		असृजत्	प्रकट किया
मुखतः	(अपने) मुखोंसे	तत् मे	वह मुझे
वेद आदीन्	वेद आदिको	ब्रूहि	बतलाइये ॥३६॥

मैत्रेय उवाच–

ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।
शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥३७॥

ऋक् यजुः साम अथर्व आख्यान् वेदान् पूर्व आदिभिः मुखैः शस्त्रं इज्यां स्तुति स्तोम प्रायश्चित्तं व्यधात् क्रमात् ॥३७॥

पूर्व आदिभिः	पूर्वसे प्रारम्भ करके	अथर्व	अथर्ववेद,
क्रमात्	क्रमशः	आख्यान्	नामवाले
मुखैः	मुखोंसे	शस्त्रं	शस्त्र (होताका कर्म)
ऋक्	ऋग्वेद,	इज्या	इज्या
यजुः	यजुर्वेद,		(अध्वर्युका कर्म)
साम	सामवेद,		

स्तुति स्तोम	स्तुति स्तोम (उद्गाताका कर्म)	प्रायश्चित्तं व्यधात्	प्रायश्चित (ब्रह्माका कर्म) का विधान किया ॥३७॥

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः ।
स्थापत्यं चासृजद् वेदं मात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥३८॥

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदं आत्मनः स्थापत्यं च असृजत् वेदं क्रमात् पूर्वादिभिः मुखैः ॥३८॥

पूर्वादिभिः	पूर्वसे प्रारम्भ करके	आत्मनः	अपने
क्रमात्	क्रमशः	गान्धर्वं वेदं	गान्धर्व वेद
मुखात्	मुखोंसे	च स्थापत्यं वेदं	और स्थापत्य वेदको
आयुर्वेदं	आयुर्वेद	असृजत्	बनाया (प्रकट किया) ॥३८॥
धनुर्वेदं	धनुर्वेद		

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥३९॥

इतिहास पुराणानि पञ्चमं वेदं ईश्वरः सर्वेभ्यः एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥३९॥

सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ	सर्वेभ्यः एव वक्त्रेभ्यः	सभी मुखोंसे ही
ईश्वरः	समर्थ (ब्रह्माजीने)	ससृजे	बनाये ॥३९॥
पञ्चमं वेदं	पाँचवें वेद		
इतिहास पुराणानि	इतिहास-पुराणोंको		

षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ ।
आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ॥४०॥

षोडशि उक्थौः पूर्व वक्त्रात् पुरीषः अग्निष्टुतः अथ आप्तोर्यामा अतिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ॥४०॥

पूर्व वक्त्रात्	(इसी प्रकार) पूर्वके मुखसे (प्रारम्भ करके)	षोडशि	षोडशी
		उक्थौ	उक्थ
		पुरीषः	चयन

अग्निष्टुतः	अग्निष्टोम	**सगोसवं**	गोसवके साथ (ये दो-दो वैदिक याग भी उत्पन्न हुए) ॥४०॥
आप्तोर्यामा	आप्तोर्यामा		
अतिरात्रौ च	अतिरात्र तथा		
वाजपेयं	वाजपेय		

विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च ।
आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥४१॥

विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्य इति पदानि च आश्रमः च यथा संख्यं असृजत् सह वृत्तिभिः ॥४१॥

विद्या	विद्या	**यथा संख्यं**	जैसी संख्या है (चार)
दानं	दान		
तपः	तप	**आश्रमन् च**	आश्रमोंको भी
सत्यं इति	सत्य ये	**वृत्तिभिः सह**	उनकी वृत्तियोंके साथ
धर्मस्य	धर्मके		
पदानि च	पदोंको तथा	**असृजत्**	(क्रमानुसार मुखोंसे) बनाया ॥४१॥

सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ।
वार्त्तासञ्चयशालीनशिलोञ्छ इति वै गृहे ॥४२॥

सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं च अथ बृहत् तथा वार्त्ता सञ्चय शालीन शिल उञ्छ इति वै गृहे ॥४२॥

सावित्रं	सावित्र (एक वर्षका ब्रह्मचर्य)		ब्रह्मचारीकी वृत्तियाँ हैं)
प्राजापत्यं	प्राजापत्य (वेदाध्ययन तक ब्रह्मचर्य)	**तथा वार्त्ता**	तथा वार्ता (अध्यापन)
च ब्राह्मं	तथा ब्राह्म (आयु-पर्यन्त ब्रह्मचर्य)	**संचय**	संचय (यज्ञादि कराना)
अथ बृहत्	तथा बृहत् (कृषि आदि वृत्ति ये चार	**शालीन**	शालीन (अयाचित वृत्ति)

शिल उञ्छ	शिल उञ्छ (खेतमें या बाजारमें अपने आप झड़े दानोंसे निर्वाह)	**इति वै गृहे**	ये तो (चार) गृहस्थ (ब्राह्मणकी वृत्तियाँ हैं ।) ॥४२॥

वैखानसा बालखिल्यौदुम्बराः फेनपा वने ।
न्यासे कुटीचकः पूर्वे बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥४३॥

वैखानसा बालखिल्या उदुम्बराः फेनपा वने न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदः हंस निष्क्रियौ ॥४३॥

वने	वनमें रहनेवाले (वानप्रस्थों) की	**फेनपा**	फेनप (दूधके फेनपर रहनेवाले; ये चार वृत्तियाँ हैं)
वैखानसा	वैखानस (बिना जोती भूमिसे उत्पन्न पदार्थसे निर्वाह)	**न्यासे**	संन्यासमें
		पूर्वं	पहिले
बालखिल्या	बाल खिल्य (नवीन अन्न मिलनेपर पुराना दान करने वाले)	**कुटीचकः**	कुटीचक (कुटिया बनाकर एक जगह रहनेवाले)
		बह्वोदः	बह्वोद (घूमनेवाले)
उदुम्बराः	उदुम्बरा (गूलरके फल खाकर रहने वाले)	**हंस**	हंस (ज्ञानाभ्यासी)
		निष्क्रियौ	निष्क्रिय (आजगर वृत्तिवाले) ॥४३॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च ।
एवं व्याहृतयश्चासन् प्रणवो ह्यस्य दहृतः ॥४४॥

आन्विक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिः तथा एव च एवं व्याहृतयः च आसन् प्रणवः हि अस्य दहृतः ॥४४॥

आन्वीक्षिकी	अध्यात्म विद्या,	**दण्डनीतिः**	दण्डनीति (राजनीति)
त्रयी	कर्मकाण्डात्मक वेद विद्या,	**तथा एव च**	उसी प्रकार ये चार वृत्तियाँ (उत्पन्न हुईं)
वार्ता	व्यापार-कृषि आदि,		

एवं	इसी प्रकार	दहतः	हृदयसे
व्याहृतयः	व्याहृतियाँ (भूः, भुवः, स्वः, महः)	प्रणवः हि	प्रणव भी
		आसन्	उत्पन्न हुआ ॥४४॥
अस्य	इन (ब्रह्माजी) के		

तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ।
त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थनः प्रजापतेः ॥४५॥

तस्य उष्णिक् आसीत् लोमभ्यः गायत्री च त्वचः विभोः त्रिष्टुप् मांसात् स्नुतः अनुष्टुप जगति अस्थनः प्रजापतेः ॥४५॥

तस्य प्रजापतेः	उन प्रजापतिके	त्रिष्टुप्	त्रिष्टुप्
लोमभ्यः	रोमोंसे	स्नुतः	स्नायुओंसे
उष्णिक्	उष्णिक*	अनुष्टुप	अनुष्टुप
विभोः	उन विभुके	अस्थनः	अस्थिसे
त्वचः	त्वचासे	जगति	जगती
गायत्री च	गायत्री तथा	आसीत्	हुई ।४५॥
मांसात्	मांससे		

मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ।
स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥४६॥

मज्जायाः पंक्तिः उत्पन्ना बृहती प्राणतः अभवत् स्पर्शः तस्य अभवत् जीवः स्वरः देह उदाहृतः ॥४६॥

मज्जायाः	मज्जासे	स्पर्शः	स्पर्श वर्ण (क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्गके अक्षर)
पंक्तिः	पंक्ति		
उत्पन्ना	उत्पन्न हुई		
प्राणतः	प्राणसे		
बृहती	वृहती	देह	देह
अभवत्	हुई	स्वरः	स्वर वर्ण (अकारादि)
तस्य जीवः	उनका जीव		
		उदाहृतः	कहलाया ॥४६॥

---

* ये सब ७ वैदिक छन्द हैं ।

ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तःस्था बलमात्मनः ।
स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥

ऊष्माणं इन्द्रियाण्याहुः अन्तस्था बलं आत्मनः स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥

इन्द्रियाणि	(ब्रह्माजीकी) इन्द्रियाँ	**प्रजापतिः**	प्रजापतिके
ऊष्माणं	ऊष्मवर्ण (शष सह)	**विहारेण**	विहार (क्रिया) से
आत्मनः बलं	(उनका) आन्तरिक बल	**सप्त स्वराः**	(निषाद, ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत, पंचम) ये सात स्वर
अन्तस्थाः	अन्तस्थ वर्ण (य र ल व)	**भवन्ति स्म**	उत्पन्न होते हैं ॥४७॥

विशेष—

ब्रह्माजी वेद गर्भ वेदमूर्ति हैं, अतः उनके अंग तथा क्रियाका कौनसा भाग क्या है, यह विवरण है।

शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ।
ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥४८॥

शब्द ब्रह्म आत्मनः तस्य व्यक्त अव्यक्त आत्मनः परः ब्रह्म अवभाति विततः नाना शक्ति उपबृंहितः ॥४८॥

शब्द ब्रह्म	वेद	**आत्मनः परः**	(उनके इन) अपने रूपोंसे परे
आत्मनः	स्वरूप	**नाना शक्ति**	अनेक शक्तियोंसे
तस्य	उन (ब्रह्माजी) का	**उपबृंहितः**	युक्त
व्यक्त	(वैखरी रूप) प्रकट	**विततः**	व्यापक
अव्यक्त	(प्रणव रूप) अव्यक्त है	**ब्रह्म**	परब्रह्म
		अवभाति	भासमान है। ४८॥

ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ।
ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥४९॥

ततः अपरां उपादाय स सर्गाय मनः दधे ऋषीणां भूरि वीर्याणां अपि सर्गं अविस्तृतम् ॥४९॥

भूरि वीर्याणां	बहुत शक्तिशाली	स ततः	उन (ब्रह्माजी) ने तब
ऋषीणां	ऋषियों मरीचि आदि) से	अपरां	दूसरा (शरीर)
अपि सर्गं	भी सृष्टि	उपादाय	ग्रहण करके
अविस्तृतं	न बढ़ती (देखकर)	सर्गाय	सृष्टि करनेका
		मनः दधे	मन किया ॥४९॥

ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव ।
अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥५०॥

ज्ञात्वा तत् हृदये भूयः चिन्तयामास कौरव अहो अद्भुतं एतत् मे व्यापृतस्य अपि नित्यदा ॥५०॥

कौरव	विदुर !	चिन्तयामास	सोचने लगे—
तत्	उन (ऋषियों) के	अहो एतत्	अहो यह
हृदये	हृदयकी स्थिति (वैराग्य)	अद्भुतं	आश्चर्य है कि
		मे नित्यदा	मेरे सर्वदा
ज्ञात्वा	जानकर	व्यापृतस्य	प्रयत्न करने
भूयः	फिर	अपि	पर भी ॥५०॥

न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् ।
एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥५१॥

न हि एधन्ते प्रजा नूनं दैवं अत्र विघातकं एवं युक्त कृतः तस्य दैवं च अवेक्षतः तदा ॥५१॥

हि प्रजा	क्योंकि प्रजा	विघातकं	बाधा डालनेवाला है
न एधन्ते	नहीं बढ़ रही है	एवं	इस प्रकार
नूनं	निश्चय	युक्त कृतः	उपयुक्त क्रिया करनेवाले
अत्र	इस विषयमें		
दैवं	दैव	तस्य	उन (ब्रह्माजी) के

तदा	उस समय	अवेक्षतः	सम्बन्धमें विचार
दैवं	दैवके		करते ॥५१॥

कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ।
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥५२॥

कस्य रूपं अभूत् द्वेधा यत् कायं अभिचक्षते ताभ्यां रूप विभागाभ्यां मिथुनं सम पद्यत ॥५२॥

कस्य रूपं	ब्रह्माजीका रूप	ताभ्यां	उन
द्वेधा	दो भागोंमें	रूप विभागाभ्यां	रूपके विभागों
अभूत्	हो गया		(टुकड़ों) से
यत् कायं	जिससे (उसे) काया	मिथुनं	जोड़ा (स्त्री-पुरुषका)
अभिचक्षते	कहते हैं ।	सम पद्यत	प्रकट हुआ ॥५२॥

यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् ।
स्त्रीयाऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥५३॥

यः तु तत्र पुमान् सः अभूत् मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् स्त्री या आसीत् शतरूपाख्या महिषी अस्य महात्मनः ॥५३॥

तत्र यः तु	उनमें जो तो	या शतरूपाख्या	जो शतरूपा
पुमान्	पुरुष था		नामवाली
सः स्वराट्	वह सार्वभौम	स्त्री आसीत्	स्त्री थी
	सम्राट्	अस्य महात्मनः	इन महात्मा
स्वायम्भुवः मनुः	स्वायम्भू मनु		(मनु) की
अभूत	हुए	महिषी	महारानी
			(हुई) ॥५३॥

तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ।
स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥५४॥

तदा मिथुन धर्मेण प्रजा हि एधां बभूविरे स च अपि शतरूपायां पञ्च अपत्यान् अजीजनत् ॥५४॥

तदा	तबसे	स च अपि	उन (मनु) ने भी
मिथुन धर्मेण	मिथुन धर्मेण (स्त्री-पुरुष संभोग)से	शतरूपायां	शतरूपामें
		पञ्च	पाँच
प्रजा हि	प्रजाकी	अपत्यान्	सन्तानें
एधां बभूविरे	वृद्धि होने लगी ।	अजीजनत्	उत्पन्न कीं ॥५४॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥५५॥

प्रियव्रत उत्तानपादौ तिस्रः कन्याः च भारत आकूतिः देवहूतिः च प्रसूतिः इति सत्तम ॥५५॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ	तिस्रः कन्याः च	तथा तीन कन्याएँ
भारत	विदुर !	आकूतिः	आकूति
प्रियव्रत	प्रियव्रत	देवहूतिः च	देवहूति और
उत्तानपादौ	उत्तानपाद (ये दो पुत्र)	प्रसूतिः इति	प्रसूति इन (नामों) की ॥५५॥

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥५६॥

आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमां दक्षायादात् प्रसूतिं च यत् आपूरितं जगत् ॥५६॥

आकूतिं	आकूतिको	प्रसूतिं	प्रसूतिको
रुचये	रुचिको	दक्षायादात्	दक्षको दिया
मध्यमां तु	बीचकी (देवहूति) को तो	यत् जगत्	जिनसे (जिनकी सन्ततिसे) संसार
कर्दमाय	कर्दमको	आपूरितं	भर गया ॥५६॥
प्रादात् च	दिया तथा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ।
भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥१॥

निशम्य वाचं वदतां मुनेः पुण्यतमां नृप भूयः पप्रच्छ कौरव्यः वासुदेव कथा आदृतः ॥१॥

नृप	राजन् !	**वासुदेव कथा**	भगवान वासुदेवकी कथाके
मुनेः	मुनि मैत्रेयको	**आदृतः**	प्रति आदर रखनेवाले
पुण्यतमां	परमपुण्यमयी	**कौरव्यः**	विदुरने
वाचं वदतां	वाणी कहते	**भूयः पप्रच्छ**	फिर पूछा ॥१॥
निशम्य	सुनकर		

विदुर उवाच-

स वै स्वायम्भुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयम्भुवः ।
प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥२॥

स वै स्वायम्भुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयम्भुवः प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततः मुने ॥२॥

मुने	मुने !	**स्वायम्भुवः**	स्वायम्भूने
स वै	वे तो	**प्रियां पत्नीं**	प्रिय पत्नीको
स्वयम्भुवा	ब्रह्माजीके	**प्रतिलभ्य**	पाकर
प्रियः पुत्रः	प्रिय पुत्र थे (उन)	**ततः किं चकार**	तब क्या किया ?॥२॥
सम्राट्	सम्राट्		

चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ।
ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥३॥

चरितं तस्य राजर्षेः आदिराजस्य सत्तम ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्क्सेन आश्रयः हि असौ ॥३॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ !	**मे श्रद्दधानाय**	मुझ श्रद्धालुसे
तस्य		**ब्रूहि**	कहिए
आदिराजस्य	उन आदिराज	**हि असौ**	क्योंकि ये
राजर्षेः	राजर्षिका	**विष्क्सेन**	भगवान नारायणकी
चरितं	चरित	**आश्रयः**	शरण लिए थे ।३॥

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य
नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ।
यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द-
पादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥४॥

श्रुतस्य पुंसां सुचिर श्रमस्य ननु अञ्जसा सूरिभिः ईडितः अर्थः यत् तत् गुण अनुश्रवणं मुकुन्द पादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥४॥

पुंसां	पुरुषोंका	**यत्**	जो है (वह)
सुचिर	बहुत समय तक	**येषां**	जिनके
श्रुतस्य	शास्त्राध्यनके	**हृदयेषु**	हृदयमें
श्रमस्य	परिश्रमका	**मुकुन्द**	भगवान मुकुन्दके
अर्थः	प्रयोजन	**पादारविन्दं**	चरण-कमल हैं
ननु	निश्चय	**तत्**	उनके
सूरिभिः	विद्वानों द्वारा	**गुण अनुश्रवणं**	गुणोंको बार-बार सुनना ॥४॥
ईडितः	प्रशंसित		

श्रीशुक उवाच–

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं
सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ।
प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां
प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥५॥

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णः चरण उपधानं प्रहृष्ट रोमा भगवत् कथायां प्रणीयमानः मुनिः अभ्यचष्ट ॥५॥

इति	इस प्रकार	**ब्रुवाणं**	कहनेपर
सहस्रशीर्ष्णः	सहस्रशीर्षा भगवानके	**भगवत् कथायां**	भगवानकी कथाकी
चरण उपधानं	चरणाश्रित	**प्रणीयमानः**	प्रेरणा पाकर
विनीतं	विनयी	**प्रहृष्ट रोमा**	हर्षसे रोमांचित
विदुरं	विदुरजीके	**मुनिः**	मैत्रेयजी
		अभ्यचष्ट	बोले ॥५॥

मैत्रेय उवाच–

यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायम्भुवो मनुः ।
प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥६॥

यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायम्भुवः मनुः प्राञ्जलिः प्रणतः च इदं वेदगर्भं अभाषतः ॥६॥

यदा	जब	**प्राञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
स्वभार्यया	अपनी पत्नीके	**प्रणतः च**	प्रणाम करके तब
साकं	साथ	**वेदगर्भं**	ब्रह्माजीसे
स्वायम्भुवः	स्वायम्भू	**इदं अभाषत**	यह बोले ॥६॥
मनुः जातः	मनु उत्पन्न हुए		

मनुरुवाच–*

त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद् वृत्तिदः पिता ।
अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥७॥

त्वं एकः सर्वभूतानां जन्मकृत् वृत्तिदः पिता अथ अपि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केनवा भवेत् ॥७॥

त्वं एकः	आप अकेले ही	**जन्मकृत्**	जन्म देनेव ले(तथा)
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंको	**वृत्तिदः**	आजीविका देनेवाले

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

पिता	पिता हैं	ते शुश्रूषा	आपकी सेवा
अथ अपि	फिर भी	केनवा	किस प्रकारसे
नः प्रजानां	हम सन्तानोंसे	भवेत्	होगी ॥७॥

तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ।
यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद् गतिः ॥८॥

तत् विधेहि नमः तुभ्यं कर्मसु ईड्य आत्मशक्तिषु यत् कृत्वा इह यशः विष्वक् अमुत्र च भवेत् गतिः ॥८॥

ईड्य	पूज्य !	आत्मशक्तिषु	अपनी शक्तिके अनुसार
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार	कृत्वा	करके
तत् कर्मसु	उस कर्मका	इह	इस लोकमें
विधेहि	विधान कीजिए (आज्ञा दीजिए)	विष्वक् यशः	चारों ओर यश हो
यत्	जिसे	च अमुत्र	तथा परलोकमें
		गतिः भवेत्	सद्गति हो ॥८॥

ब्रह्मोवाच–

प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर ।
यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनार्पितम् ॥९॥

प्रीतः तुभ्यं अहं तात स्वस्ति तात् वां क्षितीश्वर यत् निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मे इति आत्मानं अर्पितः ॥९॥

तात	तात !	निर्व्यलीकेन	निष्कपट
तुभ्यं	तुमसे	हृदा	हृदयसे
अहं प्रीतः	मैं प्रसन्न हुआ ।	'मां शाधि'	'मुझे आज्ञा दीजिए'
क्षितीश्वर	राजन् !	इति मे	यह (कहकर) मुझे
वां	तुम्हारा	आत्मानं	अपने आपको
स्वस्ति	कल्याण हो	अर्पितः	अर्पित किया है ॥९॥
यत्	क्योंकि		

एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ।
शक्त्याप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥१०॥

एतावता आत्मजैः वीर कार्या हि अपचितिः गुरौ शक्त्या अप्रमत्तैः गृह्येत सादरं गत मत्सरः ॥१०॥

वीर हि	वीर ! क्योंकि	अप्रमत्तैः	प्रमादरहित होकर
एतावता	इतना ही	मत्सरः	ईर्षा
आत्मजैः	पुत्रोंको	गत	त्यागकर
गुरौ	पिताकी	सादरं	आदर सहित
अपचितिः	सेवा	गृह्येत	(उनकी आज्ञा)
कार्या	करनी चाहिए		स्वीकार करे ॥१०॥
शक्त्या	शक्तिके अनुसार		

स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः ।
उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

स त्वं अस्यां अपत्यानि सदृशान् आत्मनः गुणैः उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

स त्वं	वह तुम	धर्मेण	धर्मपूर्वक
अस्यां	इस (अपनी पत्नी)में	गां शास	पृथ्वीका शासन करो
गुणैः	गुणोंमें		(तथा)
आत्मनः सदृशं	अपने समान	यज्ञैः	यज्ञों द्वारा
अपत्यानि	पुत्रोंको	पुरुषं यज	परम पुरुषका यजन
उत्पाद्य	उत्पन्न करके		करो ॥११॥

परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप ।
भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥१२॥

परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात् प्रजारक्षया नृप भगवान् ते प्रजाभर्तुः हृषीकेशः अनुतुष्यति ॥१२॥

नृप	राजन् !	मह्यं	मेरी
प्रजारक्षया	प्रजाकी रक्षासे ही	परं शुश्रूषणं	परम सेवा

स्यात्	होगी (और)	हृषीकेशः	हृषीकेश
ते प्रजाभर्तुः	तुम प्रजापालकपर	अनुतुष्यति	सन्तुष्ट होंगे ॥१२॥
भगवान्	भगवान्		

येषां न तुष्टो भगवान् यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ।
तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥१३॥

येषां न तुष्टः भगवान् यज्ञलिङ्गः जनार्दनः तेषां श्रमः हि अपार्थाय यत् आत्मा न आदृतः स्वयम् ॥१३॥

हि येषां	क्योंकि जिनपर	अपार्थाय	व्यर्थ बातोंके लिए है
यज्ञलिङ्गः	यज्ञस्वरूप	यत् स्वयं	क्योंकि स्वयं
भगवान्	भगवान्	आत्मा	(अपने) आत्मस्वरूप
जनार्दनः	जनार्दन		(भगवान) का
तुष्टः न	सन्तुष्ट नहीं हुए	आदृतः न	आदर नहीं
तेषां	उनका		किया ॥१३॥
श्रमः	(सब) परिश्रम		

मनुरुवाच–

आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ।
स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥

आदेशे अहं भगवतः वर्तेय अमी अवसूदन स्थानं तु इह अनुजानिहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥

अवसूदन	पापनाशक	तु प्रजानां	किन्तु (मेरी)
प्रभो	प्रभो !		सन्तानों
भगवतः	आपकी	च मम	और मेरे लिए भी
आदेशे	आज्ञाके अनुसार	इह स्थान	यहाँ (रहनेका)
अहं वर्तेय	मैं बर्ताव करूँगा		स्थान
		अनुजानीहि	बतलाइये ॥१४॥

यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि ।
अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥

यत् ओकः सर्व सत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि अस्या उद्धरणे यत्नः देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥

सर्व सत्वानां	सब प्राणियोंकी	देव	देव !
यत् ओकः	जो निवास	अस्या देव्या	इस (पृथ्वी) देवीके
मही	पृथ्वी (थी)	उद्धरणे	ऊपर उठानेका
महाम्भसि	प्रलय जलमें	यत्नः	प्रयत्न
मग्ना	डूब गयी है	विधीयतां	कीजिए ॥१५॥

मैत्रेय उवाच–

परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् ।
कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥१६॥

परमेष्ठी तु अपां मध्ये तथा सन्नां अवेक्ष्य गां कथं एनं समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥१६॥

परमेष्ठी तु	ब्रह्माजी तो	समुन्नेष्य	ऊपर लाऊँगा
अपां मध्ये	जलमें	इति धिया	इसको बुद्धिसे
तथा सन्नां	वैसे ही डूबी	चिरं दध्यौ	देर तक सोचते
गां अवेक्ष्य	पृथ्वीको देखकर		रहे ॥१६॥
एनं कथं	इसको कैसे		

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता ।
अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ।
यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥१७॥

सृजतः मे क्षितिः वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता अथ अत्र किं अनुष्ठेयं अस्माभिः सर्गयोजितैः यस्य अहं हृदयात् आसं स ईशः विदधातु मे ॥१७॥

मे सृजतः	मेरे सृष्टिमें लगनेपर	प्लाव्यमाना	डुबाये जानेपर
क्षितिः	पृथ्वी	रसां गता	रसातल चली गयी,
वार्भि.	जलसे	सर्गयोजितैः	सृष्टि कार्यमें नियुक्त

अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	अहं आसं	मैं उत्पन्न हुआ हूँ
अथ अत्र	अब इस विषयमें	स ईशः	वही ईश्वर
किं अनुष्ठेयं	क्या किया जाना चाहिए	मे विदधातु	मेरा (यह कार्य) सम्पन्न करें ॥१७॥
यस्य हृदयात्	जिनके सङ्कल्पसे		

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ ।
वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥

इति अभिध्यायतः नासा विवरात् सहसा अनघ वराह तोकः निरगात् अंगुष्ठ परिमाणकः ॥१८॥

अनघ	निष्पाप (विदुर)	नासा विवरात्	नाकके छिद्रसे
इति	इस प्रकार	सहसा	अचानक
अभिध्यायतः	चिन्ता करते हुए (ब्रह्माजीकी)	अंगुष्ठ परिमाणकः	अंगूठेके बराबर
		वराह तोकः	सुअरका बच्चा
		निरगात्	निकला ॥१८॥

तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत ।
गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥१९॥

तस्य अभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत गजमात्रः प्रववृधे तत् अद्भुतं अभून् महत् ॥१९॥

भारत	विदुर !	क्षणेन किल	क्षण भरमें ही
तस्य	उन (ब्रह्माजी) के	गजमात्रः	हाथीके बराबर
अभिपश्यतः	देखते-देखते	प्रववृधे	बढ़ गया
खस्थः	आकाशमें स्थित (वह)	तत् महत्	यह बड़ा
		अद्भुतं अभून्	आश्चर्य हुआ ॥१९॥

मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ।
दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥

मरीचि प्रमुखैः विप्रैः कुमारैः मनुना सह दृष्ट्वा तत् सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥

तत्	वह
सौकरं रूपं	वाराह रूप
दृष्ट्वा	देखकर
मरीचि प्रमुखैः	मरीचि आदि मुख्य
विप्रैः	ब्राह्मणों
कुमारैः	सनकादि कुमार (तथा)
मनुना सह	मनुके साथ (ब्रह्माजी)
चित्रधा	अनेक प्रकारके
तर्कयामास	तर्क करने लगे ।२०।।

किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ।
अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥

किं एतत् सौकर व्याजं सत्त्वं दिव्यं अवस्थितं अहो बत आश्चर्यं इदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥

सौकर व्याजं	सूकरके बहानेसे
अवस्थितं	खड़ा
एतत् दिव्यं सत्त्वं	यह दिव्य प्राणी
किं	कौन है ?
अहो इदं बत	अहो यह तो
आश्चर्यं	आश्चर्य है कि
मे नासाया	मेरी नासिकासे
विनिःसृतं	निकला है ॥२१॥

दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः ।
अपि स्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥२२॥

दृष्टः अंगुष्ठ शिरोमात्रः क्षणात् गण्डशिला समः अपि स्वित् भगवान् एष यज्ञः मे खेदयन् मनः ॥२२॥

अंगुष्ठ शिरोमात्रः	अंगूठेके सिरके बराबर
दृष्टः	दिखाई पड़ा
क्षणात्	क्षण भरमें
गण्डशिला समः	भारी शिलाके बराबर (हो गया)
अपि स्वित्	अवश्य ही
मे मनः	मेरे मनको
खेदयन्	मोहित करते
एष भगवान्	ये भगवान
यज्ञः	यज्ञमूर्ति हैं ॥२२॥

इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः ।
भगवान् यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥२३॥

इति मीमांसतः तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः भगवान् यज्ञ पुरुषः जगर्ज अगेन्द्र सन्निभः ॥२३॥

इति	इस प्रकार	**भगवान् यज्ञ पुरुषः**	भगवान् यज्ञ पुरुष
सूनुभिः सह	पुत्रोंके साथ	**अगेन्द्र सन्निभः**	महापर्वतके समान होकर
तस्य ब्रह्मणः	उन ब्रह्माजीके	**जगर्ज**	गरजने लगे ॥२३॥
मीमांसतः	सोचते समय		

ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् ।
स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥२४॥

ब्रह्माणं हर्षयामास हरितान् च द्विजोत्तमान् स्व गर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥२४॥

विभुः	सर्वव्यापक (भगवान) ने	**ब्रह्माणं च हरितान्**	ब्रह्माको तथा
स्व गर्जितेन	अपनी गर्जनासे	**द्विजोत्तमान्**	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको
ककुभः	दिशाओंको	**हर्षयामास**	हर्षित किया ॥२४॥
प्रतिस्वनयता	प्रतिध्वनित करके		

निशम्य ते घर्घरितं स्वखेद-
क्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ।
जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते
त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन् स्म ॥२५॥

निशम्य ते घर्घरितं स्वखेद क्षयिष्णु मायामय सूकरस्य जनः तपः सत्य निवासिनः ते त्रिभिः पवित्रैः मुनयः अगृणन् स्म ॥२५॥

स्वखेद	अपने खेदको	**निशम्य ते**	सुनकर वे
क्षयिष्णु	दूर करने वाले	**जनः तपः सत्य**	जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक
मायामय	मायामय		
सूकरस्य	वाराहकी	**निवासिनः**	निवासी
घर्घरितं	घुरघुराहटको	**मुनयः**	मुनिगण

त्रिभिः	तीनों वेदोंकी	अगृणन् स्म	स्तुति करने
पवित्रैः	पवित्र (स्तुतियोंसे)		लगे ॥२५॥

तेषां सतां वेदवितानमूर्ति-
ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ।
विनद्य भूयो विबुधोदयाय
गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥२६॥

तेषां सतां वेदवितानमूर्तिः ब्रह्म अवधार्य आत्मगुण अनुवादं विनद्य भूयः विबुध उदयाय गजेन्द्रलीलः जलं आविवेश ॥२६॥

तेषां सतां	उन सन्तोंकी	भूयः विनद्य	फिर गर्जना करके
ब्रह्म	वैदिक (स्तुति)	विबुध उदयाय	देवताओंके अभ्युदय के लिए
आत्मगुण अनुवादं	अपने गुणोंका वर्णन	गजेन्द्रलीलः	गजेन्द्रके समान लीला करते
अवधार्य	सुनकर		
वेदवितानमूर्तिः	वैदिक विस्तार (यज्ञ) की मूर्ति (वाराह)	जलं आविवेश	जलमें घुसे ॥२६॥

उत्क्षिप्तबालः खचरः कठोरः
सटा विधुन्वन् खररोमशत्वक् ।
खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षा-
ज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ॥२७॥

उत्क्षिप्त बालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन् खर रोमशः त्वक् खुर आहत अभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षा ज्योतिः बभासे भगवान् महीध्रः ॥२७॥

महीध्रः	पर्वतके समान	कठोरः	कठोर
भगवान्	भगवान्	सटा विधुन्वन्	गर्दनके बालोंको फटकारते थे
बालः उत्क्षिप्त	पूंछ उठाकर		
खचरः	आकाशमें उछले	त्वक्	(उनकी) त्वचा

खर रोमशः	कड़े रोमोंसे भरी थी	ज्योतिः ईक्षा	ज्योतिवाले नेत्रोंसे
खुर आहतअभ्रः	खुरोंसे मेघोंको छितरा रहे थे	बभासे	शोभित हो रहे थे ॥२७॥
सितदंष्ट्र	श्वेत दाढ़ें थीं		

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्
क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्या-
मुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत्कम् ॥२८॥

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयं अध्वर अङ्ग करालदंष्ट्रः अपि अकराल दृग्भ्यां उद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतः अविशत् कम् ॥२८॥

अङ्गः		अकराल	सौम्य
स्वयं अध्वर	स्वयं यज्ञ-पुरुष	दृग्भिः	दृष्टिसे
क्रोडापदेशः	वाराह रूप धरे	गृणतः विप्रान्	स्तुति करते ब्राह्मणोंको
पृथ्व्याः पदं	पृथ्वीका स्थान	उद्वीक्ष्य	देखकर
घ्राणेन	नाकसे	कं आविशत्	जलमें प्रविष्ट हुए ॥२८॥
विजिघ्रन्	सूँघते हुए		
कराल दंष्ट्रः अपि	भयानक दाढ़ोंवाले होनेपर भी		

स वज्रकूटाङ्गनिपातवेग-
विशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ।
उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्त-
श्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥२९॥

स वज्रकूट अङ्ग निपात वेग विशीर्ण कुक्षिः स्तनयन् उदन्वान् उत्सृष्ट दीर्घ ऊर्मि भुजैः इव आर्त चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मे इति ॥२९॥

स	उनके	कुक्षिः	पेट
वज्रकूट	वज्र पर्वतके समान	विशीर्ण	फटा
अङ्ग निपात	अङ्गके गिरनेके	स्तनयन्	होगया (ऐसा)
वेग	वेगसे	उदन्वान्	समुद्र

दीर्घ ऊर्मि भुजैः	ऊँची लहरों रूपी भुजाओंको	यज्ञेश्वर	यज्ञेश्वर !
उत्सृष्ट इव	उठाकर मानो	मे पाहि	मेरी रक्षा करो
आर्त	व्याकुल होकर	इति चुक्रोश	इस प्रकार चिल्ला उठा ॥२९॥

खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽऽप
उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ।
ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे
यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥

खुरैः क्षुरप्रैः दरयन् तत् आप उत्पार पारं त्रिपरू रसायां ददर्श गां तत्र सुषुप्सुः अग्रे यां जीवधानीं स्वयं अभ्यधत्त ॥३०॥

क्षुरप्रैः	छुरेके समान तीक्ष्ण	अग्रे सुषुप्सुः	पहिले (प्रलय कालमें) सोते समय
खुरैः	खुरोंसे	यां जीवधानीं	जिस जीवोंकी आश्रय भूताको
तत् आप	उस (समुद्र) के जलको	स्वयं अभ्यधत्त	स्वयं अपने भीतर धर लिया था (उस)
दरयन्	फाड़ते हुए	गां	पृथ्वीको
उत्पार पारं	अपार (सागर) के पार	तत्र ददर्श	वहां देखा ॥३०॥
त्रिपरू	तीसरे अधोलोक		
रसायां	रसातलमें		

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां
स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ।
तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं
सुनाभसन्दीपिततीव्रमन्युः ॥३१॥

स्व दंष्ट्रया उद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः तत्र अपि दैत्यं गदया आपतन्तं सुनाभ संदीपित तीव्र मन्युः ॥३१॥

स्व दंष्ट्रया	अपनी दाढ़पर	महीं	पृथ्वीको
निमग्नां	डूबी हुई	रसायाः	रसातलसे

उद्धृत्य	उठाकर	आपतन्तं	झपटकर आक्रमण करते
स उत्थितः	वे उठते हुए (वाराह)	दैत्यं	दैत्य (हिरण्याक्ष)को
संरुरुचे	अत्यन्त शोभित हुए	सुनाभ संदीपित	चक्रके समान प्रज्वलित
तत्र अपि	वहाँ भी	तीव्र मन्युः	प्रचण्ड क्रोध करके ॥३१॥
गदया	गदा लेकर		

जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं
स लीलयेभं मृगराडिवाम्भसि ।
तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो
यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥

जघान रुन्धानं असह्य विक्रमं स लीलया इभं मृगराट् इव अम्भसि तद् रक्त पङ्क अङ्कित गण्ड तुण्डः यथा गजेन्द्रः जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥

अम्भसि	जलमें	पङ्क अङ्कित	कीचसे चिह्नित
रुन्धानं	रोकते हुए	गण्ड तुण्डः	कपोल और थूथन
असह्य विक्रमं	असह्य पराक्रम (उस दैत्यको)	यथा	(ऐसे लगे) जैसे
स लीलया	उन्होंने खेलमें ही	गजेन्द्रः	गजेन्द्र
इभं	हाथीको	जगतीं	(लाल मिट्टीके) टीलेको
मृगराट् इव	सिंहके समान	विभिन्दन्	टक्कर मार आया हो ॥३२॥
जघान	मार दिया,		
तद् रक्त	उसके रक्तकी		

तमालनीलं सितदन्तकोट्या
क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाङ्गः ।
प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकै-
र्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥३३॥

तमाल नीलं सित दंष्ट्र कोट्या क्ष्मां उत्क्षिपन्तं गजलीलया अङ्ग प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयः अनुवाकैः विरञ्चि मुख्याः उपतस्थुः ईशम् ॥३३॥

अङ्ग	विदुर !
गजलीलया	हाथीके समान खेलमें
तमाल नीलं	तमालके समान श्याम (अङ्ग)
सित दंष्ट्र कोट्या	श्वेत दाँतोंकी नोकपर
क्ष्मां उत्क्षिपन्तं	पृथ्वीको ऊपर उठाये
ईशं प्रज्ञाय	(वाराहको, ईश्वर जानकर
विरञ्चि मुख्याः	ब्रह्मादि (सब) प्रमुख
अनुवाकैः	वेदमन्त्रोंसे
उपतस्थुः	स्तुति करने लगे ॥३३॥

ऋषय ऊचुः—

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन
त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरा-
स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥३४॥

जितं जितं ते अजित यज्ञ भावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः यत् रोमगर्तेषु निलिल्युः अध्वराः तस्मै नमः कारण सूकराय ते ॥३४॥

अजित	(भगवान्) अजित्
ते जितं जितं	आपकी जय हो, जय हो,
यज्ञ भावन	यज्ञ रक्षक !
स्वां त्रयीं तनुं	अपने वेदमय शरीरको
परिधुन्वते	कँपते हुए
नमः	(आपको) नमस्कार,
यत् रोमगर्तेषु	जिसके रोम कूपोंमें
अध्वरा निलिल्युः	सब यज्ञ समाये हैं
तस्मै	उन
कारण सूकराय	प्रयोजनवश वाराह बने
ते नमः	आपको नमस्कार ॥३५॥

रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां
दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोम-
स्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

रूपं तव एतत् ननु दुष्कृत आत्मनां दुर्दर्शनं देव यत् अध्वरात्मकं छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हि रोमसु आज्यं दृशि अङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

देव	देव !
तव	आपका
एतत् रूपं	यह रूप
ननु	निश्चय
दुष्कृत आत्मनां	पापियोंके लिए
दुर्दर्शनं	अत्यन्त कठिनतासे दीखने वाला है
यत् अध्वरात्मकं	क्योंकि यज्ञस्वरूप है,
यस्य त्वचि	जिसकी त्वचामें
छन्दांसि	छन्द (गायत्री आदि)
रोमसु	रोमोंमें
बर्हि	कुश
दृशि	आँखोंमें
आज्यं	घृत
अङ्घ्रिषु	चारों पैरोंमें
चातुर्होत्रं	चार (ब्रह्मा, अध्वर्यु, ऋत्विक, उद्गाता) द्वारा होनेवाला यज्ञीय कर्म है ॥३५॥

स्रुक्तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयो-
रिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते
यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३६॥

स्रुक् तुण्ड आसीत् स्रुव ईश नासयोः इडा उदरे चमसाः कर्णरन्ध्रेः प्राशित्रं आस्ये ग्रसने ग्रहाः अस्तु ते यत् चर्वणं ते भगवन् अग्निहोत्रम् ॥३६॥

ईश	ईश !
तुण्ड	थूथनमें
स्रुक्	स्रुक् (यज्ञपात्र)
नासयोः	नासिका छिद्रोंमें
स्रुव	स्रुवा
उदरे	पेटमें
इडा	इडा (यज्ञीय भक्षण पात्र)
कर्णरन्ध्रे	कानोंके छिद्रमें
चमसाः आसीत्	चमस है
आस्ये	मुखमें
प्राशित्रं	प्राशित्र (ब्रह्मभाग पात्र)
ते ग्रसने	आपके कण्ठ छिद्रमें
ग्रहाः अस्तु	सोमपात्र हो,
भगवन्	भगवन् !
यत् ते चर्वणं	आपका जो चबाना है
अग्निहोत्रं	(वही) अग्निहोत्र है ॥३६॥

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं
त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः
सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥३७॥

दीक्षा अनुजन्म उपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीय उदयनीय दंष्ट्रः जिह्वा प्रवर्ग्यः तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यः अवसथ्यं चितयः असवः हि तेः ॥३७॥

क्रतोः	यज्ञस्वरूप भगवान् !	**तव जिह्वा**	आपकी जीभ
त्वं	आप (जो)	**प्रवर्ग्यः**	प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसदके पूर्व होने वाला 'महावीर' कर्म) है
अनुजन्म	बार-बार अवतार लेते हैं (वह)		
दीक्षा	दीक्षणीय इष्टि है,	**शीर्षकं**	मस्तक
शिरोधरं	सिरके नीचेका भाग (गर्दन)	**सभ्य**	सभ्य (होमरहित अग्नि) और
उपसदः	उपसद (तीन इष्टियाँ) हैं	**आवसथ्य**	आवसथ्य (उपासनीय अग्नि) है,
दंष्ट्रः	दाढ़ें		
प्रायणीय	प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) तथा	**ते असवः चितयः हि**	आपके प्राण चिति (इष्टका चयन) हैं ॥३७॥
उदयनीय	उदनीय यज्ञ समाप्ति की इष्टि) है,		

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः
संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धि-
स्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥३८॥

सोमः तु रेतः सवनानि अवस्थितिः संस्थाविभेदः तव देव धातवः सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिः त्वं सर्व यज्ञ क्रतुः इष्टि बन्धनः ॥३८॥

देव	देव !	**सोमः तु**	सोम ही है,
तव रेतः	आपका वीर्य	**अवस्थितिः**	बैठना

सवनानि	तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) सवन हैं,	**शरीरसन्धिः**	शरीरकी सन्धियाँ (जोड़)
		सर्वाणि सत्राणि	सब सत्र हैं,
धातवः	(शरीरकी सातो) धातुएँ	**त्वं सर्व**	आप सब
		यज्ञ	यज्ञ(सोमरहित याग)
संस्थाविभेदः	संस्थाओंके सातो भेद (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम) हैं	**क्रतु**	क्रतु (सोम सहित याग) हैं,
		बन्धनः	मांस पेशियाँ
		इष्टिः	(यज्ञानुष्ठान रूप) इष्टियाँ हैं ॥३८॥

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता-
द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावित-
ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥

नमो नमस्ते अखिल मन्त्र देवता द्रव्याय सर्व क्रतवे क्रिया आत्मने वैराग्य भक्त्या आत्मजय अनुभावित ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥

अखिल	समस्त	**भक्त्या**	भक्ति तथा
मन्त्र	मन्त्र	**आत्मजय**	चित्तको वश करके
देवता	देवता	**अनुभावित**	अनुभवमें आनेवाले
द्रव्याय	द्रव्य (पदार्थ)	**ज्ञानाय**	ज्ञानस्वरूप
सर्व क्रतवे	सब यज्ञ एवं	**विद्या गुरवे**	(सब) विद्याओंके आदि गुरु
क्रिया आत्मने	क्रिया स्वरूप		
नमो नमस्ते	आपको बार-बार नमस्कार	**नमो नमः**	(आपको) बार-बार नमस्कार ॥३९॥
वैराग्य	वैराग्य,		

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता
विराजते भूधर भूः सभूधरा ।

यथा वनान्निःसरतो दता धृता
मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥४०॥

दंष्ट्र अग्र कोट्या भगवन् त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा यथा वनात् निःसरतः दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्र पद्मिनी ॥४०॥

भूधर	पृथ्वीधारी	**विराजते**	(ऐसी) शोभित हो रही है
भगवन्	भगवन्	**यथा**	जैसे
दंष्ट्र अग्र कोट्या	दाढ़ोंकी अगली नोकपर	**वनात् निःसरतः**	वनसे निकलते हुए
त्वया धृता	आपके द्वारा उठायी गयी	**मतङ्गजेन्द्रस्य**	गजराजके
सभूधरा भूः	पर्वतोंके साथ पृथ्वी	**दता धृता**	दाँतोंपर रखी हुई
		सपत्र पद्मिनी	पत्तोंके साथ कमलिनी हो ॥४०॥

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं
भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा
कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥४१॥

त्रयीमयं रूपं इदं च सौकरं भूमण्डलेन अथ दता धृतेन ते चकास्ति शृङ्ग ऊढ घनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथा इव विभ्रमः ॥४१॥

		यथा इव	जैसे यह
भूमण्डलेन	भूमण्डलको	**कुलाचलेन्द्रस्य**	कुल पर्वत श्रेष्ठ (हिमालय) की
दता धृतेन	दाँतोंपर उठाये	**भूयसा घनेन**	सघन मेघोंके
ते इदं	आपका यह	**शृङ्ग ऊढ**	शिखरपर छानेसे
त्रयीमयं	वेदमय	**विभ्रमः**	शोभा होती है ॥४१॥
सौकरं रूपं	वाराह रूप		
चकास्ति	ऐसा शोभित हो रहा है		

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां
लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।

विधेम चास्यै नमसा सह त्वया ।
यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥४२॥

संस्थापय एनां जगतां स तस्थुषां लोकाय पत्नीं असि मातरं पिता विधेम च अस्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजः अग्नि इव अरण अवधाः ॥४२॥

एनां पत्नीं	इन अपनी पत्नीको	अरण अवधाः	रक्षा करनेकी सम्पूर्ण शक्ति रूप
जगतां	चर		
तस्थुषां स	अचरोंके साथ	अग्नि इव	अग्निके समान
लोकाय	सभी लोकोंके लिए	स्वतेजः	अपना तेज (आपने स्थापित किया है)
संस्थापय	स्थापित कीजिए		
मातरं	(ये सबकी) माता हैं	अस्यै च	इनको भी
पिता असि	(आप) पिता हैं,	सह त्वया	आपके साथ
यस्यां	जिनमें	नमसा विधेम	(हम) नमस्कार करते हैं ॥४२॥

कः श्रद्धीतान्यतमस्तव प्रभो
रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये
यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥४३॥

कः श्रद्धीत अन्यतमः तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणं न विस्मयः असौ त्वयि विश्वविस्मये यः मायया इदं ससृजे अति विस्मयम् ॥४३॥

प्रभो	प्रभो !	अति विस्मयं	अत्यन्त आश्चर्य रूप
रसां गताया	रसातल गयी	इदं ससृजे	इस (जगत) की सृष्टि की
भुवि	पृथ्वीके		
उद्विबर्हणे	निकालनेका	विश्वविस्मये	(उन) विश्वरूप परमाश्चर्य
तव अन्यतमः	आपको छोड़कर		
कः श्रद्धीत	कौन साहस कर सकता था	त्वयि	आपके लिए
		असौ	यह
यः मायया	जिन्होंने अपनी मायासे	विस्मयः न	आश्चर्यजनक नहीं है ॥४३॥

विधुन्वता वेदमयं निजं वपु-
र्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभि-
र्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥४४॥

विधुन्वता वेदमयं निजं वपुः जनः तपः सत्य निवासिनः वयं सटा-शिखोद्धूत शिव अम्बु विन्दुभिः विमृज्यमाना भृशं ईश पाविताः ॥४४॥

ईश	स्वामी !
वेदमयं	वेदमय
निजं वपुः	अपने शरीरको
विधुन्वता	कँपाते समय
सटा शिखोद्धूत	गरदनके बालोंसे उड़ती
शिव अम्बु बिन्दुभिः	पवित्र जलके छीटोंसे
विमृज्यमानाः	मार्जित होते
वयं	हम
जनः तपः सत्य निवासिनः	जन, तप, सत्यलोकके निवासी
भृशं पाविताः	अत्यन्त पवित्र किए गये हैं ॥४४॥

स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते
यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं
विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥४५॥

स वै बत भ्रष्टमतिः तव एष ते यः कर्मणां पारं अपार कर्मणः यत् योगमाया गुणयोग मोहितं विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥४५॥

तव	आप
अपार कर्मणः	जिनके कर्मोंका पार नहीं है
ते एष	आपके इस
कर्मणः पारं	कर्मोंका पार
यः	जो (चाहता है)
स वै बत	वह तो निश्चय
भ्रष्टमतिः	भ्रष्ट बुद्धि (मूर्ख) है
यत्	क्योंकि
योगमाया	(आपकी) योगमायाके
गुणयोग	गुणोंके संयोगसे
समस्तं विश्वं	पूरा विश्व
मोहितं	मोहित है
भगवन्	भगवन् !
शं विधेहि	(इसका) कल्याण कीजिये ॥४५॥

मैत्रेय उवाच–

इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥४६॥

इति उपस्थीयमानः तैः मुनिभिः ब्रह्मवादिभिः सलिले स्वखुर आक्रान्त उपाधत्त अविता अवनिम् ॥४६॥

इति तैः	इस प्रकार उन	**स्वखुर**	अपने खुरोंसे
ब्रह्मवादिभिः	वेदवादी	**आक्रान्त**	स्तम्भित किये
मुनिभिः	मुनियोंके	**सलिले**	जलपर
उपस्थीयमानः	स्तुति करनेपर	**अवनिम्**	पृथ्वीको
अविता	सबके रक्षक (भगवान) ने	**उपाधत्त**	स्थापित कर दिया ॥४६॥

स इत्थं भगवानुर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः ।
रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥

स इत्थं भगवान् उर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः रसाया लीलया उन्नीतां अप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥

स भगवान्	उन भगवान्	**उन्नीतां**	लायी हुई
प्रजापतिः	प्रजापति	**उर्वीं**	पृथ्वीको
विष्वक्सेनः	विष्वक्सेन (विष्णु)ने	**अप्सु न्यस्य**	जलपर रखकर
इत्थं	इस प्रकार	**हरिः ययौ**	श्रीहरि चले गये ॥४७॥
लीलया	लीलासे ही		
रसाया	रसातलसे		

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः
कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ।
शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं
जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥४८॥

य एवं एतां हरिमेधसः हरेः कथां सुभद्रां कथनीय मायिनः शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वा उशतीं जनार्दनः अस्य आशु हृदि प्रसीदति ॥४८॥

य एवं	जो इस प्रकार	**एतां कथां**	इस कथाको
मायिनः	लीलामय	**भक्त्या**	भक्ति पूर्वक
हरेः	श्रीहरिके	**शृण्वीत**	सुनता है
सुभद्रां	कल्याणमयी	**वा श्रवयेत**	अथवा सुनाता है
कथनीय	कीर्तनीय	**अस्य हृदि**	उसके हृदयमें (स्थित)
हरिमेधसः	भगवानमें लगी बुद्धिको पवित्र करने वाली	**जनार्दनः**	जनार्दन
		आशु प्रसीदति	शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥४८॥
उशतीम्	मंजुल		

तस्मिन् प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ
किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ।
अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः
स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥४९॥

तस्मिन् प्रसन्ने सकल आशिषां प्रभो किं दुर्लभं ताभिः अलं लव आत्मभिः अनन्य दृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्व गतिं परः पराम् ॥४९॥

सकल आशिषां	सम्पूर्ण कामनाओंको	**अलं**	बस (क्या प्रयोजन)
प्रभोः	पूर्ण करनेमें समर्थ	**अनन्य दृष्ट्या**	अनन्य लक्ष्य बनाकर
तस्मिन्	उन (भगवान) के	**भजतां**	भजन करनेवालोंको
प्रसन्ने	प्रसन्न हो जानेपर	**स्वयं परः**	स्वयं परमपुरुष
दुर्लभं किं	दुर्लभ क्या रहता है	**स्व परां गतिं**	अपनी परम गति
लव आत्मभिः	तुच्छ स्वरूपवाली	**विधत्ते**	प्रदान करते हैं ॥४९॥
ताभिः	उन (कामनापूर्तिसे)		

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्
पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-
महो विरज्येत विना नरेतरम् ॥५०॥

कः नाम लोके पुरुषार्थ सारवित् पुरा कथानां भगवत् कथा सुधां आपीय कर्ण अञ्जलिभिः भवापहां अहो विरज्येत विना नर इतरम् ॥५०॥

अहो	अहो	**भवापहां**	आवागमनसे छुड़ाने वाली
नर इतरं	मनुष्येतर (पशुओं)के		
विना	विना	**भगवत्**	भगवान्‌की
पुरुषार्थ	पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष)	**पुरा कथानां**	प्राचीन कथाओंमें
		कथा सुधां	(किसी) कथामृतको
सारवित्	के सारको जाननेवाला	**कर्ण**	
		आञ्जलिभिः	कानोंकी अंजलिसे
लोके कः नाम	लोकमें कौन होगा (जो)	**आपीय**	भली प्रकार पीकर
		विरज्येत	(उससे) विरक्त होगा ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

निशम्य कौषारविणोपवर्णितां
हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ।
पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलि-
र्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥१॥

निशम्य कौषारविणः उपवर्णितां हरेः कथां कारण सूकर आत्मनः पुनः स पप्रच्छ तम् उद्यत अञ्जलिः न च अतितृप्तः विदुरः धृत व्रतः ॥१॥

कौषारविणोः	मैत्रेयजी द्वारा	**अतितृप्तः न च**	बहुत सन्तुष्ट न हुए
उपवर्णितां	वर्णन की गयी	**व्रत धृतः**	व्रतधारी
कारण सूकर		**विदुरः तं**	विदुरजीने उनसे
आत्मनः	सप्रयोजन वाराह बने	**उद्यत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
		पुनः	फिर
हरेः कथां	श्रीहरिकी कथा	**स पप्रच्छ**	उन्होंने पूछा ॥१॥
निशम्य	सुनकर		

विदुर उवाच-

तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ।
आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥२॥

तेन एव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना आदिदैत्यः हिरण्याक्षः हत इति अनुशुश्रुम ॥२॥

मुनिश्रेष्ठ	मुनिश्रेष्ठ	**यज्ञमूर्तिना**	यज्ञमूर्ति
तेन	उन	**हरिणा एव तु**	श्रीहरिने ही तो

आदिदैत्यः	आदिदैत्य	इति	ऐसा
हिरण्याक्षः	हिरण्याक्षको	अनुशुश्रुम	(आपसे) मैंने
हत	मारा था		सुना ॥२॥

तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ।
दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥३॥

तस्य च उद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्मात् हेतोः अभून् मृधः ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	तस्य च	उनका और
स्वदंष्ट्राग्रेण	अपनी दाढ़की नोकसे	दैत्यराजस्य च	दैत्यराजका भी
लीलया	खेल खेलमें	मृधः	युद्ध
क्षोणीं	पृथ्वीको	कस्मात् हेतोः	किस कारणसे
उद्धरतः	उठाते समय	अभून्	हुआ ॥३॥

मैत्रेय उवाच–

साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ।
यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥४॥

साधु वीर त्वया पृष्टं अवतार कथां हरेः यत् त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाश विशातनीम् ॥४॥

वीर त्वया	वीर तुमने	विशातनीम्	काट देनेवाली
साधु पृष्टः	उत्तम प्रश्न किया	हरेः	श्रीहरिकी
यत् त्वं	क्योंकि तुम	अवतार कथां	अवतार-कथा
मर्त्यानां	मरणधर्मा मनुष्यके	पृच्छसि	पूछते हो ॥४॥
मृत्युपाश	मृत्युके पाशको		

ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयार्भकः ।
मृत्योः कृत्वेव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥५॥

यया उत्तानपदः पुत्रः मुनिना गीतया अर्भकः मृत्योः कृत्वा एव मूर्ध्नि अङ्घ्रिम् आरुरोह हरेः पदम् ॥५॥

उत्तानपदः	उत्तानपादका	मृत्योः	मृत्युके
अर्भकः पुत्रः	शिशु पुत्र	मूर्ध्नि एव	सिरपर ही
मुनिना गीतया	नारदमुनि-वर्णित	अङ्घ्रिम् कृत्वा	पैर रखकर
यया	जिस (कथा) के (प्रभावसे)	हरेः पदं	श्रीहरिके स्थानपर
		आरुरोह	चढ़ गये ॥५॥

अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ।
ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥६॥

अथ अत्र अपि इतिहासः अयं श्रुतः मे वर्णितः पुरा ब्रह्मणा देवदेवेन देवानां अनुपृच्छताम् ॥६॥

अथ देवानां	अब देवताओंके	देवदेवेन	देवदेव
अनुपृच्छतां	पूछनेपर	ब्रह्मणा	ब्रह्माजी द्वारा
अत्र अयं	इस विषयक यह	पुरा वर्णितः	पहिले कहा गया
इतिहासः अपि	इतिहास भी	मे श्रुतः	मैंने सुना है ॥६॥

दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् ।
अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥७॥

दितिः दाक्षायणी क्षत्तः मारीचं कश्यपं पतिं अपत्य कामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छय अर्दिता ॥७॥

क्षत्तः	विदुर !	मारीचं	मरीचिनन्दन
दाक्षायणीः	दक्षकन्या	पतिं	अपने पति
दितिः	दितिने	कश्यपं	कश्यपसे
हृच्छय अर्दिताः	काम पीड़ित होकर	अपत्य कामा	पुत्र पानेकी इच्छासे
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय	चकमे	प्रार्थना की ॥७॥

इष्ट्वाग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ।
निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यगारे समाहितम् ॥८॥

इष्ट्वा अग्नि जिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिं निम्लोचति अर्कं आसीनं अग्न्य आगारे समाहितम् ॥८॥

अग्नि जिह्वं	अग्नि जिह्वा	पुरुषं	परम पुरुषको
यजुषां पतिं	यज्ञपति	पयसा	खीरकी

इष्ट्वा	आहुति देकर	अग्न्य आगारे	हवनशालामें
अकं निम्लोचति	सूर्यास्तके समय	आसीनं	बैठे हुए
समाहितं	एकाग्रचित्त		(कश्यपसे) ॥८॥

दितिरुवाच–

एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशरासनः ।
दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥९॥

एष मां त्वत् कृते विद्वन् काम आत्त शरासनः दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भां इव मतङ्गजः ॥९॥

विद्वन्	विद्वन्	आत्तः	लिये
रम्भां	केलेको	विक्रम्य	बल लगाकर
मतङ्गजः इव	हाथीके समान	मां दीनां	मुझ अबलाको
त्वत् कृते	आपके निमित्तसे	दुनोति	बेचैन कर रहा
एष कामः	यह काम		है ॥९॥
शरासनः	धनुष		

तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ।
प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहम् ॥१०॥

तत् भवान् दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः प्रजावतीनां भद्रं ते मयि अयुङ्क्तां अनुग्रहम् ॥१०॥

ते भद्रं	आपका कल्याण हो	मयि	मुझपर
प्रजावतीनां	पुत्रवती	तत् भवान्	वह आप
सपत्नीनां	सौतोंकी	अनुग्रहं	अनुग्रह
समृद्धिभिः	समृद्धि (उन्नति) से	अयुङ्क्तां	कीजिए ॥१०॥
दह्यमानायां	जलती हुई		

भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः ।
पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥११॥

भर्तरि आप्त उरुमानानां लोकान् आविशते यशः पतिः भवत् विधः यासां प्रजया ननु जायते ॥११॥

ननु	निश्चय	भर्तः	पतिसे
भवत् विधः	आपके समान	उरुमानानां	बहुत सम्मान
पतिः	पति	आप्त	प्राप्त (स्त्रियोंका)
यासां	जिनसे	लोकात् यशः	लोकमें यश
प्रजया	पुत्र रूपमें	आविशते	फैलता है ॥११॥
जायते	उत्पन्न होता है		

पुरा पिता नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः ।
कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥१२॥

पुरा पिता नः भगवान् दक्षः दुहितृ वत्सलः कं वृणीत वरं वत्सा इति अपृच्छत नः पृथक् ॥१२॥

पुरा नः	पहिले हमारे	इति	इस प्रकार
पिता	पिता	अपृच्छत	पूछा
दुहितृ वत्सलः	पुत्री वत्सल	वत्साः	बेटियो !
भगवान् दक्षः	भगवान् दक्षने	कं वरं	किसे वर (पति)
नः पृथक्	हम सबसे अलग-अलग	वृणीत	बनाना चाहती हो ॥१२॥

स विदित्वाऽऽत्मजानां नो भावं सन्तानभावनः ।
त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥१३॥

स विदित्वा आत्मजानां नः भावं सन्तान भावनः त्रयोदश अदात् तासां याः ते शीलं अनुव्रताः ॥१३॥

स सन्तान भावनः	उन सन्तानपर स्नेह रखने वालेने	शीलं अनुव्रताः	स्वभावके पीछे चलनेवाली थीं
नः आत्मजानां	हम पुत्रियोंका	त्रयोदशः	उन तेरहको
भावं विदित्वा	भाव जानकर	अदात्	(आपको) दे दिया ॥१३॥
तासां यः ते	उनमें जो आपके		

अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन ।
आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥१४॥

अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन आर्त उपसर्पणं भूमन् अमोघं हि महीयसि ॥१४॥

कल्याण	मंगल स्वरूप	**उपसर्पणं**	समीप जाना
कञ्ज विलोचन	कमल नयन	**आर्तः**	दुःखियोंका
अथ मे	अतः मेरा	**अमोघं**	व्यर्थ नहीं जाता ॥१४॥
कामं कुरु	मनोरथ पूरा कीजिए		
हि भूमन्			
महीयसि	क्योंकि अत्यन्त महत्तम लोगोंके		

*मैत्रेय उवाच**–

इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ।
प्रत्याहानुनयन् वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥१५॥

इति तां वीर मारीचः कृपणां बहु भाषिणीं प्रत्याह अनुनयन् वाचा प्रवृद्ध अनङ्ग कश्मलाम् ॥१५॥

वीर	वीर (विदुर) !	**बहु भाषिणीं**	बहुत बोलनेवाली
इति	इस प्रकार	**तां**	उस (दिति) से
प्रवृद्ध	बढ़े हुए	**वाचा अनुनयन्**	वाणीसे समझाते हुए
अनङ्ग कश्मलां	कामके वेगसे	**मारीचः**	कश्यपजी
कृपणां	बेचैन	**प्रत्याह**	बोले ॥१५॥

*कश्यप उवाच**–

एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ।
तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥

एष ते अहं विधास्यामि प्रियं भीरु यत् इच्छसि तस्याः कामः न कः कुर्यात् सिद्धिः त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भीरु	भीरु !	सिद्धिः	सिद्धि होती है
एष ते प्रियं	यह तुम्हारा प्रिय	तस्याः	उसकी
यत् इच्छसि	जो चाहती हो	कामः	इच्छा
अहं विधास्यामि	मैं अवश्य करूँगा	कः न	कौन नहीं
यतः	जिससे	कुर्यात्	पूरा करेगा ॥१६॥
त्रैवर्गिकी	अर्थ, धर्म, कामकी		

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ॥१७॥

सर्वं आश्रमान् उपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् व्यसन अर्णवं अति एति जलयानैः यथा अर्णवम् ॥१७॥

यथा जलयानैः	जैसे जहाजसे	उप आदाय	आश्रय देता हुआ
अर्णवं	समुद्र (पार करते हैं—वैसे ही)	स्व आश्रमेण	अपने ही आश्रमसे
		व्यसन अर्णवं	व्यसन रूपी समुद्रको
कलत्रवान्	पत्नीवाला (गृहस्थ)	अति एति	पार कर जाता है ॥१७॥
सर्वं आश्रमान्	(दूसरे) सब आश्रयोंको		

यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ।
यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥१८॥

यां आहुः आत्मनः हि अर्धं श्रेयः कामस्य मानिनी यस्यां स्वधुरं अध्यस्य पुमान् चरति विज्वरः ॥१८॥

मानिनी	मानिनी !	यस्यां स्वधुरं	जिसपर अपना भार
श्रेयः कामस्य	कल्याण चाहने वालेका	अध्यस्य	डालकर
		पुमान्	पुरुष
यां हि	जिसे तो	विज्वरः	निश्चिन्त
आत्मनः	शरीरका	चरति	घूमता है ॥१८॥
अर्धं आहुः	आधा कहा गया है		

यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ।
वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥१९॥

यां आश्रित्य इन्द्रिय अरातीन् दुर्जयान् इतर आश्रमैः वयं जयेम हेलाभिः दस्यून् दुर्गपतिः यथा ॥१९॥

यथा दुर्गपतिः	जैसे दुर्गपति	**इन्द्रिय अरातीन्**	इन्द्रियोंरूपी शत्रुओंको
दस्यून्	डाकुओंको (जीत लेता है)	**यां आश्रित्य**	जिसका सहारा लेकर
इतर आश्रमैः	दूसरे आश्रमवालोंके लिए	**वयं हेलाभिः**	हम उपेक्षापूर्वक
दुर्जयान्	दुर्जय	**जयेम**	जीत लेते हैं ॥१९॥

न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ।
अप्यायुषा वा कात्स्न्र्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥२०॥

न वयं प्रभवः तां त्वां अनुकर्तुं गृह ईश्वरि अपि आयुषा वा कात्स्न्र्येन ये च अन्ये गुण गृध्नवः ॥२०॥

गृहेश्वरि	गृहस्वामिनी !	**गुण गृध्नवः**	गुणग्राही पुरुष है
तां त्वां	ऐसी तुम्हारे	**कात्स्न्र्येन**	पूर्णतः
अनुकर्तुं	उपकारोंका बदला देनेमें	**अपि आयुषा वा**	पूरी आयुमें भी
वयं	हम	**प्रभवः न**	समर्थ नहीं हो सकते ॥२०॥
च ये अन्ये	और जो दूसरे		

अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् ।
यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥

अथ अपि कामं एतं ते प्रजात्यै करवाणि अलं यथा मां न अति ऊचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥

अथ अपि	फिर भी	**अति न**	अति करनेवाला नहीं
एतं ते	यह तुम्हारी		
प्रजात्यै कामं	पुत्र प्राप्तिकी इच्छा	**ऊचन्ति**	कहें
अलं करवाणि	पूर्ण करूँगा; किन्तु	**मुहूर्तं**	एक मुहूर्त
यथा मां	जैसे (लोग) मुझे	**प्रतिपालय**	ठहरो ॥२१॥

एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ।
चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥२२॥

एषा घोरतमा वेला घोराणां घोर दर्शना चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेश अनुचराणि ह ॥२२॥

एषा	यह	**यस्यां ह**	जिसमें निश्चय
घोरतमा	अत्यन्त घोर	**भूतेश अनुचराणि**	भूतनाथके अनुचर
वेला	समय	**भूतानि**	भूत
घोर दर्शना	देखनेमें भयानक	**चरन्ति**	घूमते रहते हैं ॥२२॥
घोराणां	भयानक जीवोंका है		

एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान् भूतभावनः ।
परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥

एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान् भूतभावनः परीतः भूत पर्षद्भिः वृषेण अटति भूतराट् ॥२३॥

साध्वि	साध्वि !	**भूतराट्**	भूतनाथ
एतस्यां	इस	**भूत पर्षद्भिः**	भूतगणोंसे
सन्ध्यायां	सन्ध्याकालमें	**परीतः**	घिरे हुए
भूतभावनः	भूत भावन	**वृषेण**	बैलपर बैठकर
भगवान्	भगवान्	**अटति**	घूमते हैं ॥२३॥

श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्र-
विकीर्णविद्योतजटाकलापः ।
भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो
देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥२४॥

श्मशान चक्र अनिल धूलिधूम्र विकीर्ण विद्योत जटा कलापः भस्म अवगुण्ठ अमल रुक्मदेहः देवः त्रिभिः पश्यति देवरः ते ॥२४॥

श्मशान	श्मशानमें (उठे)	**विकीर्ण**	बिखरी हुई
अनिल चक्र	बवंडरकी	**विद्योत**	चमकती
धूलिधूम्र	धूलिसे धूसर	**जटा कलापः**	जटा मण्डलवाले

अमल रुक्मदेहः	निर्मल स्वर्णके समान शरीरमें	**त्रिभिः**	तीन नेत्रोंसे (सूर्य, चन्द्र, अग्नि, रूप)
भस्म अवगुण्ठ	भस्म लगाये	**पश्यति**	देखते हैं ॥२४॥
ते देवरः	तुमको वरदान देने वाले* देवता		

विशेष—

सन्ध्या समय अनेक तिथियोंमें सूर्य-चन्द्र दोनों आकाशमें होते हैं और सायंकालीन हवनकी अग्नि भी जलती है। ये सूर्य, चन्द्र, अग्नि रुद्र-नेत्र माने जाते हैं।

न यस्य लोके स्वजनः परो वा
नात्याहृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ।
वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धा-
माशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥

न यस्य लोके स्वजनः परः वा न अति आहृतः न उत कश्चित् विगर्ह्यः वयं व्रतैः यत् चरण अपविद्धां आशा स्महे अजां बत भुक्त भोगाम् ॥२५॥

लोके यस्य स्वजनः परः	संसारमें जिनका	**यत् भुक्त भोगां**	जिनके द्वारा भोगकर
वा न	स्वजन या शत्रु कोई नहीं है,	**चरण अपविद्धां**	चरणोंसे ठुकरायी गयी
न अति आहृतः	न कोई अधिक आदरणीय है	**अजां बत**	मायाको ही
कश्चित् विगर्ह्यः	कोई निन्दनीय	**व्रतैः**	व्रत करके
उत न	भी नहीं है।	**वयं**	हम लोग
		आशा स्महे	चाहते हैं ॥२५॥

---

* प्रायः टीकाकारोंने देवरका अर्थ श्वसुर किया है; क्योंकि कश्यपजीके पिता मरीचि ब्रह्माजीके पुत्र होनेसे रुद्रके छोटे भाई हैं; किन्तु देवर शब्दका अर्थ श्वसुर न लोक-सम्मत है, न कोश-सम्मत।

यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो
गृणन्त्यविद्यापटलं विभित्सवः ।
निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं
पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥२६॥

यस्य अनवद्य चरितं मनीषिणः गृणन्ति अविद्या पटलं विभीत्सवः निरस्त साम्य अतिशयः अपि यत् स्वयं पिशाचचर्यां अचरत् गतिः सताम् ॥२६॥

यस्य	जिनके	**साम्य**	(अपनेसे) समान एवं
अनवद्य	निर्मल	**अतिशयः अपि**	बड़ा भी
चरितं	चरितोंको	**निरस्त**	दूर किये
अविद्या	अविद्याके	**सतां गतिः**	सत्पुरुषोंकी गति (वे)
पटलं	आवरणको	**यत् स्वयं**	जो स्वयं
विभीत्सवः	दूर करनेकी इच्छावाले	**पिशाचचर्यां**	पिशाचों जैसा आचरण
मनीषिणः	विवेकी लोग	**अचरत्**	करते हैं ॥२६॥
गृणन्ति	गान करते हैं		

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः
स्वात्मन् रतस्याविदुषः समीहितम् ।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः
श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥२७॥

हसन्ति यस्य आचरितं हि दुर्भगाः स्व आत्मन् रतस्य अविदुषः सम ईहितं यैः वस्त्र माल्य आभरण अनुलेपनैः श्व भोजनं स्व आत्मतया उपलालितं ॥२७॥

यस्य	जिन	**आचरितं**	आचरणका
स्व आत्मन् रतस्य	आत्मारामके	**हसन्ति**	उपहास करते हैं
सम ईहितं	चेष्टाको भली प्रकार	**हि दुर्भगाः**	क्योंकि अभागे हैं
अविदुषः	न जाननेवाले	**यैः वस्त्र माल्य**	जो वस्त्र, माला

आभरण	आभूषण	स्व आत्मतया	अपना स्वरूप मानकर
अनुलेपनैः	अंगरागसे	उपलालितं	लालित करते हैं ॥२७॥
श्व भोजनं	कुत्तेके भोजन (शरीरको)		

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला
यत्कारणं विश्वमिदं च माया ।
आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या
अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

ब्रह्माआदयः यत् कृत सेतुपाला यत् कारणं विश्वं इदं च माया आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नः चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

ब्रह्माआदयः	ब्रह्मा आदि	च माया	और माया
यत् कृत्	जिनकी बनायी	आज्ञाकरी	आज्ञापालिका है
सेतुपाला	मर्यादाका पालन करते हैं,	तस्य विभूम्नः	उन व्यापक प्रभुका
		पिशाचचर्या	पिशाचारण
यत् इदं विश्वं	जो इस विश्वके	चरितं	यह लीला
कारणं	कारण हैं,	विडम्बनं	अद्‌भुत है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच–

सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया ।
जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥२९॥

सा एवं संविदिते भर्त्रा मन्मथ उन्मथित इन्द्रिया जग्राह वासः ब्रह्मर्षेः वृषली इव गतत्रपाः ॥२९॥

एवं	इस प्रकार	वृषली इव	वेश्याके समान
भर्त्रा	पतिके	गतत्रपाः	निर्लज्ज होकर
संविदिते	समझानेपर भी	ब्रह्मर्षेः	ब्रह्मर्षि (कश्यपजी) का
सा मन्मथ	उस (दिति) ने कामदेव द्वारा	वासः	वस्त्र
उन्मथित इन्द्रिया	मथित होती इन्द्रिय (के कारण)	जग्राह	पकड़ लिया ॥२९॥

स विदित्वाथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि ।
नत्वा दिष्टाय रहसि तयाथोपविवेश ह ॥३०॥

स विदित्वा अथ भार्यायाः तं निर्बन्धं विकर्मणि नत्वा दिष्टाय रहसि तया अथ उपविवेश ह ॥३०॥

स	उन (कश्यपजी) ने	अथ दिष्टाय	तब दैवको
भार्यायाः	पत्नीका	नत्वा	नमन करके
तं विकर्मणि	उस अपकर्ममें	तया	उसके साथ
निर्बन्धं	अत्याग्रह	रहसि	एकान्तमें
विदित्वा	जानकर	उपविवेश ह	प्रवेश किया ॥३०॥

अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ।
ध्यायञ्जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥

अथ उपस्पृश्य सलिलं प्राणान् आयम्य वाक् यतः ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥

अथ	तदनन्तर	वाक् यतः	वाणी रोककर (मौन होकर)
सलिलं	जलसे	सनातनं ज्योतिः	नित्य प्रकाश रूप परमात्माका
उपस्पृश्य	आचमन करके	ध्यायन्	ध्यान करते हुए
प्राणान्	श्वासको	ब्रह्म जजाप	प्रणवका जप करने लगे ॥३१॥
आयम्य	संयमित (प्राणायाम) करके		

दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ।
उपसङ्गम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥३२॥

दितिः तु व्रीडिता तेन कर्म अवद्येन भारत उपसङ्गम्य विप्रर्षिम् अधोमुखी अभ्यभाषत ॥३२॥

भारत	विदुर !	तेन अवद्येन	उस निन्दित
दिति तुः	दिति तो	कर्मणा	कर्मके कारण

व्रीडिता	लज्जित होकर	उपसङ्गम्य	समीप जाकर
अधोमुखी	मुख नीचे लटकाये	अभ्य भाषत	बोली ॥३२॥
विप्रर्षि	ब्रह्मर्षि (कश्यपके)		

दितिरुवाच–

मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन् भूतानामृषभो वधीत् ।
रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥३३॥

मा मे गर्भं इमं ब्रह्मन् भूतानां ऋषभः वधीत् रुद्रः पतिः हि भूतानां यस्या अकरवं अंहसम् ॥३३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	हि यस्या	क्योंकि जिनका
मे अयं गर्भः	मेरा यह गर्भ	अंहसम्	अपराध
भूतानां ऋषभः	प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ	अकरवं	(मैंने) किया है वे)
रुद्रः	रुद्र	भूतानां पतिः	प्राणियोंके स्वामी
मा वधीत्	न मारें (नष्ट न करें)		हैं ॥३३॥

नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ।
शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥३४॥

नमः रुदाय महते देवाय उग्राय मीढुषे शिवाय न्यस्त दण्डाय धृत दण्डाय मन्यवे ॥३४॥

महते	महान्	धृत दण्डाय	(दुष्टोंके लिए) दण्डधारी
मीढुषे	अभीष्टदाता	मन्यवे	मन्यु (क्रोध स्वरूप)
उग्राय देवाय	उग्र देवता	रुद्राय नमः	रुद्रको नमस्कार ॥३४॥
न्यस्त दण्डाय	दण्ड देनेके भावको ही त्यागे		
शिवाय	शिव (कल्याण रूप)		

स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ।
व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥३५॥

स नः प्रसीदतां भामः भगवान् उरु अनुग्रहः व्याधस्य अपि अनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥३५॥

व्याधस्य अपि	व्याधके लिए भी	**भामः**	बहनोई*
अनुकम्प्यानां	दया करने योग्य	**उरु अनुग्रहः**	अत्यन्त दयाशील हैं
स्त्रीणां	स्त्रियोंके लिए	**प्रसीदतां**	(मुझपर) प्रसन्न हों ॥३५॥
देवः सतीपतिः	देवता, सतीपति		
स नः	वे मेरे		

मैत्रेय उवाच-

स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ।
निवृत्तसन्ध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥३६॥

स्व सर्गस्य आशिषं लोक्यां आशासानां प्रवेपतीं निवृत्त सन्ध्या नियमः भार्यां आह प्रजापतिः ॥३६॥

स्व सर्गस्य	अपनी संतानकी	**भार्यां**	पत्नीसे
लोक्यां	इस लोक और परलोकमें	**सन्ध्या नियमः**	सन्ध्याके नियम
		निवृत्तः	पूरा करके
आशिषं	कल्याण	**प्रजापतिः**	प्रजापति (कश्यप)
आशासानां	चाहती हुई	**आह**	बोले ॥३६॥
प्रवेपतीं	(भयसे, काँपती हुई		

कश्यप उवाच-

अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ।
मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥३७॥

अप्रायति अति आत्मनः ते दोषात् मौहूर्तिकात् उत मत् निदेश अति चारेण देवानां च अति हेलनात् ॥३७॥

---

* यद्यपि दिति प्राचेतस दक्षकी पुत्री हैं; किन्तु यही दक्ष अपने पूर्व जन्ममें ब्रह्माजीके मानस-पुत्र दक्ष थे, जिनकी पुत्री सती हुईं, उसी नातेको लेकर दिति भगवान रुद्रको बहनोई कहती हैं।

ते आत्मनः	तुम्हारे चित्तके
अति	अत्यन्त
अप्रायति	असंयत होनेसे
उत मौहूर्तिकात्	तथा उस मुहूर्त सम्बन्धी
दोषात्	दोषसे
मत् निदेश	मेरे आदेशकी
अति चारेण	उपेक्षा करनेसे
देवानां च	देवताओंकी भी
अति हेलनात्	अत्यन्त अवहेलना करनेसे ॥३७॥

भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ।
लोकान् सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥३८॥

भविष्यतः तव अभद्राः अभद्रे जाठर अधमौ लोकान् सपालान् त्रीन् चण्डि मुहुः आक्रन्दयिष्यतः ॥३८॥

अभद्रे	अमङ्गलमयी !
चण्डि	चण्डी !
तव जाठर	तुम्हारे पेटसे उत्पन्न
अधमौ	अधम
भविष्यतः	होंगे
सपालान्	लोकपालोंके साथ
त्रीन् लोकान्	तीनों लोकोंसे
मुहुः	बार-बार
आक्रन्दयिष्यतः	(अपने अत्याचारोंसे) आक्रन्दन् कराने लगेंगे ॥३८॥

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ।
स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥३९॥

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानां अकृत आगसां स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मषु ॥३९॥

दीनानां	दीन
अकृत आगसां	निरपराध
प्राणिनां	प्राणियोंके
हन्यमानानां	मारे जानेपर,
स्त्रीणां	स्त्रियोंके
निगृह्यमाणानां	वन्दिनी बनाये जानेपर
महात्मषु	महात्माओंके
कोपितेषु	क्रोधित किये जानेपर ॥३९॥

तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः ।
हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन् शतपर्वधृक् ॥४०॥

तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धः भगवान् लोकभावनः हनिष्यति अवतीर्य असौ यथा अद्रीन् शतपर्व धृक् ॥४०॥

तदा लोकभावनः	तब लोकरक्षक	**यथा**	जैसे
विश्वेश्वर	विश्वेवर	**शतपर्व धृक्**	वज्रधर (इन्द्र)
भगवान्	भगवान्	**अद्रीन्**	पर्वतोंको (नष्ट करते हैं)
अवतीर्य	अवतार लेकर	**हनिष्यति**	(वैसे ही) मार देंगे ॥४०॥
क्रुद्धः	क्रोध करके		
असौ	इन (तुम्हारे होने वाले) पुत्रोंको		

दितिरुवाच-

वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ।
आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥४१॥

वधं भगवता साक्षात् सुनाभ उदार बाहुना आशासे पुत्रयोः मह्यं मा क्रुद्धात् ब्राह्मणात् विभो ! ॥४१॥

विभो	प्रभो !	**सुनाभ**	चक्रसे
मह्यं	मेरे	**आशासे**	चाहती हूँ,
पुत्रयोः	पुत्रोंका	**क्रुद्धात्**	क्रोधमें भरे
वधं	वध	**ब्राह्मणात्**	ब्राह्मणसे
उदार बाहुना	लम्बी भुजाओंवाले	**मा**	(उनकी मृत्यु) मत हो ॥४१॥
भगवता	भगवान्के		
साक्षात्	साक्षात्		

न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च ।
नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥४२॥

न ब्रह्मदण्ड दग्धस्य न भूत भयदस्य च नारकाः च अनुगृह्णन्ति यां यां योनिं असौ गतः ॥४२॥

न ब्रह्मदण्ड	न तो ब्राह्मणके शापसे	**भूत भयदस्य**	प्राणियोंको भय देने वालेको
दग्धस्य च	जले तथा	**असौ**	वह

यां यां योनिगतः	जिस जिस योनिमें जाता है	**न अनुगृह्णन्ति**	(उसपर) दया नहीं करते ॥४२॥
नारकाः च	नारकीय प्राणी भी		

कश्यप उवाच–

कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ।
भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥४३॥

कृत शोक अनुतापेन सद्यः प्रति अवमर्शनात् भगवति उरु मानात् च भवे मयि अपि च आदरात् ॥४३॥

कृत शोक अनुतापेन	किए हुए पर शोक, पश्चाताप करनेसे	**उरु मानात् च**	बहुत सम्मान भाव होनेसे और
सद्यः	तत्काल	**भवे**	शंकरजीके प्रति
प्रति अवमर्शनात्	उसपर (उचिता-नुचित) विवेक हो जानेसे	**मयि अपि**	मेरे प्रति भी
		आदरात्	आदर भाव होनेसे ॥४३॥
भगवति	भगवानके प्रति		

पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ।
गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥४४॥

पुत्रस्य एव तु पुत्राणां भविता एकः सतां मतः गास्यन्ति यत् यशः शुद्धं भगवत् यशसा समम् ॥४४॥

पुत्रस्य एव तु	(तुम्हारे) पुत्रोंके ही तो	**यत् शुद्धं यशः**	जिसका शुद्ध यश
पुत्राणां	पुत्रोंमें	**भगवत्**	भगवानके
सतां मतः	सत्पुरुषोंको मान्य	**यशः समं**	यशके साथ
एकः भविता	एक होनेवाला है	**गास्यन्ति**	(लोग) गान करेंगे ॥४४॥

योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः ।
निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥४५॥

योगैः हेम एव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति इह साधवः निर्वैर आदिभिः आत्मानं यत् शीलं अनुवर्तितुम् ॥४५॥

हेम एव	सोनेके ही	अनुवर्तितुं	अनुकरण करनेके लिए
दुर्वर्णं	दोषपूर्ण रंगको		
योगैः	विशेष द्रव्य मिलाकर (जैसे शुद्ध किया जाता है)	निर्वैर आदिभिः	निर्वैर आदि (सद्गुणों) से
		आत्मानं	अपने चित्तको
साधवः	(वैसे ही) सत्पुरुष	इह	इस लोकमें
यत् शीलं	जिसके शीलका	भावयिष्यन्ति	शुद्ध करेंगे ॥४५॥

यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ।
स स्वदृग्भगवान् यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥४६॥

यत् प्रसादात् इदं विश्वं प्रसीदति यत् आत्मकं स स्वदृक् भगवान् यस्य तोष्यते अनन्यया दृशा ॥४६॥

इदं विश्वं	यह विश्व	यस्य	जिसकी
यत् प्रसादात्	जिसकी कृपासे	अनन्यया	अनन्य
प्रसीदति	प्रसन्न रहता है	दृशा	निष्ठासे
यत् आत्मकं	जिसका स्वरूप है	तोष्यते	सन्तुष्ट किये जायँगे ॥४६॥
स स्वदृक्	वे स्वयं प्रकाश		
भगवान्	भगवान्		

स वै महाभागवतो महात्मा
महानुभावो महतां महिष्ठः ।
प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभावितार्शये
निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ॥४७॥

स वै महाभागवतः महात्मा महानुभावः महतां महिष्ठः प्रवृद्ध भक्त्या हि अनुभावित आशये निवेश्य वैकुण्ठं इमं विहास्यति ॥४७॥

वै सः	निश्चय वह	महानुभावः	महान् प्रभाववाला
महाभागवतः	महाभागवत	महतां महीष्ठः	महापुरुषोंका भी पूज्य होगा
महात्मा	उदार चित्त		

हि प्रवृद्ध भक्त्या	क्योंकि बढ़ी हुई भक्तिसे	**वैकुण्ठं**	भगवानको
		निवेश्य	बैठाकर
अनुभावित	शुद्ध हुए	**इमं**	इस (देहाभिमान)को
आशये	चित्तमें	**विहास्यति**	त्याग देगा ॥४७॥

अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो
हृष्टः परद्धर्या व्यथितो दुःखितेषु ।
अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता
नैदाघिकं तापमिवोडुराजः ॥४८॥

अलम्पटः शीलधरः गुण आकरः हृष्टः परः ऋद्ध्याः व्यथितः दुःखितेषु अभूतशत्रुः जगतः शोकहर्ता नैदाघिकं तापं इव उडुराजः ॥४८॥

अलम्पटः	लम्पट नहीं (संयमी)	**व्यथितः**	दुःखी होनेवाला
शीलधरः	शीलवान्	**अभूत शत्रुः**	अजात शत्रु
गुण आकरः	गुणखान	**नैदाघिकं तापं**	ग्रीष्म ऋतुके तापको
परः ऋद्ध्याः	दूसरोंकी सम्पत्तिसे	**उडुराजः इव**	चन्द्रमाके समान
हृष्टः	हर्षित होनेवाला	**जगतः शोकहर्ता**	संसारका शोक नाशक होगा ॥४८॥
दुःखितेषु	(दूसरोंके) दुःखित होनेपर		

अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं
स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ।
पौत्रस्तव श्रीललनाललामं
द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥

अन्तः बहिः च अमलं अब्जनेत्रं स्वपूरुष इच्छा अनुगृहीत रूपं पौत्रः तव श्रीललना ललाम द्रष्टा स्फुरत् कुण्डल मण्डित आननम् ॥४९॥

अन्तः बहिः च	(इस संसारके) बाहर भीतर भी (व्याप्त)	**स्वपूरुष**	अपने भक्तकी
		इच्छा	इच्छा (के अनुसार)
अमलं	निर्मल	**अनुगृहीत**	अनुग्रहपूर्वक
अब्जनेत्रं	कमल नयन	**रूपं**	रूप ग्रहण किए

श्रीललना	लक्ष्मी जैसी लावण्यमयीको भी	मण्डित आननं	सुशोभित मुखवाले (भगवानका)
ललाम	भूषित करनेवाले	तव पौत्रः	तुम्हारा पौत्र
स्फुरत् कुण्डल	चमकते कुण्डलोंसे	द्रष्टा	दर्शन करेगा ॥४९॥

मैत्रेय उवाच–

श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ।
पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वाऽऽसीन्महामनाः ॥५०॥

श्रुत्वा भागवतं पौत्रं अमोदत दितिः भृशं पुत्रयोः च वधं कृष्णात् विदित्वा आसीत् महामनाः ॥५०॥

पौत्रं भागवतं	पौत्र भगवद्भक्त होगा	कृष्णात् वधं	भगवान विष्णु द्वारा वध
श्रुत्वा	यह सुनकर	विदित्वा	जानकर
दितिः भृशं	दिति बहुत	महामनाः	बहुत उत्साहित
अमोदत	आनन्दित हुई,	आसीत्	हुयी ॥५०॥
पुत्रयोः च	पुत्रोंका भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ।
दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥१॥

प्राजापत्यं तु तत् तेजः पर तेजः हनं दितिः दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुर अर्दनात् ॥१॥

सुर	देवताओं द्वारा	**तेजं तु**	तेज (वीर्य) को तो
अर्दनात्	सताये जानेकी	**दितिः**	दितिने
शङ्कमाना	आशंका करती हुई	**शतं वर्षाणि**	सौ वर्ष तक
पर तेजः	दूसरोंके तेजको	**दधार**	(अपने पेटमें) धारण
हनं	नष्ट करनेवाले		किये रही ॥१॥
तत् प्राजापत्यं	उस प्रजापति		
	(कश्यप) के		

लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः ।
न्यवेदयन् विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥२॥

लोके तेन हत आलोके लोकपालाः हत ओजसः न्यवेदयन् विश्वसृजे ध्वान्त व्यतिकरं दिशाम् ॥२॥

तेन	उस (दितिके गर्भ)के	**दिशां**	दिशाओंमें
आलोके	प्रकाशसे		(सब ओर)
लोके हत	लोकके (सूर्यादि)	**ध्वान्त**	अँधेरेके कारण
	प्रकाश फीके पड़ गये,	**व्यतिकरं**	(फैली) अव्यवस्था
लोकपालाः	(इन्द्रादि) लोकपाल	**विश्वसृजे**	ब्रह्माजीसे
हत ओजसः	कान्ति हीन होगये ।	**न्यवेदयन्**	(देवताओंने) निवेदन
			किया ॥२॥

देवा ऊचुः-

तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ।
न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥३॥

तम एतत् विभो वेत्थ संविग्ना यत् वयं भृशं न हि अव्यक्तं भगवतः कालेन अस्पृष्ट वर्त्मनः ॥३॥

विभो	प्रभो !	**वेत्थ हि**	(आप) जानते ही
यत् वयं	जिससे हम सब		हो क्योंकि
भृशं	बहुत	**कालेन**	कालके द्वारा
संविग्ना	उद्विग्न हैं	**भगवतः**	आपकी
एतत्	(उस) इस	**वर्त्मनः**	गति
तम	अन्धकारको	**अस्पृष्ट**	प्रभावित नहीं है ॥३॥

देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे ।
परेषामपरेषां त्व भूतानामसि भाववित् ॥४॥

देवदेव जगद्धातः लोकनाथ शिखामणे परेषां अपरेषां त्वं भूतानां असि भाववित् ॥४॥

देवदेव	देवाधिदेव !	**परेषां-अपरेषां**	बड़े-छोटे
जगद्धातः	जगत्कर्ता	**भूतानां त्वं**	(सब) प्राणियोंके आप
लोकनाथ			
शिखामणे	लोकपालोंके शिरोमणि	**भाववित्**	भाव जाननेवाले
		असि	हैं ॥४॥

नमो विज्ञानवीर्याय मायायेदमुपेयुषे ।
गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥५॥

नमः विज्ञान वीर्याय मायया इदं उपेयुषे गृहीत गुणभेदाय नमः ते अव्यक्त योनये ॥५॥

विज्ञान वीर्याय	विज्ञान शक्ति सम्पन्न	**मायया**	मायासे
नमः	(आपको) नमस्कार,	**इदं**	इस (चतुर्मुख रूपको)

उपेयुषे	स्वीकार किये	अव्यक्त योनये	(आपके इस रूपकी) उत्पत्तिका कारण (किसीको) ज्ञात नहीं
गुणभेदाय	त्रिगुणोंके भेद (से बने जगतकी सृष्टि) के लिए	ते नमः	आपको प्रणाम ॥५॥
गृहीत	(इस रूपको) ग्रहण किये हैं (पर)		

ये त्वानन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनम् ।
आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम् ॥६॥

ये तु अनन्येन भावेन भावयन्ति आत्म भावनं आत्मनि प्रोतं भुवनं परं सत् असत् आत्मकम् ॥६॥

सत् असत्	कारण-कार्य	आत्म भावनं	स्वयं भू (आपका)
आत्मकं	स्वरूप	ये तु अनन्येन	जो तो अनन्य
भुवनं	त्रिभुवन	भावेन	भावसे
आत्मनि	(आपके) अपने रूपमें	भावयन्ति	चिन्तन (ध्यान) करते ॥६॥
प्रोतं	व्याप्त है		
परं	(आप) उससे परे हैं		

तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् ।
लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥७॥

तेषां सुपक्व योगानां जित श्वास इन्द्रिय आत्मनां लब्ध युष्मत् प्रसादानां न कुतश्चित् पराभवः ॥७॥

तेषां	उन	प्रसादानां	कृपाको
श्वास इन्द्रिय आत्मनां	श्वास, इन्द्रिय, चित्त	लब्ध	प्राप्त किये (लोगोंका)
जित	वशमें किये	कुतश्चित्	कहीं भी
सुपक्व योगानां	परिपक्व योगवाले	पराभवः न	पराभव (ह्रास) नहीं होता ॥७॥
युष्मत्	आपकी		

यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः ।
हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥८॥

यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावः तन्ति एव यन्त्रिताः हरन्ति बलिं आयत्ताः तस्मै मुख्याय ते नमः ॥८॥

तन्ति एव	नाककी रस्सीसे	**आयत्ताः**	जकड़ी हुई
यन्त्रिताः	बँधे	**बलिं हरन्ति**	उपहार (पूजा) अर्पित करती है
गावः	बैलोंकी भाँति		
यस्य वाचा	जिनकी (वेदरूप) वाणीसे	**तस्मै ते**	उस आप
		मुख्याय	सबके प्रमुखको
सर्वा प्रजाः	सब प्रजा	**नमः**	नमस्कार ॥८॥

स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् ।
अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नानर्हसीक्षितुम् ॥९॥

स त्वं विधत्स्व शं भूमन् तमसा लुप्त कर्मणां अदभ्र दयया दृष्ट्या आपन्नान् अर्हसि ईक्षितुम् ॥९॥

भूमन्	भूमन् !	**अदभ्र दयया**	अपार दयाकी
स त्वं	वह आप	**दृष्ट्या**	दृष्टिसे
तमसा	अन्धकारके कारण	**आपन्नान्**	(हम) शरणागतोंको
लुप्त कर्मणां	लुप्त होते (सन्ध्यादि) कर्मवालोंका	**ईक्षितुं**	(आपको) देखना
		अर्हसि	चाहिए ॥९॥
शं विधत्स्व	कल्याण कीजिए		

एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् ।
दिशस्तिमिरयन् सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥१०॥

एष देव दितेः गर्भ ओजः काश्यपं अर्पितं दिशः तिमिरयन् सर्वा वर्धते अग्निः इव एधसि ॥११॥

देव एष	देव ! यह	**सर्वा दिशः**	सब दिशाओंको
काश्यपं	कश्यपका	**तिमिरयन्**	अन्धकारपूर्ण करता
ओजः	ओज (वीर्य)	**एधसि**	ईंधनसे
अर्पितं	दिया गया	**अग्निः इव**	अग्निके समान
दितेः गर्भ	दितिका गर्भ	**वर्धते**	बढ़ रहा है ॥१०॥

मैत्रेय उवाच–

स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः ।
प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥११॥

स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः प्रत्याचष्ट आत्म भूः देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥११॥

महाबाहो	महाबाह विदुर !	**प्रहस्य**	हँसकर
स शब्दगोचरः	वे वेदसे जाने जानेवाले	**रुचिरया गिरा**	सुन्दर वाणीसे
		देवान् प्रीणन्	देवताओंको प्रसन्न करते
भगवान्	भगवान्		
आत्म भूः	ब्रह्माजी	**प्रत्याचष्ट**	उत्तर देने लगे ॥११॥

ब्रह्मोवाच–

मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः ।
चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥१२॥

मानसा मे सुता युष्मत् पूर्वजाः सनकादयः चेरुः विहायसा लोकान् लोकेषु विगतस्पृहा ॥१२॥

युष्मत्	तुम लोगोंसे	**लोकेषु**	लोकोंमें
पूर्वजाः	पहिले उत्पन्न	**विगतस्पृहाः**	निस्पृह होकर
मे मानसा सुता	मेरे मानस-पुत्र	**विहायसा**	आकाश मार्गसे
सनकादयः	सनक आदि (चारों कुमार)	**लोकान् चेरुः**	लोकोंमें घूमते थे ॥१२॥

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः ।
ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१३॥

त एकदा भगवतः वैकुण्ठस्य अमल आत्मनः ययुः वैकुण्ठ निलयं सर्वलोक नमस्कृतम् ॥१३॥

एकदा त	एकबार वे (सनकादि)	**भगवतः**	भगवान्
		अमल आत्मनः	निर्मल स्वरूप

वैकुण्ठस्य	नारायणके	वैकुण्ठ निलयं	वैकुण्ठधाम
सर्वलोक	सब लोकोंसे	ययुः	गये ॥१३॥
नमस्कृतं	प्रणम्य		

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः ।
येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन् हरिम् ॥१४॥

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठ मूर्तयः ये अनिमित्त निमित्तेन धर्मेण आराधयन् हरिम् ॥१४॥

ये	जिन्होंने	सर्वे पुरुषाः	वे सब पुरुष
अनिमित्त		वैकुण्ठ मूर्तयः	भगवान् विष्णुके ही
निमित्तेन	निष्काम भावसे		समान रूपमें
धर्मेण	धर्मपालन द्वारा	यत्र वसन्ति	जहाँ रहते हैं ॥१४॥
हरिं आराधयन्	श्रीहरिकी आराधना (की है)		

यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः ।
सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन् वृषः ॥१५॥

यत्र च आद्यः पुमान् आस्ते भगवान् शब्दगोचरः सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नः मृडयन् वृषः ॥१५॥

यत्र च	जहाँ तो	विरजं	निर्मल
भगवान्	भगवान्	सत्त्वं	सत्त्वमय
शब्दगोचरः	श्रुति प्रतिपाद्य	विष्टभ्य	स्वरूप धारणकर
वृषः	धर्ममूर्ति	आद्यः पुमान्	आदि पुरुष
नः स्वानां	हम अपने (आश्रितों) को	आस्ते	विराजमान हैं ॥१५॥
मृडयन्	सुख देनेके लिए		

यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ।
सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥१६॥

यत्र नैःश्रेयसं नामवनं कामदुघैः द्रुमैः सर्व ऋतु श्रीभिः विभ्राजत् कैवल्यं इव मूर्तिमत् ॥१६॥

यत्र	जहाँ	कामदुघैः द्रुमैः	कल्प वृक्षोंसे भरा
मूर्तिमत्	मूर्तिमान	नैःश्रेयस नामवनं	नैश्रेयस नामका वन
कैवल्यं इव	कैवल्य मोक्षके समान	विभ्राजत्	सुशोभित हो रहा
सर्व ऋतु श्रीभिः	सब ऋतुओंकी शोभा सम्पन्न		है ॥१६॥

वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र
गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ।
अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां
गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥१७॥

वैमानिकाः सललनाः चरितानि यत्र गायन्ति लोक शमल क्षपणानि भर्तुः अन्तः जले अनुविकसन् मधु माधवीनां गन्धेन खण्डित धियः अपि अनिलं क्षिपन्तः ॥१७॥

सललनाः	पत्नियोंके साथ	अपि	आकर्षित बुद्धि होने पर भी
वैमानिकाः	विमानोंमें बैठे भगवत्पार्षद	अनिलं क्षिपन्तः	वायुको ही दोष देते हुए
यत्र अन्तः जले	जहाँ जलके भीतर	लोक शमल	लोगोंकी पाप-
अनुविकसन्	खिली हुई		राशिको
मधु माधवीनां	वसन्त मालती लताकी	क्षपणानि	नष्ट कर देनेवाले
गन्धेन	सुगन्धिसे	भर्तुः	(अपने) स्वामीके
खण्डित धियः		चरितानि	चरितोंका
		गायन्ति	गान करते हैं ॥१७॥

पारावतान्यभृतसारसचक्रवाक-
दात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ।
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चै-
र्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥१८॥

पारावत अन्यभृत सारस चक्रवाक दात्यूह हंस शुक तित्तिर बर्हिणां यः कोलाहलः विरमते अचिरमात्र उच्चैः भृङ्गाधिपे हरिकथां इव गायमाने ॥१८॥

भृङ्गाधिपे	भ्रमरराजके
उच्चैः	उच्च स्वरसे
हरिकथां	श्रीहरिकी कथाका
गायमाने इव	मानो गान कर रहे हों (इस प्रकार गुंजार करनेपर)
अचिरमात्र	थोड़ी देरको
पारावत	कबूतर,
अन्यभृत्	कोयल,
सारस	सारस,
चक्रवाक	चकवा,
दात्यूह	पपीहा,
हंस	हंस,
शुक	तोते,
तित्तिर	तीतर और
बर्हिणां	मयूरोंका
यः कोलाहलः	जो कोलाहल है,
विरमते	(वह) रुक जाता है ॥१८॥

मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्ण-
पुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ।
गन्धेर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या
यस्मिस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥१९॥

मन्दार कुन्द कुरबक उत्पल चम्पक अर्ण पुन्नाग नाग बकुल अम्बुज पारिजाताः गन्धे अर्चिते तुलसिका आभरणेन तस्या यस्मिन् तपः सुमनसः बहु मानयन्ति ॥१९॥

तुलसिका	तुलसीके
आभरणेन	आभूषणोंकी
गन्धे	सुगन्धिसे
तस्या	उस (तुलसी) के द्वारा
अर्चिते	(श्रीभगवान्‌के) पूजित (अलंकृत) होनेपर
यस्मिन्	जहाँ
मन्दार	आक,
कुन्द	कुन्द,
कुरबक	कुरबक (तिलकवृक्ष)
उत्पल	श्वेत कमल,
अर्ण	अर्ण,
पुन्नाग	पुन्नाग,
नाग	नागकेशर,
बकुल	मौलिश्री,
अम्बुज	कमल और
पारिजाताः	हरश्रृंगारके
सुमनसः	सुगन्धित पुष्प
तस्या	उस (तुलसी) की
तपः	तपस्या
बहु मानयन्ति	अधिक (श्रेष्ठ) मानते हैं ॥१९॥

यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टै-
वैंदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ।
येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः
कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥२०॥

यत् संकुलं हरिपदान् अतिमात्र दृष्टैः वैंदूर्य मारकत हेममयैः विमानैः येषां बृहत् कटितटाः स्मितशोभि मुख्यः कृष्ण आत्मनां न रज आदधुः उत्स्मय आद्यैः ॥२०॥

यत् वैंदूर्य	जो लहसनिया	कृष्ण आत्मनां	श्रीहरिमें चित्त लगे लोगोंका
मारकत	पन्ना (जड़े)	बृहत् कटितटाः	भारी नितम्बोंवाली
हेममयै	स्वर्णमय	स्मितशोभि	मुस्कानसे सुशोभित
विमानैः	विमानोंसे	मुख्याः	सुमुखी (सुन्दरियां)
संकुलं	भरा हुआ है,	उत्स्मय आद्यैः	मन्द मुस्कान अदि (हावभाव) से
हरिपदान्	श्रीहरिके चरणोंमें ही		
अतिमात्र	एकमात्र	रज	मनोविकार
दृष्टैः	दृष्टि (प्रीति) से (यह वैभव) है	न आदधुः	नहीं उत्पन्न कर पातीं ॥२०॥
येषां	जिन (विमानवाले)		

श्री रूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं
लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ।
संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि
सम्मार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥२१॥

श्री रूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीला अम्बुजेन हरि सद्मनि मुक्तदोषा संलक्ष्यते स्फटिक कुड्य उपेत हेम्नि सम्मार्जती इव यत् अनुग्रहणे अन्य यत्नः ॥२१॥

यत्	जिनकी		प्रयत्न करते रहते हैं (वे)
अनुग्रहणे	कृपा प्राप्तिके लिए		
अन्य यत्नः	दूसरे (देवादि)	रूपिणी	सौन्दर्यमयी

श्री	लक्ष्मीजी	हरि सद्मनि	श्रीहरिके भवनकी
मुक्तदोषा	(चंचलता रूप) दोष, त्यागकर	स्फटिक कुड्य	स्फटिक दीवारोंको
चरणारविन्दं	चरण-कमलोंके (नूपुरोंको)	लीला अम्बुजेन	लीला कमलसे (प्रतिविम्ब पड़नेसे)
क्वणयती	झंकृत करती	सम्मार्जती इव	पोंछती-सी
हेम्नि उपेत	स्वर्ण निर्मित	संलक्ष्यते	दिखलायी पड़ती हैं ॥२१॥

वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु
प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ।
अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्र-
मुच्छेषितं भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥२२॥

वापीषु विद्रुम तटासु अमल अमृत अप्सु प्रेष्य अन्विता निजवने तुलसीभिः ईशं अभ्यर्चती स्व अलकं उन्नसं ईक्ष्य वक्त्रं उच्छेषितं भगवता इति अमत अङ्ग यत् श्रीः ॥२२॥

अङ्ग	प्रिय (देवताओ)	स्व अलकं	अपना अलंकोंसे घिरा
विद्रुम तटासु अमल अमृत अप्सु	मूंगेसे बने घाटवाली निर्मल अमृत जलवाली	उन्नसं	उन्नत नासिकावाला
		वक्त्रं ईक्ष्य	मुख देखकर
		श्रीः यत्	लक्ष्मीजी क्योंकि
वापीषु	वावलीपर	भगवता	'भगवानका
निजवने	अपने वनमें	उच्छेषितं	चुम्बित है'
प्रेष्य अन्विता	प्रिय सखियोंके साथ	इति	ऐसा (समझकर)
तुलसीभिः ईशं अभ्यर्चती	तुलसीके द्वारा अपने स्वामीकी पूजा करती	अमत	(अपनेको) भाग्य-शालिनी मानती हैं ॥२२॥

यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादा-
च्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारा-
स्तां स्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥२३॥

यत् न व्रजन्ति अघभिदः रचना अनुवादा शृण्वन्ति ये अन्य विषयाः कुकथा मतिघ्नीः याः तु श्रुता हत भगैः नृभिः आत्तसाराः तान् तान् क्षिपन्ति अशरणेषु तमः सु हन्त ॥२३॥

अघभिदः	पापहारी (भगवान) की	**याः तु**	जिसे तो
रचना अनुवादा	लीला कथाओंको (छोड़कर)	**हन्त**	हाय (उन)
ये मतिघ्नीः	जो बुद्धि नाशिका	**हत भगैः**	अभागे
अन्य विषयाः	दूसरे (लौकिक) विषयोंकी	**नृभिः**	मनुष्यों द्वारा
कुकथा	निन्दित कथाएँ	**आत्तसाराः**	सारहीन (बातोंको)
शृण्वन्ति	सुनते हैं (वे)	**श्रुता**	सुनकर (वे बातें ही)
यत् न व्रजन्ति	जहाँ नहीं जाते।	**तान् तान्**	उन-उन
		अशरणेषु	आश्रयहीन
		तमः सु	नरकोंमें
		क्षिपन्ति	डाल देती हैं ॥२३॥

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना
ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्मं यत्र ।
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य
सम्मोहिता विततया बत मायया ते ॥२४॥

ये अभ्यर्थितां अपि च नः नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्व विषयं सह धर्म यत्र न आराधनं भगवतः वितरन्ति अमुष्य सम्मोहिता विततया बत मायया ते ।

नः	हम (देवताओं द्वारा भी)	**भगवतः**	भगवानकी
अभ्यर्थितां	चाही जानेवाली	**आराधनं न**	आराधना नहीं
नृगतिं अपि	मनुष्य योनिको भी	**वितरन्ति**	करते
ये प्रपन्ना	जो प्राप्त करके	**बत ते**	निश्चय वे
यत्र	जिसमें	**अमुष्य**	इन (भगवान) की
धर्म सह	धर्माचरणके साथ	**वितनया**	विस्तृत
तत्त्व विषयं	परमतत्त्व सम्बन्धी	**मायया**	माया द्वारा
ज्ञानं च	ज्ञान (हो सकता है) तथा	**सम्मोहिता**	मोहित हैं ॥२४॥

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या
दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।
भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग-
वैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥२५॥

यत् च व्रजन्ति अनिमिषां ऋषभ अनुवृत्त्या दूरे यमा हि उपरि नः स्पृहणीय शीलाः भर्तुः मिथः सुयशसः कथन अनुराग वैक्लव्य बाष्प कलया पुलकीकृत अङ्गाः ॥२५॥

मिथः	परस्पर	अनिमिषां ऋषभ	देवदेवेश्वर (भगवान) का
भर्तुः	अपने स्वामी (भगवान) के	अनुवृत्त्या	सतत चिन्तन करनेसे
सुयशसः	सुयशको	यमा दूरे	(जिनसे) यमराज दूर रहते हैं
कथन	वर्णन करनेसे (उत्पन्न)	स्पृहणीय	स्पृहा करने योग्य
अनुराग	प्रेमकी	शीलाः	आचरणवाले
वैक्लव्य	व्याकुलता जन्य	यत् च नः	जो (वे) तो हम (सब) से
बाष्प कलया	अश्रुधारा (तथा)	उपरि	ऊपर
पुलकीकृत	रोमांचित हुए	व्रजन्ति	जाते हैं ॥२५॥
अङ्गाः हि	शरीरवाले क्योंकि		

तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं
दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ।
आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योग-
मायाबलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥२६॥

तत् विश्वगुरु अधिकृतं भुवन एक वन्द्यं दिव्यं विचित्र विबुध अग्र्य विमान शोचिः आपुः परां मुदं अपूर्वं उपेत्य योगमाया बलेन मुनयः तत् अथ विकुण्ठम् ॥२६॥

तत्	उस	अधिकृतं	अधिष्ठित
विश्वगुरु	विश्वगुरु (श्रीहरि) से	भुवन एक वन्द्यं	त्रिभुव द्वारा एक मात्र वन्दनीय

अग्र्य विबुध	श्रेष्ठ देवताओंके	मुनयः	(सनकादि) मुनियोंको
विचित्र विमान	विचित्र विमानोंसे	अपूर्व	अपूर्व
शोभिः	सुशोभित	मुदं आपुः	आनन्द प्राप्त हुआ ॥२६॥
तत् विकुण्ठं	उस वैकुण्ठमें		
योगमाया बलेन	योगमाया बलसे		
अथ उपेत्य	तब पहुँचकर		

तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः
कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ।
देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्य-
केयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥२७॥

तस्मिन् अतीत्य मुनयः षट् असज्जमानाः कक्षाः समान वयसा अथ सप्तमायाम् देवाः अचक्षत गृहीत गदौ परार्ध्य केयूर कुण्डल किरीट विटङ्क वेषौ ॥२७॥

तस्मिन्	उस (वैकुण्ठ) में	परार्ध्य	बहुमूल्य
असज्जमानाः	कहीं आसक्त न होते	केयूर कुण्डल	बाजूबन्द, कुण्डल
षट् कक्षाः	छ ड्योढ़ियोंको	किरीट	मुकुटसे
अतीत्य	पार करके	विटङ्क वेषौ	सुसज्जित वेशवाले
अथ सप्तमायाम्	जब सातवीं (ड्योढ़ी) पर पहुँचे	गृहीत गदौ	गदा लिये
		देवाः	दो देवताओंको
समान वयसाम्	(वहाँ) समान आयुवाले	अचक्षत	देखा ॥२७॥

मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ
विन्यस्तयासितचतुष्टयबाहुमध्ये ।
वक्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां
रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥२८॥

मत्त द्विरेफ वनमालिकया निवीतौ विन्यस्तया असित चतुष्टय बाहुमध्ये वक्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुट निर्गमाभ्यां रक्त ईक्षणेन च मनाक् रभसं दधानौ ॥२८॥

असित	श्यामवर्णकी
चतुष्टय बाहुमध्ये	चार भुजाओंके बीचमें
विन्यस्तया	रखी गयी
मत्त द्विरेफ	मतवाले भ्रमरोंसे भूषित
वनमालिकया	वनमाला
निवीतौ	पहिने
वक्रं भ्रुवा	टेढ़ी भौंहोंके
कुटिलया	तिरछेपनसे
स्फुट निर्गमाभ्यां	फड़कती नासिकासे
च रक्त ईक्षणेन	तथा लाल आँखोंसे
मनाक् रभसं	थोड़ा क्षोभ
दधानौ	धारण किये (दीखते थे) ॥२८॥

द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा
पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिका याः ।
सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या
ये सञ्चरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ॥२९॥

द्वारि एतयोः निविविशुः मिषतोः अपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्र कपाटिका याः सर्वत्र ते अविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये सञ्चरन्ति अविहता विगत अभिशङ्काः ॥२९॥

ये सर्वत्र	जो सब कहीं
अविषमया	समान
स्व दृष्ट्या	अपनी दृष्टिसे
अभिशङ्काः	आशङ्का
विगत	रहित (अशङ्क)
अविहता	अव्याहतगति
सञ्चरन्ति	घूमते रहते हैं,
ते मुनयः	वे (सनकादि) मुनि
यथा पूर्वा	जैसे पहिले
पुरटवज्र	स्वर्णके हीरे जड़े
कपाटिका याः	किवाड़ोंवाले (द्वारोंसे आये थे)
एतयोः	इन दोनों (द्वारपालों) के
मिषतोः	देखते हुए (सामने ही)
द्वारि	द्वारमें
अपृष्ट्वा	बिना पूछे
निविविशुः	प्रवेश करने लगे ॥२९॥

तान् वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्
वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ।
वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ
तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥३०॥

तान् वीक्ष्य वातरशनान् चतुरः कुमारान् वृद्धान् दशार्ध वयसः विदित आत्मतत्त्वान् वेत्रेण च अस्खलयतां अतदर्हणान् तौ तेजः विहस्य भगवत् प्रतिकूल शीलौ ॥३०॥

तान्	उन
वातरशनान्	दिगम्बर
वृद्धान्	(सबसे) आयुमें बड़े; किन्तु
दशार्ध वयसः	पाँच वर्षकी आयुके लगते)
विदित	
आत्मतत्त्वान्	आत्मतत्त्व ज्ञानी
चतुरः कुमारान्	चारों कुमारोंको
वीक्ष्य	देखकर
तौ	वे दोनों (द्वारपाल)
भगवत्	भगवान्के
प्रतिकूल शीलौ	शीलके विपरीत व्यवहार करते
तेजः विहस्य	(उन कुमारोंके) तेजकी हँसी उड़ाते
वेत्रेण	बेंतके द्वारा (वेत अड़ाकर)
अस्खलयता च	रोक दिया, यद्यपि
अतदर्हणान्	(वे) इस व्यवहारके योग्य नहीं थे ॥३०॥

ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः
स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ।
ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभङ्ग ईष-
त्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥३१॥

ताभ्यां मिषत् सु अनिमिषेषु निषिध्यमानाःसु अर्हत्तमा हि अपि हरेः प्रतिहारपाभ्यां उचुः सुहृत्तम दिदृक्षित भङ्ग ईषत् कामानुजेन सहसा त उपप्लुत अक्षाः ॥३१॥

अनिमिषेसु	देवताओंके
मिषत् सु	सामने देखते हुए
ताभ्यां हरेः	उन श्रीहरिके
प्रतिहारपाभ्यां	द्वारपालों द्वारा
हि	क्योंकि
अर्हत्तमाः	पूज्यतम
अपि	होनेपर भी
निषिध्यमानाः सु	रोके जानेपर
सुहृत्तम	(अपने) प्रियतम (भगवानके)
दिदृक्षित	दर्शनकी इच्छाको
भङ्ग	रोकनेसे
ईषत्	थोड़े
कामानुजेन	क्रोधसे
उपप्लुत	लाल हो उठे
अक्षाः	दृष्टिवाले (वे)
उचुः	बोले ॥३१॥

कुमारा ऊचुः*-

को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चै-
स्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ।
तस्मिन् प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां
को वाऽऽत्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥३२॥

कः वां इह एत्य भगवत् परिचर्यया उच्चैः तत् धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः तस्मिन् प्रशान्त पुरुषे गत विग्रहे वां कः वा आत्मवत् कुहकयोः परिशंकनीयः ॥३२॥

भगवत्	भगवानकी	प्रशान्त पुरुषे	परमशान्त परम पुरुषकी
उच्चैः	महती	विग्रहे गत	किसीसे शत्रुता नहीं है
परिचर्यया	सेवाके प्रभावसे	आत्मवत् कुहकयोः	अपने समान कपटी (होनेके)
इह एत्य	यहाँ पहुँचकर	परिशङ्कनीयः	आशङ्का करने योग्य (माननेवाले)
तत् धर्मिणां	उन (भगवान) के समान ही स्वभाव वालोंमें	वां कः	तुम दोनों कौन हो ? ॥३२॥
निवसतां	रहते हुए		
विषमः स्वभावः	उलटे स्वभावके		
वां कः	तुम दोनों कौन हो ?		
वा तस्मिन्	अथवा उन		

न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षा-
वात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ।
पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं
व्युत्पादितं ह्युदरभेदिभयं यतोऽस्य ॥३३॥

न हि अन्तरं भगवति इह समस्त कुक्षाः आत्मानं आत्मनि नभः नभसा इव धीराः पश्यन्ति यत्र युवयोः सुर लिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं हि उदरभेदि भयं यतः अस्य ॥३३॥

---

* अन्य प्रतियोंमें 'मुनयः ऊचुः' है ।

हि	क्योंकि
समस्त कुक्षाः	सम्पूर्ण (जगतको) उदरमें रखनेवाले
भगवति	भगवानके लिए
नभः	महाकाशके लिए
नभसा इव	(घट) आकाशके समान
आत्मानं	
आत्मनि इह	अपने आपमें यहाँ
अन्तरं न	(कोई) भेद नहीं है।
धीराः	(यहाँ रहनेवाले) धीर (ज्ञानी) लोगों समान
सुर लिङ्गिनोः	देवताओंके समान रूपवाले
युवयोः	तुम दोनोंको
यत्र	जहाँ
उदरभेदि	पेटके कारण होने वाले भेद
यतः अस्य	इन (भगवान) के लिए
भयं	भय
व्युत्पादितं	उत्पन्न हो गया हो
हि किं	ऐसा क्या (कारण)
पश्यन्ति	देखते हो ॥३३॥

तद्राममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः
कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या
पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥३४॥

तत् वां अमुष्य परमस्य विकुण्ठ भर्तुः कर्तुं प्रकृष्टं इह धीमहि मन्द धीभ्यां लोकान् इतः व्रजतं अन्तरभाव दृष्ट्या पापीयसः त्रय इमे रिपवः अस्य यत्र ॥३४॥

तत् धीमहि	अतः हम समझते हैं
अमुष्य	इन
परमस्य	परम पुरुष
विकुण्ठ भर्तुः	वैकुण्ठनाथके
प्रकृष्टं कर्तुं	श्रेष्ठ सेवक (पार्षद)
इह	यहाँ रहनेवाले
मन्द धीभ्यां	मन्द बुद्धि
वां इतः	तुम दोनों यहाँसे
अन्तर भाव	भेद-भाव युक्त
दृष्ट्या	दृष्टिके कारण
पापीयसः	पापियोंके
लोकान् व्रजत	(उन) लोकोंको जाओ
यत्र अस्य	जहाँ इन (भगवान)के
इमे त्रय	ये तीन (काम, क्रोध, लोभ)
रिपवः	शत्रु रहते हैं ॥३४॥

ब्रह्मोवाच*–

तेषामितीरितमुभावबधार्य घोरं
तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ।
सद्यो हरेरनुचरावुरु बिभ्यतस्तत्-
पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥३५॥

तेषां इति ईरितं उभाः अवधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डं अनिवारणं अस्त्र पूगैः सद्यः हरेः अनुचराः उरु बिभ्यतः तत् पादग्रहाः अपततां अति कातरेण ॥३५॥

तेषां	उन (सनकादि) के	**अवधार्य**	सुनकर
इति	इस प्रकार	**उभाः**	दोनों
अस्त्र पूगैः	अस्त्र राशिसे	**हरेः अनुचराः**	श्रीहरिके अनुचर
अनिवारणं	प्रतिकार न होने योग्य	**उरु बिभ्यतः**	अत्यन्त भयभीत होकर
घोरं तं	घोर उस	**अति कातरेण**	बहुत व्याकुल होकर
ब्रह्मदण्डं	ब्राह्मणोंके दण्ड (शाप) को	**तत् पादग्रहाः**	उनके चरणोंको पकड़कर
ईरितं	कहा गया (दिया गया)	**अपततां**	गिर पड़े ॥३५॥

जय-विजयोच*–

भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो
यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ।
मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो
मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥३६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

भूयात् अघोनि भगवद्भिः अकारि दण्डः यः नौ हरेत सुरहेलनं अपि अशेषं मा वः अनुताप कलया भगवत स्मृतिघ्नः मोहः भवेत् इह तु नौ व्रजतः अधः अधः ॥३६॥

भगवद्भिः	भगवन् ! आप लोगोंने	**वः**	आपके
यः दण्डः	जो दण्ड	**अनुताप कलया**	पश्चाताप लेशसे
नौ अघोनि	हम दोनों अपराधियोंको	**इह तु**	यहाँसे तो
		अधः अधः	नीचे ही नीचे
अकारि	दिया है (वह)	**व्रजतः**	जाते हुए
अशेषं	वह पूर्ण हो,	**नौ**	हम दोनोंको
सुरहेलनं अपि	भगवानकी अवहेलना भी	**भगवत्**	भगवानकी
		स्मृतिघ्न	स्मृतिका नाशक
हरेत	करावे पर हमें शाप देकर जो आपको थोड़ा भी (पछताव होगा, उस)	**मोहः**	मोह
		मा भवेत्	न होवे ॥३६॥

*ब्रह्मोवाच**–

एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः
स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ।
तस्मिन् ययौ परमहंसमहामुनीना-
मन्वेषणीयचरणौ चलयन् सहश्रीः ॥३७॥

एवं तत एव भगवान् अरविन्दनाभः स्वानां बिबुध्य सत् अतिक्रमं आर्यहृद्यः तस्मिन् ययौ परमहंस महामुनीनां अन्वेषणीय चरणौ चलयन् सहश्रीः ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	**आर्यहृद्यः**	श्रेष्ठ पुरुषोंके हृदय धन
तत एव	उसी समय		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान्	भगवान्	महामुनीनां	परमहंस महामुनियों द्वारा
अरविन्दनाभः	कमलनाभ	अन्वेषणीय	
स्वानां	अपने सेवकों द्वारा	चरणौ	जिनके चरणोंकी खोज होती है (वे)
सत् अतिक्रमं	सत्पुरुषोंका अपमान हुआ	सहश्रीः	लक्ष्मीके साथ
बिबुध्य	जानकर	चलयन्	चलकर
परमहंस		तस्मिन् ययौ	वहाँ आये ॥३७॥

तं त्वागतं प्रतिहृतोपयिकं स्वपुम्भि-
स्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ।
हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोल-
च्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकराम्बुम् ॥३८॥

तं तु आगतं प्रतिहृत उपयिकं स्व पुम्भिः ते अचक्षत अक्ष विषयं स्व समाधि भाग्यं हंस श्रियोः व्यजनयोः शिव वायु लोलः शुभ्र आतपत्र शशि केसर शीकर अम्बुम् ॥३८॥

ते स्व	उन (सनकादि) ने अपनी	प्रतिहृतं	साथ लाये हुए
समाधि	समाधिके	हंस श्रियोः	हंसके समान शुभ्र सुन्दर
भाग्यं	सौभाग्य (समाधिमें सौभाग्यसे आनेवाले)	व्यजनयोः	चवँरोंकी
तं तु	उन (श्रीहरि) को तो	शिव वायु	मंगल वायुसे
अक्ष विषयं	आंखोंके सम्मुख (प्रत्यक्ष)	लोल	हिलती
अचक्षत	देखा ।	शुभ्र आतपत्र	श्वेत छत्रकी
स्व पुम्भिः	अपने सेवकों द्वारा	शशि केसर	चन्द्रकिरणोंके समान (झालरोंसे)
उपयिकं	सेवा सामग्री (व्यजनादि)	शीकर अम्बुम्	मानो ओसकी बूँदें (टपकती हों) ॥३८॥

कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम
स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ।

श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्व-
श्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥३९॥

कृत्स्न प्रसाद सुमुखं स्पृहणीय धाम स्नेह अवलोक कलया हृदि संस्पृशन्तं श्यामे पृथाः उरसि शोभितया श्रिया स्वं चूडामणिं सुभगयन्तं इव आत्मधिष्ण्यम् ॥३९॥

कृत्स्न	सम्पूर्ण	शोभितया	सुशोभित
प्रसाद	कृपासे	श्रिया	श्रीवत्स चिह्नसे
सुमुखं	युक्त शान्त मुख	स्वं	अपने
स्नेह अवलोक	स्नेह भरी चितवन	स्पृहणीय	स्पृहा करने योग
	वाली	धाम	धाम
कलया	दृष्टिसे	आत्मधिष्ण्यं	निज निवास
हृदि	हृदयको		(वैकुण्ठ)
संस्पृशन्तं	छूते हुए	चूडामणिं	सब लोकोंके
श्यामे	श्यामवर्ण वाले		शिरोमणिको
पृथा	विशाल	सुभगयन्तं इव	सुशोभित
उरसि	वक्षस्थलपर		करतेसे ॥३९॥

पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या
काञ्च्यालिभिर्विरुतया वनमालया च ।
वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥४०॥

पीत अंशुके पृथु नितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्या अलिभिः विरुतया वनमालया च वल्गु प्रकोष्ठ वलयं विनतासुत अंसे विन्यस्त हस्तं इतरेण धुनानं अब्जम् ॥४०॥

पीत अंशुके	पीताम्बर मंडित	अलिभिः	भ्रमरोंकी
पृथु	भारी	विरुतया	गुंजारसे युक्त
नितम्बिनि	नितम्बोंपर	वनमालया	वनमालासे
काञ्च्या	करधनी		(भूषित थे)
विस्फुरन्त्या च	चमकती थी, तथा	वल्गु	सुन्दर

प्रकोष्ठ	कलाइयोंमें	इतरेण	दूसरे (हाथ) से
वलयं	कंकण था	अब्जं	कमलको
विनतासुत	गरुड़के	धुनानं	घुमाते हुए ॥४०॥
अंसे	कन्धेपर (वह भुजा रखे)		

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्ह-
गण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ।
दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्य-
हारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥

विद्युत् क्षिपन् मकरकुण्डल मण्डन अर्हं गण्डस्थल उन्नस मुखं मणिमत् किरीटं दोर्दण्ड षण्ड विवरे हरता परार्ध्यं हारेण कन्धर गतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥

विद्युत्	बिजलीको	दोर्दण्ड षण्ड	विशाल भुजाओके
क्षिपन्	लज्जित करनेवाले	विवरे	मध्यमें
मकरकुण्डल	मकराकृति कुण्डलोंसे	कन्धर गतेन	कन्धोंपर पड़े
गण्डस्थल	कपोल प्रान्त	परार्ध्यं	बहुमूल्य
मण्डन अर्हं	सुभूषित थे ।	हारेण च	हारके द्वारा तथा
उन्नस मुखं	उठी हुई नासिका युक्त मुख,	कौस्तुभेन हरता	कौस्तुभ मणि पहिननेसे (सुशोभित) ॥४१॥
मणिमत्	मणिजटित		
किरीटं	मुकुट (धारण किये)		

अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः
स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम् ।
मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्गं
नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशो मुदा कैः ॥४२॥

अत्र उपसृष्टं इति च उत्स्मितं इन्दिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहु सौष्ठव आढ्यं मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तं अङ्गं नेमुः निरीक्ष्य न वितृप्त दृशः मुदा कैः ॥४२॥

अत्र	यहाँ (इसके सम्मुख)
इन्दिरायाः	लक्ष्मीका भी
उत्स्मित	(सौन्दर्य) गर्व
उपसृष्टं	गलित हो गया है,
इति च	ऐसा ही
स्वानां	(भगवानके) अपने भक्तोंका
धिया विरचितं	बुद्धिका निश्चय है,
बहु सौष्ठव	अत्यन्त सौन्दर्य
आढ्यं	परिपूर्ण
मह्यं	मेरे लिए
भवस्य	शंकरजीके लिए
भवतां च	तुम लोगोंके लिए भी
अंगं भजन्तं	ऐसा श्रीविग्रह धारण किये
न वितृप्त	अतृप्त
दृशः	दृष्टिसे
निरीक्ष्य	(श्रीहरिको) देखकर
मुदा	आनन्दसे
कैः नेमुः	सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥४२॥

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
सङ्क्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥४३॥

तस्य अरविन्द नयनस्य पदारविन्द किञ्जल्क मिश्र तुलसी मकरन्द वायुः अन्तर्गतः स्व विवरेण चकार तेषां संक्षोभं अक्षरजुषां अपि चित्त तन्वोः ॥४३॥

तस्य	उन
अरविन्द नयनस्य	कमल लोचनके
पदारविन्द	चरण-कमलोंके
किञ्जल्क	परागसे
मिश्र	मिली हुई
तुलसी मकरन्द	तुलसीकी परागकी
वायुः	वायु
स्व विवरेण	(उनके अपने) नासिका छिद्रसे
अन्तर्गतः	भीतर जाकर
अक्षरजुषां	निराकार ब्रह्ममें लगे
अपि	होनेपर भी
तेषां चित्तं	उनके चित्तको
संक्षोभं तन्वोः	संक्षोभ भरा
चकार	बना दिया ॥४३॥

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोश-
मुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ।

लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रि-
द्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥४४॥

ते वा अमुष्य वदनं असित पद्मकोशं उद्वीक्ष्य सुन्दरतरं अधरं कुन्द हासं लब्ध आशिषः पुनः अवेक्ष्य तदीयं अङ्घ्रि द्वन्द्वं नख अरुणमणि श्रयणं निदध्युः ॥४४॥

अमुष्य	इन (भगवान) के	**लब्ध**	मिल (पूरी हो) गयीं
असित पद्मकोशं	नीलकमल पुष्पके समान	**अरुणमणि श्रयणं**	लाल मणियोंके समान
सुन्दरतरं	अतिशय सुन्दर	**नख तदीय**	नखोंवाले उनके
वदन	मुखको,	**अङ्घ्रि द्वन्द्वं**	दोनों चरणोंको
अधरं	ओष्ठोंको,	**पुनः अवेक्ष्य**	फिरसे देखकर
कुन्दहासं	कुन्द पुष्प (के समान) उज्वल हास्यको	**ते वा**	वे तो
		निदध्युः	उन्हींके ध्यानमें मग्न हो गये ॥४४॥
उद्वीक्ष्य	देखकर (उनकी)		
आशिष	सब कामनाये		

पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गै-
र्ध्यानास्पदं बहु मतं नयनाभिरामम् ।
पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धै-
रौत्पत्तिकैः समगृणन् युतमष्टभोगैः ॥४५॥

पुंसां गतिं मृगयतां इह योगमार्गैः ध्यान आस्पदं बहु मतं नयन अभिरामं पौंस्नं वपुः दर्शयानं अनन्य सिद्धैः औत्पत्तिकैः समगृणन् युतं अष्ट भोगैः ॥४५॥

इह	इस (जगत) में	**बहुमतं**	बहुत सम्मानित
योगमार्गैः	योगके साधनों द्वारा	**नयन अभिरामं**	नयनाभिराम
पुंसां	पुरुषकी	**अनन्य सिद्धैः**	अन्य किसी साधनसे न मिलनेवाला
गतिं	परमगति (मोक्ष)		
मृगयतां	ढूँढ़ने वालोंके लिए	**औत्पत्तिकैः**	स्वाभाविक
ध्यान आस्पदं	ध्यानका आधार रूप	**अष्ट भोगैः**	अष्ट सिद्धियोंसे

युतं	युक्त	समगृणन्	स्तुति करने लगे ॥४५॥
पौंस्नं वपुः	(अपना) पुरुष रूप		
दर्शयानं	दर्शन देते (भगवानकी)		

कुमारा ऊचुः—

योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं
सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः ।
यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः
पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥४६॥

यः अन्तर्हितः हृदि गतः अपि दुरात्मनां त्वं सः अद्य एव नः नयनमूलं अनन्त राद्धः यर्हि एव कर्णविवरेण गुहां गतः नः पित्रा अनुवर्णितः रहा भवत् उद्भवेन ॥४६॥

यर्हि भवत् उद्भवेन	जबसे आपसे उत्पन्न	यः दुरात्मनां	जो मलिन-हृदय लोगोंके
पित्रा	(हमारे) पिता (ब्रह्मा) ने	हृदि	हृदयमें
रहा	(आपका) रहस्य	गतः अपि	रहनेपर भी
अनुवर्णितः	वर्णन किया	अन्तर्हितः	(उनसे) अदृश्य रहते हैं
कर्णविवरेण	(तबसे) कर्णोंके छिद्रसे	सः अनन्त	वही आप अनन्त
नः गुहां	हमारी हृदय गुहामें	राद्धः	साक्षात्
गतः	(आप) आ गये थे	अद्य एव	आज ही
		नयनमूलं	नेत्रोंके सम्मुख आये हैं ॥४६॥

तं त्वां विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वं
सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ।
यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगै-
रुग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥४७॥

तं त्वां विदाम भगवन् परम आत्मतत्त्वं सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तं एषां यत् ते अनुताप विदितैः दृढ भक्तियोगैः उद्ग्रन्थयः हृदि विदुः मुनयः विरागाः ॥४७॥

भगवन्	भगवन् !	अनुताप	वियोगनुभूति जन्य तापसे
तं त्वां	ऐसे आपको (हम)	विदितैः	प्रकट होनेवाले
परम आत्मतत्त्वं	परम आत्मतत्त्व	दृढ भक्तियोगैः	दृढ़ भक्तियोगसे
विदाम	(हम) जानते हैं	उद्ग्रन्थय	(काम-क्रोध-लोभकी) ग्रन्थिसे मुक्त
सम्प्रति	इस समय		
सत्त्वेन	सत्त्वगुण स्वीकार करके	विरागाः	वैराग्यवान
		मुनयः	मुनिगण
एषां	इन (अपने भक्तों)को	हृदि	हृदयमें
रतिं	प्रसन्नता	विदुः	जानते (उपलब्ध करते) हैं ॥४७॥
रचयन्तं	प्रदान कर रहे है,		
यत्	क्योंकि		

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं
किन्त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयस्ते ।
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः
कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥४८॥

न आत्यन्तिकं विगणयन्ति अपि ते प्रसादं किनु तु अन्यत् अर्पितं भयं भ्रुव उन्नयैः ते ये अङ्ग त्वत् अङ्घ्रि शरणाः भवतः कथायाः कीर्तन्य तीर्थयशसः कुशलाः रसज्ञाः ॥४८॥

अङ्ग !	प्रिय (प्रभु !)	कुशला	चतुर
ये त्वत्	जो आपके	रसज्ञाः	रसविद् हैं
अङ्घ्रि	चरणोंके	ते आत्यन्तिकं	वे (आपके) आत्यन्तिक
शरणाः	शरणागत		
कीर्तन्य	कीर्तनीय	प्रसादं अपि	प्रसाद (मोक्ष) की भी
तीर्थयशसः	पुण्यश्लोक		
भवतः	आपकी	विगणयन्ति न	(कोई) गणना नहीं करते
कथायाः	कथाके		

किं नु	फिर भला	भ्रुव उन्नयैः	भौंहोंको टेढ़े करनेसे होनेवाले
अन्यत्	दूसरे (अभक्तों) को	भयं तु	भयकी तो (क्या गणना करेंगे) ॥४८॥
अर्पितं	दिखाये गये		
ते	आपकी		

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ता-
च्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः
पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥४९॥

कामं भवः स्ववृजिनैः निरयेषु नः स्यात् चेतः अलिवत् यदि नु ते पदयोः रमेत वाचः च नः तुलसिवत् यदि ते अङ्घ्रि शोभाः पूर्येत ते गुणगणैः यदि कर्णरन्ध्रः ॥४९॥

यदि नु	यदि तो	ते गुणगणैः	आपके गुणगणों (के श्रवण) से
अलिवत्	भ्रमरके समान	यदि कर्णरन्ध्रः	यदि कर्ण छिद्र
नः चेतः	हमारा चित्त	पूर्येत	भरते रहें (आपके गुणानुवाद सुननेको मिलते रहें तो)
ते पदयोः	आपके चरणोंमें		
रमेत	लगा रहे		
च यदि वाचः	और यदि वाणी	स्ववृजिनैः	अपने पापोंसे
तुलसिवत्	तुलसीके समान	निरयेषु	नरकोंमें
ते अङ्घ्रिशोभाः	आपके चरणोंकी शोभा (का वर्णन करती रहे)	नः भवः	हमारा जन्म
		कामः स्यात्	भले हो ॥४९॥

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं
तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥५०॥

प्रादुः चकर्थ यत् इदं पुरुहूत रूपं तेन ईश निर्वृतिं अवापुः अलं दृशः नः तस्मा इदं भगवते नम इति विधेम यः अनात्मनां दुरुदयः भगवान् प्रतीतः ॥५०॥

ईश	स्वामी !	**यः भगवान्**	जो भगवानका
यत् इदं	यह जो	**प्रतीतः**	दर्शन
पुरुहूत	विपुल ऐश्वर्यमय	**अनात्मनां**	चित्तवशमें न करने
रूपं	रूप		वालोंको
प्रादुः चकर्थ	(आपने) प्रकट किया है	**दुरदयः**	(बहुत) दूर है
		तस्मा इदं	इसलिए यह
तेन	उससे	**भगवते**	(आप) भगवानको
नः दृशः	हमारे नेत्रोंको	**नम इति**	नमस्कार ऐसा*
अलं निर्वृतिं	अत्यन्त आनन्द	**विधेम**	करते हैं ॥५०॥
अवापुः	मिला है ।		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।

---

* 'नम इति विधेम' का तात्पर्य है कि हम केवल नमस्कार ही कर सकते हैं। दूसरी कोई सेवा करने योग्य नहीं हैं।

अथ षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच-

इति तद् गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् ।
प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥१॥

इति तत् गृणतः तेषां मुनीनां योग धर्मिणां प्रतिनन्द्य जगाद इदं विकुण्ठ निलयः विभुः ॥१॥

तेषां	उन	तत्	उसका
योग धर्मिणां	योगनिष्ठ	प्रतिनन्द्य	समर्थन करके
मुनीनां	मुनियों द्वारा	विकुण्ठ निलयः	वैकुण्ठ निवासी
इति	इस प्रकार	विभुः	भूमा (भगवान)
गृणतः	कहनेपर	जगाद	बोले ॥१॥

श्रीभगवानुवाच-

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ।
कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥२॥

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयः विजयः एव च कदर्थी कृत्य मां यद्वः बह्व क्रातां अतिक्रमम् ॥२॥

एतौ तौ	ये दोनों तो	कृत्य यत्	करके जो
जयः च विजय	जय और विजय	वः	आप लोगोंका
मह्यं	मेरे	वह्वः	बहुत
पार्षदौ एव	पार्षद ही हैं,	अतिक्रमं	अनादर
मां कदर्थी	मेरी उपेक्षा	अक्रातां	किया है ॥२॥

यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ।
स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥३॥

यः तु एतयोः धृतः दण्ड भवद्भिः मां अनुव्रतैः स एव अनुमतः अस्माभिः मुनयः देवहेलनात् ॥३॥

मुनयः	(आप) मुनियोंकी (अवज्ञासे)	एतयोः	इन दोनोंको
देवहेलनात्	मेरी ही अवज्ञा होनेके कारण	धृतः	दिया गया है,
		स एव	उसका ही
मां अनुव्रतैः	मेरे अनुगामी	अस्माभिः	मेरे द्वारा
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	अनुमतः	अनुमोदन कर दिया गया ॥३॥
यः तु दण्डः	जो तो दण्ड		

तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे ।
तद्धोत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुम्भिरसत्कृताः ॥४॥

तत् वः प्रसादयामि अद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे तत् हि आत्मकृतं मन्ये यत् स्व पुंभिः असत्कृताः ॥४॥

हि यत्	क्योंकि (यह) जो	मन्ये	मानता हूँ,
स्व पुंभिः	मेरे अपने सेवकों द्वारा	ततः वः	अतः आप लोगोंको
		प्रसादयामि	प्रसन्न कर रहा हूँ,
असत्कृताः	(आपका) अनादर हुआ है,	हि ब्रह्म	क्योंकि ब्राह्मण
		मे परं दैवं	मेरे परम देवता हैं ॥४॥
तत्	उसे (मैं)		
आत्मकृतं	अपने द्वारा किया गया		

यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ।
सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥५॥

यत् नामानि च गृह्णाति लोकः भृत्ये कृत आगसि सः असाधुवादः तत् कीर्तिं हन्ति त्वचं इव आमयः ॥५॥

त्वचं	त्वचापर हुए	आगसि कृतः	अपराध करनेपर,
आमयः इव	रोगके समान	यत् नामानि	जिसका नाम
लोके भृत्ये	लोकमें सेवकके	गृह्णाति	(लोग) लेते हैं,

सः असाधुवादः	वह अपयश	हन्ति	नष्ट कर देता
तत् कीर्ति	उसकी कीर्तिको		है ॥५॥

यस्यामृतामलयशः श्रवणावगाहः
सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ।
सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्ति-
श्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥६॥

यस्य अमृत अमल यशः श्रवण अवगाहः सद्यः पुनाति जगत् आश्वपचात् विकुण्ठः सः अहं भवद्भ्य उपलब्ध सुतीर्थ कीर्तिः छिन्द्यां स्वबाहुं अपि वः प्रतिकूल वृत्तिम् ॥६॥

यस्य	जिसका	विकुण्ठः	वैकुण्ठाधीश
अमृत अमल यशः	अमृतके समान निर्मल यश	भवद्भ्य	आप (सन्तों) से
		सुतीर्थ कीर्तिः	पवित्र कीर्ति
श्रवण अवगाहः	कानोंमें जाकर	उपलब्धः	प्राप्त करके
सद्यः	तत्काल	वः	आप लोगोंके
आश्वपचात्	चाण्डाल तक	प्रतिकूल वृत्ति	विपरीत आचरण करनेवाली
जगत्	संसारको		
पुनाति	पवित्र कर देता है,	स्वबाहुं अपि	अपनी भुजाको भी
सः अहं	वह मैं	छिन्द्यां	काट डालूंगा ॥६॥

यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं
सद्यःक्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः
प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति ॥७॥

यत् सेवया चरणु पद्म पवित्र रेणुं सद्यः क्षत अखिलमलं प्रतिलब्ध शीलं न श्रीः विरक्तं अपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थं इतरे नियमान् वहन्ति ॥७॥

यत्	जिन (सन्तों) की	चरण पद्म	(मेरे) चरण-
सेवया	सेवा (के प्रभाव) से,		कमलोंकी

रेणुं	रज	प्रेक्षालवार्थ	तनिक दृष्टिपातके लिए
पवित्र	(ऐसी) पवित्र हो गई है कि	इतरे	दूसरे लोग
सद्यः	तत्काल	नियमान्	(साधन) नियमोंका
अखिलमलं	सम्पूर्ण पापोंको	आवहन्ति	पालन करते हैं,
क्षत	नष्ट कर देती है और	श्रीः	(वह) लक्ष्मी
शीलं	(मुझे ऐसा) स्वभाव	विरक्तं अपि	(मेरे) उदासीन होनेपर भी
प्रतिलब्ध	मिला है (जिससे)	मां	मुझे
यस्याः	जिसके	न जहाति	नहीं छोड़ती ॥७॥

नाहं तथाद्मि यजमानहविर्विताने
श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं
तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥८॥

न अहं तथा अद्मि यजमान हविः विताने च्योतत् घृतप्लुतं अदन् हुतभुक् मुखेन यत् ब्राह्मणस्य मुखतः चरतः अनुघासं तुष्टस्य मयि अवहितैः निज कर्मपाकैः ॥८॥

मयि	मुझे	अदन्	खाते हुए (मुझे तृप्ति होती है)
निज कर्मपाकैः	अपने कर्मफलको	तथा	वैसे
अवहितैः	समर्पित करके	यजमान	यजमान द्वारा
तुष्टस्य	सन्तुष्ट रहनेवाले	विताने	यज्ञमें
ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणके	च्योतत् हविः	(घी) टपकती हुई हविष्य
मुखतः	मुखसे	अहं	मैं
घृतप्लुत	घीसे तर	हुतभुक्	अग्निके मुखसे
चरतः यत्	खाते हुए जो	न अद्मि	नहीं खाता ॥८॥
अनुग्रासं	प्रत्येक ग्रास		

येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोग-
मायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ।

विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः
सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् ॥९॥

येषां बिभर्मि अहं अखण्ड विकुण्ठ योगमाया विभूतिः अमल अङ्घ्रि रजः किरीटैः विप्रान् तु कः न विषहेत यत् अर्हण अम्भः सद्यः पुनाति सह चन्द्रललाम लोकान् ॥९॥

अहं	मैं	**सद्यः पुनाति**	तत्काल पवित्र करता है
योगमाया	योगमायाका	**येषां**	जिनकी
अखण्ड विकुण्ठ	अखण्ड अकुंठित	**अङ्घ्रि रजः**	चरण धूलिको
अमल विभूतिः	निर्मल ऐश्वर्यवाला	**किरीटैः**	मुकुटपर
यत्	जिसके	**बिभर्मि**	धारण करता हूँ,
अर्हण अम्भः	पूजनका जल (गंगा होकर)	**विप्रान् तु**	(उन) ब्राह्मणोंका (स्वभाव)
चन्द्रललाम सह	शंकरजीके साथ	**कः न विषहेत**	कौन नहीं सहन करेगा ॥९॥
लोकान्	लोकोंको		

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया
भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्
गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥१०॥

ये मे तनूः द्विजवरान् दुहतीः मदीया भूतानि अलब्ध शरणानि च भेद बुद्धया द्रक्ष्यन्ति अघक्षत दृशः हि अहिमन्यवः तान् गृध्रा रुषा मम कुषन्ति अधिदण्ड नेतुः ॥१०॥

मे तनूः	मेरे शरीर (रूप)	**भूतानि**	प्राणियोंको
द्विजवरान्	ब्राह्मणोंको,	**ये हि**	जो भी
मदीया	मेरी (प्रिय)	**अहिमन्यवः**	सर्पके समान क्रोधी
दुहतीः च	दूध देनेवाली (गायों) को तथा	**अघक्षत दृशः**	पापके कारण नष्ट (विवेक) दृष्टिसे
अलब्ध शरणानि	अशरण (असहाय)	**द्रक्ष्यन्ति**	देखते हैं

तान् मम	उनको मेरे (द्वारा नियुक्त)	नेतुः गृध्रा कुषन्ति	दूत गीधके समान नोचते हैं ॥१०॥
अधिदण्ड	दण्डके अधिष्ठाता (यमराज) के		

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त-
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः
सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥

ये ब्राह्मणान् मयि धिया क्षिपतः अर्चयन्तः तुष्यत् हृदः स्मित् सुधा उक्षित पद्म वक्त्राः वाण्या अनुराग कलया आत्मजवत् गृणन्तः सम्बोधयन्ति अहं इव अहं उपाहृतः तैः ॥११॥

क्षिपतः	आक्षेप करते (कटु बोलते)	स्मित सुधा उक्षित	मन्द मुस्कान रूपी अमृतसे युक्त
ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको	वक्त्राः	मुखसे
मयि धिया	(उसे मेरा स्वरूप समझकर	अहं इव	मेरी भाँति (जैसे मैं आप लोगोंको)
ये अर्चयन्तः	जो सम्मानित करते हुए	सम्बोधयन्ति	सम्बोधित करते हैं,
तुष्यत् हृदः	सन्तुष्ट चित्तसे	अहं तैः	मैं उन लोगों द्वारा
आत्मजवत्	पुत्रके समान	उपाहृतः	वशमें कर लिया गया हूँ ॥११॥
अनुराग कलया	स्नेह भरी वाणीसे		
गृणन्तः	समझाते हैं,		

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ
युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ।
भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे
यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥१२॥

तत् मे स्वभर्तुः अवसायं अलक्षमाणौ युष्मत् व्यतिक्रम गतिं प्रतिपद्य सद्यः भूयः मम अन्तिकं इतां तत् अनुग्रहः मे यत् कल्पतां अचिरतः भृतयः विवासः ॥१२॥

तत् मे स्वभर्तुः	उस मुझ अपने स्वामीके	**मम अन्तिकं**	मेरे समीप
अवसायं	अभिप्रायको	**इतां**	आ जायँ
अलक्षमाणौ	न समझकर	**भृतयः**	(इन) सेवकोंका
युष्मत्	आप लोगोंके	**विवासः**	निर्वासन
व्यतिक्रम	अपमानके	**अचिरतः**	शीघ्र समाप्त होनेवाला
गतिं	परिणामको	**कल्पतां**	कर दीजिए
सद्यः	तत्काल	**तत् मे**	वह मुझपर
प्रतिपद्य	प्राप्त करके	**अनुग्रहः**	कृपा होगी ॥१२॥
यत् भूयः	जिससे फिर		

ब्रह्मोवाच–

अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् ।
नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माप्यतृप्यत ॥१३॥

अथ तस्य उशतीं देवीं ऋषिकुल्यां सरस्वतीं न आस्वाद्य मन्यु दष्टानां तेषां आत्मा अपि तृप्यत ॥१३॥

अथ तस्य	तब उन (भगवान) की	**तेषां**	उन (सनकादि) का
उशतीं	मधुर	**मन्यु दष्टानां**	क्रोधसे डँसा हुआ
ऋषिकुल्यां देवीं	मन्त्रमयी दिव्य	**आत्मा अपि**	चित्त भी
सरस्वतीं	वाणीको	**न अतृप्यत**	तृप्त नहीं हो रहा था ॥१३॥
आस्वाद्य	आस्वादन कर (सुनकर)		

सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् ।
विगाह्यागाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥१४॥

सतीं व्यादाय शृण्वन्तः लघ्वीं गुरु अर्थ गह्वरां विगाह्य अगाध गम्भीरां न विदुः तत् चिकीर्षितम् ॥१४॥

शृण्वन्तः व्यादाय सतीं	सुननेमें (वह वाणी) बहुत ही मनोहर	**लघ्वीं**	थोड़े शब्दोंवाली थी (किन्तु)

अर्थं	(उसका) अर्थ	तत् चिकीर्षितं	उन (भगवान) की क्या करनेकी इच्छा है,
गुरु गह्वरां	बहुत दुर्विज्ञेय		
अगाध	अथाह		
गम्भीरां	गम्भीर था	न विदुः	(यह) नहीं जान सके ॥१४॥
विगाह्य	उसमें डूबकर (विचार करके)		

ते योगमाययाऽऽरब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् ।
प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ॥१५॥

ते योगमायया आरब्ध पारमेष्ठ्य महोदयं प्रोचुः प्राञ्जलयः विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितः त्वचः ॥१५॥

योगमायया	योगमायासे	ते विप्राः	वे ब्राह्मण (सनकादि)
पारमेष्ठ्य	परम ऐश्वर्यके	प्रहृष्टाः	अत्यन्त हर्षसे
महोदयं	उत्कर्षको	क्षुभित त्वचः	रोमांचित शरीर
आरब्ध	प्रकट करनेवाले (भगवान) से	प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर
		प्रोचुः	बोले ॥१५॥

*कुमारा ऊचुः**–

न वयं भगवन् विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ।
कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥१६॥

न वयं भगवन् विद्मः तव देव चिकीर्षितं कृतः मे अनुग्रहः च इति यत् अध्यक्षः प्रभाषसे ॥१६॥

भगवन् देव	भगवन् ! देव !	च इति	ऐसा हम समझते हैं
वयं तव	हम आपकी (जो)	यत्	क्योंकि
चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा है,	अध्यक्षः	सबके स्वामी होकर
न विद्मः	(उसे) नहीं जानते	प्रभाषसे	(आप ऐसा) कह रहे हैं ॥१६॥
मे अनुग्रहः	हमपर अनुग्रह		
कृतः	(आपने) किया है,		

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषय ऊचुः' है ।

ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो ।
विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो विप्राणां देवदेवानां भगवान् आत्म दैवतम् ॥१७॥

ब्रह्मण्यस्य	ब्राह्मण भक्तोंके	**विप्राणां**	(वस्तुतः) ब्राह्मणोंके
परं दैवं	(आप) परम देवता (परम आदर्श) हैं	**देवदेवानां**	देवताओंके देवता (ब्रह्माजी) के भी
प्रभो	प्रभो !	**भगवान्**	आप ही
किल	भले (आप मानें)	**आत्म दैवतं**	अपने आराध्य हैं ॥१७॥
ब्राह्मणाः ते	ब्राह्मण आपके (देवता हैं)		

त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव ।
धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकारो भवान्मतः ॥१८॥

त्वत्तः सनातनः धर्मः रक्ष्यते तनुभिः तव धर्मस्य परमः गुह्यः निर्विकारः भवान् मतः ॥१८॥

त्वत्तः	आपके द्वारा	**मतः**	हमारे मतसे
तव तनुभिः	आपके अवतारों द्वारा	**धर्मस्य**	धर्मका
		परमः गुह्यः	परम रहस्य
सनातनः धर्मः	सनातन धर्मकी	**निर्विकारः**	निर्विकार
रक्ष्यते	रक्षा होती है ।	**भवान्**	आप ही हैं ॥१८॥

तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात् ।
योगिनः स भवान् किंस्विदनुगृह्णेत यत्परैः ॥१९॥

तरन्ति हि अञ्जसा मृत्युं निवृत्ताः यत् अनुग्रहात् योगिनः स भवान् किं स्वित् अनुगृह्णेत यत् परैः ॥१९॥

निवृत्ताः	निवृत्ति परायण	**यत् अनुग्रहात्**	जिनकी कृपासे
योगिनः हि	योगी लोग भी	**अञ्जसा**	सरलतासे

मृत्युं तरन्ति	मृत्युको पार कर लेते हैं,	**परैः**	दूसरे
		स्वित् किं यत्	भला क्या
स भवान्	उस आपपर	**अनुग्रहात्**	कृपा करेंगे ॥१९॥

यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यै-
रर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ।
धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसीनवदामधाम्नो
लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥२०॥

यं वै विभूतिः उपयाति अनुवेलं अन्यैः अर्थार्थिभिः स्व शिरसा धृत पादरेणुः धन्य अर्पिताः अङ्घ्रि तुलसी नवदाम धाम्नः लोकं मधुव्रत पतेः इव कामयाना ॥२०॥

अन्यैः	दूसरे	**धन्य लोकं**	धन्य लोगों (भक्तों)
अर्थार्थिभिः	अर्थार्थी लोगों द्वारा		द्वारा (आपके)
वै	निश्चय	**अङ्घ्रि अर्पिता**	चरणोंपर चढ़ायी गयी
स्व शिरसा	अपने मस्तकोंपर	**तुलसी नवदाम**	तुलसीकी नयी मालाओंमें
अनुवेलं	प्रत्येक समय		
यं विभूतिः	जिन लक्ष्मीजीकी	**मधुव्रत पतेः**	भ्रमरराजके
पादरेणुः	चरण-रज	**इव धाम्नः**	समान निवास (बनाना)
धृत	धारण की जाती है (वे लक्ष्मीजी भी)	**कामयाना**	चाहती हैं ॥२०॥

यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां
नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः ।
स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः
श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥२१॥

यः तां विविक्त चरितैः अनुवर्तमानां न अति आद्रियत् परम भागवत प्रसङ्गः स त्वं द्विज अनुपथ पुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्मः किं अगाः भगभाजनः त्वम् ॥२१॥

तां	उस (लक्ष्मी) द्वारा
विविक्त	एकान्त
चरितैः	निष्ठायुक्त आचरणसे
अनुवर्तमानां	सेवामें लगीको
यः	जो (आप)
अति आद्रियत्	बहुत आदर नहीं देते
परम भागवत	परम भक्तोंसे
प्रसङ्गः	(आप) स्नेह करते हैं
स त्वं	वह आप
अनुपथ	मार्गोंमें चलते
द्विज	ब्राह्मणोंकी
पुण्यरजः	पवित्र (चरण) धूलिसे
पुनीतः	पवित्र होकर
श्रीवत्सलक्ष्मः	श्रीवत्स चिह्न (भृगुके पद चिह्न) से
किं भगभाजनः	क्या ऐश्वर्य भाजन
त्वं अगाः	आप बनते हैं ॥२१॥

धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः
पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ।
नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च
सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥२२॥

धर्मस्य ते भगवतः त्रियुगः त्रिभिः स्वैः पद्भिः चराचरं इदं द्विज देवता अर्थं नूनं भृतं तत् अभिघाति रजः तमः च सत्त्वेन नः वरदया तनुवा निरस्य ॥२२॥

भगवतः	भगवन्
नूनं	निश्चय
ते	आप
धर्मस्य	धर्म स्वरूप
त्रियुगः	तीन (सतयुग, त्रेता, द्वापर) युगोंमें
त्रिभिः	तीन
स्वैः पद्भिः	अपने चरणों (तप, शौच, दया) से
इदं चराचरं	इस चराचर (जगत) को
तत् अभिघाति	उस (धर्मको) नष्ट करनेवाले
रजः च तमः	रजोगुण और तमोगुणको
सत्त्वेन वा	सत्त्गुणसे अथवा
नः वरदया	हमें वरदान देनेवाले
तनु	इस (साकार) रूपसे
निरस्य	नष्ट करके
द्विज देवता अर्थं	ब्राह्मण एवं देवताओंके लिए
भृतं	पालन करते हैं ॥२२॥

न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदिहात्मगोपं
गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ।
तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था
लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥२३॥

न त्वं द्विजोत्तम कुलं यत् इह आत्म गोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन स सूनृतेन तर्हि एव नङ्क्ष्यति शिवः तव देव पन्था लोकः अग्रहीष्य ऋषभस्य हि तत् प्रमाणम् ॥२३॥

यत्	क्योंकि	तर्हि एव	तभी
आत्म गोपं	अपने द्वारा रक्षणीय	तव	आपका (चलाया)
द्विजोत्तम कुलं	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके कुलकी	शिवः पन्था	कल्याण मार्ग
		नङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा,
इह	इस संसारमें	हि देव तत्	क्योंकि देव ! उस
स्वर्हणेन	अपनी पूजा द्वारा	ऋषभस्य	श्रेष्ठके (आचरण)को
स सूनृतेन	मधुरवाणी द्वारा	प्रमाणं	प्रमाणके रूपमें
गोप्ता	रक्षा करनेवाले	लोकः	लोग
त्वं न	आप न बनें	अग्रहीष्य	ग्रहण करते हैं ॥२३॥
वृषः	धर्ममूर्ति !		

तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः
क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारेः ।
नैतावता त्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तु-
स्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ॥२४॥

तत् ते अनभीष्टं इव सत्त्वनिधेः विधित्सोः क्षेमं जनाय निज शक्तिभिः उद्धृत अरेः न एतावता त्रय अधिपतेः बत विश्वभर्तुः तेजः क्षतं अवनतस्य स ते विनोदः ॥२४॥

जनाय	भक्तोंका	निजशक्तिभिः	अपनी शक्ति (मनु, राजा आदि) द्वारा
क्षेमं	कल्याण		
विधित्सोः	करनेके लिए		

अरेः	(उन भक्तोंके) शत्रुओंका	विश्वभर्तुः	जगत् पालक
उद्धृत	नाश करना भी	एतावता	इतनी अधिक
तत् सत्त्वनिधेः	वह सत्त्वगुणकी खान	अवनतस्य	आपकी विनम्रता
ते	आपको	तेजः क्षतं	तेज हानि करनेवाली
अनभीष्टं इव	अभीष्टकी भाँति है।	न बत	नहीं है अपितु
त्र्यधिपतेः	त्रिलोकीनाथ	स ते	वह आपका
		विनोदः	विनोद है ॥२४॥

यं वानयोर्दममधीश भवान् विधत्ते
वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम् ।
अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो
येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण ॥२५॥

यं वा अनयोः दमं अधीश भवान् विधत्ते वृत्तिं नु वा तत् अनुमन्महि निर्व्यलीकं अस्मासु वा य उचितः धृयतां स दण्डः ये अनागसौ वयं अयुङ्क्ष्महि किल्विषेण ॥२५॥

अधीश	सर्वेश्वर	वा ये	अथवा जो
अनयोः	इन दोनोंको	अनागसौ	निरपराधोंको
यं वा	जो भी	वयं	हमने
दण्ड भवान्	दण्ड आप	किल्विषेण	(शाप देकर) अपराधसे
विधत्ते वा	निर्णय करें अथवा	अयुङ्क्ष	लिप्त किया है
वृत्तिं नु	वृत्ति (वेतन) बढ़ा दें	अस्मासु	(अतः) हम लोगोंको
निर्व्यलीकं	निष्कपट भावसे	य उचितो	जो उचित हो
तत्	उसका	स दण्डः	वह दण्ड
अनुमन्महि	(हम) अनुमोदन करते हैं,	ध्रियतां	दीजिए ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच–

एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः
संरम्भसम्भृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ।

भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः
शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥२६॥

एतौ सुरेतर गतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भ सम्भृत समाधि अनुबद्ध योगैः भूयः सकाशं उपयास्यत आशु यः वः शापः मयि एव निमितः तत् अवैत विप्राः ॥२६॥

विप्राः	ब्राह्मणो !	**प्रतिपद्य**	प्राप्त करके
यः वः	जो आपका	**संरम्भ सम्भृत**	क्रोधावेश बढ़नेसे हुई
शापः	शाप है	**समाधि**	एकाग्रता (रूप)
मयि एव	मेरी ही	**योगैः**	योगसे
निमितः	प्रेरणासे है	**आशु**	शीघ्र
तत् अवैत	इसे जानलें (अतः)	**सकाशं**	(मेरे) समीप
एतौ	ये दोनों	**उपयास्यत**	आ जायँगे ॥२६॥
सद्यः	तत्काल		
सुरेतर गतिं	असुर अवस्थाको		

ब्रह्मोवाच–

अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् ।
वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम् ॥२७॥

अथ ते मुनयः दृष्ट्वा नयनानन्द भाजनं वैकुण्ठं तत् अधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयं प्रभम् ॥२७॥

अथ ते मुनयः	तब वे (सनकादि) मुनि	**तत्**	उसके
नयनानन्द भाजनं	नेत्रोंको आनन्दायी पात्र	**अधिष्ठानं**	आश्रय
वैकुण्ठं च	वैकुण्ठ लोकको तथा	**स्वयं प्रभं**	स्वयं प्रकाश
		विकुण्ठं	भगवान् वैकुण्ठनाथको
		दृष्ट्वा	देखकर ॥२७॥

भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ।
प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥२८॥

भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्य अनुमान्य च प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तः वैष्णवीं श्रियम् ॥२८॥

भगवन्तं	भगवान्‌की	**प्रमुदिताः**	आनन्दित होकर
परिक्रम्य	परिक्रमा करके,	**वैष्णवीं श्रियं**	भगवान् विष्णुकी शोभाकी
प्रणिपत्य च	(उनको) प्रणाम करके तथा	**शंसन्तः**	प्रशंसा करते हुए
अनुमान्य	अनुमति लेकर	**प्रतिजग्मुः**	लौट आये ॥२८॥

भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् ।
ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥२९॥

भगवान् अनुगाः आह यातं मा भैष्टं अस्तु शं ब्रह्मतेजः समर्थः अपि हन्तुं न इच्छे मतं तु मे ॥२९॥

भगवान्	भगवान्‌ने	**मे तु मतं**	मेरा तो मत है कि
अनुगाः	अनुचरोंसे	**समर्थः अपि**	समर्थ होनेपर भी
आह	कहा	**ब्रह्मतेजः**	ब्राह्मणोंके शापको
यातं	'जाओ,	**हन्तुं**	नष्ट करनेकी
मा भैष्टं	मत डरो,	**इच्छे न**	(उन्होंने) इच्छा नहीं की ॥२९॥
शं अस्तु	(तुम्हारा) कल्याण हो !'		

एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा ।
पुरापवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥३०॥

एतत् पुरा एव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा पुरा अपवारिता द्वारि विशन्ती मयि उपारते ॥३०॥

पुरा मयि उपारते	पहिले मेरे उपरत हो जाने (सो जानेपर)	**रमया**	लक्ष्मी द्वारा
		एतत्	यह (शाप तो)
द्वारि विशता	द्वारमें प्रवेश करती	**पुरा एव**	पहिले ही
यदा अपवारिता	जब रोकी जानेपर	**निर्दिष्टं**	निश्चित कर दिया गया था ॥३०॥
क्रुद्धया	क्रोधित हुई		

*श्रीभगवानुवाच**-

मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ।
प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥३१॥

मयि संरम्भ योगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनात् प्रति एष्यतं निकाशं मे कालेन अल्पीयसा पुनः ॥३१॥

मयि	मेरे प्रति	**निस्तीर्य**	पार होकर
संरम्भ	क्रोध (के कारण)	**कालेन अल्पीयसा**	थोड़े समयमें
योगेन	एकाग्र वृत्तिसे	**पुनः**	फिर
ब्रह्महेलनात्	ब्राह्मणोंके अपमान (के पास) से	**मे निकाशं प्रति एष्यतं**	मेरे समीप लौट आओगे ॥३१॥

द्वाः स्थावादिश्य भगवान् विमानश्रेणिभूषणम् ।
सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥३२॥

द्वाः स्थाः आदिश्य भगवान् विमान श्रेणि भूषणं सर्व अतिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यं आविशत् ॥३२॥

भगवान्	भगवान्ने	**सर्व अतिशयया**	सबसे अत्यधिक
द्वाः स्थाः	द्वारपर रहनेवालों (द्वारपालों) को	**लक्ष्म्या**	शोभासे
आदिश्य	यह आदेश देकर	**जुष्टं**	युक्त
विमान श्रेणि	विमानोंके झुंडोंसे	**स्वधिष्ण्यं**	अपने धाममें
भूषणं	सुशोभित	**आविशत्**	प्रवेश किया ॥३२॥

तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तरादृरिलोकतः ।
हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥३३॥

तौ तु गीर्वाण ऋषभौ दुस्तरात् हरि लोकतः हतश्रियौ ब्रह्मशापात् अभूतां विगत स्मयौ ॥३३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तौ	वे दोनों	गतश्रियौ	श्रीहीन
गीर्वाण ऋषभौ		अभूतां	हो गये।
तु	देव श्रेष्ठ तो	स्मयौ	(उनका) गर्व
ब्रह्मशापात्	ब्राह्मणोंके शापसे	विगतः	नष्ट होगया ॥३३॥
हरि लोकतः	श्रीहरिके लोकसे ही		

तदा विकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ।
हाहाकारो महानासीद्विमानाग्रेषु पुत्रकाः ॥३४॥

तदा विकुण्ठ धिषणात् तयोः निपतमानयोः हाहाकारः महान् आसीत् विमान अग्रेषु पुत्रकाः ॥३४॥

पुत्रकाः	मेरे छोटे बच्चो !	विमान अग्रेषु	(वहाँके) विमानमें बैठे लोगोंका
तदा	उस समय	महान्	भारी
तयोः	उन दोनोंके	हाहाकारः	हाहाकार
विकुण्ठ धिषणात्	वैकुण्ठ लोकसे	आसीत्	हुआ ॥३४॥
निपत मानयोः	गिरते समय		

तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ।
दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥

ताः एव हि अधुना प्राप्तौ पार्षद प्रवरौ हरेः दितेः जठर निर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥

हि	क्योंकि	उल्बणं तेजः	उग्र तेज है (उसमें)
अधुना	इस समय	हि ताः एव	क्योंकि वह ही
दितेः जठर	दितिके पेटमें	हरेः	श्रीहरिके
निर्विष्टं	प्रविष्ट	पार्षद प्रवरौ	पार्षद प्रधानोंने
काश्यपं	कश्यपका	प्राप्तौ	प्रवेश किया है॥३५॥

तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ।
आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥३६॥

तयोः असुरयोः अद्य तेजसा यमयोः हि वः आक्षिप्तं तेजः एतर्हि भगवान् तत् विधत्सति ॥३६॥

अद्य	इस समय	तत् भगवान्	उसे वे भगवान्
तयोः यमयोः	उन दोनों	एतर्हि	ऐसा ही
असुरयोः	असुरोंके द्वारा	विधत्सति	करना चाहते
हि वः	क्योंकि तुम लोगोंका		हैं ॥३६॥
तेजः आक्षिप्तं	तेज फीका पड़ा है,		

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो
योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥३७॥

विश्वस्य यः स्थिति लय उद्भव हेतुः आद्यः योगेश्वरैः अपि दुरत्यय योगमायः क्षेमं विधास्यति स नः भगवान् त्र्यधीशः तत्र अस्मदीय विमृशेन कियान् इह अर्थः ॥३७॥

योगेश्वरैः अपि	योगेश्वरोंसे भी	भगवान्	भगवान्
दुरत्यय	दुष्पार	त्र्यधीशः	त्रिलोकीनाथ
योगमायः	योगमायावाले	नः क्षेमं	हमारा कल्याण
यः आद्यः	जो आदि पुरुष	विधास्यति	करेंगे
विश्वस्य	विश्वकी	तत्र	इस सम्बन्धमें
स्थिति, लय,		अस्मदीय	हमारे
उद्भव	स्थिति, प्रलय,	विमृशेन	विशेष विचारसे
	सृष्टिके	कियान् हि	कितना (क्या)
हेतुः स	कारण हैं वे	अर्थः	प्रयोजन है ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः ।
ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥

निशम्य आत्मभुवा गीतं कारणं शङ्कया उज्झिताः ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥

आत्मभुवा	ब्रह्माजी द्वारा	**शङ्कया**	शंकाके
कारणं	(अन्धकारका) कारण	**उज्झिताः**	दूर हो जानेपर
		सर्वे दिवौकसः	सब देवता
गीतं	बतलाये जानेपर	**ततः त्रिदिवाय**	वहाँसे स्वर्गको
निशम्य	उसे सुनकर	**न्यवर्तन्त**	लौट गये ॥१॥

दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशङ्किनी ।
पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥२॥

दितिः तु भर्तुः आदेशात् अपत्य परिशङ्किनी पूर्णे वर्षे शते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥२॥

साध्वी	पतिव्रता	**भर्तुः आदेशात्**	पतिकी आज्ञासे
दितिः तु	दिति नेतो	**शते वर्षे**	सौ वर्ष
अपत्य	सन्तानके सम्बन्धमें	**पूर्णे**	पूरे हो जानेपर
परिशङ्किनी	(आपत्तिकी) आशङ्का करनेवाली थी किन्तु	**यमौ सुतौ**	जुड़वाँ पुत्र
		प्रसुषुवे	प्रसव किया ॥२॥

उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥३॥

उत्पाता बहवः तत्र निपेतुः जायमानयोः दिवि भुवि अन्तरिक्षे च लोकस्य उरु भय आवहा ॥३॥

जायमानयोः	(उनके) उत्पन्न होते समय	**तत्र दिवि**	वहाँ स्वर्गमें
		भुवि	पृथ्वीपर
लोकस्य	लोगोंके लिए	**च अन्तरिक्षे**	तथा आकाशमें
उरु भयावहाः	अतिशय भयदायक	**निपेतुः**	होने लगे ॥३॥
उत्पाताः	उत्पात		

महाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ।
सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥४॥

सह अचला भुवः चेलुः दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः स उल्काः च अशनयः पेतुः केतवः च आर्ति हेतवः ॥४॥

सह अचला	पर्वतोंके साथ	**स उल्काः च**	उल्काओंके साथ ही
भुवः	पृथ्वी	**अशनयः पेतुः**	वज्र बिजली) गिरने लगा,
चेलुः	चलने (हिलने) लगी,	**आर्ति हेतवः**	दुःखोंके कारण
सर्वाः दिशः	सब दिशाएँ	**केतवः च**	केतु भी (उदित हो गये) ॥४॥
प्रजज्वलुः	जलने लगीं,		

ववौ वायुः सुदुः स्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ।
उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥५॥

ववौ वायुः सुदुः स्पर्शः फूत्कारान् ईरयन् मुहुः उन्मूलयन् नगपतीन् वात्या अनीकः रजः ध्वजः ॥५॥

मुहुः	बार-बार	**वात्या अनीकः**	बवण्डरोंकी सेना लिए
फूत्कारान्	फूत्कार (की ध्वनि)	**रजः ध्वजः**	धूलिका झंडा उड़ाता
ईरयन्	करता	**वायुः ववौ**	वायु चलने लगा ॥५॥
सुदुः स्पर्शः	अत्यन्त दुःसह स्पर्शवाला		

उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे ।
व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥६॥

उत् हसत् तडित अम्भोद घटया नष्ट भागणे व्योम्नि प्रविष्टः तमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥६॥

तडित	बिजली	नष्ट	छिप गये
उत् हसत्	मानो हँस रही हो (इस प्रकार बार-बार चमकने लगी)	व्योम्नि	आकाशमें
		तमसा प्रविष्टः	अन्धकार छा गया
		पदं न स्म	कोई स्थान नहीं
अम्भोद घटया	मेघ घटासे	व्यादृश्यते	दीखता था ॥६॥
भागणे	चन्द्र, तारादि		

चुक्रोश विमना वार्धिरुर्मिः क्षुभितोदरः ।
सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥७॥

चुक्रोश विमना वार्धिः उर्मिः क्षुभितः उदरः स उदपानाः च सरितः चुक्षुभुः शुष्क पङ्कजाः ॥७॥

उर्मिः	उत्ताल तरंगोंसे	स उदपानाः	जलाशयोंके साथ
वार्धिः	समुद्र	सरितः च	नदियां भी
उदरः क्षुभितः	भीतरी तल तक क्षुब्ध हो उठा	चुक्षुभुः	क्षुब्ध हो गयीं
		शुष्क पङ्कजाः	उनके कमल सूख गये ॥७॥
विमना	(मानो) दुःखी होकर		
चुक्रोश	चिल्ला रहा हो।		

मुहुः परिधयोऽभूवन् सराह्वोः शशिसूर्ययोः ।
निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥

मुहुः परिधयः अभूवन् सराह्वः शशि सूर्ययोः निर्घाताः रथनिर्ह्रादाः विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥

सराह्वः	राहु साथ होनेसे	मुहुः	बार-बार (ग्रहण होने लगे, और)
शशि-सूर्ययोः	चन्द्र-सूर्यको		

परिधयः	(उनपर) मण्डल	रथ निर्ह्रादाः	रथ चलनेकी ध्वनि
अभूवन्	होने लगे।	प्रजज्ञिरे	उत्पन्न होने
विवरेभ्यः	गुफाओंसे		लगी ॥८॥
निर्घाताः	वज्रपातकी (तथा)		

अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम् ।
सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥९॥

अन्तः ग्रामेषु मुखतः वमन्त्यः वह्निं उल्बणं सृगाल उलूक टङ्कारैः प्रणेदुः अशिवं शिवाः ॥९॥

ग्रामेषु अन्तः	गाँवोंके भीतर	मुखतः	मुखसे
सृगाल उलूक	सियार और उल्लू	उल्बणं वह्निं	भयानक अग्नि
टङ्कारैः	उच्च ध्वनिसे	वमन्त्यः	उगलती हुई
प्रणेदुः	बोलने लगे,	अशिवं प्रणेदुः	अमंगल शब्द करने
शिवा	सृगाली		लगी ॥९॥

सङ्गीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् ।
व्यमुञ्चन् विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥१०॥

सङ्गीतवत् रोदनवत् उन्नमय्य शिरः धरां व्यमुञ्चन् विविधा वाचः ग्रामसिंहाः ततः ततः ॥१०॥

ततः ततः	जहाँ तहाँ	सङ्गीतवत्	गानेकी भांति,
ग्रामसिंहाः	कुत्ते	रोदनवत्	रोनेकी भांतिके
शिरः	सिर	विविधा वाचः	अनेक प्रकारके शब्द
धरां	पृथ्वीसे	व्यमुञ्चन्	करने लगे ॥१०॥
उन्नमय्य	ऊपर उठाकर		

खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् ।
खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन् वरूथशः ॥११॥

खराः च कर्कशैः क्षत्तः खुरैः घ्नन्तः धरातलं खार्कार रभसा मत्ताः पर्यधावन् वरूथशः ॥११॥

क्षत्तः	विदुर !	मत्ताः	मतवाले होकर
वरूथशः	झुंडके झुंड	खुरैः	खुरोंसे
खराः च	गधे भी	धरातलं घ्नन्तः	पृथ्वीको पीटते
कर्कशैः	कर्कश	पयधावन्	चारों ओर दौड़ने
खार्कार रभसा	रेंकनेके वेगसे		लगे ॥११॥

रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन् खगाः ।
घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥१२॥

रुदन्तः रासभः त्रस्ताः नीडात् उदपतन् खगाः घोषे अरण्ये च पशवः शकृत् मूत्रं अकुर्वत ॥१२॥

रुदन्तः	रोते (चिल्लाते)	घोषे च	गाँवोंमें तथा
रासभः	गधोंसे	अरण्ये	वनमें
त्रस्ताः खगाः	डरकर पक्षी	पशवः	पशु
नीडात्	घोंसलोंसे	शकृत् मूत्रं	गोबर तथा मूत्र
उदपतन्	उड़ने लगे ।	अकुर्वन्	करने लगे ॥२१॥

गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ।
व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनानिलम् ॥१३॥

गावः अत्रसन् असृक् दोहाः तोयदाः पूय वर्षिणः व्यरुदन् देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुः विना अनिलम् ॥१३॥

गावः	गायें	देवलिङ्गानि	देवमूर्तियां
अत्रसन्	(ऐसी) डर गयीं	व्यरुदन्	रोने लगीं
दोहाः	दुहनेपर	द्रुमाः	वृक्ष
असृक्	रक्त निकलने लगा,	अनिलं विना	वायु (आँधीके)
तोयदाः	बादल		बिना ही
पूय वर्षिणः	पीवकी वर्षा करने लगे,	पेतुः	गिर गये ॥१३॥

ग्रहान् पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः ।
अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥१४॥

ग्रहान् पुण्यतमान् अन्ये भगणाः च अपि दीपिताः अति चेरुः वक्रगत्या युयुधुः च परस्परम् ॥१४॥

पुण्य तमान्	पवित्र (गुरु,शुक्रादि)	**वक्रगत्या**	वक्री गतिसे
ग्रहान् च	ग्रहोंको तथा	**अति चेरुः**	अतिचारी हो गये (उलंघन करके)
भगणाः अपि	नक्षत्रोंको भी	**च परस्परं**	तथा परस्पर
दीपिताः	दीप्त (प्रबल) होकर*	**युयुधुः**	युद्ध करने लगे ॥१४॥
अन्ये	दूसरे (शनि,मंगलादि अशुभ ग्रह)		

दृष्ट्वान्यांश्च महोत्पातानतत्तत्त्वविदः प्रजाः ।
ब्रह्मपुत्रान्ऋते भीता मेनिरे विश्वसम्प्लवम् ॥१५॥

दृष्ट्वा अन्यान् च महाउत्पातान् अतत्त्वविदः प्रजाः ब्रह्मपुत्रान् ऋते भीता मेनिरे विश्व सम्प्लवम् ॥१५॥

अन्यान् च	दूसरे भी	**प्रजाः**	जनताके लोग
महाउत्पातान्	बड़े उत्पातोंको	**भीता**	डरकर
दृष्ट्वा	देखकर	**विश्व सम्प्लवं**	विश्वका प्रलय (होनेवाला)
ब्रह्मपुत्रान् ऋते	ब्रह्माके पुत्रोंको छोड़कर	**मेनिरे**	मानने लगे ॥१५॥
अतत्त्व विदः	उस (घटना) के रहस्यको न जानने वाली		

तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ ।
ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥१६॥

ताः आदिदैत्यौ सहसा व्यज्मान आत्म पौरुषौ ववृधाते अश्मसारेण कायेन अद्रिपती इव ॥१६॥

---

* सुप्त, दीप्त आदि ग्रहोंकी अवस्था होती है और ग्रहोंकी गति मार्गी (सीधी) वक्री (पीछे लौटनेकी) अति चारी (तीव्र) होती है।

ताः	वे दोनों	कायेन	शरीरसे
आदिदैत्यौ	आदि दैत्य	अद्रिपती इव	पर्वतराजके समान
आत्म पौरुषौ	अपना पौरुष	सहसा	अचानक
व्यज्यमान	प्रकट करते हुए,	ववृधाते	बढ़ गये ॥१६॥
अश्मसारेण	फौलादके समान		

दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभि-
निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ।
गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे
कट्या सुकाञ्च्यार्कमतीत्य तस्थतुः ॥१७॥

दिवि स्पृशौ हेमकिरीट कोटिभिः निरुद्ध काष्ठौ स्फुरत् अङ्गदाः भुजौ गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकाञ्च्या अर्कं अतीत्य तस्थतुः ॥१७॥

हेम किरीट	स्वर्ण मुकुटकी	गां कम्पयन्तौ	पृथ्वीको कम्पित
कोटिभिः	नोकसे		करते,
दिवि स्पृशौ	स्वर्गको छूते,	तस्थतुः	खड़े होनेपर
स्फुरत् अङ्गदाः	चमकते बाजूबन्द	कट्या	कमरमें पड़ी
	वाली	काञ्च्या	करधनीसे
भुजौ	भुजाओंसे	अर्कं अतीत्य	सूर्यको भी पार करते
निरुद्ध काष्ठौ	सब दिशाओंको		थे । (वे इतने ऊँचे
	(मानो) रोक लेंगे,		विशाल थे कि उनके
पदे पदे	पद-पदपर		कमरकी करधनी
	(चलते समय)		सूर्य मण्डलसे ऊपर
चरणैः	पैरोंसे		पहुँची थी ॥१७॥

प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्
यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत ।
तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा
यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥१८॥

प्रजापतिः नाम तयोः अकार्षीत् यः प्राक् स्वदेहात् यमयोः अजायत तं वै हिरण्य कशिपुं विदुः प्रजाः यं तं हिरण्याक्षं असूत सा अग्रतः ॥१८॥

प्रजापतिः	प्रजापति (कश्यप)ने		(के नामसे)
तयोः यमयोः	उन यमजोंका	**विदुः**	जानने लगे,
नाम अकार्षीत्	नाम रखा,	**यं सा**	जिसको उस
यः प्राक्	जो पहिले		(दिति) ने
स्वदेहात्	अपने शरीरसे	**अग्रतः**	पहिले
अजायत	(गर्भमें) उत्पन्न हुआ	**असूत**	जन्म दिया
तं वै	उसे तो	**तं हिरण्याक्षं**	उसे हिरण्याक्ष
प्रजा	लोग		(कहा गया)* ॥१८॥
हिरण्यकशिपुं	हिरण्यकशिपु		

चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ।
वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥१९॥

चक्रे हिरण्यकशिपुः दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च वशे स पालान् लोकान् त्रीन् अकुतो मृत्युः उद्धतः ॥१९॥

ब्रह्मवरेण च	ब्रह्माके वरदानसे तो	**दोर्भ्यां**	अपने भुजबलसे
अकुतोमृत्युः	सर्वत्र मृत्यु भयसे	**सपालान्**	लोकपालोंके साथ
	मुक्त होकर	**त्रीन् लोकान्**	तीनों लोकोंको
उद्धतः	उद्धत हुआ	**वशे चक्रे**	अपने वशमें कर
हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुने		लिया ॥१९॥

हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ।
गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन् रणम् ॥२०॥

हिरण्याक्षः अनुजः तस्य प्रियः प्रीतिकृत् अन्वहं गदापाणिः दिवं यातः युयुत्सुः मृगयन् रणम् ॥२०॥

अन्वहं	सर्वदा	**प्रीतिकृत्**	प्रसन्न करनेवाला
प्रियः	प्रिय (भाई) को	**तस्य अनुजः**	उसका छोटा भाई

---

* अब इतना सूक्ष्म विचार लोग नहीं करते । गर्भमें जो पहिले आया वही बड़ा भाई होता है; किन्तु जो पीछे आया, वह पहिले गर्भसे बाहर जन्म लेता है । यही क्रम यहाँ कहा गया है ।

हिरण्याक्षः	हिरण्याक्ष	गदापाणिः	हाथमें गदा लेकर
रणं मृगयन्	युद्ध ढूंढ़ता	दिवं यातः	स्वर्ग पहुँचा ॥२०॥
युयुत्सुः	युद्ध करनेकी इच्छासे		

तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् ।
वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥२१॥

तं वीक्ष्य दुःसह जवं रणत् काञ्चन नूपुरं वैजयन्त्या स्रजा जुष्टं अंसन्यस्तं महागदम् ॥२१॥

दुःसह जवं	असह्य वेगवाले,	जुष्टं	पहिने
काञ्चन नूपुरं	सोनेके नूपुरोंको	अंस	कन्धेपर
रणत्	झनकारते,	महागदं न्यस्तं	भारी गदा रखे
वैजयन्त्या स्रजा	वैजयन्तीमाला	तं वीक्ष्य	उसे देखकर

मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ।
भीता निलिल्यिरे देवास्तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥२२॥

मनोवीर्य वरः उत्सिक्तं असृण्यं अकुतः भयं भीता निलिल्यिरे देवाः तार्क्ष्य त्रस्ता इव अहयः ॥२२॥

मनोवीर्य	मनोबल (तथा)	भीता	डरकर
वरः	(ब्रह्माके) वरदानसे	तार्क्ष्य त्रस्ताः	गरुड़से संत्रस्त
उत्सिक्तं	दर्पित	अहयः इव	सर्पोंके समान
असृण्यं	निरंकुश	देवाः	देवता
अकुतः भयं	सर्वथा निर्भय (हिरण्याक्ष) से	निलिल्यिरे	छिप गये ॥२२॥

स वै तिरोहितान् दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ।
सेन्द्रान्देवगणान् क्षीबानपश्यन् व्यनदन् भृशम् ॥२३॥

स वै तिरोहितान् दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् स इन्द्रान् देवगणान् क्षीबान् अपश्यन् व्यनदत् भृशम् ॥२३॥

स्वेन महसा	अपने तेजसे	स इन्द्रान्	इन्द्रके साथ
तिरोहितान्	तिरोहित हुए	क्षीबान्	नपुंसक (कायर)

देवगणान्	देवताओंको	भृशं व्यनदत्	बार-बार भयंकर गर्जना की ॥२३॥
अपश्यन्	न देखकर		
स वै दैत्यराट्	उस दैत्यराजने तो		

ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिस्वनम् ।
विजगाहे महासत्त्वो वार्धि मत्त इव द्विपः ॥२४॥

ततः निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिःस्वनं विजगाहे महासत्त्वः वार्धि मत्त इव द्विपः ॥२४॥

ततः	वहाँसे	इव	समान
निवृत्तः	लौटकर	गम्भीरं	गंभीर
महासत्त्वः	महाप्राण (वह दैत्य)	भीमनिः स्वनः	भयंकर गर्जनावाले
क्रीडिष्यन्	(जल) क्रीड़ा करने	वार्धि	समुद्रमें
मत्त द्विपः	मतवाले हाथीके	विजगाहे	प्रवेश किया ॥२४॥

तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका
यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ।
अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा
प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥२५॥

तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिकाः यादोगणाः सन्नधियः स साध्वसाः अहन्यमानाः अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥२५॥

तस्मिन्	उस (समुद्र) में	अपि	मारे न जानेपर भी
प्रविष्टे	प्रवेश करते ही	तस्य वर्चसा	उसके तेजसे ही
वरुणस्य सैनिकाः	वरुणके सैनिक	प्रधर्षिताः	घबड़ाकर
यादोगणाः	जलचर जीव	स साध्वसाः	भयभीत होकर
सन्नधियः	हतवक बुद्धि होकर	दूरतरं	(उससे) बहुत दूर
अहन्यमानाः		प्रदुद्रुवुः	भाग गये ॥२६॥

स वर्षपूगानुदधौ महाबल-
श्चरन्महोर्मीञ्छ्वसनेरितान्मुहुः ।
मौर्व्याभिजघ्ने गदया विभावरी-
मासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥२६॥

स वर्ष पूगान् उदधौ महाबलः चरन् महोर्मिन् श्वसन ईरितान् मुहुः मौर्व्या अभिजघ्ने गदया विभावरीं आसेदिवान् तात पुरीं प्रचेतसः ॥२६॥

तात	विदुर !	**मौर्व्या**	लोहेकी
स महाबलः	वह महाबली (हिरण्याक्ष)	**गदया**	गदासे
		अभिजघ्ने	प्रहार करता रहा।
वर्ष पूगान्	बहुत वर्षों तक	**प्रचेतसः**	(इसी प्रकार) वरुणकी
उदधौः चरन्	समुद्रमें घूमता हुआ		
श्वसन् ईरितान्	वायु द्वारा उठायी गयी	**पुरीं**	पुरी
		विभावरीं	विभावरीमें
महोर्मिन्	बड़ी लहरोंको	**आसेदिवान्**	पहुँच गया ॥२६॥
मुहुः	बार-बार		

तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं
यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ।
स्मयन् प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचव-
ज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥२७॥

तत्र उपलभ्य असुर लोकपालकं यादोगणानां ऋषभं प्रचेतसं स्मयन् प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवत् जगाद मे देहि अधिराज संयुगम् ॥२७॥

तत्र	वहाँ	**स्मयन्**	हँसते हुए
असुर लोकपालकं	असुर लोकोंके स्वामी	**नीचवत्**	नीचके समान
		प्रणिपत्य	प्रणाम करके
यादोगणानां	जलजीवोंके	**जगाद**	बोला—
ऋषभं	अधिपति	**अधिराज**	'राजाधिराज !
प्रचेतसं	वरुणको	**मे**	मुझे
उपलभ्य	पाकर,	**संयुगं देहि**	युद्ध दीजिए।' ॥२७
प्रलब्धुं	(उनका) उपहास करनेके लिए		

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा
वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ।

विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्
यद्राजसूयेन पुरायजत्प्रभो ॥२८॥

त्वं लोकपालः अधिपतिः बृहत् श्रवा वीर्य अपहाः दुर्मद वीर मानिनां विजित्य लोके अखिल दैत्य दानवान् यत् राजसूयेन पुरा यजत् प्रभो ॥२८॥

प्रभो	प्रभो !		करनेवाले हैं,
त्वं लोकपालः	आप लोकपाल	यत् पुरा	क्योंकि पहिले
अधिपतिः	अधीश्वर तथा		(आपने)
बृहत् श्रवाः	बहुत यशस्वी हैं,	अखिल दैत्य	
वीर मानिनां	अपनेको वीर	दानवान्	सब दैत्य दानवोंको
	माननेवाले	विजित्य	जीतकर
दुर्मद	बहुत घमण्डी	राजसूयेन	(आपने) राजसूय
	(लोगोंके)		यज्ञ द्वारा ,
वीर्य अपहाः	पराक्रमको नष्ट	अयजत्	यजन किया था ।२८।

स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा
दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः ।
रोषं समुत्थं शमयन् स्वया धिया
व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥२९॥

स एवं उत्सिक्त मदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धः भगवान् अपां पतिः रोषं समुत्थं शमयन् स्वया धिया व्यवोचत् अङ्ग उपशमं गता वयम् ॥२९॥

उत्सिक्त मदेन	मदोन्मत्त	समुत्थं रोषं	उत्पन्न क्रोधको
विद्विषा	शत्रुके द्वारा	स्वया धिया	अपनी बुद्धिसे
एवं	इस प्रकार	शमयन्	शान्त करते
दृढं प्रलब्धः	भारी उपहास किए	व्यवोचत्	बोले—
	जानेपर	अङ्ग वयं	'प्यारे हम
स भगवान्	उन ऐश्वर्यशाली	उपशमं गताः	शान्त वृत्ति स्वीकार
अपां पतिः	जलाधीश (वरुण) ने		कर चुके हैं ॥२९॥

पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्
यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ।

आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहि तं
मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥३०॥

पश्यामि न अन्यं पुरुषात् पुरातनात् यः संयुगे त्वां रणमार्गं कोविदं आराधयिष्यति असुर ऋषभः हि तं मनस्विनः यं गृणते भवादृशाः ॥३०॥

असुर ऋषभः	असुर श्रेष्ठ !	त्वां	तुमको
पुरातनात्	सनातन	आराधयिष्यति	सन्तुष्ट करेगा।
पुरुषात्	पुरुषको (छोड़कर)	भवादृशाः	आपके समान
अन्यं न	दूसरे (किसी)को नहीं	मनस्विनः	मनस्वी
पश्यामि	देखता हूँ,	यं	जिनकी
यः संयुगे	जो युद्धमें	गृणते	(वीरोंमें) गणना
रणमार्ग कोविदं	युद्ध पथमें निपुण		करते हैं ॥३०॥

तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः
शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः।
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये
रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥३१॥

तं वीरं आरात् अभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिः वृतः यः त्वत् विधानां असतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सत् अनुग्रह इच्छया ॥३१॥

तं वीरं	उन वीरको	यः त्वत् विधानां	जो तुम्हारे समान
आरात्	(अपने, समीप	असतां	दुष्टोंको
अभिपद्य	पाकर	प्रशान्तये	शान्त करनेके लिए
विस्मयः	(तुम्हारा) गर्व नष्ट		(तथा)
	हो जायगा,	सत् अनुग्रह	सत्पुरुषोंपर कृपा
श्वभिः वृतः	कुत्तोंसे घिरे	इच्छया	करनेके लिये
वीरशये	वीर शय्यापर	रूपाणि धत्ते	अवतार रूप धारण
शयिष्यसे	सो जाओगे,		करते हैं ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं
महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।
हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्
रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥

तत् एवं आकर्ण्य जलेश भाषितं महामनाः तत् अविगणय्य दुर्मदः हरेः विदित्वा गतिं अङ्ग नारादात् रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥

जलेश	वरुणकी	अविगणय्य	अवहेलना करके
भाषितं	बात	नारदात्	नारदजीसे
आकर्ण्य	सुनकर	हरेः गतिं	श्रीहरिकी स्थिति
महामनाः	उत्साहमें भरा	विदित्वा	जानकर
दुर्मदः	मदान्ध	त्वरान्वितः	शीघ्रतापूर्वक
तत्	उस (वरुणकी बात) की	रसातलं	रसातलमें
		निर्विविशे	प्रवेश किया ॥१॥

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं
प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया
जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥

ददर्श तत्र अभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानं अवनिं अग्र दंष्ट्रया मुष्णन्तं अक्ष्णा स्वरुचः अरुणश्रिया जहास च अहो वनगोचरः मृगः ॥२॥

तत्र	वहाँ	धराधरं	पृथ्वीके धारक (वाराह भगवान, को
अभिजितं	सर्वत्र विजयी		

अग्रदंष्ट्र्या	दाढ़ोंकी नोकपर	मुष्णन्तं	छीनते हुए
अर्वनिं	पृथ्वीको	ददर्श	देखा।
प्रोन्नीयमानं	उठाकर ऊपर ले जाते,	जहास च	और हँसा—
		अहो	अरे,
अरुणश्रिया	लालिमाकी शोभावाले	वनगोचरः	वनमें रहनेवाला
		मृगः	पशु (यहाँ कैसे आ गया) ॥२॥
अक्ष्णा	आँखोंसे		
स्वरुचः	(उस दैत्यकी) अपनी कान्तिको		

आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो
रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता।
न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः
सुराधमासादितसूकराकृते ॥३॥

आह एनं मे एहि अज्ञ महीं विमुञ्च नः रसौकसां विश्वसृजः इयं अर्पिता न स्वस्ति यास्यसि अनया मम ईक्षतः सुराधम आसादित सूकर आकृते ॥३॥

एनं आह	इन (वाराह) से बोला—	इयं	इसे
		अर्पिता	दे दिया है।
मे एहि	'मेरे पास आ,	मम ईक्षतः	मेरे देखते
अज्ञ	मूर्ख !	सूकर आकृते	सूअरका रूप
महीं	पृथ्वीको	आसादित	बनाये
विमुञ्च	छोड़ दे।	सुराधम	(तू) अधम देवता
विश्वसृजाः	विश्वस्रष्टाने	अनया	इसके साथ
नः रसौकसां	हम रसातल वासियोंको	स्वस्ति	कुशलपूर्वक
		न यास्यसि	नहीं जा सकेगा ॥३॥

त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो
यो मायया हन्त्यसुरान् परोक्षजित्।

त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं
संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः ॥४॥

त्वं नः सपत्नैः अभवाय किं भृतः यः मायया हन्ति असुरान् परोक्षजित् त्वां योगमायाबलं अल्प पौरुषं संस्थाप्य मूढ़ प्रमृजे सुहृत् शुचः ॥४॥

किं	क्या	हन्ति	मारता है।
नः अभवाय	हमारा नाश करनेके लिए	योगमायाबलं	योगमायाकी शक्तिवाले
सपत्नैः	हमारे शत्रुओंने	अल्प पौरुषं	थोड़े पौरुषवाले
त्वं भृतः	तुझे पाला है ?	मूढ त्वां	मूर्ख, तुझे
यः परोक्षजित्	जो छिपकर जीतनेवाला	संस्थाप्य	मारकर
मायया	कपटपूर्वक	सुहृत्	(अपने)सम्बन्धियोंके
असुरान्	असुरोंको	शुचः	आँसू
		प्रमृजामि	पोंछूंगा ॥४॥

त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्ष-
ण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ।
बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः
स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥५॥

त्वयि संस्थिते गदया शीर्ण शीर्षणि अस्मत् भुज च्युतया ये च तुभ्यं बलिं हरन्ति ऋषयः ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्ति अमूलाः ॥५॥

अस्मत्	मेरी	ऋषयः	ऋषिगण
भुज च्युतया	भुजासे गिरी (मारी गयी)	ये च देवाः	और जो देवता
गदया	गदासे	तुभ्य	तुझे
शीर्षणि	सिर	बलिं हरन्ति	उपहार देते हैं
शीर्ण	फट जानेसे	अमूलाः	निर्मूल होनेसे
त्वयि संस्थिते	तेरे मर जानेपर	सर्वे	वे सब
ये च	जो भी	स्वयं	स्वतः
		न भविष्यन्ति	नहीं रह जायँगे ॥५॥

स तुद्यमानोऽरिदुरुक्तितोमरै-
र्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ।
तोदं मृषन्निरगादम्बुमध्याद्
ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥६॥

स तुद्यमानः अरि दुरुक्ति तोमरैः दंष्ट्राग्रगां गां उपलक्ष्य भीतां तोदं मृषन् निरगात् अम्बु मध्यात् ग्राह आहतः सकरेणुः यथा इभः ॥६॥

अरि	शत्रुकी	यथा	जैसे
दुरुक्ति	दुर्वचन रूपी	ग्राह आहतः	मगरसे चोट खाया
तोमरैः	बाणोंसे	इभः	हाथी
तुद्यमानः	विद्ध होते हुए	सकरेणुः	हथिनीके साथ (निकले)
स	वे (वाराह भगवान्)		
दंष्ट्राग्रगां	दाढ़ोंकी नोकपर स्थित	तोदं मृषन्	(बाणोंकी) चोट सहते हुए
भीतां गां	डरी हुई पृथ्वीको	अम्बु मध्यात्	जलमें-से
उपलक्ष्य	देखकर	निरगात्	निकल आये ॥६॥

तं निःसरन्तं सलिलादनुद्रुतो
हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ।
करालदंष्ट्रोऽशनिनिःस्वनोऽब्रवीद्
गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥७॥

तं निःसरन्तं सलिलात् अनुद्रुतः हिरण्य केशः द्विरदं यथा झषः कराल दंष्ट्रः अशनि निःस्वनः अब्रवीत् गत ह्रियां किं तु असतां विगर्हितम् ॥७॥

सलिलात्	जलसे	अशनि निःस्वनः	वज्रके समान कड़ककर
तं निःसरन्तं	उनके निकलते समय		
यथा झषः	जैसे मगर	अब्रवीत्	बोला—
द्विरदं	हाथीका(पीछा करे)	गत ह्रियां	'निर्लज्ज हो गया है?
अनुद्रुतः	पीछे दौड़ता	असतां	असत्पुरुषोंके लिए
हिरण्य केशः	पीले केश (तथा)	विगर्हितं	निन्दित कर्म
कराल दंष्ट्रः	भयानक दाँतोंवाला (दैत्य)	किं	क्या है।' ॥७॥

स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे
विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ।
अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनै-
रापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥८॥

स गां उदस्तात् सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यां अदधात् स्व सत्त्वं अभिष्टुतः विश्वसृजा प्रसूनैः आपूर्यमाणः विबुधैः पश्यतः अरेः ॥८॥

अरेः	शत्रुके	तस्यां	उसमें
पश्यतः	देखते (सामने) ही	स्व सत्त्वं	अपनी (आधार) शक्ति
स	उन भगवानने		
सलिलस्य	जलके	अदधात्	धारण करा दी ।
उदस्तात्	ऊपर लाकर	विश्वसृजा	ब्रह्माजी द्वारा
गां	पृथ्वीको	अभिष्टुतः	स्तुति किये गये,
गोचरे	व्यवहार योग्य स्थानमें	विबुधैः	देवताओंने
		प्रसूनैः	पुष्पोंकी
विन्यस्य	रखकर	आपूर्यमाणः	वर्षा की ॥८॥

परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं
महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ।
मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः
प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥९॥

पर अनुषक्तं तपनीय उपकल्पं महागदं काञ्चन चित्र दंशं मर्माणि अभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्ड मन्युः प्रहसन् तं वभाषे ॥९॥

तपनीय उपकल्पं	सोनेके आभूषण पहिने,	अभीक्ष्णं	निरन्तर
		दुरुक्तैः	दुर्वचनोंसे
काञ्चन	स्वर्णका	मर्माणि	हृदयको
चित्र दंशम्	विचित्र कवच धारण किए,	प्रतुदन्तं	नोचते
		अनुषक्तं	पीछे लगे
महागदं	भारी गदा लिये,	परं	शत्रुसे

तं प्रहसन्	उसकी हँसी उड़ाते	प्रचण्ड मन्युः	प्रचण्ड क्रोधसे
		बभाषे	बोले ॥९॥

वाराह उवाच*–

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा
युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ।
न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा
विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥१०॥

सत्यं वयं भो वनगोचराः मृगाः युष्मत् विधान् मृगये ग्रामसिंहान् न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्ति अभद्र ॥१०॥

भो	अरे,	अभद्र	दुष्ट !
सत्यं वयं	सचमुच हम	वीरा	वीर पुरुष
वनगोचराः	वनमें रहनेवाले	मृत्युपाशैः	मृत्युके पाशमें
मृगाः	पशु हैं,	प्रतिमुक्तस्य	जकड़े
युष्मत् विधान्	तुम्हारे समान	तव विकत्थनं	तेरी बकवादपर
ग्रामसिंहान्	कुत्तोंको	न गृह्णन्ति	ध्यान नहीं
मृगये	ढूँढ़ते हैं ।		देते ॥१०॥

एते वयं न्यासहरा रसौकसां
गतह्रियो गदया द्रावितास्ते ।
तिष्ठामहेऽथापि कथञ्चिदाजौ
स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥११॥

एते वयं न्यास हरा रसौकसां गतह्रियः गदया द्राविताः ते तिष्ठामहे अथ अपि कथञ्चित् आजौ स्थेयं क्व यामः बलिना उत्पाद्य वैरम् ॥११॥

एते वयं	यह हम	न्यास हरा	धरोहर चुरानेवाले,
रसौकसां	रसातल वासियोंकी	गतह्रियः	निर्लज्ज,

* यहाँ अन्य प्रतियोंमें 'श्रीभगवानुवाच' है ।

ते गदया	तेरी गदासे	कथंचित्	किसी प्रकार
द्राविताः	भगाये गये,	तिष्ठामहे	रुकते हैं,
आजौ	मायासे	बलिना	(तुम्हारे समान)
स्थेयं	रुकनेकी शक्तिसे		बलवानसे
	(रहित हैं)	वैरं उत्पाद्य	शत्रुता उत्पन्न करके
अथ अपि	फिर भी	क्व यामः	कहाँ जायँगे ॥११॥

त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो
घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ।
संस्थाप्य चास्मान् प्रमृजाश्रु स्वकानां
यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥१२॥

त्वं पद्रथानां किल यूथप अधिपः घटस्व नः अस्वस्तय आशु अनूहः संस्थाप्य च अस्मान् प्रमृज अश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां न अति पिपर्ति असभ्यः ॥१२॥

त्वं किल	तुम निश्चय	संस्थाप्य	मार कर
पद्रथानां	पैदल वीरोंके	स्वकानां	अपनोंके
यूथप	यूथपतियोंके	अश्रु प्रमृज	आँसू पोंछो ।
अधिपः	अध्यक्ष हो,	यः स्वां प्रतिज्ञां	जो अपनी प्रतिज्ञाको
आशु	(अतः) शीघ्र	न अति पिपर्ति	भली प्रकार पालन
अनूहः	उधेड़बुन छोड़कर		नहीं करता,
नः अस्वस्तय	हमारे अनिष्टका	असभ्यः	(वह) असभ्य
घटस्व च	प्रयत्न करो और		है ॥१२॥
अस्मान्	हमको		

मैत्रेय उवाच–

सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ।
आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥१३॥

सः अधिक्षिप्तः भगवता प्रलब्धः च रुषा भृशं आजहार उल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानः अहिराट् इव ॥१३॥

सः	वह	क्रीड्यमानः	(पकड़कर) खेलते हुए
भगवता	भगवान्‌के द्वारा		
भृशं अधिक्षिप्तः	बहुत आक्षेप करनेपर	अहिराट् इव	सर्पराजके समान
च प्रलब्धः	तथा तिरस्कार किए जानेपर	उल्बणं क्रोधं	भयंकर क्रोधमें
		आजहार	आ गया ॥१३॥

सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः ।
आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाभ्यहनद्धरिम् ॥१४॥

सृजन् अमर्षितः श्वासान् मन्यु प्रचलित इन्द्रियः आसाद्य तरसा दैत्यः गदया अभ्य हनत् हरिम् ॥१४॥

अमर्षितः	खीझकर	तरसा	वेगपूर्वक
श्वासान्	(लम्बी) श्वास	आसाद्य	समीप आकर
सृजन्	लेता,	गदया	गदासे
मन्युः	क्रोधसे	हरिं	भगवान् (वाराह) को
प्रचलित	क्षुब्ध		
इन्द्रियः	इन्द्रिय	अभ्य हनत्	मारा ॥१४॥
दैत्यः	दैत्यने		

भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ।
अवञ्चयत्तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥१५॥

भगवान् तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणा उरसि अवञ्चयत् तिरश्चीनः योग आरूढ इव अन्तकम् ॥१५॥

भगवान् तु	भगवानने तो	योग आरूढ	योग (समाधि) में स्थित (जैसे)
रिपुणा	शत्रु द्वारा		
उरसि	छातीपर	अन्तकं इव	मृत्युको (बचा लेता है) इस प्रकार
विसृष्टं	मारी गयी		
गदावेगं	गदाके वेगको	तिरश्चीनः	तिरछे होकर
		अवञ्चयत्	बचा लिया ॥१५॥

पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः ।
अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥१६॥

पुनः गदां स्वां आदाय भ्रामयन्तं अभीक्ष्णशः अभ्यधावत् हरिः क्रुद्धः संरम्भ दष्ट दच्छदम् ॥१६॥

पुनः स्वां गदां	फिर अपनी गदा	क्रुद्धः	क्रोधित होकर
आदाय	लेकर	संरम्भ	आवेशसे
अभीक्ष्णशः	बराबर	दशनच्छदः	ओष्ठ
भ्रामयन्तं	(उसे) घुमाते हुए	दष्टः	काटते हुए
हरिः	भगवान् वाराह	अभ्यधावत्	दौड़े ॥१६॥

ततश्च गदयारातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः ।
आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥१७॥

ततः च गदया आरातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदः अहनत् ॥१७॥

सौम्य	शान्त विदुर !	स तु	वह तो
ततः च	फिर तो	कोविदः	(गदायुद्धमें)
प्रभुः	समर्थ भगवान्ने		चतुर था
गदया	गदासे	तां गदया	उन (भगवान) पर
आरातिं	शत्रुकी		गदासे
दक्षिणस्यां भ्रुवि	दाहिनी भौंहपर	अहनत्	आघात किया ॥१७॥
आजघ्ने	मारा		

एवं गदाभ्या गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ।
जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥१८॥

एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षः हरिः एव च जिगीषया सुसंरब्धाः अन्योन्यं अभिजघ्नतुः ॥१८॥

एवं	इस प्रकार	जिगीषया	जीतनेकी इच्छासे
गुर्वीभ्यां	भारी	सुसंरब्धा	अत्यन्त क्रोधमें भरे
गदाभ्यां	गदासे	अन्योन्यं	एक दूसरेको
हर्यक्षः	हिरण्याक्ष	अभिजघ्नतुः	प्रहार करने
च हरिः एव	और भगवान भी		लगे ॥१८॥

तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः
क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्यवोः ।
विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया
व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥१९॥

तयोः स्पृधोः तिग्मगदा आहत अङ्गयोः क्षत आस्रव घ्राण विवृद्ध मन्योः विचित्र मार्गात् चरतः जिगीषया व्यभात् इलायां इव शुष्मिणोः मृधः ॥१९॥

स्पृधोः	स्पर्धा (होड़) करनेवाले	विचित्र मार्गात्	विचित्र पैंतरे
		चरतः	लेते
तयोः	उन दोनोंके	जिगीषया	जीतनेकी इच्छासे,
तिग्मगदा	तीक्ष्ण गदा प्रहारसे	इलायां	गायके लिए
आहत अंगयोः	घायल शरीरके	शुष्मिणोः	साँड़ोंके समान
क्षत आस्रव	घावोंसे बहते रक्तकी	मृधः	युद्ध
घ्राण विवृद्ध	गन्धसे बढ़े	व्यभात्	हुआ ॥१९॥
मन्योः	क्रोधसे		

दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायया-
गृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ।
कौरव्य महयां द्विषतोर्विमर्दनं
दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥२०॥

दैत्यस्य यज्ञ अवयवस्य माया गृहीत वाराह तनोः महात्मनः कौरव्य महयां द्विषतोः विमर्दनं दिदृक्षुः आगात् ऋषिभिः वृतः स्वराट् ॥२०॥

कौरव्य	विदुर !	यज्ञ अवयवस्य	यज्ञ विग्रह भगवानका
माया	मायासे		
वाराह तनोः	वाराह शरीर	दैत्यस्य	दैत्यके साथ
गृहीत	धारण किये	महयां	पृथ्वीके लिए
महात्मनः	परमात्मा	द्विषतोः	द्वेष बाँधकर

विमर्दनं	होते संघर्षको	स्वराट्	ब्रह्माजी
दिदृक्षुः	देखनेकी इच्छासे,	आगात्	आये ॥२०॥
ऋषिभिः वृतः	ऋषियोंसे घिरे		

आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं
कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ।
विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणी-
र्जगाद नारायणमादिसूकरम् ॥२१॥

आसन्न शौण्डीरं अपेत साध्वसं कृत प्रतिकारं अहार्य विक्रमं विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणीः जगाद नारायणं आदिसूकरं ॥२१॥

शौण्डीरं	शूरवीर	सहस्रणीः	सहस्रों ऋषियों
अपेत साध्वसं	निर्भय		सहित आये
प्रतिकारं कृतं	प्रत्याघात करके	भगवान्	भगवान् ब्रह्माजी
अहार्य विक्रमं	अजेय पराक्रम	आदिसूकरं	आदि वाराह
दैत्यं	दैत्यको	नारायणं	नारायणसे
आसन्नं	समीप ही	जगाद	बोले ॥२१॥
विलक्ष्य	देखकर		

ब्रह्मोवाच-

एष ते देव देवानामङ्घ्रिमूलमुपेयुषाम् ॥
विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥२२॥

एष ते देव देवानां अङ्घ्रि मूलं उपेयुषां विप्राणां सौरभेयीनां भूतानां अपि अनागसाम् ॥२२॥

देव	देव !	विप्राणां	ब्राह्मणों
एष ते	यह आपके	सौरभेयीनां	गायों
अङ्घ्रि मूलं	चरणों (की)	अनागसां	निरपराध
उपेयुषां	(शरण) में आनेवालों,	भूतानां अपि	प्राणियोंका भी ॥२२॥
देवानां	देवताओं		

आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ।
अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥२३॥

आगस्कृत् भयकृत् दुष्कृत् अस्मत् राद्ध वरः असुरः अन्वेषन् अप्रतिरथः लोकान् अटति कण्टकः ॥२३॥

आगस्कृत्	अपराध करनेवाला,	अप्रतिरथः	अपनी जोड़का योधा न होनेसे
भयकृत्	डरानेवाला,	अन्वेषन्	उसे ढूंढ़ता
दुष्कृत्	कुकर्मी	कण्टकः	कांटा बना
असुरः	असुर	लोकान् अटति	लोकोंमें घूमता है ॥२३॥
अस्मत्	मुझसे		
वरः राद्धः	वरदान पाकर		

मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् ।
आक्रीड बालवद्देव यथाऽऽशीविषमुत्थितम् ॥२४॥

मा एनं मायाविनं दीप्तं निरङ्कुशं असत्तमं आक्रीड बालवत् देव यथा आशीविषं उत्थितम् ॥२४॥

देव	देव !	असत्तमं	अत्यन्त दुष्ट (के साथ)
एनं	इस	उत्थितं	फण उठाये
मायाविनं	मायावी	आशीविषं	विषैले सर्पसे
दीप्तं	घमण्डी	बालवत्	बालकके समान
निरङ्कुशं	उच्छृंखल	मा आक्रीड	मत खेलिये ॥२४॥

न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः ।
स्वां देव मायामास्थाय तावज्जहि अघमच्युत ॥२५॥

न यावत् एव वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः स्वां देव मायां आस्थाय तावत् जहि अघं अच्युत ॥२५॥

अच्युत	अच्युत !	स्वां वेलां	अपनी (शक्ति वृद्धिकी) बेला
दारुणः	(यह) दारुण दैत्य	प्राप्य	पाकर
यावत् एव	जब तक कि		

वर्धेत न	अधिक बलवान नहीं हो जाता	स्वां देव मायां आस्थाय	अपनी योगमायाका अवलम्बन करके
तावत्	तभी तक (उससे पहिले ही)	अघं जहि	(इस) पापीको मार दें ॥२५॥

एषा घोरतमा सन्ध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो ।
उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयमावह ॥२६॥

एषा घोरतमा सन्ध्या लोकः शम्बट्करी प्रभो उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयं आवह ॥२६॥

प्रभो	प्रभो !	उपसर्पति	आ रही है,
सर्वात्मन्	सर्वात्मा !	सुराणां	(उससे पूर्व) देवताओंको
एष लोक	यह लोकोंका		
शम्बट्करी	संहार करनेवाली	जयं आवह	विजय दीजिए॥२६॥
सन्ध्या	सन्ध्या		

अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ।
शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥२७॥

अधुना एषः अभिजित् नाम योगः मौहूर्तिकः अगात् शिवाय नः त्वं सुहृदां आशु निस्तर दुस्तरम् ॥२७॥

अधुना एषः	इस समय यह	शिवाय	कल्याणके लिए
अभिजित् नाम	अभिजित् नामका	त्वं आशु	आप शीघ्र
मौहूर्तिकः	मंगल मुहूर्तका	दुस्तरं	(इस) दुर्जयसे
योगः अगात्	योग आगया है,	निस्तर	निपट लीजिए ॥२७॥
नः सुहृदां	हम सुहृदोंके		

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ।
विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥२८॥

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्यं अयं आसादितः स्वयं विक्रम्य एनं मृधे हत्वा लोकान् आधेहि शर्मणि ॥२८॥

त्वां	आप (के हाथ) से	**विक्रम्य**	पराक्रम करके
मृत्युं	(इसकी) मृत्यु	**मृधे**	युद्धमें
विहितं	वदी है,	**एनं हत्वा**	इसे मारकर
दिष्ट्या	(हमारे) सौभाग्यसे	**लोकान्**	लोकोंको
स्वयं	(यह) स्वयं	**शर्मणि**	शान्ति
आसादितः	(आपके पास) आ पहुँचा,	**आधेहि**	प्रदान कीजिए॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ।
प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥१॥

अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकं अमृतं वचः प्रहस्य प्रेमगर्भेण तत् अपाङ्गेन सः अग्रहीत् ॥१॥

सः	उन (भगवान्) ने	प्रहस्य तत्	हँसकर उसे
विरिञ्चस्य	ब्रह्माजीकी	प्रेमगर्भेण	प्रेम भरी
निर्व्यलीकं	निष्कपट	अपाङ्गेन	तिरछी चितवनसे
अमृतं वचः	अमृतमय वाणी	अग्रहीत्	ग्रहण (स्वीकार)
अवधार्य	सुनकर		कर लिया ॥१॥

ततः सपत्नं मुखतश्चरन्तमकुतोभयम् ।
जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥२॥

ततः सपत्नं मुखतः चरन्तं अकुतोभयं जघान उत्पत्य गदया हनाः असुरं अक्षजः ॥२॥

ततः	तदनन्तर	सपत्नं	शत्रुकी
अक्षजः	भगवान्ने	हनाः	ठुड्डीपर
मुखतः	सामने ही	उत्पत्य	कूदकर
अकुतोभयं	निर्भय	गदया	गदासे
चरन्तं	घूमते	जघान	मारा ॥२॥
असुरं	दैत्य		

सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् ।
विघूर्णितापतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥३॥

सा हता तेन गदया विहता भगवत् करात् विघूर्णिता अपतत् रेजे तत् अद्भुतं इव अभवत् ॥३॥

सा	वह (भगवानकी)	**विघूर्णिता**	घूमती हुई
हता	मारी गयी (गदा)	**अपतत् रेजे**	गिरती सुशोभित हुई।
तेन गदया	उस (दैत्य) की गदासे (टकराकर)	**तत्**	यह
भगवत् करात्	भगवानके हाथसे	**अद्भुतं इव**	आश्चर्य-सी (घटना)
विहता	छूटकर	**अभवत्**	हुई ॥३॥

स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् ।
मानयन् स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥४॥

स तदा लब्धतीर्थः अपि न बबाधे निरायुधं मानयन् स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥४॥

तदा	उस समय	**स मृधे धर्मं**	उस युद्धके धर्मको
लब्धतीर्थः अपि	अवसर पानेपर भी	**मानयन्**	मानकर
विष्वक्सेनं	भगवानको	**निरायुधं**	आयुध रहित (भगवानपर)
प्रकोपयन्	क्रोधित करनेके लिए	**बबाधे न**	चोट नहीं की ॥४॥
स	उस (दैत्य) ने		

गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते ।
मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चास्मरद्विभुः ॥५॥

गदायां अपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते मानयामास तत् धर्मं सुनाभं च अस्मरत् विभुः ॥५॥

गदायां	गदाके	**विभुः**	भगवानने
अपविद्धायां	टकराकर गिर जानेपर	**तत् धर्मं**	उस (दैत्य) के धर्म व्यवहारकी
हाहाकारे	(देवताओंका) हाहाकार	**मानयामास**	प्रशंसा की
विनिर्गते	बन्द हो जानेपर	**च सुनाभं**	और चक्रका
		अस्मरत्	स्मरण किया ॥५॥

तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन
स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ।
चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां
तत्रास्मासन् स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥६॥

तं व्यग्र चक्रं दितिपुत्र अधमेन स्वपार्षद मुख्येन विषज्जमानं चित्रा वाचः अतद्विदां खेचराणां तत्र अस्मासन् स्वस्ति ते अमुं जहि इति ॥६॥

व्यग्र चक्रं	चक्र घुमाते,	खेचराणां	देवताओंकी
अधमेन	अधम	इति	इस प्रकारकी
दितिपुत्र	दैत्य,	चित्रा वाचः	विचित्र वचन
स्वपार्षद मुख्येन	अपने मुख्य पार्षदसे	तत्र अस्मासन्	वहाँ सुनायी देनेलगी
विषज्जमानं	क्रीड़ा करते	स्वस्ति ते	आपका कल्याण हो,
तं	उन (भगवान) से	अमुं जहि	इसे मार
अतद्विदां	उनके प्रभावको न जाननेवाले		दीजिये ॥६॥

स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो
व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ।
विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो
रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥७॥

स तं निशम्य* आत्त रथाङ्गं अग्रतः व्यवस्थितं पद्म पलाश लोचनं विलोक्य च अमर्ष परिप्लुत इन्द्रियः रुषा स्व दन्तच्छदं आदशत् श्वसन् ॥७॥

स	उस (दैत्य) ने	पद्म पलाश लोचनं	कमलदल लोचन (भगवान) को
तं	उस (देववाणी) को		
निशम्य च	सुनकर तथा	अग्रतः	(अपने) आगे
आत्त रथाङ्ग	चक्र लिए		

---

* यहाँ मूलमें 'निशाम्य' पाठ है, किन्तु निशाम्यका अर्थ देखकर है और श्लोकमें 'विलोक्य' है, अतः अर्थपर ध्यान देनेसे यहाँ 'निशम्य' पाठ समीचीन लगता है ।

व्यवस्थितं	खड़े	रुषा	गुस्सेसे
विलोक्य	देखकर	श्वसन्	(लम्बी) श्वास लेते
अमर्ष	क्रोधसे	स्व दन्तच्छदं	अपने ओष्ठको
परिप्लुत इन्द्रियः	व्याकुलेन्द्रिय होकर	आदशत्	काट लिया ॥७॥

करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां सञ्चक्षाणो दहन्निव ।
अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥८॥

करालदंष्ट्रः चक्षुर्भ्यां सञ्चक्षाणः दहन् इव अभिप्लुत्य स्वगदया हतः आसीत् आहनत् हरिम् ॥८॥

करालदंष्ट्रः	भयानक दाढ़ोंवाला (दैत्य)	अभिप्लुत्य	उछलकर
		स्वगदया	अपनी गदासे
चक्षुर्भ्यां:	नेत्रोंसे	'हतः आसीत्'	'अब मारा गया' (यह कहता)
दहन् इव	जला देगा, इस प्रकार	हरिं	भगवानको
सञ्चक्षाणः	घूरता हुआ,	आहनत्	मारा ॥८॥

पदा सव्येन तां साधो भगवान् यज्ञसूकरः ।
लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥९॥

पदा सव्येन तां साधो भगवान् यज्ञ सूकरः लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरत् वात रंहसा ॥९॥

साधो	साधु विदुर !	लीलया	खेलकी भाँति
भगवान्	भगवान	वात रंहसा	वायु वेगसे (आती)
यज्ञ सूकरः	यज्ञ वाराहने	तां	उस (गदा) पर
शत्रोः	शत्रुके	सव्येन पदा	बायें पैरसे
मिषतः	देखते हुए	प्राहरत्	प्रहार किया ॥९॥

आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि ।
इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन् व्यनदद् भृशम् ॥१०॥

आह च आयुधं आधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि इति उक्तः स तदा भूयः ताडयन् व्यनदत् भृशम् ॥१०॥

आह च	और बोले	इति उक्तः	ऐसा कहे जानेपर
आयुधं	'हथियार	तदा स	तब उसने
आधत्स्व	उठालो,	भूयः	फिरसे
त्वं	तुम	ताडयन्	प्रहार करते हुए
जिगीषसि	(मुझे) जीतना	भृशं	बार-बार
	चाहते हो तो	व्यनदत्	गर्जना करने
घटस्व	प्रयत्न करो।'		लगा ॥१०॥

तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान् समवस्थितः ।
जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥११॥

तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान् समवस्थितः जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मान् इव पन्नगीम् ॥११॥

स	उन	लीलया	खेलमें ही
भगवान्	भगवानने	प्राप्तां	समीप आयी
तां	उस (गदा) को		(गदा) को
आपततीं	गिरती	गरुत्मान्	गरुड़ द्वारा
वीक्ष्य	देखकर	पन्नगीं इव	सर्पिणीकी भाँति
समवस्थितः	स्थिर खड़े रहकर	जग्राह	पकड़ लिया ॥११॥

स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः ।
नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥१२॥

स्व पौरुषे प्रतिहते हत मानः महा असुरः न ऐच्छत् गदां दीयमानां हरिणा विगत प्रभः ॥१२॥

स्व पौरुषे	अपने उद्यमके	हरिणा	भगवान द्वारा
प्रतिहते	नष्ट होनेसे	दीयमानां	दी जाती
महा असुरः	उस महादैत्यका	गदां	गदाको
मानः हत	अभिमान नष्ट	न ऐच्छत्	नहीं लेना
	हो गया,		चाहा ॥१२॥
प्रभः विगतः	तेज भी नष्ट हो गया,		

जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् ।
यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन् यथा ॥१३॥

जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलत् ज्वलन लोलुपं यज्ञाय धृतरूपाय विप्राय अभिचरन् यथा ॥१३॥

यथा	जैसे (कोई)	ज्वलत् ज्वलन	प्रज्वलित अग्निके समान
विप्राय	ब्राह्मणपर (व्यर्थ)	लोलुपं	लपलपाता
अभिचरन्	(मारणादि) अभिचार करे,	त्रिशिखं	तीन नोकवाला
धृतरूपाय	(वाराह) रूप धारण किए	शूलं	शूल (त्रिशूल)
यज्ञाय	यज्ञ पुरुषके लिए	जग्राह	पकड़ा (उठाया) ॥१३॥

तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं
चकासदन्तः ख उदीर्णदीधिति ।
चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना
हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्त्रमुज्झितम् ॥१४॥

तत् ओजसा दैत्य महाभट अर्पितं चकासत अन्तः ख उदीर्ण दीधितिः चक्रेण चिच्छेद निशात नेमिना हरिः यथा तार्क्ष्य पतत्त्रं उज्झितम् ॥१४॥

महाभट दैत्य	महाशूर दैत्य द्वारा	चक्रेण	चक्रसे (उसे भगवान्ने)
अर्पितं	चलाया गया	चिच्छेद	(ऐसे) काट दिया
तत्	वह (त्रिशूल)	यथा हरिः	जैसे इन्द्रने (वज्रसे)
अन्तःख	आकाशमें	तार्क्ष्य	गरुड़के
उदीर्ण दीधितिः	किरणें फैलाते	उज्झितं	त्यागे
ओजसा	अपनी चमकसे	पतत्त्रं	पंखको (काट दिया था) ॥१४॥
चकासत	प्रकाशित हुआ,		
निशात नेमिना	तीक्ष्ण धारवाले		

वृक्णे स्वशूले बहुधारिणा हरेः
प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ।

प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना
नदन् प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥१५॥

वृक्णे स्वशूले बहुधा अरिणा हरेः प्रति एत्य विस्तीर्णं उरः विभूतिमत् प्रवृद्ध रोषः स कठोर मुष्टिना नदन् प्रहृत्य अन्तर धीयत असुरः ॥१५॥

अरिणा हरेः	(अपने) शत्रु भगवान द्वारा	**कठोर मुष्टिना**	कठोर घूसेसे
स्वशूले	अपने त्रिशूलके	**विस्तीर्णं**	विशाल
बहुधा वृक्णे	अनेक टुकड़ोंमें कट जानेपर	**विभूतिमत्**	श्रीवत्साङ्कित
प्रवृद्ध रोषः	बढ़े क्रोधसे	**उरः**	वक्षस्थलपर
स असुरः	वह दैत्य	**नदन्**	गर्जना करते हुए
प्रति एत्य	पास आकर	**प्रहृत्य**	प्रहार करके
		अन्तर धीयत	अदृश्य होगया ॥१५॥

तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः ।
नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥

तेन इत्थं आहतः क्षत्तः भगवान् आदि सूकरः न अकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥

क्षत्तः	विदुर !	**आदि सूकरः**	आदि वाराह
तेन	उस (दैत्य) द्वारा	**स्रजाहत**	मालासे मारे गये
इत्थं	इस प्रकार	**द्विपः इव**	हाथीके समान
आहतः	आघात किये जानेपर	**क्वापि मनाक्**	कहीं तनिक भी
भगवान्	भगवान्	**न अकम्पत**	नहीं काँपे ॥१६॥

अथोरुधासृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ ।
यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥१७॥

अथ उरुधा असृजन् मायां योगमाया ईश्वरे हरौ यां विलोक्य प्रजाः त्रस्ता मेनिरे अस्य उपसंयमम् ॥१७॥

अथ	तदनन्तर	**हरौ**	भगवानको (डरानेके लिए)
योगमाया	योगमायाके		
ईश्वरे	स्वामी	**उरुधा**	अनेक प्रकारकी

मायां	मायाको	अस्य	इस (संसार) की
असृजन्	प्रकट किया	उपसंयमं	प्रलय (काल आया)
यां विलोक्य	जिसे देखकर	मेनिरे	मान लिया ॥१७॥
त्रस्ताः प्रजाः	संत्रस्त प्रजाने		

प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् ।
दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥

प्रववुः वायवः चण्डाः तमः पांसवं ऐरयन् दिग्भ्यः निपेतुः ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥

चण्डाः वायवः	प्रचण्ड आँधी	दिग्भ्यः	दिशाओंसे
प्रववुः	चलने लगी,	क्षेपणैः	गुलेलसे
पांसवं	धूलि	प्रहिता इव	फेंकेके समान
ऐरयन्	उड़ानेसे	ग्रावाणः	पत्थर
तमः	अन्धकार (छा गया)	निपेतुः	गिरने लगे ॥१८॥

द्यौर्नष्टभगणाभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥१९॥

द्यौः नष्ट भगणा अभ्र ओघैः सविद्युत् स्तनयित्नुभिः वर्षद्भिः पूय केश असृक् विट् मूत्र अस्थीनि च असकृत् ॥१९॥

सविद्युत्	बिजलीके साथ	पूय केश	पीब, केश,
स्तनयित्नुभिः	गड़गड़ाते हुए	असृक्	रक्त
अभ्र ओघैः	मेघोंकी घनघोर घटासे—	विट्, मूत्र	विष्ठा, मूत्र,
		च अस्थीनि	तथा हड्डियोंकी
द्यौः	आकाशके	असकृत्	लगातार
भगणाः	सूर्यादि ग्रह	वर्षद्भिः	वर्षा करते
नष्ट	छिप गये ।		हुए ॥१९॥

गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचोऽनघ ।
दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥२०॥

गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नाना आयुध मुचः अनघ दिग्वाससः यातुधान्यः शूलिन्यः मुक्त मूर्धजाः ॥२०॥

अनघ	निष्पाप विदुर !	दिग्वाससः	दिगम्बरा
नाना आयुध	अनेक प्रकारके शस्त्र	शूलिन्यः	त्रिशूल लिए
मुचः	गिरानेवाले	मुक्त मूर्धजाः	केश खोले
गिरयः	पर्वत	यातुधान्यः	राक्षसियाँ
प्रत्यदृश्यन्त	चारों ओर दिखायी पड़े ।		(दीखने लगीं)॥२०॥

बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः ।
आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥२१॥

बहुभिः यक्ष रक्षोभिः पत्ति अश्व रथ कुञ्जरैः आततायिभिः उत्सृष्टा हिंस्रा वाचः अति वैशसः ॥२१॥

बहुभिः	बहुत-सी	अति वैशसः	अत्यन्त क्रूर
अश्व रथ		हिंस्राः	हिंसामयी
कुञ्जरैः	घोड़े, रथ, हाथी युक्त	वाचः	वाणी
यक्ष रक्षोभिः	यक्ष राक्षसोंकी	उत्सृष्टाः	उत्पन्न हो
आततायिभिः	आक्रमणकारी		गयी ॥२१॥
पत्ति	सेना की		

प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् ।
सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥

प्रादुष्कृतानां मायानां आसुरीनां विनाशयत् सुदर्शन अस्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥

प्रादुष्कृतानां	प्रकट हुई	त्रिपात्	तीनों लोकोंमें
आसुरीनां	(उस) आसुरी		आघात करनेवाले
मायानां	मायाके	दयितं	अपने प्रिय
विनाशयत्	विनाशके लिए	सुदर्शन अस्त्रं	सुदर्शन चक्रका
भगवान्	भगवान्‌ने	प्रायुङ्क्त	प्रयोग किया ॥२२॥

तदा दितेः समभवत्सहसा हृदि वेपथुः ।
स्मरन्त्या भर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे ॥२३॥

तदा दितेः समभवत् सहसा हृदि वेपथुः स्मरन्त्या भर्तुः आदेशं स्तनात् च असृक् प्रसुस्रुवे ॥२३॥

तदा	उस समय	**च भर्तुः**	और पतिके
सहसा	अचानक	**आदेशं**	कथनका
दितेः	दितिके	**स्मरन्त्या**	स्मरण करती
हृदि	हृदयमें	**स्तनात्**	स्तनोंसे
वेपथुः	कम्पन	**असृक्**	रक्त
समभवत्	होने लगा	**प्रसुस्रुवे**	टपकने लगा ॥२२॥

विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवम् ।
रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥२४॥

विनष्टासु स्वमायासु भूयः च आव्रज्य केशवं रुषा उपगूहमानः अमुं ददृशे अवस्थितं बहिः ॥२४॥

स्वमायासु	अपनी मायाके	**उपगूहमानः**	भुजाओंमें भरकर दबानेकी चेष्टामें
विनष्टासु	नष्ट हो जानेपर	**बहिः अवस्थितं**	बाहर ही खड़े
भूयः च	फिरसे	**अमुं**	उनको
केशवं	केशवके	**ददृशे**	देखा ॥२४॥
आव्रज्य	समीप आकर		
रुषा	क्रोधसे		

तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं वज्रसारैरधोक्षजः ।
करेण कर्णमूलेऽहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥

तं मुष्टिभिः विनिघ्नन्तं वज्रसारैः अधोक्षजः करेण कर्णमूले अहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥

वज्रसारैः	फौलादके समान	**कर्णमूले**	कनपटीपर
मुष्टिभिः	घूसोंसे	**अहन्**	मारा
विनिघ्नन्तं तं	मारते हुए उसे	**यथा मरुत्पतिः**	जैसे इन्द्रने
अधोक्षजः	भगवानने	**त्वाष्ट्रं**	वृत्रको (मारा था) ॥२५॥
करेण	चपतसे		

स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया
परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ।
विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद्
यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥२६॥

स आहतः विश्वजिता हि अवज्ञया परिभ्रमत् गात्र उदस्त लोचनः विशीर्ण बाहु अङ्घ्रि शिरोरुहः अपतत् यथा नगेन्द्रः लुलितः नभस्वता ॥२६॥

हि स	क्योंकि वह
विश्वजिता	विश्व विजयी (भगवान) द्वारा
अवज्ञया	उपेक्षापूर्वक
आहतः	मारा गया
गात्र परिभ्रमत्	(उसका) शरीर घूमने लगा,
उदस्त लोचनः	आखें निकल आयीं,
बाहु अङ्घ्रि शिरोरुह	भुजा, पैर और केश
विशीर्ण	फैलाकर
अपतत्	गिर पड़ा,
यथा नभस्वता	जैसे अन्धड़से
लुलितः	उखाड़ा
नगेन्द्रः	भारी पर्वत हो ॥२६॥

क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं
करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ।
अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता
अहो इमां को नु लभेत संस्थितिम् ॥२७॥

क्षितौ शयानं तं अकुण्ठ वर्चसं कराल दंष्ट्रं परिदष्ट दत्छदं अज आदयः वीक्ष्य शशंसुः आगता अहो इमां कः नु लभेत संस्थितिम् ॥२७॥

तं	उस
अकुण्ठ वर्चसं	अम्लान तेजा
कराल दंष्ट्रं	भयानक दाढ़ोंवाले
दच्छदं	ओष्ठको
परिदष्ट	दाँतसे दबाये
क्षितौ शयानं	पृथ्वीपर सोते
वीक्ष्य	देखकर
आगता	वहाँ आये
अज आदयः	ब्रह्मादि
शशंसुः	प्रशसा करने लगे
अहो	'अहो !
इमां	ऐसी (अलभ्य)
संस्थितिं	मृत्यु
कः नु लभेत	भला कौन पा सकता है ॥२७॥

यं योगिनो योगसमाधिना रहो
ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ।
तस्यैष दैत्यऋषभः पदाहतो
मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥२८॥

यं योगिनः योग समाधिना रहः ध्यायन्ति लिङ्गात् असतः मुमुक्षया तस्य एष दैत्य ऋषभः पदाहतः मुखं प्रपश्यन् तनुं उत्ससर्ज ह ॥२७॥

योगिनः	योगी लोग
रहः	एकान्तमें
योग समाधिना	योगकी एकाग्रतासे
असतः	असत्
लिङ्गात्	लिंग शरीरसे
मुमुक्षया	मुक्त हो जानेकी इच्छासे
यं ध्यायन्ति	जिनका ध्यान करते हैं
एष दैत्य ऋषभः	यह दैत्य श्रेष्ठ
ह	अहो
तस्य पदाहतः	उनके चरणोंसे मारा जाकर
मुखं प्रपश्यन्	(उनके) मुखका दर्शन करता
तनुं	शरीर
उत्ससर्ज	त्याग गया ॥२८॥

एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् ।
पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येते ह जन्मभिः ॥२९॥

एतौ तौ पार्षदाः अस्य शापात् याताः असद्गतिं पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येत इह जन्मभिः ॥२९॥

एतौ	ये दोनों
अस्य	इन (भगवान) के
तौ	वे दोनों (जय-विजय)
पार्षदाः	पार्षद हैं,
शापात्	शापके कारण
असद्गतिं	निन्दित गति (योनि) में
याताः	आये हैं,
पुनः इह	फिर यहाँ (पृथ्वीमें)
जन्मभिः	जन्म लेकर
कतिपयैः स्थानं	कुछ स्थानोंमें
प्रपत्स्येत	जायँगे' ॥२९॥

देवा ऊचुः-

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे
स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।
दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुन्तुद-
स्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥३०॥

नमो नमः ते अखिल यज्ञ तन्तवे स्थितौ गृहीत अमल सत्त्वमूर्तये दिष्ट्या हतः अयं जगतां अरुन्तुदः त्वत् पाद भक्त्या वयं ईश निर्वृताः ॥३०॥

अखिल यज्ञ	समस्त यज्ञोंकी	**अयं जगतां**	यह सारे संसारको
तन्तवे स्थितौ	परम्परा बनाये रखनेके लिए	**अरुन्तुदः**	पीड़ा देनेवाला
		हतः	मारा गया,
अमल सत्त्वमूर्तये	निर्मल सत्त्व मूर्ति	**ईश**	स्वामी
गृहीत ते	धारण किये आपको	**त्वत् पाद भक्त्या**	आपके चरणोंकी भक्तिसे
नमो नमः	बार-बार नमस्कार।		
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि	**वयं**	हम
		निर्वृताः	सुखी हुए ॥३०॥

मैत्रेय उवाच-

एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं
स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ।
जगाम लोकं स्वमखण्डितोत्सवं
समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥३१॥

एवं हिरण्याक्षं असह्य विक्रमं स सादयित्वा हरिः आदि सूकरः जगाम लोकं स्वं अखण्डित उत्सवं समीडितः पुष्कर विष्टर आदिभिः ॥३१॥

एवं	इस प्रकार	**स आदि सूकरः**	उन आदि वाराह
असह्य विक्रमं	असह्य पराक्रम	**हरिः**	श्रीहरिने
हिरण्याक्षं	हिरण्याक्षको	**सादयित्वा**	मारकर

पुष्कर विष्टर	पद्मासन (ब्रह्मा)	अखण्डित उत्सवं	अखण्डित उत्सव
आदिभिः	आदिसे		(चलनेवाले)
समीडितः	भली प्रकार स्तुत होकर	स्वं लोकं	अपने लोकको
		जगाम	चले गये ॥३१॥

मया यथानूक्तमवादि ते हरेः
कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ।
यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो
महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥३२॥

मया यथा नूक्तं अवादि ते हरेः कृत अवतारस्य सुमित्र चेष्टितं यथा हिरण्याक्ष उदार विक्रमः महामृधे क्रीडनवत् निराकृतः ॥३२॥

सुमित्र	अच्छे मित्र विदुर !	निराकृतः	मार डाला (यह)
कृत अवतारस्य	अवतार लेकर	हरेः	श्रीहरिकी
यथा	जैसे	चेष्टितं	चेष्टा (लीला)
उदार विक्रमः	उदार पराक्रम (भगवान) ने	मया	मैंने
		यथा नूक्तं	जैसी सुनी थी,
महामृधे	महायुद्धमें	ते अवादि	तुमसे कह दिया ॥३२॥
हिरण्याक्षं	हिरण्याक्षको		
क्रीडनवत्	खिलौनेके समान		

सूत उवाच-

इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् ।
क्षत्ताऽऽनन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥३३॥

इति कौषारव आख्यातां आश्रुत्य भगवत् कथां क्षत्ता आनन्दं परं लेभे महाभागवतः द्विज ॥३३॥

द्विज	ब्राह्मण ! (शौनकजी)	कौषारव	मैत्रेयजी द्वारा
		आख्यातां	वर्णित
इति	इस प्रकार	भगवत् कथां	भगवानकी कथाको

आश्रुत्य	सुनकर	परं आनन्दं	परमानन्द
महा भागवतः	महा भागवत	लेभे	पाये ॥३३॥
क्षत्ता	विदुर		

अन्येषां पुण्य श्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ।
उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥३४॥

अन्येषां पुण्य श्लोकानां उद्दाम यशसां सतां उपश्रुत्य भवेत् मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥३४॥

अन्येषां	दूसरे	पुनः	फिर
पुण्य श्लोकानां	पवित्र कीर्ति	श्रीवत्साङ्कस्य	श्रीवत्सवक्षा (भगवानके)
उद्दाम यशसां	उद्दाम यशस्वी		
सतां	सत्पुरुषोंका (चरित)	किं	(चरितकी तो बात ही) क्या ॥३४॥
उपश्रुत्य	सुनकर		
मोदः भवेत्	आनन्द होता है,		

यो गजेन्द्रं ग्राहग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् ।
क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद् द्रुतम् ॥३५॥

यः गजेन्द्रं ग्राह ग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजं क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतः अमोचयत् द्रुतम् ॥३५॥

ग्राह ग्रस्तं	मगरसे पकड़े,	करेणूनां	हथिनियोंके
चरणाम्बुजं	(अपने) चरण-कमलका	क्रोशन्तीनां	चीत्कार करते समय
		कृच्छ्रतः	संकटसे
ध्यायन्तं	ध्यान करते	यः द्रुतं	जिन्होंने झटपट
गजेन्द्रं	गजेन्द्रको	अमोचयत्	छुड़ा दिया ॥३५॥

तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ।
कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥३६॥

तं सुखाराध्यं ऋजुभिः अनन्य शरणैः नृभिः कृतज्ञः कः न सेवेत दुराराध्यं असाधुभिः ॥३६॥

ऋजुभिः	सरल (हृदय)	दुराराध्यं	दुराराध्य
अनन्य शरणैः	अनन्य शरणागत	तं	उन भगवानकी
नृभिः	मनुष्यों द्वारा	कः	कौन
सुखाराध्यं	सुखपूर्वक प्रसन्न होनेवाले	कृतज्ञः	कृतज्ञ पुरुष
		सेवेत न	सेवा नहीं
असाधुभिः	(किन्तु) दुर्जनोंसे		करेगा ॥३६॥

यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं
विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ।
शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा
विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥३७॥

यः वै हिरण्याक्ष वधं महा अद्भुतं विक्रीडितं कारण सूकर आत्मनः शृणोति गायति अनुमोदते अञ्जसा विमुच्यते ब्रह्मवधात् अपि द्विजाः ॥३७॥

द्विजाः	ब्राह्मणो !	गायति	वर्णन करता है (अथवा)
महा अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत	अनुमोदते	(इसका) अनुमोदन करता है—
हिरण्याक्ष वधं	हिरण्याक्ष वध		
कारण	प्रयोजनवश	वै	निश्चय (वह)
सूकर आत्मनः	वाराह शरीरधारी भगवानकी	अञ्जसा	सरलतासे
		ब्रह्मवधात् अपि	ब्रह्म हत्यासे भी
विक्रीडितं	क्रीड़ा	विमुच्यते	छूट जाता है ॥७॥
यः शृणोति	जो सुनता है,		

एतन्महापुण्यमलं पवित्रं
धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ।
प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं
नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥

एतत् महा पुण्यं अलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदं आयुः आशिषां प्राण इन्द्रियाणां युधि शौर्य वर्धनं नारायणः अन्ते गतिः अङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥

अङ्ग	प्रिय (शौनकादि)	**युधि**	युद्धमें
एतत्	यह (कथा)	**प्राण इन्द्रियाणां**	प्राण और इन्द्रियोंके
महा पुण्यं	महा पुण्यदायिनी है,	**शौर्य वर्धनं**	शौर्यको बढ़ानेवाली है
अलं पवित्रं	परम पवित्र है,	**शृण्वतां**	इसे सुनने वालोंको
धन्यं यशस्यं	धन और यश-दायिनी है,	**अन्ते**	अन्तमें
आयुः आशिषां	आयु और कामनाओंकी	**गतिः नारायणः**	भगवान नारायण प्राप्त होते हैं ॥३८॥
पदं	पूर्ति करनेवाली है,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथ विंशोऽध्यायः

शौनक उवाच-

महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायम्भुवो मनुः ।
कान्यन्वतिष्ठद् द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥१॥

महीं प्रतिष्ठां अध्यस्य सौते स्वायम्भुवः मनुः कानि अन्वतिष्ठत् द्वाराणि मार्गायाः अवर जन्मनाम् ॥१॥

सौते	सूतजी !	**कानि**	किन
महीं प्रतिष्ठां	पृथ्वी रूप आधारको	**द्वाराणि मार्गायाः**	द्वारों (उपायों) या साधनोंका
अध्यस्य	प्राप्त करके	**अन्वतिष्ठत्**	अवलम्बन किया ॥१॥
स्वायम्भुवः मनुः	स्वायम्भू मनुने		
अवर जन्मनां	(अपने) पीछे होने वाली सन्तानोंके लिए		

क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् ।
यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥२॥

क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्य ऐकान्तिकः सुहृत् यः तत्याज अग्रजं कृष्णे स अपत्यं अघवान् इति ॥२॥

क्षत्ता	विदुरजी	**अघवान्**	अपराधी हैं'
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त थे,	**इति**	ऐसा समझकर
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**स अपत्यं**	पुत्रोंके साथ
ऐकान्तिकः	अनन्य	**अग्रजं**	बड़े भाई (धृतराष्ट्र) को
सुहृत्	सुहृद थे,	**तत्याज**	त्याग दिया ॥२॥
यः	जिन्होंने		
कृष्णे	'श्रीकृष्णके		

द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः ।
सर्वात्मनाश्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥३॥

द्वैपायनात् अनवरः महित्वे तस्य देहजः सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परान् च अपि अनुव्रतः ॥३॥

महित्वे	महिमामें	**कृष्णं**	श्रीकृष्णके
द्वैपायनात्	व्यासजीसे	**श्रितः च**	आश्रित थे और
तस्य देहजः	उनके पुत्र (विदुर)	**तत्परां अपि**	उनके परायण (भक्तों) के भी
अनवरः	कम नहीं थे.		
सर्वात्मना	सर्वभावसे (वे)	**अनुव्रतः**	अनुगत थे ॥३॥

किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया ।
उपगम्य कुशावर्तं आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥

किं अन्व पृच्छत् मैत्रेयं विरजाः तीर्थ सेवया उपगम्य कुशावर्तं आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥

तीर्थ सेवया	तीर्थ सेवनसे	**तत्त्ववित्तमं**	तत्त्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ
विरजाः	निर्मल हुए	**आसीनं**	बैठे हुए
कुशावर्तं	द्वारिकासे*	**मैत्रेयं**	मैत्रेयजीसे
उपगम्य	आकर	**किं अन्वपृच्छत्**	क्या और पूछा ॥४॥

तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः ।
आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥५॥

तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता हि अमलाः कथाः आपः गाङ्गा इव अघघ्नीः हरेः पादाम्बुज आश्रयाः ॥५॥

सूत	सूतजी !	**हरेः पादाम्बुज**	श्रीहरिके चरण कमलकी
तयोः	उन दोनोंके		
संवदतोः हि	संवादमें क्योंकि	**आश्रयाः**	आश्रय (सम्बन्धी)

---

* अनेक टीकाकारोंने कुशावर्तका अर्थ हरिद्वार किया है, क्योंकि 'कुशावर्तात्' पाठ यहाँ नहीं है; किन्तु व्याकरणकी ऐसी उपेक्षा ग्रन्थमें और भी है और भागवतमें द्वारिका कुशस्थली कही गयी है ।

गाङ्गा आपः इव	गङ्गाजलके समान	अमलाः कथाः	निर्मल कथा
अघघ्नीः	पाप नाशिनी	प्रवृत्ता	हुई होगी ॥५॥

ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ।
रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥६॥

ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्यः उदार कर्मणः रसज्ञः कः नु तृप्येत हरि लीला अमृतं पिबन् ॥६॥

ता नः कीर्तय	उसे हमें सुनाइये,	लीला अमृतं	लीलारूपी अमृतको
ते भद्रं	आपका कल्याण हो,	पिबन्	पीते हुए
कीर्तन्यः	कीर्तनीय	कः रसज्ञः नु	कौन रसवेत्ता भला
उदार कर्मणः	उदारकर्मा	तृप्येत	तृप्त होगा ॥७॥
हरि	श्रीहरिकी		

व्यास उवाच*–

एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः ।
भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥७॥

एवं उग्रश्रवाः पृष्टः ऋषिभिः नैमिषायनैः भगवति अर्पित अध्यात्मः तान् आह श्रूयतां इति ॥७॥

एवं	इस प्रकार	अध्यात्म	चित्त
नैमिषायनैः	नैमिषारण्यमें रहनेवाले	अर्पित	लगाये
		उग्रश्रवाः	उग्रश्रवा सूत
ऋषिभिः	ऋषियों द्वारा	तान् इति	उनसे इस प्रकार
पृष्टः	पूछे जानेपर	आह श्रूयतां	बोले 'सुनिये !' ॥७॥
भगवति	भगवानमें		

सूत उवाच–

हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया
निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं
सञ्जातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥८॥

हरेः धृत क्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोः उद्धरणं रसातलात् लीलां हिरण्याक्षं अवज्ञया हतं सञ्जात हर्षः मुनिं आह भारतः ॥८॥

स्वमायया	अपनी मायासे	**हिरण्याक्षं हतं**	हिरण्याक्षको मार देना
हरेः	श्रीहरिके	**निशम्य**	सुनकर
क्रोडतनोः धृत	वाराह शरीर धारण करके	**सञ्जात हर्षः**	आनन्दित होकर
लीलां	खेल-खेलमें	**भारतः**	विदुर
अवज्ञया	उपेक्षापूर्वक	**मुनिं**	मुनि (मैत्रेय) से
		आह	बोले ॥८॥

विदुर उवाच–

प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ।
किमारभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥९॥

प्रजापति पतिः सृष्ट्वा प्रजा सर्गे प्रजापतीन् किं आरभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूहि अव्यक्त मार्गवित् ॥९॥

ब्रह्मन्	मैत्रेयजी !	**सृष्ट्वा**	प्रजापतियोंको उत्पन्न करके
अव्यक्त मार्गवित्	परोक्ष विषयोंको (आप) जाननेवाले हैं, (अतः)	**प्रजा सर्गे**	प्रजाकी सृष्टिके लिए
प्रजापति पतिः	प्रजापतियोंके स्वामी (ब्रह्माजीने)	**किं आरभत**	क्या (करना) आरम्भ किया
प्रजापतीन्		**मे प्रब्रूहि**	मुझे बतलाइये ॥९॥

ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायम्भुवो मनुः ।
ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥१०॥

ये मरीचि आदयः विप्राः यः तु स्वायम्भुवः मनुः ते वै ब्रह्मण आदेशात् कथं एतत् अभावयन् ॥१०॥

ये मरीचि आदयः	जो मरीचि (अत्रि) आदि	ब्रह्मण आदेशात्	ब्रह्माजीकी आज्ञासे (लगे)
विप्राः	ब्राह्मण (ब्रह्मपुत्र) थे,	एतत्	(उन्होंने) इस (संसार) की
यः तु	जो तो	कथं अभावयन्	कैसे भावना (रचना) की ॥१०॥
स्वायम्भुवः मनु	स्वायम्भू मनु थे,		
ते वै	इनमें जो भी		

सद्वितीयाः किमसृजन् स्वतन्त्रता उत कर्मसु ।
आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥११॥

स द्वितीयाः किं असृजन् स्वतन्त्रा उत कर्मसु आहोस्वित् संहताः सर्व इदं स्म सम कल्पयन् ॥११॥

किं स द्वितीयाः	क्या दूसरे (पत्नीके) साथ	आहोस्वित्	अथवा तो
		सर्व संहताः	सबने एक साथ मिलकर
असृजन्	सृष्टि की	इदं	इस (जगत) की
उत कर्मसु	अथवा (अपने) कार्योंमें	सम कल्पयन् स्म	भली प्रकार कल्पना की ॥११॥
स्वतन्त्राः	स्वतन्त्र रहकर		

मैत्रेय उवाच–

दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ।
जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद् गुणत्रयात् ॥१२॥

दैवेन दुर्वितर्क्येण परेण अनिमिषेण च जात क्षोभात् भगवतः महान् आसीत् गुणत्रयात् ॥१२॥

दुर्वितर्क्येण	अतर्क्य	भगवतः	भगवानसे (प्रेरणा पाकर)
दैवेन	उन जीवोंके प्रारब्धसे,	जात क्षोभात्	क्षोभ उत्पन्न होनेपर
परेण	(प्रकृतिके) नियन्ता पुरुषसे,	गुणत्रयात्	त्रिगुणमयी (प्रकृति)से
अनिमिषेण	काल (समय) पर	महान् आसीत्	महतत्त्व उत्पन्न हुआ ॥१२॥

रजः प्रधानान्महतस्त्रिलिङ्गो दैवचोदितात् ।
जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥१३॥

रजः प्रधानात् महतः त्रिलिङ्गः दैव चोदितात् जातः ससर्ज भूतादिः वियत् आदीनि पञ्चशः ॥१३॥

दैव चोदितात्	दैवकी प्रेरणासे	भूतादिः	अहंकार
रजः प्रधानात्	रजोगुण प्रधान	जातः	उत्पन्न हुआ (उसने)
महतः	महत्त्वसे	वियत् आदीनि	आकाशादि
त्रिलिङ्गः	तीन प्रकारके चिह्नवाला	पञ्चशः	पांच वर्ग
		ससर्ज	उत्पन्न किये ॥१३॥

तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ।
संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥१४॥

तानि च एकएकशः स्रष्टुं असमर्थानि भौतिकं संहत्य दैवयोगेन हैमं अण्डं अवासृजन् ॥१४॥

तानि च	उनके तो	दैवयोगेन	दैवयोगसे
एक एकशः	अकेले-अकेले	संहत्य	सब मिल गये (और)
भौतिकं स्रष्टुं	आधिभौतिक (संसार) की सृष्टिमें	हैमं अण्डं	स्वर्णमय अण्डा
		अवासृजन्	उत्पन्न किया ॥१४॥
असमर्थानि	असमर्थ होनेपर		

सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः ।
साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥१५॥

सः अशयिष्ट अब्धि सलिले आण्डकोशः निरात्मकः स अग्रं वै वर्ष साहस्रं अन्ववात्सीत् तं ईश्वरः ॥१५॥

सः निरात्मकः	वह चेतना शून्य	अशयिष्ट	सोता (पड़ा) रहा
आण्डकोशः	अण्डा	स तं	तब उसमें
अब्धि सलिले	समुद्रके जलमें	ईश्वरः	ईश्वरने
अग्रं	पहिले	अन्ववात्सीत्	प्रवेश किया ॥१५॥
वर्ष साहस्रं वै	सहस्र वर्षों तक		

तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ।
सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥१६॥

तस्य नाभेः अभूत् पद्मं सहस्र अर्कः उरु दीधितिः सर्व जीव निकायः ओकः यत्र स्वयं अभूत् स्वराट् ॥१६॥

तस्य नाभेः	उनकी नाभिसे	**पद्मं अभूत्**	कमल प्रकट हुआ,
सहस्र अर्क	हजारों सूर्यके समान	**यत्र**	जिसपर
उरु दीधितिः	अत्यन्त प्रकाशमान	**स्वयं स्वराट्**	स्वयं वे स्वयं प्रकाश
सर्व जीव निकाय ओकः	सब जीव समूहोंका निवास	**अभूत्**	(ब्रह्मा रूपसे) प्रकट हुए ॥१६॥

सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ।
लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥१७॥

सः अनुविष्टः भगवता यः शेते सलिल आशये लोक संस्थां यथा पूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥१७॥

यः सलिल आशये	जो जलके भीतर	**यथा पूर्वं**	जैसे पहिले (कल्पमें) थी
शेते	सोते हैं	**लोक संस्थां**	लोकोंका आधार
सः भगवता	उन भगवान (नारायण) के	**स्वया संस्थया**	अपने आधार (कमल) से
अनुविष्टः	(हृदयमें) प्रवेश करनेपर	**निर्ममे**	निर्माण किया ॥१७॥

ससर्जच्छाययाविद्यां पञ्चपर्वाणमग्रतः ।
तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥

ससर्ज छायया अविद्यां पञ्च पर्वाणं अग्रतः तामिस्रं अन्धतामिस्रं तमः मोहः महातमः ॥१८॥

अग्रतः	पहिले	**अन्धतामिस्र**	अन्धतामिस्र (अस्मिता)
छायया	(अपनी) छायासे	**तमः**	तम (राग)
तामिस्रं	तामिस्र (अविद्या)		

मोहः	मोह (द्वेष)	पञ्च पर्वाणं	(इन) पांच गाठोंवाली
महातमः	महातम (अभिनिवेश)	अविद्यां ससर्ज	अविद्याकी सृष्टि की ॥१८॥

विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् ।
जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥१९॥

विससर्ज आत्मनः कायं न अभिनन्दन् तमः मयं: जगृहुः यक्ष रक्षांसि रात्रिं क्षुत् तृट् समुद्भवाम् ॥१९॥

आत्मनः	अपने	समुद्भवां	उत्पन्न करनेवाली
तमः मयं	तमोमय	रात्रिं	(उस) रात्रिरूपाको
कायं	शरीरका	यक्ष रक्षांसि	(उसीसे उत्पन्न) यक्ष-राक्षसोंने
अभिनन्दन न	अभिनन्दन न करके	जगृहुः	ग्रहण कर लिया ॥१९॥
विससर्ज	(ब्रह्माजीने) त्याग दिया,		
क्षुत् तृट्	भूख-प्यास		

क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः ।
मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥२०॥

क्षुत् तृट्भ्यां उपसृष्टाः ते तं जग्धुं अभिदुद्रुवुः मा रक्षत एनं जक्षध्वं इति उचूः क्षुत् तृट् अर्दिताः ॥२०॥

क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे	इति उचूः	(वे) इस प्रकार बोले—
उपसृष्टाः	अभिभूत	एनं मा रक्षत	'इसकी रक्षा मत करो,
ते तं	वे उन (ब्रह्माजी)को	जक्षध्वं	खा जाओ।' ॥२०॥
जग्धुं	खानेके लिए		
अभिदुद्रुवुः	उनकी ओर दौड़े,		
क्षुत् तृट् अर्दिताः	भूख-प्याससे पीड़ित		

देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ।
अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥२१॥

देवः तान् आह संविग्नः मा मां जक्षत रक्षत अहो मे यक्ष रक्षांसि प्रजा यूयं वभूविथ ॥२१॥

देवः	ब्रह्माजी	**मे प्रजा**	मेरी सन्तान
संविग्नः	घबड़ाकर	**वभूविथ**	होते हो,
तान् आह	उनसे बोले—	**मां मा जक्षत**	मुझे मत खाओ,
यूयं	'तुम लोग	**रक्षत**	(मेरी) रक्षा
यक्ष रक्षांसि	यक्ष-राक्षस		करो।' ॥२१॥

विशेष—

ब्रह्माने जिनसे कहा—'माजक्षत' (मत खाओ' वे यक्ष हो गये और जिनसे कहा—'रक्षत' (रक्षा करो) वे राक्षस कहलाये।

देवताः प्रभया या या दीव्यन् प्रमुखतोऽसृजत् ।
ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥

देवताः प्रभया या या दीव्यन् प्रमुखतः असृजत् ते अहार्षुः देवयन्तः विसृष्टां तां प्रभां अहः ॥२२॥

या या प्रभया	जिस-जिस प्रभासे	**विसृष्टां**	(ब्रह्माजी द्वारा) छोड़ी गयी
दिव्यन्	प्रकाशित होते हुए	**तां प्रभां**	उस प्रभाको (जो)
प्रमुखतः	मुख्य-मुख्य	**अहः ते**	दिन था, उन
देवताः	देवताओंको		(देवताओं) ने
असृजत्	(ब्रह्माजीने) उत्पन्न किया	**अहार्षुः**	ग्रहण कर लिया ॥२२॥
देवयन्तः	क्रीड़ा करते हुए		

देवोऽदेवाञ्जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् ।
त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥

देवः अदेवान् जघनतः सृजति स्म अति लोलुपान् त एनं लोलुपतया मैथुनाय अभिपेदिरे ॥२३॥

देवः	ब्रह्माजीने	**अति लोलुपान्**	अत्यन्त कामुक
जघनतः	अपनी जांघसे	**अदेवान्**	असुरोंको

सृजति स्म	उत्पन्न किया ही था कि	एनं	इन (ब्रह्माजी) को ओर
त लोलुपतया	वे कामुक होनेके कारण	मैथुनाय अभिपेदिरे	मैथुनके लिए झपट पड़े ॥२३॥

ततो हसन् स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ।
अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥२४॥

ततः हसन् स भगवान् असुरैः निरपत्रपैः अन्वीयमानः तरसा क्रुद्धः भीतः परापतत् ॥२३॥

स भगवान्	वे भगवान् (ब्रह्मा)	अन्वीयमानः	पीछा किये जानेपर
ततः हसन्	उस समय हँसे (किन्तु)	क्रुद्धः	क्रोधित हुए और
		भीतः तरसा	डरकर वेगसे
निरपत्रपैः	निर्लज्ज	परापतत्	भागने लगे ॥२४॥
असुरैः	असुरों द्वारा		

स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् ।
अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥२५॥

स उपव्रज्य वरदं प्रपन्न आर्ति हरं हरिं अनुग्रहाय भक्तानां अनुरूप आत्मदर्शनम् ॥२५॥

वरदं	वरदान देनेवाले,	आत्मदर्शनं	अपने रूपका दर्शन करानेवाले
प्रपन्न आर्ति हरं	शरणागतके क्लेशहारी,	हरिं	श्रीहरिके
भक्तानां	भक्तोंपर	उपव्रज्य	पास जाकर
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए	स	वे (ब्रह्माजी बोले) ॥२५॥
अनुरूप	उनके अनुकूल		

*ब्रह्मोवाच**–

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ।
ता इमा यभितुं पापा उपाक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

पाहि मां परमात्मन् ते प्रेषणेन असृजं प्रजाः ता इमाः यभितुं पापाः उपाक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

परमात्मन्	परमात्मा !	**ता इमाः पापाः**	सो ये पापी
मां पाहि	मेरी रक्षा कीजिए,	**प्रभो**	प्रभो !
ते प्रेषणेन	आपके भेजनेसे	**मां यभितुं**	मुझे ही तंग करने
प्रजाः असृजं	(मैं) प्रजाकी सृष्टि करता था,	**उपाक्रामन्ति**	ऊपर चढ़े आ रहे हैं ॥२६॥

त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः ।
त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥२७॥

त्वं एकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेश नाशनः त्वं एकः क्लेशदः तेषां अनासन्न पदां तव ॥२७॥

किल	निश्चय	**तव पदां**	आपके चरणोंमें
एकः त्वं	एक मात्र आप	**अनासन्न**	न आनेवाले
क्लिष्टानां	क्लेशमें पड़े	**तेषां**	उनके
लोकानां	लोगोंके	**एकः त्वं**	एक मात्र आप ही
क्लेश नाशनः	क्लेश नाशक हैं (और)	**क्लेशदः**	क्लेश देनेवाले भी है ॥२७॥

*मैत्रेय उवाच**–

सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ।
विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥

सः अवधार्य अस्य कार्पण्यं विविक्त अध्यात्म दर्शनः विमुञ्च आत्म तनुं घोरां इति उक्तः विमुमोच ह ॥२८॥

सः	वे (भगवान्)	**आत्मघोरां तनुं**	'अपने घोर शरीरको
विविक्त अध्यात्म	हृदयके एकान्त (भाव) को	**विमुञ्च**	छोड़ दो ।'
दर्शनः	देखनेवाले	**इति उक्तः**	ऐसा कहा,
अस्य	इन (ब्रह्माजी) की	**विमुमोच ह**	अतः (ब्रह्माजीने उसे) छोड़ दिया ॥२८॥
कार्पण्यं	आतुरता		
अवधार्य	समझकर		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् ।
काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥२९॥

तां क्वणत् चरण अम्भोजां मद विह्वल लोचनां काञ्ची कलाप विलसत् दुकूलच्छन्न रोधसम् ॥२९॥

तां क्वणत्	उस (नूपुर) बजाते	**रोधसं**	नितम्बोंपर
चरण अम्भोजां	चरण-कमलवाली,	**काञ्ची कलाप**	
मद विह्वल	मदसे चंचल	**विलसत्**	करधनी पहिननेसे
लोचनां	नेत्रोंवाली,		सुशोभित ॥२९॥
दुकूलच्छन्न	साड़ीसे ढके		

अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्गनिरन्तरपयोधराम् ।
सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥३०॥

अन्योन्य श्लेषयोः उत्तुङ्ग निरन्तर पयोधरां सुनासां सुद्विजां स्निग्धहास लीला अवलोकनाम् ॥३०॥

अन्योन्य	एक दूसरेसे	**सुद्विजां**	सुन्दर दाँतोंवाली,
श्लेषयोः	सटे हुए	**स्निग्धहास**	मधुर हँसीसे
निरन्तर	बिना अन्तरवाले	**लीला**	
उत्तुङ्ग	ऊँचे	**अवलोकनां**	क्रीड़ा (कटाक्ष)पूर्वक
पयोधरां	स्तनोंवाली,		देखनेवाली ॥३०॥
सुनासां	सुन्दर नाकवाली,		

गूहन्तीं व्रीडयाऽऽत्मानं नीलालकवरूथिनीम् ।
उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे सम्मुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥

गूहन्तीं व्रीडया आत्मानं नील अलक वरूथिनीं उपलभ्य असुराः धर्म सर्वे सम्मुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥

व्रीडया	लज्जासे	**नील अलक**	
आत्मानं	अपनेको	**वरूथिनीं**	काले सघन
गूहन्तीं	छिपाती हुई,		अलकोंवाली

स्त्रियं	स्त्रीको	सर्वे असुराः	सब असुर
उपलभ्य	पाकर	सम्मुमुहुः	(उस पर) मोहित
धर्म	विदुरजी !		हो गये ॥३१॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः ।
मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥३२॥

अहो रूपं अहो धैर्यं अहो अस्य नवं वयः मध्ये कामय मानानां अकाम एव विसर्पति ॥३२॥

अहो रूपं	'अहो ! (इसका) रूप,	कामय मानानां	(हम) चाहनेवालोंके
अहो धैर्यं	आश्चर्यजनक (इसमें) धैर्य है,	मध्ये	बीचमें
अहो अस्य	अद्भुत इसकी	अकाम एव	निष्कामकी भाँति
नवं वयः	नयी अवस्था है,	विसर्पति	(लापरवाहीसे) विचर रही हैं ॥३२॥

वितर्कयन्तो बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदाकृतिम् ।
अभिसम्भाव्य विश्रम्भात्पर्यपृच्छन् कुमेधसः ॥३३॥

वितर्कयन्तः बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदा आकृतिं अभिसम्भाव्य विश्रम्भात् पर्यपृच्छन् कुमेधसः ॥३३॥

कुमेधसः	दुर्बुद्धि (असुरोंने)	अभिसम्भाव्य	(उसका) आदर करके
तां प्रमदा आकृतिं	उस स्त्री रूपिणी		
सन्ध्यां	सन्ध्या (के सम्बन्धमें)	विश्रम्भात्	प्रेमपूर्वक
बहुधा	अनेक प्रकारके	पर्यपृच्छन्	(उससे) पूछने लगे ॥३३॥
वितर्कयन्तः	तर्क-वितर्क करते हुए		

असुरा ऊचुः–*

कासि कस्यासि रम्भोरु को वार्थस्तेऽत्र भामिनी ।
रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥३४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कासि कस्य असि रम्भोरु कः अर्थः ते अत्र भामिनी रूप द्रविण पण्येन दुर्भगान् नः बिबाध से ॥३४॥

रम्भोरु	केलेके समान जांघोवाली,	**भामिनी**	सुन्दरी !
		रूप द्रविण	सौन्दर्य रूपी धनके
कासि	कौन हो ?	**पण्येन**	मूल्यसे
कस्य असि	किसकी (पुत्री) हो ?	**नः दुर्भगान्**	हम अभागोंको
अत्र ते	यहाँ तुम्हारा	**बिबाध से**	तरसा रही
कः अर्थः	क्या प्रयोजन है ?		हो ॥३४॥

या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या सन्दर्शनं तव ।
उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ॥३५॥

या वा काचित् त्वं अबले दिष्ट्या सन्दर्शनं तव उत्सुनोषि ईक्षमाणानां कन्दुक क्रीडया मनः ॥३५॥

त्वं	तुम	**कन्दुक क्रीडया**	(अपने) गेंदके खेलसे
या काचित् वा	जो कोई भी हो	**ईक्षमाणानां**	(हम) दर्शकोंका
अबले	अबले !	**मनः**	मन
दिष्ट्या	सौभाग्यसे	**उत्सुनोषि**	मथे डालती
तव सन्दर्शनं	तुम्हारा दर्शन हुआ।		हो ॥३५॥

नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं
घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ।
मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं
शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ॥३६॥

न एकत्र ते जयति शालिनी पाद पद्मं घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत् पतङ्गं मध्यं विषीदति बृहत् स्तन भार भीतं शान्त इव दृष्टिः अमला सुशिखा समूहः ॥३६॥

पतत्	गिरती हुई	**मुहुः**	बार-बार
पतङ्गं	गेंदको	**करतलेन**	हथेलीसे

घ्नत्याः	मारनेसे
जयति शालिनि	विजय करनेवाली (सुन्दरी)
ते	तुम्हारे
पाद पद्मं	चरण-कमल
एकत्र न	एक स्थानपर नहीं रह पाते,
वृहत् स्तन भार	भारी स्तनोंके भारसे
भीतं	डरा हुआ
मध्यं	बीचका भाग (कमर)
विषीदति	(थकी)कष्ट पाती है,
अमला दृष्टिः	(तुम्हारी) निर्मल दृष्टि
शान्त एव	शान्त ही है,
सुशिखा समूहः	केशपाश (कितना) सुन्दर है ॥३६॥

*मैत्रेय उवाच**–

इति सायंतनीं संध्यामसुराः प्रमदायतीम् ।
प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥३७॥

इति सायंतनीं सन्ध्यां असुराः प्रमदायतीं प्रलोभयन्तीं जगृहुः मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥३७॥

इति	इस प्रकार
प्रमदायतीं	स्त्री रूप धारिणी
प्रलोभयन्तीं	प्रलुब्ध करती
सायंतनीं	सायंकालीना
सन्ध्यां	सन्ध्याको
मूढधियः	मूढ बुद्धि
असुराः	असुरोंने
स्त्रियं मत्वा	स्त्री समझकर
जगृहुः	ग्रहण कर लिया ॥३७॥

प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना ।
कान्त्या ससर्ज भगवान् गन्धर्वाप्सरसां गणान् ॥३८॥

प्रहस्य भाव गम्भीरं जिघ्रन्त्य आत्मानं आत्मना कान्त्या ससर्ज भगवान् गन्धर्व अप्सरसां गणान् ॥३८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

गम्भीरं भाव	गम्भीर भावसे
प्रहस्य	हँसकर
भगवान्	भगवान (ब्रह्माने)
आत्मानं	
आत्मना	अपने आपको स्वयं
जिघ्रन्त्य	सूंघती (आस्वादन करती)
कान्त्या	(अपनी) कान्तिसे
गन्धर्व अप्सरसां	
गणान्	गन्धर्व एवं अप्सरा गणोंको
ससर्ज	उत्पन्न किया ॥३८॥

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियाम् ।
त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसु पुरोगमाः ॥३९॥

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियां त एव च आददुः प्रीत्या विश्वावसु पुरोगमाः ॥३९॥

तां ज्योत्स्नां	उस चन्द्रिका रूप
कान्तिमतीं	कान्तिमय
प्रियां तनुं वै	प्रिय शरीरको भी
विससर्ज	त्याग दिया,
त एव च	उसको ही
प्रीत्या	प्रसन्नतापूर्वक
विश्वावसु	विश्वावसु
पुरोगमाः	जिनके आगे चलते हैं (उन गन्धर्वोंने)
आददुः	ले लिया ॥३९॥

सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रिणा ।
दिग्वाससो मुक्तकेशान् वीक्ष्य चामीलयद् दृशौ ॥४०॥

सृष्ट्वा भूत पिशाचान् च भगवान् आत्म तन्द्रिणा दिग्वाससः मुक्तकेशान् वीक्ष्य च अमीलयत् दृशौ ॥४०॥

भगवान्	भगवान (ब्रह्माने)
आत्म तन्द्रिणा	अपनी तन्द्रासे
दिग्वाससः	दिगम्बर
मुक्तकेशान्	खुले बालोंवाले
भूत पिशाचान् च	भूत तथा प्रेतोंको
सृष्ट्वा	उत्पन्न करके
वीक्ष्य च	और (उन्हें) देखकर
दृशौ	नेत्रोंको
अमीलयत्	बन्द कर लिया ॥४०॥

जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः ।
निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ।
येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥४१॥

जगृहुः तद् विसृष्टां तां जृम्भण आख्यां तनुं प्रभोः निद्रां इन्द्रिय विक्लेदः यया भूतेषु दृश्यते येन उच्छिष्टान् धर्षयन्ति तं उन्मादं प्रचक्षते ॥४१॥

तद्	उन (ब्रह्माजी) के द्वारा
विसृष्टां	छोड़ा गया
प्रभोः	ब्रह्माजीके
जृम्भण आख्यां	जम्हाई नामक
तां तनुं निद्रां	उस शरीर निद्राको
जगृहुः	(उन भूत-पिशाचोंने) ले लिया,
यया	जिसके द्वारा
भूतेषु	प्राणियोंमें
इन्द्रिय विक्लेदः	इन्द्रियोंकी शिथिलता
दृश्यते	दिखलायी पड़ती है,
येन	जिस (निद्राके) माध्यमसे
उच्छिष्टान्	जूठे मुख सोने वालेको
धर्षयन्ति	(भूत-प्रेत) अभिभूत कर लेते हैं
तं	उस (अवस्था) को
उन्मादं	पागलपन
प्रचक्षते	कहा जाता है ॥४१॥

ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः ।
साध्यान् गणान् पितृगणान् परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥४२॥

ऊर्जस्वन्तं मन्यमानः आत्मानं भगवान् अजः साध्यान् गणान् पितृ गणान् परोक्षेण असृजत् प्रभुः ॥४२॥

प्रभुः	समर्थ
भगवान् अजः	भगवान ब्रह्माने
आत्मानं	अपनेको
ऊर्जस्वन्तं	ऊर्जा(शक्ति) सम्पन्न
मन्यमानः	मानकर
परोक्षेण	अदृश्य रूपसे
साध्यान् गणान्	साध्यगणोंको (और)
पितृ गणान्	पितरगणोंको
असृजत्	उत्पन्न किया ॥४२॥

त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे ।
साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥४३॥

त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे साध्येभ्यः च पितृभ्यः च कवयः यत् वितन्वते ॥४३॥

आत्मसर्गं	अपने उत्पन्न करनेवाले
तं कायं	उस (अदृश्य) शरीरको
त पितरः	उन पितरोंने
प्रतिपेदिरे	ग्रहण कर लिया,
यत्	जिसके द्वारा
साध्येभ्यः च	साध्यगणोंको और
पितृभ्यः च	पितरोंको भी
कवयः	कव्य(पिण्ड)और हव्य
वितन्वते	अर्पण करते हैं॥४३॥

सिद्धान् विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् ।
तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥४४॥

सिद्धान् विद्याधरान् च एव अन्तर्धानेन सः असृजत् तेभ्यः अदात् तं आत्मानं अन्तर्धान आख्यं अद्भुतम् ॥४४॥

सिद्धान्	सिद्धोंको
विद्याधरान् च एव	और विद्याधरोंको भी
सः	उन (ब्रह्माजी) ने
अन्तर्धानेन	तिरोधान शक्तिसे
असृजत्	बनाया
तेभ्यः	उनको
अन्तर्धान आख्यं	अन्तर्धान नामवाला
तं अद्भुतं	उस अद्भुत
आत्मानं	अपने शरीरको
अदात्	दिया ॥४४॥

सकिन्नरान् किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ।
मानयन्नात्मनाऽऽत्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥४५॥

स किन्नरान् किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येन असृजत् प्रभुः मानयन् आत्मना आत्मानं आत्म आभासं विलोकयन् ॥४५॥

प्रभुः	समर्थ (ब्रह्माजी) ने
आत्म आभासं	अपने प्रतिविम्बको
विलोकयन्	देखते हुए
आत्मना	स्वयं ही (उसे)
आत्मानं मानयन्	अपना स्वरूप मानते हुए
प्रत्यात्म्येन	(उस) प्रतिविम्बसे
स किन्नरान्	किन्नरोंके साथ
किम्पुरुषान्	किम्पुरुषोंको
असृजत्	उत्पन्न किया ॥४५॥

ते तु तज्जगृहू रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ।
मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥४६॥

ते तु तत् जगृहुः रूपं त्यक्तं यत् परमेष्ठिना मिथुनी भूय गायन्तः तं एव उषसि कर्मभिः ॥४६॥

यत् परमेष्ठिना	जो ब्रह्माजी द्वारा	तं एव	उन (ब्रह्माजी)का ही
त्यक्तं	छोड़ दिया गया	कर्मभिः	(उनके) कर्मोंके वर्णन द्वारा
तत् रूपं	उस रूपको		
ते तु	उन्होंने तो	मिथुनी भूय	पत्नियोंके साथ
जगृहुः	ग्रहण कर लिए	गायन्तः	गायन करते हैं॥४६॥
उषसि	प्रातःकाल		

देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया ।
सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥४७॥

देहेन वै भोगवता शयानः बहु चिन्तया सर्गे अनुपचिते क्रोधात् उत्ससर्ज ह तद् वपुः ॥४७॥

सर्गे	सृष्टिके	शयानः	लेटे हुए
अनुपचिते	न बढ़नेसे	क्रोधात्	क्रोधवश
बहु चिन्तया	बहुत चिन्तासे	तद् वपुः	उस शरीरको
भोगवता वै	हाथ-पैर फैलाये	उत्ससर्ज ह	त्याग ही दिया ॥४७॥
देहेन	शरीरसे		

येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे ।
सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥४८॥

ये अहीयन्तां उतः केशा अहयः ते अङ्ग जज्ञिरे सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगः उरु कन्धराः ॥४८॥

अङ्ग	प्रिय विदुर !	क्रूराः प्रसर्पतः	उन क्रोधियोंको सरकनेके कारण
उतः	उस (शरीर) से	सर्पाः	सर्प कहा गया ।
ये केशा	जो बाल	उरुभोगः कन्धरा	लम्बे देह तथा अनेक सिरवाले
अहीयन्तां ते	झड़कर गिरे वे		
अहयः जज्ञिरे	अहि होकर उत्पन्न हुए ।	नागा	नाग कहलाये ॥४८॥

स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ।
तदा मनून् ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥४९॥

स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यं इव आत्मभूः तदा मनून् ससर्ज अन्ते मनसा लोक भावनान् ॥४९॥

स आत्मभूः	उन ब्रह्माजीने	लोक भावनान्	प्रजाकी वृद्धि करनेवाले
आत्मानं	अपनेको	मनून्	मनुओंको
कृतकृत्यं इव	कृतकृत्य जैसा	मनसा ससर्ज	मनसे (संकल्पसे)
मन्यमानः	मानते हुए		उत्पन्न किया ॥४९॥
तदा अन्ते	तब अन्तमें		

तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् ।
तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥५०॥

तेभ्यः सः अत्य सृजत् स्वीयं पुरं पुरुषं आत्मवान् तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥५०॥

सः आत्मवान्	उन मनस्वी (ब्रह्माजीने)	तान् दृष्ट्वा	उन (मनुओं) को देखकर
तेभ्यः	उन (मनुओं) के लिए	ये पुरा सृष्टाः	जो पहिले उत्पन्न किये गये थे
स्वीयं	अपना	प्रजापतिं	(वे) ब्रह्माजीकी
पुरुषं पुरं	पुरुषाकार शरीर	प्रशशंसुः	प्रशंसा करने लगे ॥५०॥
अत्य सृजत्	त्याग दिया,		

अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् ।
प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन् साकमन्नमदामहे ॥५१॥

अहो एतत् जगत् स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतं प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन् साकं अन्नं अदाम हे ॥५१॥

जगत् स्रष्टः	विश्वकर्ता !	सुकृतं कृतं	उत्तम कार्य किया है,
अहो एतत्	अहो ! यह	यस्मिन्	जिन (मनुओं) में
ते बत	आपने निश्चय	क्रियाः	कर्मोंकी

प्रतिष्ठिताः	प्रतिष्ठा (स्थिति) है (जिन्हें कर्म करनेका अधिकार है)*	अन्नं	(हम भी अपना) आहार (हवि भाग)
साकं	(इनके) साथ	अदामहे	खा सकेंगे ॥५१॥

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ।
ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥५२॥

तपसा विद्यया युक्तः योगेन सुसमाधिना ऋषीन् ऋषिः हृषीकेशः ससर्ज अभिमताः प्रजाः ॥५२॥

हृषीकेशः	इन्द्रियोंके स्वामी	सुसमाधिना	अत्यन्त एकाग्रतासे
ऋषिः	आदि ऋषि (ब्रह्माजी) ने	युक्तः	युक्त होकर
		अभिमताः प्रजाः	अपनेको प्रिय लगने वाली सन्तान
तपसा	तपस्यासे,		
विद्यया	विद्यासे,	ऋषीन्	ऋषियोंको
योगेन	योगसे	ससर्ज	उत्पन्न किया ॥५२॥

तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ।
यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥५३॥

तेभ्यः च एक एकशः स्वस्य देहस्य अंशं अदात् अजः यत् तत् समाधि योग ऋधि तपः विद्या विरक्तिमत् ॥५३॥

तेभ्यः च	उन (ऋषियों) को भी	ऋधि विद्या	ऐश्वर्य विद्या
		विरक्तिमत्	वैराग्य सम्पन्न था (उसका)
अजः	ब्रह्माजीने		
स्वस्य तत्		एक एकशः	एक एक
देहस्य	अपने उस शरीरका	अंशं	अंश
यत् समाधि	जो एकाग्रता	अदात्	दिया ॥५३॥
योग तपः	योग, तपस्या		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विंशोऽध्यायः ।

---

* 'प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्' का तात्पर्य है कि जो कर्मयोनि है। जिसे कर्म करनेका स्वतन्त्र अधिकार है।

अथैकविंशोऽध्यायः

विदुर उवाच–

स्वायम्भुवस्य च मनोर्वंशः परमसम्मतः ।
कथ्यतां भगवन् यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥१॥

स्वायम्भुवस्य च मनोः वंशः परम सम्मतः कथ्यतां भगवन् यत्र मैथुनेन एधिरे प्रजाः ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	कथ्यतां	(उसका) वर्णन कीजिए
स्वायम्भुवस्य मनोः च	स्वायंभू मनुका भी	यत्र	जिसमें
वंशः	वंश	मैथुनेन	मैथुन धर्मसे
परम सम्मतः	परम आदरणीय है,	प्रजाः एधिरे	प्रजाकी वृद्धि हुई ॥१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य वै ।
यथाधर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥२॥

प्रियव्रत उत्तान पादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य वै यथा धर्मं जुगुपतुः सप्त द्वीपवतीं महीम् ॥२॥

स्वायम्भुवस्य वै	स्वायम्भू (मनु) के जो	सप्त द्वीपवतीं महीं	सात द्वीपोंवाली पृथ्वीको
सुतौ	पुत्र	यथा धर्मं	जैसे धर्मपूर्वक
प्रियव्रत उत्तान पादौ	प्रियव्रत और उत्तान पादने	जुगुपतुः	रक्षण किया (वह सुनाइये) ॥२॥

तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता ।
पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ ॥३॥

तस्य वै दुहिता ब्रह्मन् देवहूति इति विश्रुताः पत्नी प्रजापतेः उक्ता कर्दमस्य त्वया अनघ ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	त्वया	आपने (उन्हें)
अनघ	निष्पाप मैत्रेयजी !	प्रजापतेः कर्दमस्य	प्रजापति कर्दमकी
तस्य वै	उनकी ही तो	पत्नी उक्ता	पत्नी बतलाया
देवहूति इति	देवहूति इस नामसे		है ॥३॥
विश्रुताः दुहिता	प्रसिद्ध पुत्री थीं,		

तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ।
ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥४॥

तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योग लक्षणैः ससर्ज कतिधा वीर्यं तत् मे शुश्रूषवे वद ॥४॥

योग लक्षणैः	योगके लक्षणों (यम-नियमादि) से	कतिधा वीर्यं	कितनी सन्तानें
		ससर्ज	उत्पन्न कीं
युक्तायां	युक्त	तत् मे	वह मुझ
तस्यां	उस (देवहूति) में	शुश्रूषवे	सुननेकी इच्छा
स महायोगी	उन महायोगी ने		वालेको
		वद	बतलाइये ॥४॥
वै	निश्चित रूपसे		

रुचिर्यो भगवान् ब्रह्मन्दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ।
यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥५॥

रुचिः यः भगवान् ब्रह्मन् दक्षः वा ब्रह्मणः सुतः यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥५॥

ब्रह्मन् यः	ब्रह्मन् ! जो	मानवीं च	मनुकी पुत्रियोंको ही
भगवान् रुचिः	भगवान् रुचि थे	भार्यां लब्ध्वा	पत्नी रूपमें पाकर
वा	अथवा	यथा	जैसे
ब्रह्मणः सुतः दक्षः	ब्रह्माजीके पुत्र दक्ष थे,	भूतानि ससर्ज	प्राणियोंकी सृष्टिकी (वह बतलावें) ॥५॥

मैत्रेय उवाच–

प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः ।
सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

प्रजाः सृज इति भगवान् कर्दमः ब्रह्मणा उदितः सरस्वत्यां तपः तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

प्रजाः सृज	'संतान उत्पन्न करो'	सरस्वत्यां	सरस्वती किनारे
इति	इस प्रकार	दश सहस्राणां	
ब्रह्मणा उदितः	ब्रह्माजी द्वारा आदेश देनेपर	समाः	दस हजार वर्ष तक
		तपः तेपे	तपस्या की ॥६॥
भगवान् कर्दमः	भगवान कर्दमने		

ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः ।
सम्प्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥७॥

ततः समाधि युक्तेन क्रिया योगेन कर्दमः सम्प्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्न वरदाशुषम् ॥७॥

ततः	उस समय	वरदाशुषं	वरदायक
समाधि युक्तेन	एकाग्र चित्तसे	हरिं	श्रीहरिकी
क्रिया योगेन	पूजन विधिसे	भक्त्या	भक्तिपूर्वक
कर्दमः	कर्दमजी	सम्प्रपेदे	आराधना करने लगे ॥७॥
प्रपन्न	शरणागत		

तावत्प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कृते युगे ।
दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥८॥

तावत् प्रसन्नः भगवान् पुष्कर अक्षः कृते युगे दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधत् वपुः ॥८॥

क्षत्तः	विदुर !	प्रसन्नः	प्रसन्न होकर
तावत्	उतने समयमें	शाब्दं ब्रह्म	शब्द ब्रह्म (वेद)मय
कृत युगे	सतयुगमें	वपुः दधत्	शरीर धारण करके
भगवान्		तं दर्शयामास	उनको दर्शन दिया ॥८॥
पुष्कर अक्षः	भगवान कमल नयनने		

स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् ।
स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ॥९॥

स तं विरजं अर्काभं सित पद्म उत्पल स्रजं स्निग्ध नील अलक व्रात वक्त्र अब्जं विरज अम्बरम् ॥९॥

स	उन (कर्दमजी) ने	उत्पल स्रजं	कुमुदिनीकी माला पहिने
तं	उन (भगवान) को देखा	स्निग्ध	चिकनी
अर्काभं	सूर्यके समान तेजोमय,	नील अलक व्रात	काली अलकोंसे घिरे
सित पद्म	श्वेत कमल (और)	वक्त्र अब्जं	कमल मुखवाले,
		विरज अम्बरं	निर्मल वस्त्र वाले ॥९॥

किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥

किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्ख चक्र गदाधरं श्वेत उत्पल क्रीडनकं मनः स्पर्श स्मित ईक्षणम् ॥१०॥

किरीटिनं	मुकुटधारी,	क्रीडनकं	श्वेत कमलको खिलौनेकी भाँति लिए
कुण्डलिनं	कुण्डल पहिने,		
शङ्ख चक्र गदाधरं	शंख, चक्र,गदाधारी,	मनः स्पर्श	मनको छू लेनेवाली
श्वेत उत्पल		स्मित ईक्षणं	मन्द मुस्कान सहित देखते हुए ॥१०॥

विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः ।
दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥११॥

विन्यस्त चरण अम्भोजं अंश देशे गरुत्मतः दृष्ट्वा खे अवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभ कन्धरम् ॥११॥

वक्षः श्रियं कौस्तुभ कन्धरं	वक्षस्थलपर श्रीवत्स, गलेमें कौस्तुभमणि पहिने	चरण अम्भोजं विन्यस्तं	चरण-कमल रखे हुए
गरुत्मतः अंश देशे	गरुड़के कन्धोंपर	खे अवस्थितं दृष्ट्वा	आकाशमें स्थित (भगवानको देखकर ॥११॥

जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः ।
गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥१२॥

जात हर्षः अपतत् मूर्ध्ना क्षितौ लब्ध मनोरथः गीर्भिः तु अभ्यगृणात् प्रीति स्व भावात्मा कृत अञ्जलिः ॥१२॥

जात हर्षः	बड़ा हर्ष हुआ,	**मूर्ध्ना**	सिरसे (पृथ्वीपर सिर टेककर)
लब्ध मनोरथः	सब मनोरथ प्राप्त हो गया ।	**कृत अञ्जलिः**	(फिर)हाथ जोड़कर
प्रीति स्व	प्रीतिसे पूर्ण	**गीर्भिः तु**	शुद्ध वाणीसे
भावात्मा	भावमग्न चित्त	**अभ्यगृणात्**	स्तुति करने लगे ॥१२॥
क्षितौ अपतत्	पृथ्वीपर (साष्टाङ्ग) गिरकर		

*ऋर्दमोवाच-**

जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः
सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ।
यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भि-
राशासते योगिनो रूढयोगाः ॥१३॥

जुष्टं बत अद्य अखिल सत्त्व राशेः सांसिध्यं अक्ष्णोः तव दर्शनात् नः यत् दर्शनं जन्मभिः ईड्य सद्भिः आशासते योगिनः रूढ योगाः ॥१३॥

अखिल	सम्पूर्ण	**यत् दर्शनं**	जिनका दर्शन
सत्त्व राशेः	सचराचर जगत् रूप	**सद्भिः**	सत्पुरुष
ईड्य	स्तवनीय (प्रभु !)	**योगिनः**	योगीजन
बत अद्य	सौभाग्यसे आज	**जन्मभिः**	अनेक जन्मोंमें
तव दर्शनात्	आपके दर्शनसे	**रूढ योगाः**	योगारूढ होकर
नः अक्ष्णोः	मेरे नेत्र	**आशासते**	करना चाहते हैं ॥१३॥
सांसिध्यं	सफल हुए ।		

ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्
पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ।

---

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषिरुवाच' पाठ है ।

उपासते कामलवाय तेषां
रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥१४॥

ये मायया ते हृत मेधसः त्वत् पाद अरविन्दं भवसिन्धु पोतं उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान् निरये अपि ये स्युः ॥१४॥

ये	जिनकी	**निरये अपि**	नरकमें भी
ते मायया	आपकी मायासे	**ये स्युः**	जो हैं (उन)
मेधसः हृत	बुद्धि मारी गयी है (वे)	**कामलवाय**	कामना कणिकाओंके लिए
भवसिन्धु पोतं	संसार सागरमें जहाज रूप	**उपासते**	उपासना करते हैं,
त्वत् पाद		**तेषां**	उनकी (कामनायें)
अरविन्दं	आपके चरण-कमलोंकों	**रासीश**	(आप) पूर्ण करते हैं ॥१४॥

तथा स चाहं परिवोढुकामः
समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।
उपेयिवान्मूलमशेषमूलं
दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥१५॥

तथा स च अहं परिवोढु कामः समान शीलां गृहमेध धेनुं उपेयिवान् मूलं अशेष मूलं दुराशयः कामदुघ अङ्घ्रि पस्य ॥१५॥

तथा स च अहं	वैसा ही यह मैं भी	**मूलं उपेयिवान्**	समीप आया हूँ
दुराशयः	तुच्छ अभिप्राय वाला हूँ,	**समान शीलां**	समान स्वभाववाली
कामदुघ	कल्प वृक्ष समान	**गृहमेध धेनुं**	गार्हस्थ्य सुख देने वालीसे
अङ्घ्रि पस्य	चरणवाले	**परिवोढु कामः**	विवाह करनेकी इच्छासे ॥१५॥
अशेष मूलं	सबके मूलकारण		

प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या
लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ।

अहं च लोकानुगतो वहामि
बलिं च शुक्लानिमिषाय तुभ्यम् ॥१६॥

प्रजापतेः ते वचसा अधीश तन्त्या लोकः किल अयं कामहतः अनुबद्धः अहं च लोक अनुगतः वहामि बलिं च शुक्ल अनिमिषाय तुभ्यम् ॥१६॥

अधीश	सर्वेश्वर !	**अहं च**	मैं भी
प्रजापतेः	प्रजाके स्वामी !	**लोक अनुगतः**	लोकानुगामी होकर
ते वचसा	आपकी (वेदरूपी) वाणी	**शुक्ल**	धर्ममूर्ति
		अनिमिषाय	कालस्वरूप
तन्त्या किल	रूपी रस्सीसे ही	**तुभ्यं**	आपको
अनुबद्धः	बँधा हुआ	**बलिं च**	(यह स्तुति रूपी) उपहार ही
अयं लोकः	यह लोक		
कामहतः	कामनाओंसे मारा गया है।	**वहामि**	दे रहा हूँ ॥१६॥

लोकांश्च लोकानुगतान् पशूंश्च
हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधु-
पीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥१७॥

लोकान् च लोक अनुगतान् पशून् च हित्वा श्रिताः ते चरण आतपत्रं परस्परं त्वत् गुणवाद सीधु पीयूष निर्यापित देह धर्माः ॥१७॥

लोकान् च	लोगोंको और	**परस्परं**	परस्पर
लोक अनुगतान्	लोगोंके अनुगत	**त्वत् गुणवाद**	आपके गुणानुवाद
पशून् च	(मुझ जैसे) पशुओंको भी	**सीधु पीयूष**	मादक सुधासे
		देह धर्माः	शरीरके धर्म (भूख प्यासादि)
हित्वा ते	छोड़कर आपके		
चरण आतपत्रं	चरण रूपी छत्रकी	**निर्यापितः**	(को भी) शान्त करते हैं ॥१७॥
श्रिताः	छायाका आश्रय लेनेवाले		

न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां
त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ।
षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि
करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥१८॥

न ते अजः अक्षभ्रमिः आयुः एषां त्रयोदश अरं त्रिशत षष्टि पर्व षट्नेमिः अनन्तः छदि यत् त्रिणाभिः कराल स्रोतः जगत् आछिद्य धावत् ॥१८॥

यत् अक्षभ्रमिः	जो ब्रह्मरूप धुरीपर घूमनेवाला	त्रिणाभिः	तीन (चातुर्मास्य रूप) नाभिवाला,
त्रयोदश अरं	(अधिक मास सहित) तेरह मास रूप अरोंवाला,	कराल स्रोतः	भयङ्कर गतिवाला (काल चक्र)
त्रिषष्टि पर्व	तीनसौ साठ (दिन रूप)जोड़वाला	जगत् आछिद्य	जगतको काटता
षट्नेमिः	६ (ऋतु रूपी) हाल युक्त,	धावत्	दौड़ रहा है,
अनन्तः छदिः	अनन्त (क्षण, पल रूप) धारोंवाला,	अजः	अजन्मा प्रभु !
		ते एषां आयुः न	तुम्हारे (हैं) उनकी आयुको नहीं (काटता) ॥१८॥

एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया-
द्वितीययाऽऽत्मन्नधियोगमायया ।
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे
यथोर्णनाभिर्भगवन् स्वशक्तिभिः ॥१९॥

एकः स्वयं सन् जगतः सिसृक्षया द्वितीयया आत्मनि अधियोग-मायया सृजसि अदः पासि पुनः ग्रसिष्यसे यथा उर्णनाभिः भगवन् स्वशक्तिभिः ॥१९॥

भगवन्	भगवन् !	स्वयं	स्वयं
एकः सन्	अकेले होते हुए	जगतः	संसारकी

सिसृक्षया	सृष्टि करनेकी इच्छासे
आत्मनि	अपनेमें ही
द्वितीयया	अपनेसे पृथक
अधियोगमाया	योगमायाका आश्रय लेकर
अदः	उससे उत्पन्न
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियों द्वारा
सृजसि	सृष्टि करते हैं,
पासि	पालन करते हैं
पुनः ग्रसिष्यसे	फिर इसे ग्रस्त कर लेंगे
यथा उर्णनाभिः	जैसे मकड़ी ॥१९॥

नैतद्वताधीश पदं तवेप्सितं
यन्माययानस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ।
अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया
लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षितः ॥२०॥

न एतत् बत अधीश पदं तव ईप्सितं यत् मायाया नः तनुषे भूत सूक्ष्मं अनुग्रहाय अस्तु अपि यर्हि मायया लसत् तुलस्या तनु वा विलक्षितः ॥२०॥

अधीश	सर्वेश्वर !
बत	निश्चय
एतत् पदं	यह रूप भी
तव ईप्सितं	आपका (अपना) अभीष्ट
न	नहीं है,
यर्हि	जो कि
तुलस्या लसत्	तुलसी मण्डित
मायया	मायासे
तनु वा	साकार रूपमें
विलक्षितः	दर्शन दे रहा है,
यत् मायाया	जिससे माया से
नः	हमको
भूत सूक्ष्मं	(गन्धादि) तन्मात्राओंको
तनुषे	प्रदान कर रहे हैं ॥२०॥

तं त्वानुभूत्योपरतक्रियार्थं
स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम् ।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपाद-
सरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥२१॥

तं तु अनुभूति उपरत क्रिया अर्थं स्वमायया वर्तित लोकतन्त्रं नमामि अभीक्ष्णं नमनीय पादसरोजं अल्पीयसि कामवर्षम् ॥२१॥

अनुभूति	अपने अनुभवमें	**अल्पीयसि**	छुद्र
क्रिया अर्थं	कर्मके प्रयोजनसे	**कामवर्षं**	कामनाओंको पूर्ण करनेवाले
उपरत	उपरत (निष्क्रिय परन्तु)	**नमनीय**	वन्दनीय
स्वमायया	अपनी मायासे	**पाद सरोजं**	चरण कमलोंमें
लोकतन्त्रं	लोक व्यवहार	**अभीक्ष्णं**	निरन्तर
वर्तितं	चलानेवाले	**नमामि**	प्रणाम करता हूँ ॥२१॥
तं तु	उस आपके		

*मैत्रेय उवाच**–

इत्यव्यलीकं प्रणतोऽब्जनाभ-
स्तमाबभाषे वचसामृतेन ।
सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः
प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥२२॥

इति अव्यलीकं प्रणतः अब्जनाभः तं आबभाषे वचसा अमृतेन सुपर्णपक्ष उपरि रोचमानः प्रेमस्मितः उद्वीक्षण विभ्रमत् भ्रूः ॥२२॥

इति	इस प्रकार	**प्रेमस्मित**	प्रेमपूर्ण मुस्कराहट सहित
अव्यलीकं	निष्कपट भावसे	**उद्वीक्षण**	देखनेसे
प्रणुतः	प्रणाम करनेपर	**विभ्रमत् भ्रूः**	चञ्चल भौंहवाले
सुपर्णपक्षः	गरुड़के पंखों (पीठ)	**अब्जनाभः**	कमलनाभ भगवान
उपरि	के ऊपर	**अमृतेन वचसा**	अमृतमयी वाणीसे
रोचमानः	सुशोभित	**तं आबभाषे**	उनसे बोले ॥२२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषिरुवाच' है; किन्तु 'ऋषिरुवाच' तो उनके अनुसार श्लोक १३ से चल ही रहा था।

श्रीभगवानुवाच-

विदित्वा तव चैत्यं मे पुरैव समयोजि तत् ।
यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥२३॥

विदित्वा तव चैत्यं मे पुरा एव समयोजि तत् यत् अर्थं आत्म नियमैः त्वयि एव अहं समर्चितः ॥२३॥

यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे ही	तव चैत्यं	तुम्हारे चित्तकी बात
आत्म नियमैः	अपने नियमों द्वारा	विदित्वा	जानकर
त्वयि अहं	तुम्हारे द्वारा मैं	पुरा एव	पहिले ही
समर्चितः	भली प्रकार पूजित हुआ,	समयोजि	उसकी योजना बना दी है ॥२३॥
तत्	वह		

न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् ।
भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥२४॥

न वै जातु मृषा एव स्यात् प्रजाध्यक्ष मत् अर्हणं भवत् विधेषु अतितरां मयि संगृभित आत्मनाम् ॥२४॥

प्रजाध्यक्ष	प्रजापति !	मयि	मुझमें
मत् अर्हणं	मेरा पूजन	संगृभित	निष्ठापूर्वक लगाये
जातु	कभी भी	आत्मनां	चित्तवालोंका तो
मृषा एव	झूठा (व्यर्थ) तो	अतितरां	अधिकतम (फल-
न वै स्यात्	हो ही नहीं सकता,		दायी होता है)॥२४॥
भवत् विधेषु	आप जैसे		

प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः ।
ब्रह्मावर्तं योऽधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

प्रजापति सुतः सम्राट् मनुः विख्यात मङ्गलः ब्रह्मावर्तं यः अधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

विख्यात मङ्गलः	विख्यात यशस्वी
प्रजापति सुतः	ब्रह्माजीके पुत्र
सम्राट् मनुः यः	सम्राट् मनु जो
ब्रह्मावर्तं	
अधिवसन्	ब्रह्मावर्तमें रहते
सप्तार्णवां महीं	सात समुद्रोंवाली पृथ्वीका
शास्ति	शासन करते हैं ॥२५॥

स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया ।
आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥२६॥

स च इह विप्र राजर्षिः महिष्या शतरूपया आयास्यति दिदृक्षुः त्वां परश्वः धर्म कोविदः ॥२६॥

विप्र	ब्रह्मन् !
स च	वे तो
धर्म कोविदः	धर्मज्ञ
राजर्षिः	राजर्षि
महिष्या	(अपनी) महारानी
शतरूपया	शतरूपाके साथ
परश्वः	परसों
त्वां दिदृक्षुः	तुम्हें देखने
इह आयास्यति	यहाँ आवेंगे ॥२६॥

आत्मजामसितापाङ्गीं वयः शीलगुणान्विताम् ।
मृगयन्तीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥२७॥

आत्मजां असित अपाङ्गीं वयः शील गुण अन्वितां मृगयन्तीं पतिं दास्यति अनुरूपाय ते प्रभो ॥२७॥

असित अपाङ्गीं	श्याम लोचना
वयः शील गुण	आयु, शील, गुण
अन्वितां	युक्ता
पतिं मृगयन्तीं	पति ढूंढ़ती
आत्मजां	अपनी पुत्रीको
ते अनुरूपाय	तुम अनुरूप
प्रभो	स्वामीको
दास्यति	(वे) देंगे ॥२७॥

समाहितं ते हृदयं यत्रेमान् परिवत्सरान् ।
सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥२८॥

समाहितं ते हृदयं यत्र इमान् परिवत्सरान् सा त्वं ब्रह्मन् नृप वधूः कामं आशु भजिष्यति ॥२८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	सा	वह (वैसी ही)
इमान्	इन	नृप वधूः	राजकन्या
परिवत्सरान्	वर्षोंमें	आशु त्वं	शीघ्र तुम्हारी
ते हृदयं	तुम्हारा हृदय	कामं	पर्याप्त
यत्र समाहितं	जैसी (पत्नी) में लगा रहा है	भजिष्यति	सेवा करेगी ॥२८॥

या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ।
वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यञ्जसाऽऽत्मनः ॥२९॥

या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति वीर्ये त्वदीये ऋषयः आधास्यन्ति अञ्जसा आत्मनः ॥२९॥

या त	जो तुम्हारे	वीर्ये	वीर्यज (सन्तानों) में
आत्मभृतं	अपनेमें स्थापित	ऋषयः	ऋषि लोग
वीर्यं	वीर्यको	अञ्जसा	सरलतासे
नवधा	नव रूपोंमें	आत्मनः	(सन्तान रूपसे) अपनेको
प्रसविष्यति	उत्पन्न करेगी ।		
त्वदीये	तुम्हारी	आधास्यन्ति	उत्पन्न करेंगे ॥२९॥

त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ।
मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

त्वं च सम्यक् अनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः मयि तीर्थीकृत अशेष क्रियार्थः मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

त्वं च	तुम भी	अशेष क्रियार्थः	सब कर्मोंका फल
मे निदेशं	मेरे आदेशका	मयि तीर्थीकृतः	मुझे समर्पित करके
सम्यक् अनुष्ठाय	अच्छी तरह पालन करके	मां प्रपत्स्यसे	मुझे प्राप्त होओगे ॥३०॥
उशत्तमः	शुद्ध चित्त हो जाओगे,		

कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ।
मय्यात्मानं सह जगद् द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥३१॥

कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा च अभयं आत्मवान् मयि आत्मानं सह जगत् द्रक्ष्यसि आत्मनि च अपि माम् । ३१॥

जीवेषु च	जीवोंपर तो	आत्मानं सह	अपने साथ
दयां कृत्वा	दया करके	जगत् मयि	जगतको मुझमें
च अभयं दत्त्वा	और (उनको) अभय देकर	च मां	और मुझे
		आत्मनि	अपनेमें
आत्मवान्	आत्मज्ञानी होकर	द्रक्ष्यसि	देखोगे ॥३१॥

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ।
तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥३२॥

सह अहं स्व अंश कलया त्वत् वीर्येण महामुने तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्व संहिताम् ॥३२॥

महामुने	महामुनि !	देवहूत्यां	देवहूतिसे (उत्पन्न होकर)
सह अहं	उनके साथ मैं भी	तत्त्व संहिताम्	तत्त्व (गणना-सांख्य) शास्त्रकी
स्व अंश कलया	अपनी अंश कलासे		
त्वत् वीर्येण	तुम्हारे वीर्यसे		
तव क्षेत्रे	तुम्हारी पत्नी	प्रणेष्ये	रचना करूँगा ॥३२॥

मैत्रेय उवाच–

एवं तमनुभाष्याथ भगवान् प्रत्यगक्षजः ।
जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥

एवं तं अनुभाष्य अथ भगवान् प्रत्यक् अक्षजः जगाम विन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥

अथ	तदनन्तर	भगवान्	भगवान्
एवं	इस प्रकार	सरस्वत्याः	सरस्वती नदीसे
तं अनुभाष्य	उनसे कहकर	परिश्रितात्	घिरे हुए
प्रत्यक् अक्षजः	इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेसे दर्शन देनेवाले	विन्दुसरसः	विन्दु सरोवरसे
		जगाम	चले गये ॥३३॥

निरीक्षतस्तस्य ययावशेष-
सिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ।
आकर्णयन् पत्ररथेन्द्रपक्षै-
रुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ॥३४॥

निरीक्षतः तस्य यया अशेष सिद्धेश्वर अभिष्टुत सिद्ध मार्गः आकर्णयन् पत्र रथेन्द्र पक्षैः उच्चारितं स्तोमं उदीर्ण साम ॥३४॥

पत्र रथेन्द्र	पक्षिराज (गरुड़) के	निरीक्षतः	देखते-देखते
पक्षैः	पंखोंसे	अशेष सिद्धेश्वर	समस्त सिद्धेश्वरों द्वारा
साम स्तोमं	सामवेदकी आधार-भूत ऋचाओंकी	अभिष्टुत	प्रशंसित
उदीर्णं	उठती (ध्वनि)	सिद्ध मार्ग	सिद्ध-मार्ग (वैकुण्ठ)
आकर्णयन्	सुनते हुए,	यया	चले गये ॥३४॥
तस्य	उन (कर्दमजी) के		

अथ सम्प्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः ।
आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥

अथ सम्प्रस्थिते शुक्ले कर्दमः भगवान् ऋषिः आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥

अथ	तब	तं कालं	उस (भगवानके बतलाये) समयकी
शुक्ले	भगवानके		
सम्प्रस्थिते	चले जानेपर	प्रतिपालयन्	प्रतीक्षा करते
भगवान् कर्दमः		बिन्दुसरसि	विन्दु सरोवरपर ही
ऋषिः	भगवान कर्दम ऋषि	आस्ते स्म	रुके रहे ॥३५॥

मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् ।
आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥३६॥

मनुः स्यन्दनं आस्थाय शातकौम्भ परिच्छदं आरोप्य स्वं दुहितरं सभार्यः पर्यटन् महीम् ॥३६॥

शातकौम्भ	सुवर्ण	आरोप्य	बैठाकर
परिच्छदं	जटित	मनुः	मनु
स्यन्दनं	रथपर	आस्थाय	(स्वयं भी) बैठकर
सभार्यः	पत्नी (शतरूपा) के साथ	महीं पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमते हुए ॥३६॥
स्वयं दुहितरं	अपनी पुत्रीको		

तस्मिन् सुधन्वन्नहनि भगवान् यत्समादिशत् ।
उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥

तस्मिन् सुधन्वन् अहनि भगवान् यत् समादिशत् उपायात् आश्रम पदं मुनेः शान्त व्रतस्य तत् ॥३७॥

सुधन्वन्	वीरवर विदुर !	मुनेः	मुनि (कर्दम) के
यत् भगवान्	जो भगवानने	तत् आश्रम पदं	उस आश्रम स्थानपर
समादिशत्	बतलाया था		
तस्मिन् अहनि	उसी दिन	उपायात्	पहुँचे ॥३७॥
शान्त व्रतस्य	शान्ति परायण		

यस्मिन् भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः ।
कृपया सम्परीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥३८॥

यस्मिन् भगवतः नेत्रात् न्यपतन् अश्रु बिन्दवः कृपया सम्परीतस्य प्रपन्ने अर्पितया भृशम् ॥३८॥

प्रपन्ने	शरणागतपर	नेत्रात्	नेत्रोंसे
भृशं अर्पितया	अत्यधिक की गयी	यस्मिन्	जिस (सरोवर) में
कृपया	कृपासे	अश्रु बिन्दवः	आँसूकी बूँदें
सम्परीतस्य	वशीभूत हुए	न्यपतन्	गिरीं ॥३८॥
भगवतः	भगवानके		

तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ।
पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥३९॥

तत् वै बिन्दुसरः नाम सरस्वत्या परिप्लुतं पुण्यं शिव अमृत जलं महर्षिगण सेवितम् ॥३९॥

सरस्वत्याः	सरस्वतीके
परिप्लुतं	(जलसे) भरा हुआ
तत् वै	वह निश्चय
बिन्दुसरसः	बिन्दु सरोवर नामक
पुण्यं	पवित्र (तीर्थ) है
शिव अमृत जलं	अमृतके समान कल्याणकारी जल वाला (वह)
महर्षिगण	महर्षि समूहसे
सेवितं	सेवित है। (वहाँ महर्षि रहते हैं) ॥३९॥

पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ।
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ॥४०॥

पुण्य द्रुम लता जालैः कूजत् पुण्य मृग द्विजैः सर्व ऋतु फल पुष्प आढ्यं वनराजि श्रिया अन्वितम् ॥४०॥

पुण्य	पवित्र
द्रुम लता जालैः	वृक्ष-लता समूहसे,
कूजत्	बोलते हुए
पुण्य	पवित्र
मृग द्विजैः	पशु-पक्षियोंसे,
सर्व ऋतु	सब ऋतुओंमें
फल-पुष्प आढ्यं	फल-पुष्प भरे रहनेसे
वनराजि	(वहाँका) वन समूह
श्रिया अन्वितं	(बहुत) सुशोभित है ॥४०॥

मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् ।
मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥४१॥

मत्त द्विजगणैः घुष्टं मत्त भ्रमर विभ्रमं मत्त बर्हि नट आटोपं आह्वयन् मत्त कोकिलम् ॥४१॥

मत्त	मतवाले हुए
द्विजगणैः	पक्षियोंके स्वरसे)
घुष्टं	शब्दायमान,
मत्त भ्रमर	मतवाले भौंरोंकी
विभ्रमं	(गुंजारसे) गुंजित,
मत्त बर्हि नट	मतवाले नाचते मयूरोंके
आटोपं	फैले पंखोंसे छाया,
मत्त कोकिल	मतवाली कोयल
आह्वयन्	मानो बुला रही थी ॥४१॥

कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलासनैः ।
कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलङ्कृतम् ॥४२॥

कदम्ब चम्पक अशोक करञ्ज बकुल (मौलिश्री) असनैः कुन्द मन्दार (आक) कुटज चूतपोतैः (नये आमके वृक्षोंसे) अलंकृतम् ॥४२॥

कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः ।
सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गु कूजितम् ॥४३॥

कारण्डवैः प्लवैः हंसैः कुररैः जलकुक्कुटैः सारसैः चक्रवाकैः च चकोरैः वल्गु कूजितम् ॥४३॥

कारण्डवैः	जलकाकों,	सारसैः	सारसों,
प्लवैः	बत्तकों,	चक्रवाकैः च	चकवों तथा
हंसैः	हंसों,	चकोरैः	चकोरोंके
कुररैः	पनडुब्बीपक्षी,	वल्गु कूजितं	मधुर कलरवसे भरा
जलकुक्कुटैः	जलमुर्गों,		था ॥४३॥

तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः ।
गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥

तथा एव हरिणैः क्रोडैः श्वअविद् गवय कुञ्जरैः गोपुच्छैः हरिभिः मर्कैः नकुलैः नाभिभिः वृतम् ॥४४॥

तथा एव	इसी प्रकार	गोपुच्छैः	गोलांगूल बन्दरों,
हरिणैः	हरिनों,	हरिभिः	सिंहों,
क्रोडैः	सूअरों,	मर्कैः	बन्दरों,
श्वअविद्	स्याही (सेही)	नकुलैः	नेवलों,
गवय	नीलगाय,	नाभिभिः	कस्तूरी मृगोंसे
कुञ्जरैः	हाथियों,	वृतम्	घिरा था ॥४४॥

प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः ।
ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन् हुतहुताशनम् ॥४५॥

प्रविश्य तत् तीर्थवरं आदिराजः सह आत्मजैः ददर्श मुनिं आसीनं तस्मिन् हुत हुताशनम् ॥४५॥

तत् तीर्थवरं	उस श्रेष्ठ तीर्थमें	प्रविश्य	प्रवेश करके
सह आत्मजैः	पुत्रोंके साथ	आदिराजः	आदिराज मनुने

तस्मिन्	उस (आश्रम) में	मुनिं	मुनि (कर्दम) को
हुत हुताशनं	अग्निमें हवन करके	ददर्श	देखा ॥४५॥
आसीनं	बैठे		

विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् ।
नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गावलोकनात् ।
तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥४६॥

विद्योतमानं वपुषा तपसि उग्र युजा चिरं न अति क्षामं भगवतः स्निग्ध अपाङ्ग अवलोकनात् तत् व्याहृत अमृतकला पीयूष श्रवणेन च ॥४६॥

चिरं	बहुत दिनों तक	अमृतकला	
उग्र तपसि युजा	कठोर तप करनेपर भी	पीयूष	अमृत भरी सुधाधारा
भगवतः	भगवानकी	श्रवणेन च	सुननेसे भी
स्निग्ध	स्नेह भरी	अति क्षामं	बहुत दुबले
अपाङ्ग		वपुषा न	शरीरवाले नहीं थे,
अवलोकनात्	चितवन देखनेसे	विद्योतमानं	तेजो दीप्त थे ॥४६॥
तत् व्याहृत	उन (भगवान) के वचनरूपी		

प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ।
उपसंसृत्य मलिनं यथार्हणमसंस्कृतम् ॥४७॥

प्राशुं पद्म पलाश अक्षं जटिलं चीरवाससं उपसंसृत्य मलिनं यथा अर्हणं असंस्कृतम् ॥४७॥

प्राशुं	लम्बा शरीर,	यथा	जैसे
पद्म पलाश अक्षं	कमलदल लोचन,	असंस्कृतं	बिना स्वच्छ किए
जटिलं	जटाधारी	अर्हणं	देवमूर्ति
चीरवाससं	चीरवस्त्र पहिने,	मलिनं	मैली हो (ऐसे लगते थे) ॥४७॥
उपसंसृत्य	समीप जानेपर		

अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः ।
सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥४८॥

अथ उटजं उपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः सपर्यया पर्य गृह्णात् प्रतिनन्द्य अनुरूपया ॥४८॥

अथ	तब	प्रतिनन्द्य	आशीर्वादसे प्रसन्न करके
उटजं उपायातं	कुटियाके समीप आकर	अनुरूपया	(आतिथ्यके) अनुरूप
पुरः प्रणतं	सामने प्रणाम करते	सपर्यया	सत्कारसे
नृदेवं	राजाको	पर्य गृह्णात्	सत्कृत किया ॥४८॥

गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ।
स्मरन् भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥

गृहीतं अर्हणं आसीनं संयतं प्रीणयन् मुनिः स्मरन् भगवत् आदेशं इति आह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥

अर्हणं गृहीतं	सत्कार स्वीकार करके	स्मरन्	स्मरण करते हुए
संयतं	स्वस्थचित्त (मनुके)	मुनिः	मुनि (कर्दमजी)
आसीनं	बैठ जानेपर	श्लक्ष्णया गिरा	मधुरवाणीसे
भगवत् आदेशं	भगवानके आदेशको	इति आह	इस प्रकार बोले ॥४९॥

*कर्दम उवाच**-

नूनं चङ्क्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते ।
वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥५०॥

नूनं चङ्क्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते वधाय च असतां यः त्वं हरेः शक्तिः हि पालिनी ॥५०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

देव	देव !	असतां वधाय	दुष्टोंको मारनेके लिए है;
नूनं	निश्चय	हि	क्योंकि (आप)
ते चङ्क्रमणं	आपका पर्यटन	हरेः	भगवानकी
सतां संरक्षणाय	सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिए	पालिनी	पालन करनेवाली
च	तथा	शक्तिः	शक्ति हैं ॥५०॥

योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् ।
रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

यः अर्क इन्दु अग्नि इन्द्र वायूनां यम धर्म प्रचेतसां रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

यः अर्क इन्दु	जो सूर्य, चन्द्र,	आधत्से	धारण करते हैं,
अग्नि इन्द्र	अग्नि, इन्द्र,	तस्मै	उस
यम धर्म	यमराज, धर्म,	शुक्लाय	भगवत्स्वरूप
प्रचेतसां	वरुणके	ते नमः	आपको
रूपाणि	रूप (और)		नमस्कार ॥५१॥
स्थान	दायित्व		

न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् ।
विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥५२॥

न यदा रथं आस्थाय जैत्रं मणिगण अर्पितं विस्फूर्जत् चण्ड कोदण्डः रथेन त्रासयन् अघान् ॥५२॥

मणिगण अर्पितं	मणि जटित	रथेन	रथसे ही
जैत्रं	जयदायक	अघान् त्रासयन्	पापियोंको डराते
रथं आस्थाय	रथपर बैठकर,	यदा न	जब नहीं (घूमेंगे) ॥५२॥
चण्ड कोदण्ड	भयानक धनुषकी		
विस्फूर्जत्	टंकार करते		

स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः ।
विकर्षन् बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥५३॥

स्वसैन्य चरण क्षुण्णं वेपयन् मण्डलं भुवः विकर्षन् बृहतीं सेनां पर्यटन् अंशुमान् इव ॥५३॥

स्वसैन्य	अपनी सेनाके	**बृहतीं सेनां**	बड़ी भारी सेनाको
चरण क्षुण्णं	चरणोंसे रौंदे	**विकर्षन्**	खींचते (साथ लिए)
भुवः मण्डलं	भू-मण्डलको	**अंशुमान इव**	सूर्यके समान
वेपयन्	कम्पित करते,	**पर्यटन्**	(नहीं) घूमेंगे ॥५३॥

तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः ।
भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन् बत दस्युभिः ॥५४॥

तत् एव सेतवः सर्वे वर्ण आश्रम निबन्धनाः भगवत् रचिता राजन् भिद्येरन् बत दस्युभिः ॥५४॥

राजन्	राजन् !	**तत् एव**	उसी समय
भगवत् रचिता	भगवानकी बनायी	**बत**	निश्चय
वर्ण आश्रम	वर्ण और आश्रम (के रूपमें)	**दस्युभिः**	डाकुओं द्वारा
निबन्धनाः	सुनिश्चित	**भिद्येरन्**	तोड़ दी जायंगी ॥५४॥
सर्वे सेतवः	सब मर्यादाएँ		

अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः ।
शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनङ्क्षयति ॥५५॥

अधर्मः च समेधेत लोलुपैः व्यङ्कुशैः नृभिः शयाने त्वयि लोकः अयं दस्यु ग्रस्तः विनङ्क्ष्यति ॥५५॥

अधर्मः च	अधर्म भी	**त्वयि शयाने**	आपके सो जाने (निंश्चिन्त हो जाने) पर
लोलुपैः	लालची	**अयंलोकः**	यह संसार
व्यङ्कुशैः	निरंकुश	**दस्यु ग्रस्तः**	डाकुओंसे आक्रान्त होकर
नृभिः	मनुष्यों द्वारा	**विनङ्क्ष्यति**	नष्ट होजायगा ॥५५॥
समेधेत	बहुत बढ़ जायगा ।		

अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ।
तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥५६॥

अथ अपि पृच्छे त्वां वीर यत् अर्थं त्वं इह आगतः तत् वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥५६॥

वीर	वीर !	**तत् वयं**	उसको हम
अथ अपि	फिर भी	**निर्व्यलीकेन**	निष्कपट भावसे
त्वां पृच्छे	आपसे पूछते हैं,	**हृदा**	हृदयसे
यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे	**प्रतिपद्यामहे**	स्वीकार
त्वं इह आगतः	आप यहाँ आये हैं ।		करेंगे ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ।
सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥१॥

एवं आविष्कृत अशेष गुण कर्म उदयः मुनिं सव्रीड इव तं सम्राट् उपारतं उवाच ह ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**सम्राट्**	महाराज मनु
अशेष	सम्पूर्ण	**सव्रीड इव**	लज्जित होतेसे
गुण कर्म उदयः	गुणों तथा कर्मोंकी श्रेष्ठताको	**मुनिं उपारतं**	मुनिके चुप हो जानेपर
आविष्कृतं	प्रकट कर देनेपर	**तं ह उवाच**	उनसे ही बोले ॥१॥

मनुरुवाच–

ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया ।
छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥२॥

ब्रह्मा असृजत् स्व मुखतः युष्मान् आत्म परीप्सया छन्दः मयः तपः विद्या योग युक्तान् अलम्पटान् ॥२॥

ब्रह्मा	ब्रह्माजीने	**तपः विद्याः**	तपस्य, विद्या,
स्व मुखतः	अपने मुखसे	**योग युक्तान्**	योगसे युक्त
आत्म परीप्सया	अपने (वेदमय) शरीरकी रक्षाके लिए	**अलम्पटान्**	सदाचारी
		युष्मान्	आप (ब्राह्मणों) को
छन्दः मयः	वेदमय,	**असृजत्**	उत्पन्न किया ॥२॥

तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात् ।
हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥३॥

तत् त्राणाय असृजत् अस्मान् दोः सहस्रात् सहस्रपात् हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रं अङ्गं प्रचक्षते ॥३॥

तत् त्राणाय	उनकी रक्षाके लिए	हि ब्रह्म	क्योंकि ब्राह्मण (और वेद)
सहस्रपात्	सहस्रों चरणोंवाले (विराट् पुरुषने)	तस्य हृदयं	उनके हृदय हैं,
अस्मान्	हम लोगोंको	क्षत्रं अंगं	क्षत्रिय शरीर
दोःसहस्रात्	हजारों हाथोंसे	प्रचक्षते	कहा जाता है ॥३॥
असृजत्	उत्पन्न किया,		

अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ।
रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥४॥

अतः हि अन्योन्यं आत्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः रक्षति स्म अव्ययः देवः स यः सत् असदात्मकः ॥४॥

अतः हि	अतः निश्चित रूपसे	सत् असदात्मकः	कारण कार्य स्वरूप
ब्रह्म क्षत्रं च	ब्राह्मण और क्षत्रिय	देवः	परमात्मा हैं
अन्योन्यं		स अव्ययः	वे अविनाशी
आत्मानं	परस्पर एक दूसरेकी	रक्षति स्म	(हम दोनोंकी) रक्षा
रक्षतः यः	रक्षा करते हैं तब जो		करते हैं ॥४॥

तव सन्दर्शनादेवच्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ।
यत्स्वयं भगवान् प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥५॥

तव सन्दर्शनात् एव छिन्ना मे सर्व संशयाः यत् स्वयं भगवान् प्रीत्या धर्मं आह रिरक्षिषोः ॥५॥

तव	आपके	प्रीत्या स्वयं	प्रेमके कारण स्वयं (आपने)
सन्दर्शनात् एव	दर्शन मात्रसे ही	रिरक्षिषोः	(प्रजाकी) रक्षाकी इच्छा रखनेवालेके
मे सर्व संशयाः	मेरे सब संशय	धर्मं आह	धर्म बतलाये हैं ॥५॥
छिन्ना	कट गये,		
यत् भगवान्	क्योंकि भगवन् !		

दिष्ट्या मे भगवान् दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ।
दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥

दिष्ट्या मे भगवान् दृष्टः दुर्दर्शः यः अकृत आत्मनां दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥

अकृत आत्मनां	असंयत चित्तवालोंके लिए	**दृष्टः**	दर्शन किया ।
		दिष्ट्या	सौभाग्यसे
यः दुर्दर्शः	जो कठिनाईसे दर्शन देनेवाले हैं,	**भवतः**	आपकी
		शिवं	कल्याणमयी
दिष्ट्या	सौभाग्यसे	**पादरजः**	चरण धूलिका
मे	मैंने (उन)	**मे शीर्ष्णा**	मैंने मस्तकसे
भगवान्	भगवन् (आपका)	**स्पृष्टं**	स्पर्श किया ॥६॥

दिष्ट्या त्वयानुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् ।
अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥७॥

दिष्ट्या त्वया अनुशिष्टः अहं कृतः च अनुग्रहः महान् अपावृतैः कर्णरन्ध्रैः जुष्टा दिष्ट्या उशतीः गिरः ॥७॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**दिष्ट्या**	परम सौभाग्यसे
महान् अनुग्रहः	महान् अनुग्रह	**उशती गिरः**	(आपकी) पवित्र वाणी
कृतः च	करके ही		
त्वया	आपने	**अपावृतैः**	(मेरे) खुले
अहं	मुझे	**कर्णरन्ध्रैः**	कर्ण छिद्रोंमें
अनुशिष्टः	उपदेश किया,	**जुष्टा**	पड़ी ॥७॥

स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ।
श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥

स भवान् दुहितृ स्नेह परिक्लिष्ट आत्मनः मम श्रोतुं अर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥

मुने	मुने !	श्रावितं	प्रार्थना
दुहितृ स्नेह	(इस) पुत्रीके स्नेहसे	स भवान्	वह (कृपालु)आपको
परिक्लिष्ट	चिन्तित	कृपया	कृपा करके
आत्मनः	चित्त	श्रोतुं अर्हसि	सुनना चाहिए ॥८॥
मम दीनस्य	मुझ दीनकी		

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम ।
अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥९॥

प्रियव्रत उत्तानपदः स्वसा इयं दुहिता मम अन्विच्छति पतिं युक्तं वयः शील गुण आदिभिः ॥९॥

प्रियव्रत	प्रियव्रत (तथा)	आदिभिः	आयु, आचार, गुण आदिमें
उत्तानपदः	उत्तानपादकी	युक्तं पतिं	अपने उपयुक्त पतिको
इयं स्वसा	यह बहिन	अन्विच्छति	पाना चाहती हैं ॥९॥
मम दुहिता	मेरी पुत्री,		
वयः शील गुण			

यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् ।
अश्रृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥१०॥

यदा तु भवतः शील श्रुत रूप वयः गुणान् अश्रृणोत् नारदात् एषा त्वयि आसीत् कृत निश्चया ॥१०॥

भवतः	आपके	यदा तु	जबसे
शील, श्रुत	स्वभाव, विद्या,	अश्रृणोत्	सुना है,
रूप, वयः	सौन्दर्य, आयु (तथा)	त्वयि	आपको (पति बनानेका)
गुणान्	गुणोंको	कृत निश्चया	निश्चय कर
एषा	इसने	आसीत्	चुकी है ॥१०॥
नारदात्	नारदजीसे		

तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया ।
सर्वात्मनानुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥११॥

तत् प्रतीच्छ द्विज अग्रय इमां श्रद्धया उपहृतां मया सर्व आत्मना अनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥११॥

द्विज अग्रय	द्विज श्रेष्ठ !	प्रतीच्छ	स्वीकार कीजिए ।
श्रद्धया	श्रद्धाके साथ	गृहमेधिषु	गृहस्थके
मया	मेरे द्वारा	कर्मसु ते	कर्ममें आपके
उपहृतां	भेंट की गयी	सर्व आत्मना	सब प्रकारसे
तत् इमां	अतः इसे	अनुरूपां	अनुरूप है ॥११॥

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ।
अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥१२॥

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादः न शस्यते अपि निर्मुक्त सङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥१२॥

हि	क्योंकि	प्रतिवादः	अस्वीकार करना
निर्मुक्त सङ्गस्य	अनासक्तके लिए	शस्यते न	प्रशंसनीय नहीं है,
अपि	भी	पुनः	फिर
उद्यतस्य	उपस्थित	कामरक्तस्य	भोगासक्तकी
कामस्य	भोगको	किं	बात ही क्या ॥१३॥

य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ।
क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हृतः ॥१३॥

यः उद्यतं अनादृत्य कीनाशं अभियाचते क्षीयते तत् यशः स्फीतं मानः च अवज्ञया हृतः ॥१३॥

यः उद्यतं	जो उपस्थितका	स्फीतं यशः	फैला हुआ यश
अनादृत्य	अनादर करके	क्षीयते च	क्षीण हो जाता है
कीनाशं	(किसी) कृपणके		और
अभियाचते	पास जाकर माँगता है,	मानः	सम्मान
		अवज्ञया हृतः	अवमाननासे मारा
तत्	उसका		जाता है ॥१३॥

अहं त्वाभृणवं विद्वन् विवाहार्थं समुद्यतम् ।
अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥१४॥

अहं त्वा अशृणवं विद्वन् विवाहार्थं समुद्यतं अतः त्वं उपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥१४॥

विद्वन्	विद्वन् !	मे उपकुर्वाणः	मुझपर उपकार करके
अहं त्वा	मैंने आपको	प्रत्तां	दी जाती कन्याको
विवाहार्थं	विवाहके लिए	प्रतिगृहाण	स्वीकार कर लीजिए ॥१४॥
समुद्यतं	भली प्रकार उद्यत		
अशृणवं	सुना है ।		
अतः त्वं	अतः आप		

कर्दमोवाच-*

बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा ।
आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥१५॥

बाढं उद्वोढु कामः अहं अप्रत्ता च तव आत्मजा आवयोः अनुरूपः असाः आद्यः वैवाहिकः विधिः ॥१५॥

बाढं अहं	ठीक है, मैं	असाः आद्यः	यह प्रथम
उद्वोढु कामः	विवाह करना चाहता हूँ ।	वैवाहिकः	विवाहकी
		विधिः	विधि
तव आत्मजा च	तुम्हारी पुत्री भी	आवयोः	हम दोनोंके
अप्रत्ता	वाग्दान रहिता है,	अनुरूपः	अनुरूप है ॥१५॥

कामः स भूयान्नरदेव तेऽस्याः
पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ।
क एव ते तनयां नाद्रियेत
स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥१६॥

कामः स भूयात् नरदेव ते अस्याः पुत्र्याः समाम्नाय विधौ प्रतीतः कः एव ते तनयां न आद्रियेत स्वस्या एव कान्त्या क्षिपतीं इव श्रियम् ॥१६॥

---

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषिरुवाच' है ।

नरदेव	राजन् !	स्वस्य एव	अपनी ही
समाम्नाय	वेदोक्त	कान्त्या	कान्तिसे
विधौ	(विवाह) विधिमें	श्रियं क्षिपतीं इव	लक्ष्मीको लज्जित
स कामः	वह काम		करती-सी
	(वेद सम्मत भोग)	ते तनयां	आपकी पुत्रीका
ते	तुम्हारी	कः एव	कौन-सा (पुरुष)
अस्याः पुत्र्याः	इस पुत्रीसे	आद्रियेत न	आदर नहीं
प्रतीतः	पूर्ण होगा ।		करेगा ॥१६॥

यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां
विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ।
विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमाना-
द्विलोक्य सम्मोहविमूढचेताः ॥१७॥

यां हर्म्यपृष्ठे क्वणत् अङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुक विह्वल अक्षीं विश्वावसुः न्यपतत् स्वाद् विमानात् विलोक्य सम्मोह विमूढ चेताः ॥१७॥

हर्म्यपृष्ठे	महलकी छतपर	सम्मोह	
क्वणत्		विमूढ चेताः	मोहवश अचेत
अङ्घ्रिशोभां	पैरोंके (नूपुर)		होकर
	झनकारती	विश्वावसुः	(गन्धर्वराज)
कन्दुक			विश्वावसु
विक्रीडतीं	गेंद खेलती	स्वाविमानात्	अपने विमानसे
विह्वल अक्षीं	चंचल नेत्री	न्यपतत्	गिर पड़े ॥१७॥
यां विलोक्य	जिसे देखकर		

तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाम-
मसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ।
वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं
को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥१८॥

तां प्रार्थयन्तीं ललना ललामं असेवित श्रीचरणैः अदृष्टां वत्सां मनोः उच्चपदः स्वसारं कः न अनुमन्येत बुधः अभियाताम् ॥१८॥

असेवित श्रीचरणैः	लक्ष्मीजीके चरणोंकी जिन्होंने सेवा नहीं की उनको	उच्चपदां	उच्च पदस्थों (प्रियव्रत, उत्तानपाद) की
अदृष्टां	यह दीख भी नहीं सकती ऐसी	स्वसारं	बहिन
ललना ललामं	स्त्री-रत्न	अभियातां	स्वयं आकर
मनोः वत्सां	मनुकी पुत्री	प्रार्थयन्तीं	प्रार्थना कर रही है,
		कः बुधः	कौन बुद्धिमान
		तां	उसका
		अनुमन्येत न	अनुमोदन नहीं करेगा ॥१८॥

अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं
यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।
अतो धर्मान् पारमहंस्यमुख्यान्
शुक्लप्रोक्तान् बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥

अतः भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत् तेजः बिभृयात् आत्मनः मे अतः धर्मान् पारमहंस्य मुख्यान् शुक्ल प्रोक्तान् बहुमन्ये अविहिंस्रान् ॥१९॥

अतः	अतः	अतः	तदनन्तर
समयेन	एक शर्तके साथ	शुक्ल प्रोक्तान्	भगवानके द्वारा उपदिष्ट
साध्वीं	इस साध्वीको		
भजिष्ये	स्वीकार करूँगा,	पारमहंस	
यावत्	जब तक	मुख्यान्	परमहंसोंका प्रमुख
मे तेजः	मेरे तेजको	अविहिंस्रान्	हिंसा रहित
आत्मनः	अपनेमें (यह)	धर्मान्	धर्मोंको (संन्यास,
बिभृयात्	धारण करेगी (जब तक इसके सन्तान नहीं हो जायगी)		शमदमादिको)
		बहुमन्ये	आदर दूँगा ॥१९॥

यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं
संस्थास्यते यत्र च वावतिष्ठते ।

प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं
परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥२०॥

यतः अभवत् विश्वं इदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वा अवतिष्ठते प्रजापतीनां पतिः एष मह्यं परं प्रमाणं भगवान् अनन्तः ॥२०॥

यतः इदं	जिनसे यह
विचित्रं विश्वं	विचित्र संसार
अभवत्	उत्पन्न हुआ,
यत्र वा	तथा जिनमें
संस्थास्यते	लीन हो जायगा
च अवतिष्ठते	और (जिनमें) स्थित है,
एष प्रजापतीनां पतिः	यही प्रजापतियोंके स्वामी
भगवान् अनन्तः	भगवान अनन्त
मह्यं	मुझे
परम् प्रमाणं	अत्यन्त मान्य हैं ॥२०॥

मैत्रेय उवाच–

स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाषे
आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ।
धियोपगृह्णन् स्मितशोभितेन
मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥२१॥

स उग्रधन्वन् इयदेव आबभाषे आसीत् च तूष्णीं अरविन्दनाभं धिया उपगृह्णन् स्मित शोभितेन मुखेन चेतः लुलुभे देवहूत्याः ॥२१॥

उग्रधन्वन्	प्रचण्ड धनुर्धर विदुर !
स इयदेव	वे (कर्दमजी) इतना ही
आबभाषे	बोलकर
तूष्णीं आसीत् च	चुप हो गये तथा
अरविन्दनाभं	भगवान कमलनाभको
धिया उपगृह्णन	बुद्धिमें ग्रहण करके
स्मित शोभितेन	मुसुकान शोभित
मुखेन	मुख देखकर
देवहूत्याः	देवहूतिका
चेतः लुलुभे	चित्त लुभा गया ॥२१॥

सोऽनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ।
तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥२२॥

सः अनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्याः दुहितुः स्फुटं तस्मै गुणगण आढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥२२॥

सः	उन (मनु) ने	तस्मै	उन (कर्दमजी) को
महिष्याः	महारानीका और)	तुल्यां	उनके समान (गुणवती)
दुहितुः	पुत्रीका		
स्फुटं व्यवसितं	स्पष्ट निश्चय	प्रहर्षितः	हर्षित होकर
अनुज्ञात्वा	जानकर	ददौ	दे दी ॥२२॥
गुणगण आढ्याय	गुणगणोंके धनी		

शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ।
दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥२३॥

शतरूपा महाराज्ञो पारिबर्हान् महाधनान् दम्पत्योः पर्यदात् प्रीत्या भूषावासः परिच्छदम् ॥२३॥

महाराज्ञी	महारानी	भूषावासः	आभूषण, वस्त्र
शतरूपा	शतरूपाने	परिच्छदं	दूसरे (पात्रादि) उपकरण
दम्पत्योः	बेटी-दामादको		
प्रीत्या	प्रेमपूर्वक	पारिबर्हं	दहेजमें
महाधनान्	बहुमूल्य	पर्यदात्	प्रदान किए ॥२३॥

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ।
उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥२४॥

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः उपगुह्य च बाहुभ्यां औत्कण्ठ्य उन्मथित आशयः ॥२४॥

सम्राट्	महाराज (मनु)	दुहितरं प्रत्तां	पुत्री देकर
सदृक्षाय	सुयोग्य वरको	गतव्यथः	निश्चिन्त हो गये ।

बाहुभ्यां उपगुह्य च	भुजाओंमें भरकर और छातीसे लगाकर	औत्कण्ठ्यात् उन्मथित आशयः	उत्कण्ठासे विह्वल चित्त हो गये ॥२४॥

अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चन् वाष्पकलां मुहुः ।
आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥२५॥

अशक्नुवन् तद् विरहं मुञ्चन् बाष्पकलां मुहुः आसिञ्चत् अम्ब वत्से इति नेत्रोदैः दुहितुः शिखाः ॥२५॥

तद् विरहं अशक्नुवन्	उसका वियोग न सह सकनेके कारण	वाष्पकलां मुहुः मुञ्चन् नेत्रोदैः	आँसू बार-बार बहाते उन आँसुओंसे
अम्ब ! वत्से इति	'मां ! बेटी !' ऐसा कहते	दुहितुः शिखाः आसिञ्चत्	पुत्रीके केश भिगा दिये ॥२५॥

आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः ।
प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥

आमन्त्र्य तं मुनिवरं अनुज्ञातः सहअनुगः प्रतस्थे रथं आरुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥

तं मुनिवरं	उन मुनि श्रेष्ठ (कर्दमजी) से	रथं आरुह्य	रथमें बैठकर
आमन्त्र्य	पूछकर	नृपः	राजाने
अनुज्ञातः	आज्ञा लेकर	सह अनुगः	अनुचरोंके साथ
सभार्यः	पत्नीके साथ	स्वपुरं प्रतस्थे	अपने नगरको प्रस्थान किया ॥२६॥

उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ।
ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसम्पदः ॥२७॥

उभयोः ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ऋषीणां उपशान्तानां पश्यन् आश्रम सम्पदाः ॥२७॥

ऋषिकुल्यायाः	ऋषिगण सेविता	उपशान्तानां	अत्यन्त शान्त
सरस्वत्याः	सरस्वती नदीके	ऋषीणां	ऋषियोंके
उभयोः		आश्रम सम्पदाः	आश्रमोंकी शोभा
सुरोधसोः	दोनों उत्तम तटोंपर	पश्यन्	देखते हुए ॥२७॥

तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् ।
गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥

तं आयान्तं अभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात् प्रजाः पतिं गीत संस्तुति वादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥

तं पतिं	उन (अपने) स्वामीको	वादित्रैः	बाजे बजाते
		ब्रह्मावर्तात्	ब्रह्मावर्तसे
आयान्तं	आता	प्रहर्षिताः	प्रसन्न होकर
अभिप्रेत्य	जानकर	प्रत्युदीयुः	अगवानी करने बाहर आये ॥२८॥
प्रजाः	प्रजाजन		
गीत संस्तुति	गाते, स्तुति करते		

बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्समन्विता ।
न्यपतन् यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥

बर्हिष्मती नाम पुरी सर्व सम्पत् समन्विता न्यपतत् यत्र रोमाणि यज्ञस्य अङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥

सर्व सम्पत्	सब सम्पत्तियोंसे	यत्र यज्ञस्य	जहाँ भगवान् वाराहके
समन्विता	भली प्रकार परिपूर्ण	अंगं विधुन्वता	शरीर कम्पित करते समय
बर्हिष्मती नाम पुरी	बर्हिष्मती नामक राजधानी थी*	रोमाणि न्यपतत्	(उनके) रोम गिरे ॥२९॥

कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः ।
ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान् यज्ञमीजिरे ॥३०॥

---

* सोरों-कासगंजसे एटा (एताः) तक यह रही होगी । कासगंज तो बर्हिष्मतीका पर्याय नाम ही है ।

कुशाः काशाः त एव आसन् शश्वत् हरित वर्चसः ऋषयः यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान् यज्ञं ईजिरे ॥३०॥

त एव	वही (रोम)	**यज्ञघ्नान्**	यज्ञमें विघ्न करने
शश्वत् हरित			वाले असुरोंको
वर्चसः	बराबर हरे रहनेवाले	**पराभाव्य**	दूर भगाकर
कुशाः काशाः		**ऋषयः**	ऋषि लोग
आसन्	कुश और कास	**यज्ञं ईजिरे**	भगवान् यज्ञपुरुषका
	हो गये।		यजन करते हैं ॥३०॥
यैः	जिनके द्वारा		

कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः।
अयजद्यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥

कुश काशमयं बर्हिः आस्तीर्य भगवान् मनुः अयजत् यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतः भुवम् ॥३१॥

यतः स्थानं	जिनसे (अपने)	**बर्हिः**	चटाई
	रहनेका स्थान	**आस्तीर्य**	बिछाकर
भुवं लब्धा	पृथ्वी प्राप्त हुई	**यज्ञपुरुषं**	उन यज्ञपुरुषका
भगवान् मनुः	भगवान् मनुने	**अयजत्**	यजन किया ॥३१॥
कुश काशमयं	कुश-कास से बनी		

बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निविश्य समावसत्।
तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥३२॥

बर्हिष्मती नाम विभुः यां निविश्य समावसत् तस्यां प्रविष्टः भवनं तापत्रय विनाशनम् ॥३२॥

बर्हिष्मती	बर्हिष्मती नामक पुरी	**तपात्रय**	
यां निविश्य	जिसमें प्रवेश करके	**विनाशनं**	त्रिताप नाशक
विभुः समावसत्	राजामनु रहते थे,	**भवनं प्रविष्टः**	(अपने) भवनमें
तस्यां	उसमें		प्रवेश किया ॥३२॥

सभार्यः सप्रजः कामान् बुभुजेऽन्याविरोधतः ।
सङ्गीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ।
प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन् हरेः कथाः ॥३३॥

सभार्यः सप्रजः कामान् बुभुजे अन्य अविरोधतः सङ्गीयमान सत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः प्रत्यूषेषु अनुबद्धेन हृदा शृण्वन् हरेः कथाः ॥३३॥

सभार्यः	स्त्री (तथा)	**सस्त्रीभिः**	पत्नियोंके साथ
सप्रजः	पुत्रोंके साथ	**सुरगायकैः**	गन्धर्व लोग
अन्य अविरोधतः	दूसरोंको विरोध न हो (किसीकी हानि किये बिना)	**सत्कीर्तिः**	(उनकी) उत्तम कीर्ति
		सङ्गीयमानः	गानेपर भी
कामान् बुभुजे	भोगोंका सेवन करते थे ।	**हृदा अनुबद्धेन**	चित्त लगाकर (वे)
		हरेः कथाः	श्रीहरिकी कथा
प्रत्यूषेषु	प्रातःकाल होनेपर	**शृण्वन्**	सुनते थे ॥३३॥

निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायम्भुवं मनुम् ।
यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥३४॥

निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायम्भुवं मनुं यदा भ्रंशयितुं भोगाः न शेकुः भगवत् परम् ॥३४॥

योगमायासु	योगमायामें (इच्छानुसार भोग प्रगट करनेमें)	**यदा भगवत् परं**	जो भगवानके परायण थे
		भोगाः	भोग
निष्णातं	निपुण	**भ्रंशयितुं**	भ्रष्ट करनेमें
मुनिं	मननशील	**शेकुः न**	समर्थ नहीं हुए ॥३४॥
स्वायम्भुवं	स्वायम्भू मनुको		

अयातयामास्तस्यासन् यामाः स्वान्तरयापनाः ।
शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥३५॥

अयात यामाः तस्य आसन् यामाः स्वान्तर यापनाः शृण्वतः ध्यायतः विष्णुः कुर्वतः ब्रुवतः कथाः ॥३५॥

विष्णुः	भगवान् विष्णुकी	**यापनाः**	व्यतीत करनेवाला
कथाः	कथाको	**यामाः**	समय
शृण्वतः ध्यायतः	सुनते, सोचते,	**अयात यामाः**	सदा नवीन (वर्तमान) जैसा
कुर्वतः ब्रुवतः	रचना करते, कहते,		
तस्य स्वान्तर	उनके मन्वन्तरको	**आसन्**	रहता था ॥३५॥

विशेष—

मनुजी भगवान्‌की कथा सुनने, सोचने, कहनेमें लगे अपने पूरे मन्वन्तर सदा वर्तमानकालमें ही चित्त रखते थे। भूत, भविष्यको कभी सोचते ही नहीं थे।

स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् ।
वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥३६॥

स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानां एक सप्ततिं वासुदेव प्रसङ्गेन परिभूत गति त्रयः ॥३६॥

गति त्रयः	तीनों (गुणों) की गतिको	**एक सप्ततिं युगानां**	इकत्तर चतुर्युगीवाला
परिभूत	पराजित करके		
वासुदेव प्रसङ्गेन	भगवान् वासुदेवकी चर्चामें	**स्वान्तरं निन्ये**	अपना मन्वन्तर व्यतीत कर दिया ॥३६॥
स एवं	उन्होंने इस प्रकार		

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥३७॥

शारीराः मानसाः दिव्या वैयासे ये च मानुषाः भौतिकाः च कथं क्लेशाः बाधन्ते हरि संश्रयम् ॥३७॥

वैयासे	व्यासनन्दन विदुर !	**शारीराः**	शरीरमें होनेवाले,
हरि संश्रयं	श्रीहरिके शरणागतको	**मानसाः**	मानसिक,
		दिव्याः	देवताओंसे

ये च मानुषाः	और जो मनुष्योंसे	**कथं बाधन्ते**	कैसे बाधा दे सकते
च भौतिकाः	तथा प्राकृतिक		हैं ॥३७॥
क्लेशाः	क्लेश हैं,		

विशेष—

तात्पर्य यह है कि ये सब वर्णित कष्ट मनुको हुए; किन्तु उनके भगवत्कथा-श्रवण-चिन्तनमें इनसे कभी बाधा नहीं पड़ी।

यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधाञ्छुभान् ।
नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥

यः पृष्टः मुनिभिः प्राह धर्मान् नाना विधान् शुभान् नृणां वर्ण आश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥

मुनिभिः पृष्टः	मुनियों के पूछनेपर	**नृणां**	मनुष्योंका
सदा सर्वभूत-		**नाना विधान्**	अनेक प्रकारका
हितः	सदा सब प्राणियोंके	**शुभान्**	कल्याणकारी
	लिए हितकर	**धर्मान्**	धर्मोंको
वर्ण आश्रमाणां	वर्ण आश्रम	**प्राह**	वर्णन किया ॥३८॥
	माननेवाले		

एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ।
वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥३९॥

एतत् ते आदिराजस्य मनोः चरितं अद्भुतं वर्णितं वर्णनीयस्य तत् अपत्य उदयं शृणु ॥३९॥

ते एतत्	तुमसे यह	**वर्णितं**	(मैंने) वर्णन किया,
वर्णनीयस्य	वर्णन करने योग्य	**तत्**	(अब) उनके
आदिराजस्य		**अपत्य उदयं**	सन्तानोंका उत्कर्ष
मनोः	आदिराज मनुका	**शृणु**	सुनो ॥३९॥
अद्भुतं चरितं	अद्भुत चरित		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ।
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥१॥

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिं इङ्गित कोविदा नित्यं पर्यचरत् प्रीत्या भवानी इव भवं प्रभुम् ॥१॥

पितृभ्यां	माता-पिताके	**भवानी इव**	भवानीके समान
प्रस्थिते	चले जानेपर	**पतिं**	(अपने) पतिकी
इङ्गित कोविदा	संकेत समझनेमें निपुणा	**प्रीत्या**	प्रेमपूर्वक
		नित्यं पर्यचरत्	नित्य सेवा करने लगी ॥१॥
साध्वी	पतिव्रता (देवहूति)		
प्रभुं भवं	भगवान् शिवकी		

विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ।
शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥२॥

विश्रम्भेण आत्म शौचेन गौरवेण दमेन च शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥२॥

विश्रम्भेण	विश्वास,	**सौहृदेन च**	सौहार्द्रसे तथा
आत्म शौचेन	अपनी पवित्रता,	**मधुरया वाचा**	मधुरवाणीसे
गौरवेण	आदर देने,	**भोः**	(पुकारनेपर) 'जी' कहकर ॥२॥
दमेन	इन्द्रिय-संयम		
च शुश्रूषया	तथा सेवासे		

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ।
अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥३॥

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभं अघं मदं अप्रमत्ता उद्यता नित्यं तेजीयान् समतोषयत् ॥३॥

कामं	कामना (कुछ पानेकी इच्छा)	**विसृज्य**	त्याग कर
		अप्रमत्ता	प्रमादहीन होकर,
दम्भं	बनावट (दिखावा)	**नित्यं उद्यता**	सदा तत्पर रहकर
च द्वेषं	तथा द्वेष	**तेजीयान्**	परम तेजस्वी (कर्दमजी) को
लोभं	लोभ		
अघं	पाप (अपराध)	**समतोषयत्**	भली प्रकार सन्तुष्ट कर लिया ॥३॥
मदं	घमण्डको		

स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ।
दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥४॥

स वै देवर्षि वर्यः तां मानवीं समनुव्रतां दैवात् गरीयसः पत्युः आशासानां महाशिषः ॥४॥

स वै	निश्चय वे	**दैवात् गरीयसः**	दैवसे भी महान् मानती
देवर्षि वर्यः	देवर्षि श्रेष्ठ थे	**महाशिषः**	बड़ी-बड़ी कामनाएँ
समनुव्रतां	भली प्रकार सेवामें लगी	**आशासानां**	पानेकी आशा करनेवाली ॥४॥
मानवीं	मनु-पुत्री		
पत्युः	पतिको		

कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ।
प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाब्रवीत् ॥५॥

कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया प्रेम गद्गदया वाचा पीडितः कृपया ब्रवीत् ॥५॥

भूयसा कालेन	बहुत लम्बे समयसे	**कृपया**	कृपापूर्वक
व्रतचर्यया	नियमपालन करनेसे	**प्रेम गद्गदया**	प्रेमसे गद्गद
कर्शितां	थकती	**वाचा**	वाणीसे
क्षामां	दुबली हुई (देखकर)	**ब्रवीत्**	बोले ॥५॥
पीडितः	पीड़ानुभव करके,		

कर्दम उवाच-

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः
शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।
यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो
नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥

तुष्टः अहं अद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या यः देहिनां अयं अतीव सुहृत् स्वदेहः न अवेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥

मानवि	मनुपुत्री !	**अतीव सुहृत्**	अत्यन्त प्रिय
तव मानदायाः	तुम सम्मान देने-वालीकी	**स्वदेहः**	अपना शरीर है,
परमया शुश्रूषया	उत्तम सेवा	**समुचितः**	ऐसा होना पूर्ण उचित है; किन्तु
च परया भक्त्या	तथा परम भक्तिसे	**मदर्थे**	मेरे लिए
अहं अद्य तुष्टः	मैं आज सन्तुष्ट हो गया,	**क्षपितुं**	उसके क्षीण होनेकी
देहिनां	शरीरधारियोंका	**न अवेक्षितः**	ओर तुमने ध्यान नहीं दिया ॥६॥
अयं	यह जो		

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधि-
विद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ।
तानेव ते मदनुसेवनयावरुद्धान्
दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥७॥

ये मे स्वधर्म निरतस्य तपः समाधि विद्या आत्म योग विजिताः भगवत् प्रसादाः तान् एव ते मत अनुसेवनया अवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितरामि अभयान् अशोकान् ॥७॥

मे	मैंने	**तपः**	तपस्या
स्वधर्म निरतस्य	अपने धर्ममें लगे रहकर	**समाधि**	एकाग्रता,
		आत्म विद्या-	उपासना,

योग ये	योगसे जो
अभयान्	भयहीन,
अशोकान्	शोकहीन,
भगवत् प्रसादाः	भगवान्‌की कृपासे (विभूतियाँ)
विजिताः	प्राप्त की हैं,
मत् अनुसेवनया	मेरी निरन्तर (सेवा)से
तान् एव	उनपर ही
ते अवरुद्धान्	तुम्हारा अधिकार हो गया,
दृष्टिं वितरामि	(तुम्हें) दिव्य दृष्टि देता हूँ,
प्रपश्य	उन्हें देखो ॥७॥

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भ-

विभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ।

सिद्धासि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्

दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥८॥

अन्ये पुनः भगवतः भ्रुव उद्विजृम्भ विभ्रंशित अर्थ रचनाः किमु उरुक्रमस्य सिद्धा असि भुङ्क्ष्व विभवान् निजधर्म दोहान् दिव्यान् नरैः दुरधिगान् नृप विक्रियाभिः ॥८॥

पुनः अन्ये	फिर दूसरे
अर्थ रचनाः	धनसे जुटाये (भोग)
भगवतः	भगवान्‌की
भ्रुव उद्विजृम्भ	भृकुटि विलाससे
विभ्रंशितः	नष्ट हो जानेवाले हैं,
उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम भगवान्‌के (प्रसाद इनसे)
किमु	उनकी क्या तुलना।
नृप विक्रियाभिः	राजापनेके विकार (अहङ्कार) से
नरैः	मनुष्यों द्वारा
दुरधिगान्	इनको पाना बहुत कठिन है,
सिद्धा असि	(मेरी सेवासे तुम) सिद्ध हो गयी हो,
निजधर्म दोहान्	अपने धर्माचरणसे प्राप्त
दिव्यान् विभवान्	दिव्य वैभवोंको
भुङ्क्ष्व	भोगो ॥८॥

*मैत्रेय उवाच–**

एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमाया-
विद्याविचक्षणमवेक्ष्य गतार्धिरासीत् ।
सम्प्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्-
व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाऽऽह ॥९॥

एवं ब्रुवाणं अबला अखिल योगमाया विद्या विचक्षणं अवेक्ष्य गत आधिः आसीत् सम्प्रश्रय प्रणय विह्वलया गिरा इषत् व्रीड़ा अवलोक विलसत् हसित आनना आह ॥९॥

एवं	(कर्दमजीके) इस प्रकार	गत आधिः आसीत्	चिन्ता रहित हो गयी ।
ब्रुवाणं	कहनेपर	सम्प्रश्रय	विनय,
अबला	देवहूति (उन्हें)	प्रणय विह्वलया	प्रेम विह्वल
अखिल योगमाया	सम्पूर्ण योगमाया (और)	गिरा	वाणीसे
विद्या विचक्षण	विद्याओंमें निपुण	ईषत् व्रीडा	तनिक लज्जा भरी
अवेक्ष्य	देखकर	अवलोक	चितवनसे
		विलसत्	सुशोभित
		हसित आनना	हँसते हुए मुखसे
		आह	बोली ॥९॥

देवहूतिरुवाच–

राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोग-
मायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ।
यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो
भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥१०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

राद्धं बत द्विजवृष एतत् अमोघ योगमायाधिपे त्वयि विभो तत् अवैमि भर्तः यः ते अभिधायि समयः सकृत् अङ्ग सङ्ग भूयात् गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥१०॥

द्विजवृष	द्विजर्षभ !
भर्तः	स्वामी !
अमोघ	निष्फल न होनेवाली
योगमायाधिपे	योगमायाके स्वामी
त्वयि	आपमें
एतत्	ये सब
राद्धं	ऐश्वर्य प्राप्त हैं,
तत् अवैमि	यह जानती हूँ
बत विभो	किन्तु प्रभो !
यः ते समयः	जो आपने प्रतिज्ञा
अभिधायि	(विवाहके समय) की थी,
सकृत अङ्ग सङ्गः	एक बार अंग-संगकी
भूयात्	(वह) हो (क्योंकि)
सतीनां	पतिव्रता स्त्रीके लिए
गुणः प्रसवः	सद्गुणी संतान होना
गरीयसि	महान् लाभ है॥१०॥

तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं
येनैष मे कर्शितोऽतिरिरिंसयाऽऽत्मा ।
सिद्ध्येत ते कृतमनोभवधर्षितायाः
दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥

तत्र इति कृत्यं उपशिक्ष यथा उपदेशं येन एष मे कर्शितः अति रिरिंसया आत्मा सिद्ध्येत ते कृत मनोभव धर्षितायाः दीनः तत् ईश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥

तत्र	इस विषयमें
यथा उपदेशं	शास्त्र वर्णित विधिसे
इति कृत्यं	जो करणीय हो
उपशिक्ष	उसे सिखलाइये ।
ते कृतं	आपके लिए
मनोभव धर्षितायाः	कामसे उत्पीड़िता
मे	मैंने
येन रिरिंसया	जिस रमणकी इच्छासे
एष आत्मा	यह शरीर
अति कर्शितः	अत्यन्त दुर्बल किया,
दीनः	दीन हुआ,
तत् ईश	अतः आप समर्थ हो
सदृशं भवनं	(इसके) उपयुक्त भवन
विचक्ष्व	(बनानेका) विचार कीजिए ॥११॥

मैत्रेय उवाच-

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थितः ।
विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥१२॥

प्रियायाः प्रियं अन्विच्छन् कर्दमः योगं आस्थितः विमानं कामगं क्षत्तः तर्हि एव अविरची करत् ॥१२॥

क्षत्तः	विदुर !	कामगं	इच्छानुसार चलनेवाला
प्रियायाः	प्रिय पत्नीका	विमानं	विमान
प्रियं अन्विच्छन्	प्रिय करनेकी इच्छामे	तर्हि एव	उसी समय
कर्दमः	कर्दमजीने	अविरची करत्	निर्मित कर दिया ॥१२॥
योगं आस्थितः	योगमें स्थित होकर		

सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ।
सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥१३॥

सर्वं कामदुघं दिव्यं सर्वरत्न समन्वितं सर्व ऋद्धि उपचय उदर्कं मणिस्तम्भैः उपस्कृतम् ॥१३॥

सर्व कामदुघं	सब कामनाएँ पूर्ण करनेवाला,	सर्व ऋद्धि उपचय	सब समृद्धियोंके संग्रहसे
सर्वरत्न समन्वितं	सब रत्नोंसे भरा,	उदर्कं	जगमगाता
		मणिस्तम्भैः	मणियोंके खम्भोंसे
		उपस्कृतं	सुशोभित ॥१३॥

दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ।
पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥१४॥

दिव्य उपकरण उपेतं सर्वकाल सुखावहं पट्टिकाभिः पताकाभिः विचित्राभिः अलंकृतम् ॥१४॥

दिव्य उपकरण उपेतं	दिव्य सामग्रियोंसे भरा,	सर्वकाल सुखावहं	सब ऋतुओंमें सुखदायक

विचित्राभिः	विचित्र	पताकाभिः	पताकाओंसे
पट्टिकाभिः	स्वागत वाक्यादि और	अलंकृतम्	भूषित था ॥१४॥

स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ।
दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥१५॥

स्रग्भिः विचित्र माल्याभिः मञ्जुशिञ्जत् षडङ्घ्रिभिः दुकूल क्षौम कौशेयैः नाना वस्त्रैः विराजितम् ॥१५॥

स्रग्भिः विचित्र	पुष्प मालाओंसे	क्षौम	अलसीके रेशेसे बने,
माल्याभिः	अनेक रत्नोंकी मालाओंसे,	कौशेयैः	रेशमी
मञ्जु शिञ्जत्	मधुर गुंजार करते	नाना वस्त्रैः	अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे
षडङ्घ्रिभिः	भौंरोंसे	विराजितम्	बहुत सुशोभित था ॥१५॥
दुकूल	सूती,		

उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक्पृथक् ।
क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥१६॥

उपरि उपरि विन्यस्त निलयेषु पृथक् पृथक् क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्क व्यजन आसनैः ॥१६॥

उपरि उपरि	एक दूसरेके ऊपर	कशिपुभिः	आराम करनेके*
विन्यस्तं	बनाये हुए		पलंग,
निलयेषु	(अनेक मंजिलके) घरोंमें	पर्यङ्क	सोनेके लिए पलंग,
पृथक् पृथक्		व्यजन	पंखे
क्षिप्तैः	अलग-अलग रखे	आसनैः	आसनोंसे
		कान्तं	सुन्दर लगता था ॥१६॥

तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ।
महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥

---

* आराम कुर्सी जैसा आसन ।

तत्र तत्र विनिक्षिप्त नाना शिल्प उपशोभितं महामरकत स्थल्या जुष्टं विद्रुम वेदिभिः ॥१७॥

तत्र तत्र	जहाँ तहाँ	महामरकत	महामरकतमणि (पन्ने) के
नाना शिल्प	अनेक प्रकारकी	स्थल्या	फर्शपर
जुष्टम्	युक्त कारीगरीसे	विद्रुम वेदिभिः	मूँगेकी वेदियाँ
उपशोभितं	सुशोभित	विनिक्षिप्त	बनी थीं ॥१७॥

द्वाःसु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ।
शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥१८॥

द्वाःसु विद्रुम देहल्या भातं वज्र कपाट वत् शिखरेषु इन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैः अधिश्रितम् ॥१८॥

विद्रुम देहल्या	मूंगेकी चौखटवाले	शिखरेषु	शिखरोंपर जो
द्वाःसु	द्वार	इन्द्रनीलेषु	इन्द्र नीलमणिका था,
वज्र कपाटवत्	हीरे जड़े किवाड़ोंसे	हेमकुम्भैः	स्वर्ण कलश
भातं	शोभित थे ।	अधिश्रितं	चढ़े थे ॥१८॥

चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ।
जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥१९॥

चक्षुष्मत् पद्मराग अग्र्यैः वज्रभित्तिषु निर्मितैः जुष्टं विचित्र वैतानैः महार्हैः हेमतोरणैः ॥१९॥

वज्रभित्तिषु	हीरेकी दीवारोंमें	विचित्र वैतानैः	रंग-बिरंगे चंदोवे (और)
पद्मराग अग्र्यैः	पद्मरागकी नोकोंकी	महार्हैः	
निर्मितैः	ऐसी रचना थी कि	हेमतोरणैः	सोनेकी बहुमूल्य वन्दनवारोंसे
चक्षुष्मत्	वह) आंखोंवाला (लगता था)	जुष्टं	सजा था ॥१९॥

हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् ।
कृत्रिमान् मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥२०॥

हंस पारावत व्रातैः तत्र तत्र निकूजितं कृतिमान् मन्यमानैः स्वान् अधिरुह्य अधिरुह्य च ॥२०॥

तत्र तत्र	जहाँ तहाँ	कृतिमान्	
हंस पारावत		मन्यमानः	बनावटी मानकर
व्रातैः	हंसों और कबूतरोंके झुंड	अधिरुह्य	
		अधिरुह्य	और बार-बार उसपर बैठते ॥२०॥
निकूजितं	कलरव करते		
च स्वान्	और अपनेको		

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः ।
यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥२१॥

विहारस्थान विश्रामसंवेश प्राङ्गण अजिरैः यथा उपजोषं रचितैः विस्मापनं इव आत्मनः ॥२१॥

यथा उपजोषं	सुविधानुसार	रचितैः	बने होनेसे
विहारस्थान	क्रीडास्थल,	आत्मनः	अपने (कर्दमजी) को ही
विश्रामसंवेश	बैठक,		
प्राङ्गण	आंगन,	विस्मापनं इव	चकित-सा करने वाला था ॥२१॥
अजिरैः	चौक		

ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा ।
सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥२२॥

ईदृक् गृहं तत् पश्यन्ती न अति प्रीतेन चेतसा सर्वभूत आशय अभिज्ञः प्रावोचत् कर्दमः स्वयम् ॥२२॥

तत् ईदृक्	उस ऐसे	आशयः अभिज्ञः	चित्तकी बात जाननेवाले
गृहं पश्यन्ती	गृहको देखकर भी	स्वयं कर्दमः	स्वयं कर्दमजीने
चेतसा	चित्तसे	प्रावोचत्	कहा ॥२२॥
अति प्रीतेन न	बहुत प्रसन्न नहीं हुई ।		
सर्वभूत	सब प्राणियोंके		

*कर्दम उवाच**-

निमज्ज्यास्मिन् ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ।
इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥

निमज्ज्य अस्मिन् ह्रदे भीरु विमानं इदं आरुह इदं शुक्ल कृतं तीर्थं आशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥

भीरु	भीरु !	**इदं तीर्थं**	यह तीर्थ
अस्मिन् ह्रदे	इस सरोवरमें	**नृणां**	मनुष्यों की
निमज्ज्य	स्नान करके	**आशिषां यापकं**	कामनाओंको प्राप्त
इदं विमानं	इस विमानपर		करानेवाला
आरुह	चढ़ो ।		है ॥२४॥
शुक्ल कृतं	भगवान का बनाया		

*मैत्रेय उवाच**-

सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ।
सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥

सा तत् भर्तुः समादाय वचः कुवलय ईक्षणा सरजं बिभ्रती वासः वेणीभूतान् च मूर्धजान् ॥२४॥

सा कुवलय ईक्षणा	वह कमल लोचना (देवहूति)	**सरजं वासः च वेणीभूतान् मूर्धजान्**	मैले वस्त्र और जटा बने केशोंको
तत् भर्तुः वचः समादाय	उस पतिके वचनको स्वीकार करके	**बिभ्रती**	धारण किये ॥२४॥

अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम् ।
आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥२५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबल स्तनं आविवेश सरस्वत्याः सरः शिव जलाशयम् ॥२५॥

मलपङ्केन	मैलके कीचड़से	**सरस्वत्याः**	सरस्वतीके
संच्छन्नं	ढका हुआ	**शिव जलाशयं**	पवित्र जलसे भरे
अङ्गं च	शरीर था तथा	**सरः आविवेश**	सरोवरमें प्रवेश
स्तनं शबल	स्तन क्रान्तिहीन थे।		किया ॥२५॥

सान्तःसरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः।
सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥२६॥

स अन्तः सरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः सर्वाः किशोर वयसः ददर्श उत्पल गन्धयः ॥२६॥

स	उसने	**ददर्श**	देखीं।
अन्तः सरसि	सरोवरके भीतर (बने)	**सर्वाः**	(वे) सब
वेश्मस्थाः	घरमें रहनेवाली	**किशोर वयसः**	किशोरावस्थावाली
शतानि दश	एक हजार	**उत्पल गन्धयः**	कमलगन्धा थीं। २६॥
कन्यकाः	कन्यायें		

तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः।

तां दृष्ट्वा सहसा उत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः

तां	उस (देवहूति) को	**सहसा उत्थाय**	सहसा खड़ी होगयीं,
दृष्ट्वा	देखकर	**प्राञ्जलयः प्रोचुः**	हाथ जोड़कर बोलीं—
स्त्रिया	वे स्त्रियां		

स्त्रिय ऊचुः*—

वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥

वयं कर्मकरीः तुभ्यं शाधि नः करवाम किं ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है।

वयं	हम सब	**तुभ्यं किं करवाम** आपकी क्या सेवा
कर्मकरीः	सेविकायें हैं,	करें ॥२७॥
नः शाधि	हमें आज्ञा दीजिए,	

*मैत्रेय उवाच**–

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ।
दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् दुकूले निर्मले नूत्ने ददुः अस्यै च मानदाः ॥२८॥

मानदाः	(स्वामिनीका) सम्मान करती हुई	**स्नानेन**	
		स्नापयित्वा	स्नान कराके,
तां	उनको	**च अस्यै**	फिर इनको
महार्हेण	बहुमूल्य (उबटन, तैल आदि) से	**निर्मले नूत्ने**	निर्मल नवीन
		दुकूले ददुः	दुकूल दिये ॥२८॥

भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च ।
अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥२९॥

भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च अन्नं सर्वं गुण उपेतं पानं च एव अमृत आसवम् ॥२९॥

परार्ध्यानि	बहुत मूल्यवाले	**एव**	तथा
वरीयांसि	उत्तम	**अमृत आसवं**	अमृतके समान आसव
च द्युमन्ति	तथा जगमगाते		
भूषणानि	आभूषण दिये,	**पानं च**	पीनेको भी दिया ॥२९॥
सर्वं गुण उपेतं	सब गुणोंसे युक्त		
अन्नं	भोजन		

अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् ।
विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥३०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ आदर्शे स्वं आत्मानं स्रग्विणं विरज अम्बरं विरजं कृत स्वस्त्ययनं कन्याभिः बहुमानितम् ॥३०॥

अथ	तदनन्तर	**विरजं**	निर्मल (शरीर)
आदर्शे	दर्पणमें	**कन्याभिः**	कन्याओं द्वारा
स्वं आत्मनं	अपने आपको (देखा)	**बहु मानितं**	बहु सम्मानित
		कृत स्वस्त्ययनं	मांगलिक शृङ्गार किए ॥३०॥
स्रग्विणं	पुष्पमाला पहिने,		
विरज अम्बरं	निर्मल वस्त्र पहिने,		

स्नातं कृतशिरः स्नानं सर्वाभरणभूषितम् ।
निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥३१॥

स्नातं कृतशिरः स्नानं सर्व आभरण भूषितं निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत काञ्चन नूपुरम् ॥३१॥

कृतशिरः स्नानं	सिर धोकर स्नान करके	**निष्कग्रीवं**	गलेमें हार-हुमेल है,
स्नातं	(पुनः) स्नान किया है,	**वलयिनं**	(हाथोंमें) कङ्कण पहिने है,
सर्व आभरण भूषितं	सभी आभूषणोंसे भूषित है	**कूजत काञ्चन नूपुरं**	सोनेके नूपुर झंकार करते हैं ॥३१॥

श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरत्नया ।
हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥

श्रोण्योः अधस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरत्नया हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥

श्रोण्योः	नितम्बोंके	**काञ्च्या च**	सोनेकी करधनीसे एवं
अधस्तया	नीचे तक पहुँचती	**महार्हेण हारेण**	महा मूल्यवान हारसे
बहुरत्नया	बहुत रत्नजड़ी	**च रुचकेन**	और अंगरागसे
काञ्चन्या		**भूषितम्**	सुशोभित है ॥३२॥

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा ।
पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥३३॥

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्ण स्निग्ध अपाङ्गेन चक्षुषा पद्मकोश स्पृधा नीलैः अलकैः च लसत् मुखम् ॥३३॥

मुखं	(उसका) मुख	पद्मकोश स्पृधा	कमलकलीके समान
सुदता	सुन्दर दन्तावली,	नील अलकैः च	काली अलकोंसे भी घिरा
सुभ्रुवा	सुन्दर भौंहों		
स्निग्ध अपाङ्गेन	प्रेमपूर्ण कटाक्षवाले	लसत्	सुशोभित
चक्षुषा	नेत्रोंसे		है ॥३३॥

यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् ।
तत्र चास्ते सहस्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥३४॥

यदा सस्मार ऋषभं ऋषीणां दयितं पतिं तत्र च आस्ते सह स्त्रीभिः यत्र आस्ते स प्रजापतिः ॥३४॥

यदा	जब	तत्र च आस्ते	वहीं तो उपस्थित है
ऋषीणां ऋषभं	ऋषि श्रेष्ठ	यत्र स प्रजापतिः	जहाँ वे प्रजापति (कर्दमजी)
दयितं पतिं	(अपने) प्रिय पतिको		
सस्मार	(उसने) स्मरण किया (तो देखा)	आस्ते	विराजमान हैं ॥३४॥
सह स्त्रीभिः	स्त्रियों (सेविकाओं) के साथ		

भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ।
निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

भर्तुः पुरस्तात् आत्मानं स्त्री सहस्रवृतं तदा निशाम्य तद् योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

भर्तुः पुरस्तात्	पतिके सामने	आत्मानं	
स्त्री सहस्रवृतं	एक हजार स्त्रियोंसे घिरी	निशाम्य	अपनेको देखकर

तदा तद् योगगतिं	उस समय उनकी योगशक्तिके विषयमें	संशयं	सन्देह (इनकी योग शक्ति और कितनी अधिक है।)
		प्रत्यपद्यत	उत्पन्न हो गया ॥३५॥

स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् ।
आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥३६॥

स तां कृतमल स्नानां विभ्राजन्तीं अपूर्ववत् आत्मनः विभ्रतीं रूपं संवीत रुचिर स्तनीम् ॥३६॥

स तां	उन (कर्दमजी) ने उसको	आत्मनः अपूर्ववत्	अपना जैसा पहिले नहीं था
कृतमल स्नानां	स्नान करके निर्मल हुई,	रूपं बिभ्रतीं	सौन्दर्य धारण किए
संवीत रुचिर स्तनीं	ढके हुए सुन्दर वक्षवाली,	विभ्राजन्तीं	अत्यन्त सुशोभिता देखा ॥३६॥

विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ।
जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥३७॥

विद्याधरी सहस्रेण सेव्यमाना सुवाससं जातभावः विमानं तत् आरोहयत् अमित्रहन् ॥३७॥

अमित्रहन्	शत्रु नाशक विदुर !	सुवाससं	उत्तम वस्त्र पहिने (देवहूतिको)
विद्याधरी सहस्रेण	एक सहस्र विद्याधरियों द्वारा	जातभावः	प्रेमपूर्वक
सेव्यमाना	सुसेवित	तत् विमानं आरोहयत्	उस विमानपर चढ़ाया ॥३७॥

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रियया नुरक्तो
विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।

बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्य-

स्ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभःस्थः ॥३८॥

तस्मिन् अलुप्त महिमा प्रियया अनुरक्तः विद्याधरीभिः उपचीर्ण वपुः विमाने बभ्राज उत्कच कुमुद्गणवान् अपीच्यः ताराभिः आवृत इव उडुपतिः नभस्थः ॥३८॥

तस्मिन्	उस विमानमें	उत्कच	
प्रियया अनुरक्तः	अपनी प्रियामें अनुरक्त होनेपर भी	कुमुद्गणवान्	खिली कुमुदिनियोंकी माला पहिने
अलुप्त महिमा	(उनका) प्रभाव लुप्त नहीं हुआ था,	ताराभिः आवृत नभस्थः उडुपति	तारागणोंसे घिरे
विद्याधरीभिः	विद्याधरियों द्वारा	इव	आकाशमें स्थित चन्द्रके समान
उपचीर्ण वपुः	शारीरिक सेवा किए जाते हुए	अपीच्यः	अत्यन्त सुन्दर लगते
		बभ्राज	विराजमान थे ॥३८॥

तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्र-

द्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।

सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु

रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥३९॥

तेन अष्ट लोकप विहार कुलाचलेन्द्र द्रोणीषु अनङ्ग सख मारुत सौभगासु सिद्धैः नुतः द्युधुनिपात शिवः स्वनासु रेमे चिरं धनदवत् ललना वरूथी ॥३९॥

तेन	उस (विमान) से	कुलाचलेन्द्र	सुमेरुकी
धनदवत्	कुवेरके समान	अष्ट द्रोणीषु	आठो घाटियोंमें जो
चिरं	बहुत समय तक	अनङ्ग सख	कामदेवके मित्र
लोकप विहार	लोकपालोंकी विहार भूमि	मारुत सौभगासु	सुखद वायुवाली हैं एवं

द्यधुनिपात	गंगाजीके गिरनेके
शिवः स्वनासु	मंगल शब्दसे गूँजती हैं,
सिद्धैः नुतः	सिद्धों द्वारा प्रणमित होते,
ललना वरूथी	सुन्दरी विद्याधरियोंसे सेविता
रेमे	(देवहूतिके साथ) विहार किया ॥३९॥

वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके ।
मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥४०॥

वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्प भद्रके मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥४०॥

रामया रतः	अपनी प्रियामें अनुरक्त
स	उन्होंने
वैश्रम्भके	वैश्रम्भक (कुवेरके उद्यान)
सुरसने	सुरसन (वरुणके उद्यान)
नन्दने	नन्दन (इन्द्रके उद्यान)
पुष्प भद्रके	पुष्प भद्रक (धर्मराजके उद्यान)
चैत्ररथ्ये	चैत्ररथ (गन्धर्वोद्यान)
च मानसे	और मानसरोवरमें
रेमे	विहार किया ॥४०॥

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ।
वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान् यथानिलः ॥४१॥

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा वैमानिकान् अत्यशेत चरन् लोकान् यथा अनिलः ॥४१॥

महीयसा	श्रेष्ठ
भ्राजिष्णुना	कान्तिमान
कामगेन	इच्छानुसार चलनेवाले
विमानेन	विमानसे
अनिलः यथा	वायुके समान
लोकान् चरन्	लोकोंमें घूमते
वैमानिकान्	विमानारूढ़ (देवताओं) से भी
अत्यशेत	बढ़ गये ॥४१॥

किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् ।
यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥४२॥

किं दुरापादनं तेषां पुंसां उद्दाम चेतसां यैः आश्रितः तीर्थपदः चरणः व्यसन अत्ययः ॥४२॥

यैः	जिन्होंने	तेषां	उन
व्यसन अत्ययः	क्लेशहारी (भवभयहारी)	उद्दाम चेतसां	निर्बन्ध चित्तवाले
तीर्थपदः	पावन चरण भगवान्के	पुंसां	पुरुषोंके लिए
चरणः आश्रितः	चरणोंका आश्रय लिया है	किं दुरापादनं	क्या दुष्प्राप्य है ॥४२॥

प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान् स्वसंस्थया ।
बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

प्रेक्षयित्वा भुवः गोलं पत्न्यैः यावान् स्वसंस्थया बह्वाश्चर्यं महायोगी स्व आश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

भुवः गोलं	भूमण्डल	पत्न्यैः	पत्नीको
यावान्		प्रेक्षयित्वा	दिखलाकर
स्व संस्थया	जितना अपने विस्तारमें है,	महायोगी	(वे) महायोगी (कर्दमजी)
बह्वाश्चर्यं	बहुत आश्चर्योंसे भरा	स्व आश्रमाय	अपने आश्रम
		न्यवर्तत	लौट आये ॥४३॥

विभज्य नवधाऽऽत्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् ।
रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥४४॥

विभज्य नवधा आत्मानं मानवीं सुरत उत्सुकां रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान् मुहूर्तवत् ॥४४॥

आत्मानं	अपनेको	निरमयन्	रमण कराते
नवधा विभज्य	नौ रूपोंमें विभक्त करके,	वर्षपूगान्	बहुत वर्षोंको
		मुहूर्तवत्	एक मुहूर्तके समान
सुरत उत्सुकां	सहवासको उत्सुक	रेमे	विहारमें बिताया ॥४४॥
रामां मानवीं	पत्नी मनुपुत्रीको		

तस्मिन् विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ।
न चाबुध्यत तं कालं पत्यापीच्येन सङ्गता ॥४५॥

तस्मिन् विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिताः न च अबुध्यत तं कालं पत्या अपीच्येन सङ्गता ॥४५॥

तस्मिन् विमान	उस विमानमें
उत्कृष्टां रतिकरीं	श्रेष्ठ सुख देनेवाली
शय्यां श्रिताः	शय्यापर स्थित
अपीच्येन पत्याः	रूपवान पतिके
सङ्गताः	साथ मिलकर
तं कालं	उस समयको
न च अबुध्यत	नहीं ही जान सकी ॥४५॥

एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः ।
शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥४६॥

एवं योग अनुभावेन दम्पत्योः रममाणयोः शतं व्यतीयुः शरदः काम लालसयोः मनाक् ॥४६॥

एवं	इस प्रकार
योग अनुभावेन	योगके प्रभावसे
रममाणयोः	रमण करते
दम्पत्योः	उस दम्पति
काम लालसयोः	कामकी लालसा वालेको
मनाक्	बहुत थोड़े (क्षण) के समान
शतं शरदः	सौ वर्ष
व्यतीयुः	बीत गये ॥४६॥

तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित् ।
नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ॥४७॥

तस्यां आधत्त रेतः तां भावयन् आत्मना आत्मवित् नोधा विधाय रूपं स्वं सर्व सङ्कल्पवित् विभुः ॥४७॥

आत्मना	अपने आपसे
आत्मवित्	आत्मा तत्त्वको जाननेवाले
विभुः	समर्थ
सर्व सङ्कल्पवित्	सब संकल्पोंके वेत्ता (कश्यपजी) ने
स्वं नोधा रूपं	अपनेको नौ रूपोंमें
विधाय	विभक्त करके
तां भावयन्	उस (देवहूति) की भावना करते
तस्यां	उसमें
रेतः आधत्त	वीर्याधान किया ॥४७॥

अतः स सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ।
सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥४८॥

अतः सा सुषुवे सद्यः देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः सर्वाः ताः चारु सर्वाङ्ग्यः लोहित उत्पल गन्धयः ॥४८॥

अतः	अतः
सा देवहूतिः	उस देवहूतिने
सद्यः	तुरन्त
स्त्रियः प्रजाः	कन्या सन्तानोंको
सुषुवे	जन्म दिया ।
ताः सर्वाः	वे सब
चारु सर्वाङ्ग्यः	सर्वांग सुन्दरी
लोहित उत्पल	लाल कमलके समान
गन्धयः	सुगन्ध वाली थीं ॥४८॥

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदाऽऽलक्ष्योशती सती ।
स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥४९॥

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदा आलक्ष्य उशती सती स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥४९॥

सा उशती सती	उस शुद्ध चरिता सतीने
तदा पतिं	उस समय पतिको
प्रव्रजिष्यन्तं	संन्यास लेकर जानेको तत्पर
आलक्ष्य	लक्षित करके
विक्लवेन	व्याकुलतासे
विदूयता	संतप्त
हृदयेन	हृदयसे
स्मयमाना	(ऊपरसे) मुस्कराते हुए ॥४९॥

लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ।
उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥५०॥

लिखन्ति अधोमुखी भूमिं पदानख मणि श्रिया उवाच ललितां वाचं निरुध्य अश्रुकलां शनैः ॥५०॥

मणि श्रिया	मणिके समान शोभावाले
पदानख	चरणोंके नखसे
भूमिं लिखन्ति	भूमि कुरेदती
अधोमुखी	सिर झुकाये
शनैः	धीरे से
अश्रुकलां निरुध्य	आँसुओंको रोककर
ललितां वाचं	मधुर वाणीसे
उवाच	बोलीं ॥५०॥

देवहूतिरुवाच-

सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ।
अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥५१॥

सर्वं तत् भगवान् मह्यं उपोवाह प्रतिश्रुतं अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुं अर्हसि ॥५१॥

भगवान्	भगवानने	अथापि	फिर भी
मह्यं	जो मुझसे (विवाहके समय)	मे प्रपन्नाया	मुझ शरणागताको
प्रतिश्रुतं	प्रतिज्ञा की थी,	अभयं	(आपको) अभय
तत् सर्वं उपोवाह	वह सब पूरी करदी,	दातुं अर्हसि	देना चाहिए ॥५१॥

ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ।
कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥५२॥

ब्रह्मन् दुहितृभिः तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः कश्चित् स्यात् मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥५२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	वनं प्रव्रजिते	वनमें संन्यास लेकर जानेपर
दुहितृभिः तुभ्यं	पुत्रियोंके साथ आपको	कश्चित्	कोई
समाः पतयः	उनके समान पति	मे विशोकाय	मुझे शोकरहित करनेको
विमृग्याः	ढूंढ़ना चाहिए ।	स्यात्	होना चाहिए ॥५२॥
त्वयि	आपके		

एतावतालं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ।
इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥५३॥

एतावता अलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो इन्द्रिय अर्थ प्रसङ्गेन परित्यक्तः परात्मनः ॥५३॥

एतावता अलं कालेन	इतना पर्याप्त समय	परात्मनः परित्यक्तः	परमात्माको भूलकर

प्रभो	प्रभो !	मे व्यतिक्रान्तेन	मैंने व्यतीत कर दिया ॥५३॥
इन्द्रिय अर्थ प्रसङ्गेन	इन्द्रियोंके प्रयोजनको पूरा करनेमें		

इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ।
अजानन्त्या परं भाव तथाप्यस्त्वभयाय मे ॥५४॥

इन्द्रिय अर्थेषु सज्जन्त्याः प्रसङ्गः त्वयि मे कृतः अजानन्त्या परं भावं तथापि अस्तु अभयाय मे ॥५४॥

इन्द्रिय अर्थेषु	इन्द्रियोंके भोगोंमें	अजानन्त्या	न जानकर,
सज्जन्त्याः	आसक्त होकर	तथापि	फिर भी (यह
मे त्वयि	मैंने आपके साथ		आपका साथ)
प्रसङ्गः कृतः	सहवास किया,	मे अभयाय	मुझे अभय देनेवाला
परं भावं	(आपके) परम प्रभावको	अस्तु	होवे ॥५४॥

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥

सङ्गः यः संसृतेः हेतुः असत्सु विहितः अधिया स एव साधुषु कृतः निःसंगत्वाय कल्पते ॥५५॥

यः असत्सु	जो असत् पुरुषोंके साथ	स एव	वही (आसक्ति)
अधिया	अज्ञानवश	साधुषु कृतः	सत्पुरुषसे करनेपर
विहितः	की गयी	निःसंगत्वाय	अनासक्तिका
सङ्गः	आसक्ति	कल्पते	कारण हो जाती
संसृतेः हेतुः	जन्म-मरणका कारण होती है,		है ॥५५॥

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥५६॥

न इह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते न तीर्थपद सेवायै जीवन् अपि मृतः हि सः ॥५६॥

हि इह	क्योंकि इस (संसार) में	न तीर्थपद सेवायै	न पवित्र चरण (संतों) की सेवाके लिए
यत् कर्म	जो कर्म	सः जीवन् अपि	वह जीवित रहते भी
न धर्माय	न धर्मके लिए,	मृतः	मरा हुआ है ॥५६॥
न विरागाय	न वैराग्यके लिए		
कल्पते	किया जाता,		

साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् ।
यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥५७॥

स अहं भगवतः नूनं वञ्चिता मायया दृढं यत् त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥५७॥

सः अहं	वह मैं	विमुक्तिदं	मोक्ष देने वालेको
नूनं	निश्चय	प्राप्य	प्राप्त करके (भी)
भगवतः मायया	भगवान्‌की मायासे	बन्धनात्	बन्धनसे
दृढं वञ्चिता	भली प्रकार ठग ली गयी	न मुमुक्षेय	छूटनेकी इच्छा नहीं की ॥५७॥
यत् त्वां	जो आप		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ।
दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥१॥

निर्वेद वादिनीं एवं मनोः दुहितरं मुनिः दयालुः शालिनीं आह शुक्ल अभिव्याहृतं स्मरन् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	शुक्ल	
निर्वेद वादिनीं	वैराग्यकी बातें करनेवाली	अभिव्याहृतं	भगवान् विष्णुके कथनको
शालिनीं	शीलमयी	स्मरन् आह	स्मरण करते बोले ॥१॥
मनोः दुहितरं	मनुपुत्रीसे		
दयालुः मुनिः	दयालु मुनि (कर्दम) ने		

कर्दम उवाच*-

मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ।
भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्सम्प्रपत्स्यते ॥२॥

मा खिदः राजपुत्रि इत्थं आत्मानं प्रतिनिन्दिते भगवान् ते अक्षरः गर्भं अदूरात् सम्प्रपत्स्यते ॥२॥

राजपुत्रि	राजपुत्री !	खिदः मा	खेद मत करो,
इत्थं	इस प्रकार	अक्षरः भगवान्	अविनाशी भगवान्
आत्मानं		अदूरात्	शीघ्र
प्रतिनिन्दिते	अपनी निन्दा करते हुए	ते गर्भं	तुम्हारे गर्भमें
		प्रपत्स्यते	आवेंगे ॥२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च ।
तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥३॥

धृत व्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च तपः द्रविण दानैः च श्रद्धया च ईश्वरं भज ॥३॥

धृत व्रतासि	तुम व्रतधारिणी हो,	द्रविण दानैः च	तथा धनका दान करके,
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	श्रद्धया च	और श्रद्धा सहित
दमेन	इन्द्रिय दमनसे	ईश्वरं भज	ईश्वरका भजन करो ॥३॥
च नियमेन	और नियम पालन द्वारा,		
तपः	तपस्या करके		

स त्वयाऽऽराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः ।
छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥४॥

स त्वया आराधितः शुक्लः वितन्वन् मामकं यशः छेत्ता ते हृदय ग्रन्थि औदर्यः ब्रह्म भावनः ॥४॥

स त्वया	वह तुम्हारे द्वारा	ब्रह्म भावनः	ब्रह्मज्ञानका उपदेश करके
आराधितः	आराधना करनेपर	हृदय ग्रन्थिः	(अज्ञानरूपी) हृदय ग्रन्थि
शुक्लः	श्रीहरि	छेत्ता	काट देंगे ॥४॥
मामकं यशः	मेरे यशको		
वितन्विता	फैलाते		
ते औदर्यः	तुम्हारे पेटसे उत्पन्न होकर		

मैत्रेय उवाच–

देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः ।
सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥५॥

देवहूति अपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थं अभजत् गुरुम् ॥५॥

प्रजापतेः	प्रजापति (कर्दमके)	कूटस्थं गुरुं	कूटस्थ, जगद्गुरु
संदेशं	आदेशमें	पुरुषं	परम पुरुषका
गौरवेण	गौरव बुद्धि होनेसे	अभजत्	भजन करने
देवहूति अपि	देवहूतिने भी		लगी ॥५॥
सम्यक् श्रद्धाय	उसपर पूर्ण श्रद्धा करके		

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो यज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥६॥

तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः कार्दमं वीर्यं आपन्नः जज्ञे अग्निः इव दारुणि ॥६॥

बहुतिथे काले	बहुत समय बीत जानेपर	आपन्नः	कर्दमजीके वीर्यका आश्रय लेकर
भगवान्		तस्यां	उन (देवहूति) से
मधुसूदनः	भगवान् मधुसूदन	दारुणि	काष्ठमें
कार्दमं वीर्यं		अग्निः इव	अग्निके समान
		जज्ञे	उत्पन्न हुए ॥६॥

अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ।
गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥७॥

अवादयन् तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्ति अप्सरसः मुदा ॥७॥

तदा	उस समय	गन्धर्वाः तं	गन्धर्व उनका (यश)
व्योम्नि	आकाशमें	गायन्ति स्म	गाने लगे,
घनाघनाः	सघनमेघ	मुदा	हर्षसे
वादित्राणि	बाजे	अप्सरसः	अप्सराएँ
अवादयन्	बजाने लगे,	नृत्यन्ति	नाचने लगीं ॥७॥

पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः ।
प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च ॥८॥

पेतुः सुमनसः दिव्याः खेचरैः अपवर्जिताः प्रसेदुः च दिशः सर्वाः अम्भांसि च मनांसि च ॥८॥

खेचरैः		**सर्वाः दिशः**	सब दिशायें
अपवर्जिताः	देवताओं द्वारा छोड़ी गयी	**च अम्भांसि**	और जल
		च मनांसि	तथा (लोगोंके) मन
दिव्याः सुमनसः	दिव्य पुष्पोंकी (झड़ी)	**प्रसेदुः**	निर्मल हो गये ॥८॥
पेतुः	गिरने लगी,		

तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् ।
स्वयम्भूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥९॥

तत् कर्दम आश्रम पदं सरस्वत्या परिश्रितं स्वयम्भूः साकं ऋषिभिः मरीचि आदिभिः अभ्ययात् ॥९॥

सरस्वत्याः	सरस्वती नदीके	**मरीचि आदिभिः**	मरीचि आदि
परिश्रितं	किनारे स्थित	**ऋषिभिः साकं**	ऋषियोके साथ
तत् कर्दम	उस कर्दमजीके	**स्वयम्भूः**	ब्रह्माजी
आश्रम पदं	आश्रम स्थानपर	**अभ्ययात्**	आये ॥९॥

भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ।
तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥१०॥

भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेन अंशेन शत्रुहन् तत्त्व संख्यान विज्ञप्त्यैः जातं विद्वान् अजः स्वराट् ॥१०॥

अजः स्वराट्	सर्वज्ञ ब्रह्माजी	**तत्त्व संख्यान**	तत्त्वोंकी संख्या करनेवाले (सांख्य शास्त्र) का
विद्वान्	(यह) जानकर कि		
परम् ब्रह्म	परम ब्रह्म		
भगवन्तं	भगवान्को	**विज्ञप्त्यैः**	प्रचार (उपदेश) करनेके लिए
सत्त्वेन अंशेन	सत्त्वमय अंशसे	**जातं**	उत्पन्न हुए हैं (आये) ॥१०॥

सभाजयन् विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ।
प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥११॥

सभाजयन् विशुद्धेन चेतसा तत् चिकीर्षितं प्रहृष्यमाणैः असुभिः कर्दमं च इदं अभ्यधात् ॥११॥

तत् चिकीर्षितं	उन (भगवान्) की जो करनेकी इच्छा थी उसका
विशुद्धेन चेतसा	शुद्ध चित्तसे
सभाजयन्	आदर करते हुए,
असुभिः	
प्रहृष्यमाणैः	प्राणोंसे हर्षित होकर
कर्दमं च	कर्दमजीसे
इदं अभ्यधात्	यह बोले ॥११॥

ब्रह्मोवाच–

त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ।
यन्मे सञ्जगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥१२॥

त्वया मे अपचितिः तात कल्पिता निर्व्यलीकतः यत् मे सञ्जगृहे वाक्यं भवान् मानद मानयन् ॥१२॥

तात	तात !
त्वया मे	तुम्हारे द्वारा मेरी
अपचितिः	पूजा
निर्व्यलीकतः	निष्कपट भावसे
कल्पिता	हुई है,
यत्	क्योंकि
भवान् मानद	तुम (दूसरोंका) सम्मान करनेवाले हो,
मे वाक्यं	मेरी बातका
मानयन्	सम्मान करते हुए
सञ्जगृहे	(उसे) स्वीकार किया ॥१२॥

एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः ।
बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥१३॥

एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः बाढं इति अनुमन्येत गौरवेण गुरोः वचः ॥१३॥

पुत्रकैः	पुत्रों द्वारा	गुरोः वचः	उन श्रेष्ठकी बात
पितरि	पिताकी	बाढं इति	'ठीक है' इस प्रकार
एतावत्येव	इतनी ही	गौरवेण	आदरपूर्वक
शुश्रूषा	सेवा	अनुमन्येत	स्वीकार करे ॥१३॥
कार्या	करनी चाहिए कि		

इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः ।
सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥१४॥

इमाः दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः सर्गं एतं प्रभावैः स्वैः बृंहयिष्यन्ति अनेकधा ॥१४॥

सभ्य वत्स	शिष्ट वत्स !	एतं सर्गं	इस सृष्टिको
इमा सुमध्यमाः	ये क्षीण कटिवाली	अनेकधा	अनेक प्रकारसे
तव दुहितरः	तुम्हारी पुत्रियाँ	बृंहयिष्यन्ति	बढ़ावेंगी ॥१४॥
स्वैः प्रभावैः	अपने प्रभावसे		

अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि ।
आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥१५॥

अतः त्वं ऋषि मुख्येभ्यः यथाशीलं यथारुचिः आत्मजाः परिदेहि अद्य विस्तृणीहि यशः भुवि ॥१५॥

अतः त्वं अद्य	अतः तुम आज	आत्मजाः	
ऋषि मुख्येभ्यः	मुख्य ऋषियोंको	परिदेहि	कन्याएँ दे दो ।
यथाशीलं	शीलके अनुसार और	भुवि	(इस प्रकार) पृथ्वीमें
यथारुचिः	रुचिके अनुसार	यशः विस्तृणीहि	यशका विस्तार करो ॥१५॥

वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ।
भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥१६॥

वेद अहं आद्यं पुरुषं अवतीर्णं स्वमायया भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥१६॥

मुने	मुने !
अहं वेद	मैं जानता हूँ—
भूतानां	प्राणियोंकी
शेवधिं	कल्याण सीमा रूप
देहं बिभ्राणं	शरीर धारण करके
स्वमायया	अपनी मायासे
आद्यं पुरुषं	आदि पुरुषने
कपिलं अवतीर्णं	कपिल रूपमें अवतार लिया है ॥१६॥

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरन् जटाः ।
हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥१७॥

ज्ञान विज्ञान योगेन कर्मणां उद्धरन् जटाः हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रा पदाम्बुजः ॥१७॥

ज्ञान विज्ञान योगेन	ज्ञान-विज्ञान द्वारा
कर्मणां जटाः	कर्मोंकी जड़ (वासनाका)
उद्धरन्	उखाड़ने (नाश करने)के लिए
हिरण्यकेशः	सुनहले बाल
पद्माक्षः	कमल-नयन
पद्ममुद्रा	कमल चिह्न
पदाम्बुजः	चरण-कमल वाले ॥१७॥

एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ।
अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥१८॥

एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः अविद्या संशय ग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥१८॥

मानवि	मनु पुत्री !
एष ते गर्भं	यह तुम्हारे गर्भमें
प्रविष्टः	आये
कैटभार्दनः	कैटभारि भगवान् हैं ।
अविद्या	(तुम्हारी) अविद्या जनित
संशय ग्रन्थि	मोहकी गाँठको
छित्त्वा	काटकर
गां विचरिष्यति	पृथ्वीपर घूमेंगे ॥१८॥

अयं सिद्धगणाधीशः साङ्ख्याचार्यैः सुसम्मतः ।
लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

अयं सिद्धगण अधीशः साङ्ख्याचार्यैः सुसम्मतः लोके कपिल इति आख्यां गन्ताः ते कीर्ति वर्धनः ॥१९॥

अयं	ये	**आख्यां गन्ताः**	नामसे प्रसिद्ध होकर
सिद्धगण अधीशः	सिद्धगणोंके अधीश्वर	**ते कीर्ति वर्धनः**	तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेवाले होंगे ॥१९॥
साङ्ख्याचार्यैः	सांख्याचार्योंके		
सुसम्मतः	आदरणीय		
लोके कपिल इति	लोकमें कपिल इस		

मैत्रेय उवाच–

तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सहनारदः ।
हंसो हंसेन यानेन त्रिधामपरमं ययौ ॥२०॥

ताः आश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सह नारदः हंसः हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥

ताः आश्वास्य	उन दोनोंको आश्वासन देकर	**कुमारैः**	सनकादि कुमारों तथा
जगत्स्रष्टा	जगतकी सृष्टि करनेवाले	**नारदः सह**	नारदजीके साथ
हंसः	विवेकी (ब्रह्माजी)	**त्रिधाम परमं**	त्रिलोकीसे परे (अपने लोक)
हंसेन यानेन	हंसारूढ होकर	**ययौ**	चले गये ॥२०॥

गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ।
यथोदितं स्वदुहितः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥२१॥

गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमः तेन चोदितः यथा उदितं स्वदुहितः प्रादात् विश्वसृजां ततः ॥२१॥

क्षत्तः	विदुर	**ततः स्वदुहितः**	तब अपनी कन्याओंको
शतधृतौ गते	ब्रह्माजीके चले जानेपर	**विश्वसृजां**	प्रजापतियोंको
तेन चोदितः	उनसे प्रेरित	**प्रादात्**	दिया ॥२१॥
कर्दमः	कर्दमजीने		

मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ।
श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥

मरीचये कलां प्रादात् अनसूयां अथ अत्रये श्रद्धां अङ्गिरसे अयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥

कलां	कला	अङ्गिरसे	
मरीचये प्रादात्	मरीचिको दी,	अयच्छत्	अंगिराको दे दी,
अथ अनसूयां	तथा अनुसूया	हविर्भुवं	हविर्भू
अत्रये	अत्रिको,	पुलस्त्याय	पुलस्त्यको ॥२२॥
श्रद्धां	श्रद्धा		

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ।
ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥२३॥

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीं ख्यातिं च भृगवे अयच्छत् वसिष्ठाय अपि अरुन्धतीम् ॥२३॥

गतिं	गति	ख्यातिं च	तथा ख्यातिको
पुलहाय युक्तां	पुलहके उपयुक्त थी, उन्हें	भृगवे अयच्छत्	भृगुको दी
		अरुन्धतीं अपि	अरुन्धतीको भी
क्रियां सतीं च	और सती क्रियाको	वसिष्ठाय	वसिष्ठको दी ॥२३॥
क्रतवे	क्रतुको,		

अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते ।
विप्रर्षभान् कृतोद्वाहान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

अथर्वणे अददात् शान्तिं यया यज्ञः वितन्यते विप्रर्षभान् कृतः उद्वाहान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

अथर्वणे	अथर्वाको	विप्रर्षभान्	(उन) श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका
शान्तिं अददात्	शान्ति दी,	सदारान्	उनकी पत्नियोंके साथ
यया	जिसके द्वारा		
यज्ञः वितन्यते	यज्ञका कर्म विस्तार होता है,	समलालयत्	अच्छी प्रकार सत्कार किया ॥२४॥
कृतः उद्वाहान्	विवाह करके		

ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् ।
प्रातिष्ठन्नन्दिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥२५॥

ततः त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तं प्रातिष्ठं नन्दि आपन्नाः स्वं स्वं आश्रम मण्डलम् ॥२५॥

क्षत्तः	विदुर !	नन्दि आपन्नाः	आनन्दित होकर
ततः	तदनन्तर	स्वं स्वं	अपने-अपने
त कृतदाराः	वे विवाहित	आश्रम मण्डलं	आश्रम स्थानको
ऋषयः	ऋषि	प्रातिष्ठन्	चले गये ॥२५॥
तं निमन्त्र्य	उनसे आज्ञा लेकर		

स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ।
विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

स च अवतीर्णं त्रियुगं आज्ञाय विबुधर्षभं विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

स च	उन (कर्दमजी)ने भी	आज्ञाय	जानकर
विबुधर्षभं	देवोत्तम	विविक्त	एकान्तमें
त्रियुगं	तीन (सत् , त्रेता, द्वापर) में अवतार लेनेवाले	उपसङ्गम्य	उनके पास जाकर
		प्रणम्य	प्रणाम करके
		समभाषत	(उनसे) कहा ॥२६॥
अवतीर्णं	(भगवान्‌को) अवतरित		

*कर्दमोवाच**–

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ।
कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥२७॥

अहो पापच्यमानानां निरये स्वै अमङ्गलैः कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्ति इह देवताः ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो	अहो !	नूनं इह	निश्चय इस संसारमें
स्वैः अमङ्गलैः	अपने पापोंसे	देवताः	देवता
निरये	नरकमें	भूयसा कालेन	बहुत समयमें
पापच्यमानानां	पीड़ा पाते	प्रसीदन्ति	प्रसन्न होते हैं ॥२७॥

बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ।
द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥

बहुजन्म विपक्वेन सम्यक् योग समाधिना द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्य आगारेषु यत् पदम् ॥२८॥

यतयः	योगी लोग	शून्य आगारेषु	एकान्तमें
बहुजन्म	अनेक जन्मोंमें	यत् पदं	जिनके स्वरूपको
विपक्वेन	परिपक्व हुई	द्रष्टुं यतन्ते	दर्शन करनेके लिए
सम्यक्	भली प्रकार की गयी		प्रयत्न करते
योग समाधिना	योगकी समाधिसे		हैं ॥२८॥

स एव भगवानद्य हेलनं नगणय्य नः ।
गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥

स एव भगवान् अद्य हेलनं नगणय्य नः गृहेषु जातः ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥

स एव भगवान्	वही भगवान्	अद्य	आज
यः स्वानां	जो अपने जनोंके	ग्राम्याणां	ग्रामीणों (भोगमें
पक्षपोषणः	पक्षपोषक हैं,		लगे लोगों) के
नः हेलनं	हमारे द्वारा हुई	गृहेषु जातः	घरमें अवतीर्ण हुए
	उपेक्षा		हैं ॥२९॥
नगणय्य	पर ध्यान न देकर		

स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ।
चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥

स्वीयं वाक्यं ऋतं कर्तुं अवतीर्णः असि मे गृहे चिकीर्षुः भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥

भक्तानां	भक्तोंका	ज्ञानं चिकीर्षुः	सांख्य शास्त्रके
मानवर्धनः	सम्मान बढ़ानेवाले		उपदेशकी इच्छासे
भगवान्	भगवान्	मे गृहे	मेरे घरमें
स्वीयं वाक्यं	अपनी बातको	अवतीर्णः असि	अवतार लिया
ऋतं कर्तुं	सच करनेके लिए,		है ॥३०॥

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥३१॥

तानि एव ते अभिरूपाणि रूपाणि भगवन् तव यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानां अरूपिणः ॥३१॥

ते अरूपिणः	आप निराकारके	भगवन्	भगवन् !
अभिरूपाणि	अनुरूप	यानि यानि च	जो जो भी
तानि एव	वही	तव स्वजनानां	आपके भक्तोंको
रूपाणि	रूप हैं	रोचन्ते	प्रिय लगते हैं । ३१॥

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा
सदाभिवादार्हणपादपीठम् ।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोध-
वीर्यश्रिया पूर्त्तमहं प्रपद्ये ॥३२॥

त्वां सूरिभिः तत्त्व बुभुत्सया अद्धा सदा अभिवाद अर्हण पादपीठं ऐश्वर्य वैराग्य यशः अवबोध वीर्य श्रिया पूर्त्त अहं प्रपद्ये ॥३२॥

तत्त्व बुभुत्सया	तत्त्वज्ञान पानेकी इच्छावाले	यश अवबोध	यश, ज्ञान
		वीर्य श्रिया	वीर्य और लक्ष्मी (इन छः ऐश्वर्योंसे)
सूरिभिः	विद्वानों द्वारा		
पादपीठं	आपका पादपीठ	पूर्त्त त्वां	परिपूर्ण आपकी
अद्धा सदा	प्रत्यक्ष नित्य	अहं प्रपद्ये	मैं शरण लेता
अभिवाद अर्हण	वन्दनीय है ।		हूँ ॥३२॥
ऐश्वर्य वैराग्य	ऐश्वर्य, वैराग्य,		

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं
कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ।

आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं
स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालं आत्मानुभूत्या अनुगतं प्रपञ्चं स्वच्छन्द शक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

परं प्रधानं पुरुषं	परमब्रह्म, प्रकृति, पुरुष
महान्तं	महत्तत्त्व,
कालं	काल,
कविं	उसके ज्ञाता,
त्रिवृतं	त्रिविध अहंकार,
लोकपालं	सब लोक और लोकपाल (आप ही हैं)
आत्मानुभूत्या	आत्मानुभूतिसे
प्रपञ्चं	विश्वप्रपंचको
अनुगतं	अपनेमें लीन कर लेनेवाले
स्वच्छन्द शक्तिं	स्वतन्त्र शक्तिवाले
कपिलं	(आप) कपिल भगवानकी
प्रपद्ये	(मैं) शरण लेता हूँ ॥३३॥

आ स्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां
त्वयावतीर्णार्ण उताप्तकामः ।
परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं
चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः ॥३४॥

आ स्माभि पृच्छे अद्य पतिं प्रजानां त्वया अवतीर्ण अर्ण उत आप्तकामः परिव्रजत् पदवीं आस्थितः अहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः ॥३४॥

पतिं प्रजानां	प्रजाके स्वामी
आ स्माभिः	आपसे
पृच्छे	पूछता (अनुमति लेता) हूँ,
अद्य	आज
त्वया अवतीर्ण	आपके अवतार लेनेसे
अर्ण	(मैं तीनों) ऋणोंसे मुक्त हो गया
उत आप्तकामः	तथा मेरी सब कामनायें प्राप्त (पूर्ण) हो गयीं ।
परिव्रजत् पदवीं	संन्यास मार्गको
आस्थितः	ग्रहण करके,

अहं त्वां	मैं आपको	विशोकः चरिष्ये	शोक रहित विचरण
हृदि युञ्जन्	हृदयमें चिन्तन करता		करूँगा ॥३४॥

*कपिल उवाच**–

मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ।
अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥३५॥

मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्य लौकिके अथ अजनि मया तुभ्यं यत् अवोचं ऋतं मुने ॥३५॥

मुने हि	मुने ! क्योंकि	प्रमाणं	प्रमाण है,
सत्य लौकिके	वैदिक और लौकिक (दोनों विषयोंमें)	अथ मया	अतः मैंने
		तुभ्यं यत् अवोचि	तुमसे जो कहा था,
लोकस्य	लोगोंके लिए	ऋतं अजनि	उसे सत्य करनेको
मया प्रोक्तं	मेरा कहा ही		जन्म लिया है ॥३५॥

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् ।
प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने ॥३६॥

एतत् मे जन्म लोके अस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात् प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मताय आत्मदर्शने ॥३६॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	आत्मदर्शने	आत्म-दर्शनमें
एतत् मे जन्म	यह मेरा अवतार	सम्मताया	उपयोगी
दुराशयात्	लिंग शरीरसे	तत्त्वानां	
मुमुक्षूणां	छूटनेकी इच्छावालों के लिए	प्रसंख्यानाय	तत्त्वोंकी गणनाके लिए है ॥३६॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँसे लेकर अध्याय २९ तक सब कहीं 'कपिल उवाच' के लिए 'श्रीभगवानुवाच' है और अध्याय ३० से 'कपिल उवाच' है।

एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ।
तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥३७॥

एष आत्मपथः अव्यक्तः नष्टः कालेन भूयसा तं प्रवर्तयितुं देहं इमं विद्धि मया भृतम् ॥३७॥

एष अव्यक्तः	यह सूक्ष्म	मया इमं	मैंने यह
आत्मपथः	आत्मज्ञानका मार्ग	देह भृतं	शरीर धारण किया है,
भूयसा कालेन	बहुत समयसे		
नष्टः	लुप्त हो गया है,	विद्धि	यह जानो ॥३७॥
तं प्रवर्तयितुं	उसे प्रवर्तित करनेके लिए		

गच्छ कामं मयाऽऽपृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ।
जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥३८॥

गच्छ कामं मया आपृष्टः मयि संन्यस्त कर्मणा जित्वा सुदुर्जयं मृत्युं अमृत त्वाय मां भज ॥३८॥

गच्छ कामं	इच्छानुसार जाओ,	मृत्युं	मृत्युको
मया आपृष्टः	मैं अनुमति देता हूँ ।	जित्वा	जीतकर
मयि	मुझमें	अमृतत्वाय	मोक्ष प्राप्तके लिए
कर्मणा संन्यस्त	कर्मोंका समर्पण करके	मां भज	मेरा भजन करो ॥३८॥
सुदुर्जयं	अत्यन्त दुर्जय		

मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ।
आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥३९॥

मां आत्मानं स्वयं ज्योतिः सर्वभूत गुहाशयं आत्मनि एव आत्मना वीक्ष्य विशोकः अभयं ऋच्छसि ॥३९॥

मां आत्मानं	मुझ परमात्मा,	गुहाशयं	अन्तःकरणमें स्थितको
स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश,		
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	आत्मनि एव	अपनेमें ही

आत्मना वीक्ष्य	अपने आपसे देखकर	अभयं ऋच्छसि	अभय-पद पा
विशोकः	शोक रहित होकर		लोगे ॥३९॥

मात्र आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ।
वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥४०॥

मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्व कर्मणां वितरिष्ये यया च असौ भयं च अतितरिष्यति ॥४०॥

सर्व कर्मणां	सब कर्म संस्कारोंको	यया च	जिससे कि
शमनीं	मिटानेवाली	असौ	यह
आध्यात्मिकीं		भयं च	भय (आवागमन)को
विद्यां	अध्यात्म विद्या	अतितरिष्यति	पार कर
मात्रे	माताको		जायँगी ॥४०॥
वितरिष्ये	बाँटूँगा (दूँगा)		

मैत्रेय उवाच–

एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ।
दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥४१॥

एवं समुदितः तेन कपिलेन प्रजापतिः दक्षिणीकृत्य तं प्रीतः वनं एव जगाम ह ॥४१॥

एवं तेन	इस प्रकार उन	प्रीतः	प्रसन्न होकर
कपिलेन	भगवान् कपिल द्वारा	वनं एव	वनको ही
समुदितः	कहनेपर	जगाम ह	तुरन्त चले
प्रजापतिः	प्रजापति (कर्दमजी)		गये ॥४१॥
तं दक्षिणीकृत्य	उनकी परिक्रमा करके		

व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ।
निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥४२॥

व्रतं स आस्थितः मौनं आत्मैक शरणः मुनिः निःसङ्गः व्यचरत् क्षोणीं अनग्निः अनिकेतनः ॥४२॥

स मुनिः	उन मुनिने	अनग्निः	अग्नि रहित,
मौनं व्रतं	मौन व्रत	अनिकेतनः	बिना निवास बनाये,
आस्थितः	धारण कर लिया	निःसङ्गः	अनासक्त होकर
आत्मैक शरणः	केवल भगवानके सहारे	क्षोणीं व्यचरत्	पृथ्वीपर घूमने लगे ॥४२॥

मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् ।
गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥४३॥

मनः ब्रह्मणि युञ्जानः यत् तत् सदसतः परं गुण अवभासे विगुणः एक भक्त्या अनुभाविते ॥४३॥

यत्	जो	गुण अवभासे	गुणोंके प्रकाशक
एक भक्त्या	अनन्य भक्तिसे	विगुणः	निर्गुण
अनुभाविते	प्राप्त होनेवाले,	ब्रह्मणि	ब्रह्ममें
तत् सदसतः परं	उस कार्य-कारणसे परे	मनः युञ्जानः	मन लगा दिया ॥४३॥

निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् ।
प्रत्यक्प्रशान्तधोर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥४४॥

निरहंकृतिः निर्ममः च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् प्रत्यक् प्रशान्त धीः धीरः प्रशान्त उर्मि इव उदधिः ॥४४॥

प्रशान्त उर्मि	शान्त लहरोंवाले	स्वदृक्	आत्मदर्शी
उदधिः इव	समुद्रके समान	प्रत्यक् प्रशान्तः	
निरहंकृतिः	अहंकार रहित,	धीः	अन्तर्मुखी बुद्धिसे
निर्ममः च	तथा ममताहीन,		अत्यन्त शान्त
निर्द्वन्द्वः	(सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंसे रहित,	धीरः	धैर्यवान हो गये ॥४४॥
समदृक्	समदर्शी,		

वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ।
परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि परेण भक्तिभावेन लब्ध आत्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

सर्वज्ञे	सर्वज्ञ	**भक्ति भावेन**	भक्ति भावसे
प्रत्यगात्मनि	अपने भीतर स्थित आत्मरूप	**लब्ध आत्मा**	चित्त लगाकर
		मुक्तबन्धनः	बन्धनमुक्त हो गये ॥४५॥
भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें		

आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् ।
अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥४६॥

आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तं अवस्थितं अपश्यत् सर्वभूतानि भगवति अपि च आत्मनि ।४।६॥

आत्मानं	अपनेको और	**सर्वभूतानि**	सब प्राणियोंको
भगवन्तं	भगवानको	**भगवति अपि च**	भगवानको भी
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंमें	**आत्मनि**	अपनेमें
अवस्थितं	स्थित (तथा)	**अपश्यत्**	देखते थे ॥४६॥

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ।
भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥४७॥

इच्छा द्वेष विहीनेन सर्वत्र समचेतसा भगवद् भक्ति युक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥६७॥

इच्छा द्वेष विहीनेन	राग-द्वेष रहित होकर,	**भगवद् भक्ति युक्तेन**	भगवानकी भक्तिसे युक्त होकर
सर्वत्र	सब कहीं	**भागवती गतिः**	भगवानका परमपद
समचेतसा	समान चित्त रखकर,	**प्राप्ता**	प्राप्त कर लिया ॥४७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

शौनक उवाच-

कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ।
जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥१॥

कपिलः तत्त्व संख्याता भगवान् आत्ममायया जातः स्वयं अजः साक्षात् आत्म प्रज्ञप्तये नृणाम् ॥१॥

नृणां	मनुष्योंको	साक्षत् अजः	साक्षात् अजन्मा
आत्म प्रज्ञप्तये	आत्मज्ञानका उपदेश करनेके लिए	स्वयं भगवान्	स्वयं भगवान्ने
		आत्ममायया	अपनी मायासे
तत्त्व संख्याता	तत्त्वोंकी गणना करनेवाले	कपिलः जातः	कपिल रूपमें अवतार लिया ॥१॥

न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ।
विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥२॥

न हि अस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनां विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मे असवः ॥२॥

हि	क्योंकि	पुंसां वरिम्णः	पुरुषश्रेष्ठ
भूरि श्रुतदेवस्य	भगवानके बहुत चरित सुननेपर भी	अस्य	इन (कपिलदेवजीकी)
सर्वयोगिनां		वर्ष्मणः	कीर्ति (सुनते)
विश्रुतौ	सब योगियोंमें प्रसिद्ध	मे असवः	मेरे प्राण
		तृप्यन्ति न	तृप्त नहीं होते ॥२॥

यद्यद्विधत्ते भगवान् स्वच्छन्दात्माऽऽत्ममायया ।
तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥३॥

यत् यत् विधत्ते भगवान् स्वच्छन्दात्मा आत्ममायया तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यानि अनुकीर्तय ॥३॥

स्वच्छन्दात्मा	सर्वथा स्वतन्त्र	**मे श्रद्दधानस्य**	मुझ श्रद्धालुसे
भगवान्	भगवान	**तानि कीर्तन्यानि**	उन वर्णनीय (चरितों) का
आत्ममायया	अपनी मायासे	**अनुकीर्तय**	वर्णन कीजिए ॥३॥
यत् यत् विधत्ते	जो जो करते हैं,		

सूत उवाच-

द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा ।
प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥४॥

द्वैपायन सखः तु एवं मैत्रेयः भगवान् तथा प्राह इदं विदुरं प्रीतः आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥४॥

एवं	इसी प्रकार	**आन्वीक्षिक्यां**	आत्मज्ञानके उपदेशके प्रति
द्वैपायन सखः	व्यासजीके मित्र	**प्रचोदितः**	प्रेरित किये जानेपर
भगवान् मैत्रेयः तु	भगवान् मैत्रेय तो	**प्रीतः विदुरं**	प्रसन्न होकर विदुरसे
तथा	इसी तरह	**प्राह**	बोले ॥४॥

मैत्रेय उवाच-

पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ।
तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान् कपिलः किल ॥५॥

पितरि प्रस्थिते अरण्यं मातुः प्रिय चिकीर्षया तस्मिन् विन्दुसरे अवात्सीत् भगवान् कपिलः किल ॥५॥

भगवान् कपिलः	भगवान कपिल	**प्रिय चिकीर्षया**	प्रसन्न करनेके लिए
पितरि अरण्यं	पिताके वनमें	**तस्मिन् विन्दुसरे**	उस विन्दु सरोवरपर
प्रस्थिते	चले जानेपर	**किल अवात्सीत्**	ही रहने लगे ॥५॥
मातुः	माताको		

तमासीनमकर्माणं तत्त्वग्रामाग्रदर्शनम् ।
स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥६॥

तं आसीनं अकर्माणं तत्त्व ग्राम अग्रदर्शनं स्वसुतं देवहूति इति आह धातुः संस्मरती वचः ॥६॥

तं अकर्माणं	उन निष्क्रिय	स्वसुतं	अपने पुत्रसे
आसीनं	बैठे हुए	धातुः वचः	ब्रह्माजीकी बातको
तत्त्व ग्राम	तत्त्व समूहके	संस्मरती	स्मरण करती
अग्रदर्शनं	अग्रदर्शी (परमज्ञाता)	देवहूति इति आह	देवहूति इस प्रकार बोली ॥६॥

देवहूतिरुवाच-

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ।
येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नान्धं तमः प्रभो ॥७॥

निर्विण्णा नितरां भूमन् असत् इन्द्रिय तर्षणात् येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नं अन्धं तमः प्रभो ॥७॥

भूमन् प्रभो	भूमन् ! प्रभो !	येन	जिनका
असत् इन्द्रिय	(इन) दुष्ट इन्द्रियोंकी	सम्भाव्यमानेन	आदर करनेसे
तर्षणात्	(भोग) तृष्णासे	अन्धं तमः	अज्ञानान्धकारमें
नितरां निर्विण्णा	(मैं) अत्यन्त ऊब गयी हूँ ।	प्रपन्नः	पड़ी हूँ ॥७॥

तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ।
सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥८॥

तस्य त्वं तमसा अन्धस्य दुष्पारस्य अद्य पारगम् सत् चक्षुः जन्मनां अन्ते लब्धं मे त्वत् अनुग्रहात् ॥८॥

तस्य	उस	दुष्पारस्य	दुष्पार
अन्धस्य	अन्धीके लिए	तमसा	अज्ञानसे

पारगं	पार ले जानेवाले	जन्मनां अन्ते	अनेक जन्मोंके पश्चात्
त्वं	आप	त्वत् अनुग्रहात्	आपके ही अनुग्रहसे
सत् चक्षुः	ज्ञान नेत्र रूपको	मे लब्धं	मैंने पाया है ॥८॥

य आद्यो भगवान् पुंसामीश्वरो वै भवान् किल ।
लोकस्य तमसान्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥९॥

यः आद्यः भगवान् पुंसां ईश्वरः वै भवान् किल लोकस्य तमसा अन्धस्य चक्षुः सूर्य इव उदितः ॥९॥

यः आद्यः	जो आदिपुरुष	तमसा अन्धस्य	अज्ञानसे अन्धे
भगवान्	भगवान	लोकस्य	लोगोंके लिए
पुंसां ईश्वरः	लोगोंके स्वामी हैं–	उदितः सूर्य इव	उदित सूर्यके समान
वै भवान् किल	निश्चय वह आप ही हैं,	चक्षुः	(ज्ञानरूप) नेत्र हैं ॥९॥

अथ मे देव सम्मोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ।
योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन् योजितस्त्वया ॥१०॥

अथ मे देव सम्मोहं अपाक्रष्टुं त्वं अर्हसि यः अवग्रहः अहं मम इति एतस्मिन् योजितः त्वया ॥१०॥

देव	देव !	योजितः	लगा दिया गया है,
एतस्मिन्	इस संसारमें	मे सम्मोहं	(यह) मेरा मोह
त्वया	आपके द्वारा	अथ त्वं	अब आपको
यः अहं मम	जो मैं और मेरा	अपाक्रष्टुं	दूर कर देना
इति अवग्रहः	ऐसा दुराग्रह	अर्हसि	चाहिए ॥१०॥

तं त्वां गताहं शरणं शरण्यं
स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पूरुषस्य
नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥११॥

तं त्वां गता अहं शरणं शरण्यं स्वभृत्य संसारतरोः कुठारं जिज्ञासया अहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्म विदां वरिष्ठं ॥११॥

प्रकृतेः पूरुषस्य	प्रकृति और पुरुषका
जिज्ञासया	स्वरूप जाननेकी इच्छासे
शरण्यं	शरणदाता
स्वभृत्य	अपने पुत्र
संसारतरोः	संसाररूपी वृक्षको
कुठारं	(काटनेवाले) कुल्हाड़ेके समान
तंत्वां	उस आपकी
अहं शरणं गताः	मैं शरण आयी हूँ।
सद्धर्म विदां	उत्तम धर्मको जानने वालोंमें
वरिष्ठं	सर्वश्रेष्ठ
नमामि	(आपको) नमस्कार करती हूँ ॥११॥

मैत्रेय उवाच–

इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं
निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ।
धियाभिनन्द्यात्मवतां सतां गति-
र्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥१२॥

इति स्वमातुः निरवद्यं ईप्सितं निशम्य पुंसां अपवर्ग वर्धनं धिया अभिनन्द्य आत्मवतां सतां गतिः बभाष ईषत् स्मित शोभित आननः ॥१२॥

इति	इस प्रकार
स्वमातुः	अपनी माताके
निरवद्यं	पवित्र
पुंसां	लोगोंकी
अपवर्ग	मोक्षमार्ग (की रुचि)
वर्धनं	बढ़ानेवाली
ईप्सितं	इच्छाको
निशम्य	सुनकर
धिया अभिनन्द्य	मन-ही-मन प्रशंसा करते
आत्मवतां सतां	आत्मज्ञानी सत्पुरुषोंकी
गतिः	गति (भगवान कपिल)
ईषत् स्मित	मन्द मुस्कानसे
शोभित आननः	सुशोभित मुख
बभाष	बोले ॥१२॥

कपिल उवाच-

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥

योगः आध्यात्मिकः पुंसां मतः निःश्रेयसाय मे अत्यन्त उपरतिः यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥

मे मतः	मेरे मतमें	**दुःखस्य च**	दुःखोंकी और
पुंसां	पुरुषका	**सुखस्य च**	सुखोंकी भी
निःश्रेयसाय	आत्यन्तिक कल्याण	**आत्यन्तिकी**	आत्यन्तिक
आध्यात्मिकः	आध्यात्मिक	**उपरतिः**	निवृत्ति हो जाती
योगः	योगसे होता है ।		है ॥१३॥
यत्र	जिसमें		

तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुरानघे ।
ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्गनैपुणम् ॥१४॥

तं इमं ते प्रवक्ष्यामि यं अवोचं पुरा अनघे ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्ग नैपुणं ॥१४॥

तं इमं	उस इस	**श्रोतुकामानां**	सुननेकी इच्छावाले
सर्वाङ्ग नैपुणं	सर्वाङ्गपूर्ण	**ऋषीणां**	ऋषियोंको
योगं	योगको	**पुरा**	पहिले
ते प्रवक्ष्यामि	तुम्हें बतलाता हूँ,	**अवोचं**	(मैंने) सुनाया
अनघे	निष्पापे !		था ॥१४॥
यं	जिसे		

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥

चेतः खलु अस्य बन्धाय मुक्तये च आत्मनः मतं गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥

अस्य आत्मनः	इस आत्माके	**च मुक्तये**	और मुक्तिका
बन्धाय	बन्धनका	**मतं**	निश्चित कारण

खलु चेतः	निश्चय चित्त ही है,	वा पुंसि रतं	अथवा भगवानमें
गुणेषु सक्तं	विषयोंमें आसक्त		लगा
बन्धाय	बन्धनका(कारण है)	मुक्तये	मुक्तिका (कारण होता है) ॥१५॥

अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ।
वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥१६॥

अहं मम अभिमान उत्थैः काम लोभ आदिभिः मलैः वीतं यदा मनः शुद्धं अदुःखं असुखं समम् ॥१६॥

अहं मम	अहंता ममताके	यदा वीतं मनः	जब मुक्त मन
अभिमान उत्थैः	अभिमानसे उत्पन्न	शुद्धं	शुद्ध होकर
काम लोभ		अदुःखं असुखं	दुःख-सुख रहित
आदिभिः	काम लोभादिके	समं	समताकी अवस्थामें
मलैः	विकारोंसे		रहता है ॥१६॥

तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ।
निरन्तरं स्वयंज्योतिरणिमानमखण्डितम् ॥१७॥

तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परं निरन्तरं स्वयं ज्योतिः अणिमानं अखण्डितम् ॥१७॥

तदा	उस समय	निरन्तरं	भेद रहित
पुरुष आत्मानं	पुरुष अपनेको	स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश
केवलं	अद्वितीय	अणिमानं	सूक्ष्म
प्रकृतेः परं	प्रकृतसे परे	अखण्डितं	अखण्ड ॥१७॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ।
परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥१८॥

ज्ञान वैराग्य युक्तेन भक्तियुक्तेन च आत्मना परिपश्यति उदासीनं प्रकृतिं च हत ओजसम् ॥१८॥

उदासीनं	उदासीन	आत्मना	अपनेको
ज्ञान वैराग्य	ज्ञान और वैराग्य	परिपश्यति	देखता है
युक्तेन	युक्त	प्रकृतिं च	और प्रकृतिको
भक्तियुक्तेन च	तथा भक्तियुक्त (होकर)	हत ओजसां	निस्तेज (देखता है) ॥ ८॥

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥१९॥

न युज्यमानया भक्त्या भगवति अखिलात्मनि सदृशः अस्ति शिवः पन्थाः योगिनां ब्रह्म सिद्धये ॥१९॥

योगिनां	योगियोंके लिए	भक्त्या	भक्ति
ब्रह्म सिद्धये	ब्रह्मस्थिति प्राप्तिके लिए	युज्यमानया	लगानेके
		सदृशः	समान
अखिलात्मनि	अखिलात्मा	शिवः पन्थाः	कल्याणमय मार्ग
भगवति	भगवान्‌में	न अस्ति	नहीं है ॥१९॥

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥२०॥

प्रसङ्गं अजरं पाशं आत्मनः कवयः विदुः स एव साधुषु कृतः मोक्षद्वारं अपावृतम् ॥२०॥

प्रसङ्गं	आसक्तिको	स एव	वही (आसक्ति)
आत्मनः	आत्माका	साधुषु कृतः	सत् पुरुषसे करनेपर
अजरं पाशं	अच्छेद्य बन्धन	अपावृतं	खुला
कवयः विदुः	विवेकी लोग जानते हैं,	मोक्षद्वारं	मुक्तिद्वार है ॥२०॥

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनां अजात शत्रवः शान्ताः साधवः साधु भूषणाः ॥२१॥

विशेष

[सहज प्रश्न उठा कि सत्पुरुष किसे कहा जाय ? इसके उत्तरमें साधुका लक्षण बतलाते हैं]

तितीक्षवः	तितीक्षु(आये कष्टको शान्तिसे सहलेने वाले)	**अजात शत्रवः**	किसीको भी शत्रु न मानने वाले
कारुणिकाः	दयालु	**शान्ताः**	शान्त स्वभाव
सर्व देहिनां सुहृदः	सब प्राणियोंके हितैषी	**साधु भूषणाः**	सत्पुरुषोंके आभूषण इन गुणों युक्त
		साधवः	सत्पुरुष होते हैं ॥२१॥

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥२२॥

मयि अनन्येन भावेन भक्तिम् कुर्वन्ति ये दृढां मत कृते त्यक्तः कर्माणः त्यक्त स्वजन बान्धवाः ॥२२॥

ये मयि	जो मुझमें	**कर्माणः**	कर्मोंको
अनन्येन भावेन	अनन्य भावसे	**त्यक्त**	छोड़ दिया है (और)
दृढां भक्ति	निश्चल भक्ति	**स्वजन बान्धवाः**	स्वजन सम्बन्धियोंको
कुर्वन्ति	करते हैं,	**त्यक्त**	छोड़ दिया है ॥२२॥
मत् कृते	मेरे लिए		

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥२३॥

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च तपन्ति विविधाः तापा न एतान् मद्गत चेतसः ॥२३॥

मदाश्रयाः	मेरे सम्बन्धकी	**मद्गत चेतसः**	मुझमें चित्त लगे लोगोंको
मृष्टाः कथा शृण्वन्ति	पवित्र कथाओंको	**विविधाः तापा**	(संसारके) अनेक प्रकारके सन्ताप
कथयन्ति च	सुनते तथा कहते हैं	**तपन्ति न**	सन्तप्त नहीं करते ॥२३॥
एतान्	इन		

त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः ।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥२४॥

त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्ग विवर्जिताः सङ्गः तेषु अथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोष हरा हि ते ॥२४॥

साध्वि	साध्वी !	प्रार्थ्यः	कामना करनी चाहिए,
त एते	ये ऐसे	हि	क्योंकि
सर्वसङ्ग	सब आसक्तियोंसे	ते सङ्गदोष हराः	वे आसक्तिके दोषोंको दूर करने वाले हैं ॥२४॥
विवर्जिताः	रहित		
साधवः	सत्पुरुष हैं ।		
अथ ते	अतः तुम्हें		
तेषु सङ्गः	उनमें आसक्तिकी		

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥२५॥

सतां प्रसङ्गात् मम वीर्यं संविदः भवन्ति हृत् कर्ण रसायनाः कथाः तत् जोषणात् आशु अपवर्ग वर्त्मनि श्रद्धा रतिः भक्तिः अनुक्रम एष्यति ॥२५॥

सतां प्रसङ्गात्	सत्पुरुषोंके समागमसे	अपवर्ग वर्त्मनि	मोक्षमार्गमें
मम वीर्यं	मेरे पराक्रमको	आशु	शीघ्र
संविदः	बतलाने वाली	अनुक्रम	क्रमशः
हृत् कर्ण रसायनाः	हृदय और कर्णोंको प्रिय लगने वाली	श्रद्धा रतिः भक्तिः	श्रद्धा, प्रीति और भक्ति
कथाः भवन्ति	कथा होती है	एष्यति	आती है ॥२५॥
तत् जोषणात्	उनका सेवन करनेसे		

भक्त्या पुमाञ्जातविराग ऐन्द्रियाद्
दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया ।

चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो
यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥२६॥

भक्त्या पुमान् जात विरागः ऐन्द्रियात् दृष्ट श्रुतात् मद् रचना अनुचिन्तया चित्तस्य यत्तः ग्रहणे योगयुक्तः यतिष्यते ऋजुभिः योगमार्गैः ॥२६॥

भक्त्या पुमान्	भक्तिसे पुरुषको
मद्रचना	मेरी सृष्टि आदि लीलाका
अनुचिन्तया	बार-बार चिन्तन करनेसे
दृष्ट	देखे (लौकिक) और
श्रुतात्	शास्त्र वर्णित (पारलौकिक)
ऐन्द्रियात्	ऐन्द्रियक भोगोंसे
जात विरागः	वैराग्य हो जाता है,
चित्तस्य ग्रहणे	(तब) चित्तको वशमें करनेके लिए
यत्तः	प्रयत्न करता है।
ऋजुभिः	सरल
योगमार्गैः	योग (भक्ति) के साधनोंसे
योग युक्तः	योग युक्त होकर
यतिष्यते	साधन करता है ॥२६॥

असेवयायं प्रकृतेर्गुणानां
ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ।
योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या
मां प्रत्यगात्मानमिहाबरुन्धे ॥२७॥

असेवया अयं प्रकृतेः गुणानां ज्ञानेन वैराग्य विजृम्भितेन योगेन मयि अर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानं इह अबरुन्धे ॥२७॥

अयं प्रकृतेः गुणानां असेवया	इस प्रकृतिके गुणोंका सेवन न करनेसे,
वैराग्य विजृम्भितेन	वैराग्यसे युक्त
ज्ञानेन	ज्ञानसे,
योगेन	योगसे
च मयि अर्पितया भक्त्या	तथा मुझे समर्पित भक्तिसे
मां प्रत्यगात्मानं	मुझ अन्तरात्माको
इह अबरुन्धे	इस (देह) में ही प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

देवहूतिरुवाच-

काचित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ।
यया पदं ते निर्वाणमञ्जसान्वाश्नवा अहम् ॥२८॥

काचित् त्वयि उचिता भक्तिः की दृशी मम गोचरा यया पदं ते निर्वाणं अञ्जसा अनु अश्नवा अहम् ॥२८॥

त्वयि	आपकी
उचिता भक्तिः	उचित भक्तिका
काचित्	स्वरूप क्या है ?
की दृशी	किस प्रकारकी
मम गोचरा	मेरे लिए ठीक है,
यया	जिसके द्वारा
ते निर्वाणं पदं	आपके निर्वाण पदको
अञ्जसा	सरलतासे
अहं अनु अश्नवा	मैं उपभोग कर सकूँ ॥२८॥

यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ।
कीदृशः कति चाङ्गानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥२९॥

यः योगः भगवत् बाणः निर्वाण आत्मन् त्वया उदितः कीदृशः कति च अङ्गानि यतः तत्त्व अवबोधनम् ॥२९॥

भगवत्	भगवन् !
निर्वाण आत्मन्	निर्वाण स्वरूप
त्वयायः योगः	आपने जो योग
बाणः उदितः	बाणके समान बतलाया है,
यतः तत्त्व अवबोधनं	जिससे तत्त्वज्ञान होता है,
कीदृशः	(वह) कैसा है ?
कति च अङ्गानि	(उसके) कितने अंग हैं ॥२९॥

तदेतन्मे विजानीहि यथाहं मन्दधीर्हरे ।
सुखं बुद्ध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥३०॥

तत् एतत् मे विजानीहि यथा अहं मन्द धीः हरे सुखं बुद्ध्येय दुर्बोधं योषा भवत् अनुग्रहात् ॥३०॥

हरे	हरे !
यथा अहं	जैसे मैं
मन्द धीः	मन्द बुद्धि
योषा	अबला
दुर्बोधं	दुर्बोधको
भवत् अनुग्रहात्	आपके अनुग्रहसे
सुखं बुद्ध्येयं	सरलतासे समझ लूं
तत् एतत्	वह यह
मे विजानीहि	मुझे समझाइये ॥३०

मैत्रेय उवाच–

विदित्वार्थं कपिलो मातुरित्थं
जातस्नेहो यत्र तन्वाभिजातः ।
तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं
प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥३१॥

विदित्वा अर्थं कपिलः मातुः इत्थं जात स्नेहः यत्र तनु अभिजातः तत्त्वाम्नायं यत् प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्ति वितान योगम् ॥३१॥

यत्र तनु	जिसके शरीरसे
अभिजातः	जन्म लिया था
मातुः	(उस) माताका
इत्थं अर्थं	इस प्रकारका प्रयोजन
विदित्वा	जानकर
कपिलः जात	
स्नेहः	कपिलमें स्नेह उमड़ पड़ा,
यत् तत्त्वाम्नायं	जिस तत्त्वदर्शनको
साख्यं प्रवदन्ति	सांख्य कहते हैं
वै भक्तिवितान	तथा भक्ति विस्तार-रूप
योगं	योगका
प्रोवाच	उपदेश किया ॥३१॥

कपिल उवाच–

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥

देवानां गुणलिङ्गानां आनुश्रविक कर्मणां सत्त्व एवैक मनसि वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥

आनुश्रविक	वेद विहित
कर्मणां	कर्म करनेवालोंकी
गुणलिङ्गानां	एक-एक (शब्द, स्पर्शादि) गुणोंके चिह्नवाली
देवानां	इन्द्रियोंकी
सत्त्व एवैक	एक मात्र सत्त्व (रूप भगवानके प्रति)
मनसि तु	मनकी तो
या स्वाभाविकी	
वृत्तिः	स्वाभाविक प्रवृत्ति है ॥३२॥

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥३३॥

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेः गरीयसी जरयति आशु या कोशं निगीर्णं अनलः यथा ॥३३॥

अनिमित्ता	(वही) अहैतुकी
भागवती भक्तिः	भगवानकी भक्ति
सिद्धेः गरीयसी	(यह) मुक्तिसे भी महान् है।
या कोशं	जो कर्म संस्कारके भण्डार (लिङ्ग देह) को
आशु जरयति	शीघ्र नष्ट कर देती है,
यथा निगीर्णं	जैसे निगले हुएको
अनलः	जठराग्नि ॥३३॥

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्-
मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।
येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य
सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥

न एकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचित् मत्पाद सेवा अभिरता मदीहाः ये अन्योन्यतः भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥

केचित्	कोई-कोई
भागवताः	भगवद्भक्त
मत्पाद सेवा	मेरी चरण सेवामें
अभिरताः	लगे हुए
ये अन्योन्यतः	जो एक-दूसरेसे
प्रसज्य	मिलकर
मम पौरुषाणि	मेरे पराक्रमोंकी
सभाजयन्ते	चर्चा किया करते हैं,
मदीहाः	मेरी इच्छासे भी
मे एकात्मतां	मुझसे एक हो जाना
न स्पृहयन्ति	नहीं चाहते ॥३४॥

पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥३५॥

पश्यन्ति ते मे रुचिराणि अम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्र अरुण लोचनानि रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥३५॥

अम्ब	अम्ब !	**रूपाणि**	रूपोंको
ते सन्तः	वे सत्पुरुष	**पश्यन्ति**	देखते हैं ।
मे रुचिराणि	मेरे मनोहर	**साकं**	(और) मेरे साथ
प्रसन्नवक्त्र	प्रसन्नमुख	**स्पृहणीयां**	स्पृहा करने योग्य
अरुण लोचनानि	रतनारे नेत्रों वाले	**वाचं वदन्ति**	बात-चीत करते
दिव्यानि	दिव्य		हैं ॥३५॥
वरप्रदानि	वरदायक		

तैर्दर्शनीयावयवैरुदार-
विलासहासेक्षितवामसूक्तैः ।
हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्ति-
रनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥३६॥

तैः दर्शनीय अवयवैः उदार विलास हास ईक्षित वामसूक्तैः हृतात्मनः हृतप्राणाः च भक्तिः अनिच्छतः मे गतिं अण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥३६॥

तैः	उन (रूपों) के	**हृतप्राणाः च**	तथा प्राण (इन्द्रियों)
दर्शनीय अवयवैः	दर्शनीय अङ्गोंके (दर्शनसे),		का हरण हो जाता है,
उदार विलास	मनोहर चेष्टा,	**अनिच्छतः**	उनके न चाहने पर भी
हास ईक्षित्	मुस्कान सहित देखना	**भक्तिः**	भक्ति (उन्हें)
वाम सूक्तैः	प्रेमपूर्ण व्यंग वाणीसे	**मे अण्वीं गतिं**	मेरी सूक्ष्मगति (परम पद)
हृतात्मनः	उनका मन हरण हो जाता है,	**प्रयुङ्क्ते**	दे देती है ॥३६॥

अथो विभूतिं मम मायाविनस्ता-
मैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ।
श्रियं भागवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां
परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥३७॥

अथ विभूतिं मम मायाविनः ताम् ऐश्वर्यं अष्टाङ्गं अनुप्रवृत्तं श्रियं भागवतीं वा स्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे ते अश्नुवते तु लोके ॥३७॥

अथ	(अविद्या निवृत्तिके) पश्चात्	**भद्रां**	कल्याण कारिणी
मम मायाविनः	मुझ मायापतिके	**भागवतीं श्रियं**	भागवती लक्ष्मीको
तां अष्टाङ्गं		**स्पृहयन्ति**	यदि चाहते हैं तो
ऐश्वर्यं	उस अष्ट सिद्धिको,	**मे परस्य लोके**	मुझ परम पुरुषके लोकमें
वा	अथवा	**अश्नुवते**	उसका उपभोग करते हैं ॥३७॥
अनुप्रवृत्तं	मेरे पीछे चलनेवाली		

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे
नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥३८॥

न कर्हिचित् मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नः मे अनिमिषः लेढि हेतिः येषां अहं प्रिय आत्मा सुतः च सखाः गुरुः सुहृदः दैवं इष्टम् ॥३८॥

येषां अहं	जिनका मैं ही	**कर्हिचित्**	कभी भी
प्रिय आत्मा	प्रिय, आत्मा,	**न नङ्क्ष्यन्ति**	नष्ट नहीं होते,
सुतः सखाः	पुत्र, मित्र,	**नः**	न
सुहृदः	सुहृद,	**हेतिः मे अनिमिषः**	मेरा काल चक्र
इष्टं दैवं च	और इष्ट देव हूँ	**लेढिः**	उन्हें चाट (ग्रस) सकता ॥३८॥
मत्पराः	वे मेरे परायण		
शान्तरूपे	शान्त स्वरूप (भक्त)		

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ।
आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥३९॥

इमं लोकं तथा एवं अमुं आत्मानं उभय यायिनं आत्मानं अनु ये च इह ये रायः पशवः गृहाः ॥३९॥

इमं लोकं	इस लोकको
तथा एवं	उसी प्रकार
अमुं	उस (परलोक) को
उभय यायिनं	दोनोके मध्य जानेवाले
आत्मानं	लिङ्ग शरीरको,
आत्मानं अनु	अपने पीछे लगनेवाले
ये च इह	जो भी यहाँ (संसारमें)
रायः पशवः गृहाः	धन, पशु, भवन हैं ॥३९॥

विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ।
भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥४०॥

विसृज्य सर्वान् अन्यान् च मां एवं विश्वतः मुखं भजन्ति अनन्यया भक्त्या तान् मृत्योः अतिपारये ॥४०॥

अन्यान् च	और दूसरे भी
सर्वान्	सबको
विसृज्य	त्याग कर
विश्वतः मुखं	सब प्रकारसे
मां एवं	मुझे ही
अनन्यया भक्त्या	अनन्य भक्तिसे
भजन्ति	भजते हैं,
तान्	उन्हें
मृत्योः अतिपारये	(मैं) मृत्युसे पार कर देता हूँ ॥४०॥

नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ।
आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥

न अन्यत्र मद्भगवतः प्रधान पुरुष ईश्वरात् आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥

प्रधान पुरुष ईश्वरात्	प्रकृति और पुरुषके स्वामी
मद्भगवतः	मुझ भगवानको
अन्यत्र	छोड़कर
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंका
आत्मनः	अपना
तीव्रं भयं	तीव्र भय
न निवर्तते	निवृत्त नहीं होता ॥४१॥

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥४२॥

मद् भयात् वाति वातः अयं सूर्यः तपति मद् भयात् वर्षति इन्द्रः दहति अग्निः मृत्युः चरति मद् भयात् ॥४२॥

मद् भयात्	मेरे भयसे	इन्द्र वर्षति	इन्द्र वर्षा करते हैं,
अयं वातः वाति	यह वायु चलता है,	अग्निः दहति	अग्नि जलाता है,
मद् भयात्	मेरे भयसे	मृत्युः चरति	मृत्यु घूमती रहती
सूर्यः तपति	सूर्य तपता है,		है ॥४२॥
मद् भयात्	मेरे भयसे ही		

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥४३॥

ज्ञान वैराग्य युक्तेन भक्ति योगेन योगिनः क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्ति अकुतः भयम् ॥४३॥

ज्ञान वैराग्य		क्षेमाय	अपने कल्याणके
युक्तेन	ज्ञान-वैराग्ययुक्त		लिए
भक्ति योगेन	भक्तियोगसे	अकुतः भयं	सर्वत्रसे निर्भय
योगिनः	योगी (साधक)	मे पादमूलं	मेरे चरणोंका
		प्रवशन्ति	आश्रय लेते हैं ॥४३॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥४४॥

एतावान् एव लोके अस्मिन् पुंसां निःश्रेयसः उदयः तीव्रेण भक्ति-योगेन मनः मयि अर्पितं स्थिरम् ॥४४॥

एतावान् एव	इतना ही	तीव्रेण	
अस्मिन् लोके	इस लोकमें	भक्ति योगेन	तीव्र भक्तियोगसे
पुंसां	पुरुषके	मयि मनः	मुझमें मनको
निःश्रेयसः उदयः	परमकल्याणका	स्थिरं अर्पितं	लगाकर (वहीं)
	उदय है कि		स्थिर कर दे ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

कपिल उवाच–

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ।
यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् यत् विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैः गुणैः ॥१॥

अथ ते	अब तुमसे	**यत् विदित्वा**	जिसे जानकर
तत्त्वानां पृथक्	तत्त्वोंका अलग अलग	**पुरुषः**	पुरुष
लक्षणं	लक्षण	**प्राकृतैः गुणैः**	प्रकृतिके गुणोंसे
संप्रवक्ष्यामि	बतला रहा हूँ,	**विमुच्येत**	छूट जाता है ॥१॥

ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ।
यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम् ॥ २ ॥

ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्य आत्मदर्शनं यत् आहुः वर्णये तत् ते हृदय ग्रन्थि भेदनम् ॥२॥

हृदय ग्रन्थि	हृदयकी (मोहरूपी) गांठ	**निःश्रेयसार्थाय**	मोक्षके लिए
भेदनं यत्	छेदन करनेवाला जो	**आहुः**	(वेदोंमें) कहा गया है,
आत्मदर्शनं ज्ञानं	आत्मदर्शन रूप ज्ञान	**तत् ते**	वह तुमसे
पुरुषस्य	जीवके	**वर्णये**	वर्णन करता हूँ ॥२॥

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥

अनादिः आत्मा पुरुषः निर्गुणः प्रकृतेः परः प्रत्यक् धामा स्वयं ज्योतिः विश्वं येन समन्वितम् ॥३॥

येन विश्वं	जिससे यह जगत्	**प्रकृतेः परः**	प्रकृतिसे परे
समन्वितं	व्याप्त है	**प्रत्यक् धामाः**	अन्तःकरणमें स्थित
आत्मा पुरुषः	वह आत्मा ही पुरुष है,	**स्वयं ज्योतिः**	स्वयं प्रकाश
		अनादिः	अनादि है ॥३॥
निर्गुणः	(वह) निर्गुण		

स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ।
यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥

स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः यदृच्छया एव उपगतां अभ्यपद्यत लीलया ॥४॥

स एष विभुः	उसी इस सर्व-व्यापकने	**सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं प्रकृतिं**	अव्यक्त वैष्णवी त्रिगुणमयी प्रकृतिको
यदृच्छया एव		**लीलया**	खेलमें ही
उपगतां	अकस्मात् ही समीप आयी	**अभ्यपद्यत**	स्वीकार कर लिया ॥४॥

गुणैर्विचित्राः सृजतीं स्वरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ।
विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥

गुणैः विचित्राः सृजतीं स्वरूपाः प्रकृतिं प्रजाः विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञान गूहया ॥५॥

विचित्राः गुणैः	विचित्र गुणों द्वारा	**विलोक्य**	देखकर
स्वरूपाः प्रजाः	अपने समान (त्रिगुणमयी) प्रजा	**स इह**	वह (पुरुष) यहाँ (जगतमें)
सृजतीं प्रकृतिं	उत्पन्न करती प्रकृतिको	**सद्यः मुमुहे**	तुरन्त मोहित हो गया ॥५॥
ज्ञान गूहया	(जो) ज्ञानको आच्छादित करने वाली थी		

एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् ॥
कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥

एवं पर अभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैः आत्मनि मन्यते ॥६॥

एवं	इस प्रकार
प्रकृतेः गुणैः	प्रकृतिके गुणों द्वारा
कर्मसु	कर्मोंके
क्रियमाणेषु	किये जानेपर भी
पर अभिध्यानेन	अपनेसे भिन्नको अपना स्वरूप माननेसे
आत्मनि कर्तृत्वं	अपनेमें (उन कर्मोंका) कर्त्तापन
मन्यते	मानता है ॥६॥

तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् ।
भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥

तत् अस्य संसृतिः बन्धः पारतन्त्र्यं च तत् कृतं भवति अकर्तुः ईशस्य साक्षिणः निर्वृत आत्मनः ॥७॥

तत्	इसीसे
तत् कृतं च	उस (भ्रान्त मान्यता)के द्वारा ही
अस्य अकर्तुः	इस अकर्त्ता
साक्षिणः ईशस्य	साक्षी, समर्थ
निर्वृत आत्मनः	आनन्दस्वरूपकी
संसृतिः बन्धः	आवागमन रूप बंधन
च पारतन्त्र्यं	तथा परतन्त्रता
भवति	होती है ॥७॥

कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ।
भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥

कार्य कारण कर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः भोक्तृत्वे सुख दुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥८॥

कार्य	कार्य (शरीर)
कारण	कारण (इन्द्रिय)
कर्तृत्वे	कर्त्तापनमें
कारणं	हेतु
प्रकृतिं विदुः	(विद्वान) प्रकृतिको जानते हैं,

सुख दुःखानां	सुख-दुःखोंके	प्रकृतेः परं	प्रकृतसे परे
भोक्तृत्वे	भोक्तापनमें		(रहनेवाले)
	(कारण)	पुरुषं	पुरुषको
			(जानते हैं) ॥८॥

विशेष—

समस्त कार्य (जगत और उसकी क्रियाएँ) तथा उन कार्योंके कारण मूलतत्त्व आकाशादि तथा कर्तृत्व अर्थात् उन कार्योंके घटित होनेका हेतु—ये सब प्राकृतिक हैं; किन्तु प्रकृति जड़ है। उसमें सुख-दुःखकी अनुभूति नहीं है। किसी घटना या पदार्थकी उपस्थिति-अनुपस्थितिसे सुख या दुःख पुरुष—जीवको होता है जो प्रकृतिसे परे है।

देवहूतिरुवाच—

प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम।
ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥

प्रकृतेः पुरुषस्य अपि लक्षणं पुरुषोत्तम ब्रूहि कारणयोः अस्य सत् असत् च यत् आत्मकम् ॥९॥

पुरुषोत्तम	पुरुषोत्तम !	प्रकृतेः पुरुषस्य	
सत् असत् च	कारण और कार्य	अपि	प्रकृति और
आत्मकं	स्वरूप		पुरुषका भी
अस्य यत्	इस (जगत्) के जो	लक्षणं ब्रूहि	लक्षण बतलाइये ॥९
कारणयोः	कारण हैं (उन)		

कपिल उवाच—

यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥१०॥

यत् तत् त्रिगुणं अव्यक्तं नित्यं सत् असत् आत्मकं प्रधानं प्रकृतिं प्राहुः अविशेषं विशेषवत् ॥१०॥

यत् त्रिगुणं	जो त्रिगुणमयी,	सत् असत्	
अव्यक्तं नित्यं	अव्यक्त, नित्य,	आत्मकं	कारण कार्य स्वरूप

अविशेषं	निर्विशेष होकर भी	प्रधानं	(वह) प्रधान
विशेषवत्	सब विशेषता		तत्त्व है,
	युक्त-सा लगता	तत् प्रकृतिं प्राहुः	उसीको प्रकृति कहा
			जाता है ॥१०॥

पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ।
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥११॥

पञ्चभिः पञ्चभिः ब्रह्म चतुर्भिः दशभिः तथा एतत् चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥११॥

पञ्चभिः	पांच	चतुर्विंशतिकं गणं	चौबीसोंको
पञ्चभिः	पांच	ब्रह्म	विद्वान
चतुर्भिः	चार	प्राधानिकं विदुः	प्रकृतिका कार्य
दशभिः	दस		जानते हैं ॥११॥
एतत्	इन		

महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ।
तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे ॥१२॥

महाभूतानि पञ्च एव भूः आपः अग्निः मरुत् नभः तन्मात्राणि च तावन्ति गन्ध आदीनि मतानि मे ॥१२॥

मे मतानि	मेरे मतमें	तन्मात्राणि च	तन्मात्राएँ भी
महाभूतानि	महाभूत	गन्ध आदीनि	गन्ध आदि (रस,
पञ्च एव	(पहिले) पांच ही हैं		रूप, स्पर्श, शब्द)
भूः आपः अग्निः	पृथ्वी, जल, अग्नि,	तावन्ती	उतनी ही हैं ॥१२॥
मरुत् नभः	वायु और आकाश ।		

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ।
वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥१३॥

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वक् दृक् रसन नासिकाः वाक् करौ चरणौ मेढ्रं पायुः दशम उच्यते ॥१३॥

इन्द्रियाणि दश	इन्द्रियां दस हैं,
श्रोत्रं त्वक् दृक्	कान, त्वचा, नेत्र,
रसन नासिकाः	रसना, नाक,
वाक् करौ चरणौ	वाणी, हाथ, पैर,
मेढ्रं	लिङ्ग तथा गुदाको
दशम उच्यते	दसवीं कहा जाता है ॥१३॥

मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् ।
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥१४॥

मनः बुद्धिः अहङ्कारः चित्तं इति अन्तरात्मकं चतुर्धा लक्ष्यते भेदः वृत्त्या लक्षणरूपया ॥१४॥

मनः बुद्धिः	मन, बुद्धि,
अहङ्कार चित्तं	अहंकार और चित्त
इति अन्तरात्मकं	ये अन्तःकरण रूप हैं,
लक्षणरूपया	(विभिन्न) लक्षण वाला
वृत्त्या	वृत्तियोंसे
चतुर्धा भेदः	(ये) चार प्रकारके भेद
लक्ष्यते	पहिचाने जाते हैं ॥१४॥

एतावानेव सङ्ख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ।
सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ॥१५॥

एतावान् एव सङ्ख्यातः ब्रह्मणः सगुणस्य ह सन्निवेशः मया प्रोक्तः यः कालः पञ्चविंशकः ॥१५॥

मया प्रोक्तः	मेरे द्वारा बतलाया गया
सगुणस्य ह	सगुण स्वरूप कही
ब्रह्मणः	परमात्माका
एतावान् एव	इतना ही
सन्निवेशः	स्वरूप भेद
सङ्ख्यातः	गणना किया गया है,
यः कालः	जो काल है
पञ्चविंशकः	(वह) पच्चीसवां तत्त्व है ॥१५॥

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् ।
अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥१६॥

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालं एके यतः भयं अहङ्कार विमूढस्य कर्तुः प्रकृतिं ईयुषः ॥१६॥

अहङ्कार विमूढस्य	अहङ्कारसे विमूढ हुए	कालं एके	(उस) कालको कोई-कोई (पृथक तत्त्व न मानकर)
प्रकृतिं ईयुषः	प्रकृतिको स्वीकार करके	पौरुषं	परम पुरुष भगवानका
कर्तुः	(अपनेको) कर्ता समझने वालेको	प्रभावं प्राहुः	प्रभाव (शक्ति) कहते हैं ॥१६॥
यतः भयं	जिससे भय लगता है,		

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ।
चेष्टा यतः स भगवान् काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥

प्रकृतेः गुण साम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि चेष्टा यतः स भगवान् काल इति उपलक्षितः ॥१७॥

मानवि	मनुपुत्री !	यतः चेष्टा	जिनके द्वारा गति उत्पन्न होती है
गुण साम्यस्य	गुणोंकी साम्यावस्था रूप	स भगवान्	वे भगवान ही
निर्विशेषस्य	निर्विशेष	काल इति	काल इस रूपमें
प्रकृतेः	प्रकृतिमें	उपलक्षितः	जाने जाते हैं ॥१७॥

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ।
समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥१८॥

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यः बहिः समन्वेति एष सत्त्वानां भगवान् आत्म मायया ॥१८॥

यः सत्त्वानां	जो प्राणियोंके	आत्म मायया	अपनी मायासे
अन्तः पुरुषरूपेण	भीतर जीव रूपसे (और)	समन्वेति	व्याप्त हैं
बहिः कालरूपेण	बाहर काल रूपसे	स एषः भगवान्	वह यह भगवान ही हैं ॥१८॥

दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ।
आधत्त वीर्यं सासूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥१९॥

दैवात् क्षुभित धर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् आधत्त वीर्यं स असूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥१९॥

दैवात्	जीवोंके अदृष्ट (कर्म) वश	वीर्यं आधत्त	अपना तेज स्थापित किया
क्षुभित धर्मिण्यां	गुणोंमें क्षोभ आयी	हिरण्मयं	
स्वस्यां	अपनी ही	महत्तत्त्वं	(इससे) तेजोमय महत्तत्त्व
योनौ	जीवोंकी उत्पत्ति स्थाना (माया) में	स असूत	उसने उत्पन्न किया ॥१९॥
परः पुमान्	परम पुरुषने		

विश्वमात्मगतं व्यञ्जन् कूटस्थो जगदङ्कुरः ।
स्वतेजसापिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥२०॥

विश्वं आत्मगतं व्यञ्जद् कूटस्थः जगत् अङ्कुरः स्वतेजसा अपिबत् तीव्रं आत्म प्रस्वापनं तमः ॥२०॥

कूटस्थः	लय-विक्षेपहीन	आत्म प्रस्वापनं	अपनेको सुलाने (ढकने) वाले
जगत् अङ्कुरः	(उस) जगत्के अंकुर (महत्तत्त्व) ने	तीव्रं तमः	घोर अन्धकारको
आत्मगतं विश्वं	अपने भीतर स्थित विश्वको	स्वतेजसा	अपने तेजसे
व्यञ्जन्	प्रकट करनेके लिए	अपिबत्	पी लिया ॥२०॥

यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् ।
यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥२१॥

यत् तत् सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदं यत् आहुः वासुदेव आख्यं चित्तं तत् महत् आत्मकम् ॥२१॥

यत्	जिस	तत्	उस
सत्त्वगुणं	सत्त्वगुणमय,	वासुदेव आख्यं	वासुदेव कहे जाने वालेको
स्वच्छं	स्वच्छ		
शान्तं	शान्त	तत् महत्	
भगवतः पदं	भगवानका स्थान	आत्मकं	महत्तत्त्व स्वरूप
चित्तं	चित्त है,	आहुः	कहा गया है ॥२१॥

स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेतसः ।
वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथापां प्रकृतिः परा ॥२२॥

स्वच्छत्वं अविकारित्वं शान्तत्वं इति चेतसः वृत्तिभिः लक्षणं प्रोक्तं यथा अपां प्रकृतिः परा ॥२२॥

यथा अपां	जैसे जलका	शान्तत्वं	शान्त रहना,
परा प्रकृतिः	वास्तविक स्वभाव है	इति	इसी प्रकारकी
		वृत्तिभिः	वृत्तियोंसे
स्वच्छत्वं	स्वच्छ रहना,	चेतसः लक्षणं	चित्तका लक्षण
अविकारित्वं	विकारहीन रहना,	प्रोक्तं	कहा गया है ॥२२॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसम्भवात् ।
क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

महत् तत्त्वात् विकुर्वाणात् भगवद् वीर्य सम्भवात् क्रिया शक्तिः अहङ्कारः त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर	क्रिया शक्तिः	
महत् तत्त्वात्	महत्तत्त्वसे	अहङ्कारः	क्रिया शक्ति रूप अहङ्कार
भगवत् वीय			
सम्भवात्	भगवानके तेजसे उत्पन्न	त्रिविधः	
		समपद्यत	तीन रूपोंमें हो गया ॥२३॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥२४॥

वैकारिकः तैजसः च तामसः च यतः भवः मनसः च इन्द्रियाणां च भूतानां महतां अपि ॥२४॥

वैकारिकः	वैकारिक	मनसः	
च तैजसः	और तैजस	इन्द्रियाणां च	मन तथा इन्द्रियोंकी
च तामसः	तथा तामस (इन तीन रूपोंमें)	च महतां भूतानां अपि	और महाभूतोंकी भी
यतः	जिससे	भवः	उत्पत्ति हुई ॥२४॥

सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते ।
सङ्कर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥

सहस्र शिरसं साक्षात् यं अनन्तं प्रचक्षते सङ्कर्षणाख्यं पुरुषं भूत इन्द्रिय मनोमयम् ॥२५॥

यं सहस्र शिरसं	जिन्हें सहस्र सिरवाले	प्रचक्षते	कहे जाते हैं (वे)
साक्षात् अनन्तं	साक्षात् अनन्त	भूत इन्द्रिय मनोमयं	महाभूत, इन्द्रिय और मनोमय (अहंकार ही) हैं ॥२५॥
पुरुषं	पुरुषको		
संकर्षणाख्यं	संकर्षण नामवाले		

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ।
शान्तघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥२६॥

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं च इति लक्षणं शान्त घोर विमूढत्वं इति वा स्यात् अहंकृतेः ॥२६॥

कर्तृत्वं च	कर्तापन और	शान्त	सत्वगुणसे) शान्त
करणत्वं	करण (इन्द्रिय) रूपत्व,	घोर	(रजोगुणसे) उग्र
		विमूढत्वं	(तमोगुणसे) विमूढत्व
च कार्यत्वं	तथा कार्य रूपत्व	इति लक्षणं	यह लक्षण
वा	अथवा	अहंकृतेः स्यात्	अहंकारके हैं ॥२६॥

वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ।
यत्सङ्कल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः ॥२७॥

वैकारिकात् विकुर्वाणात् मनः तत्त्वं अजायत यत् सङ्कल्प विकल्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः ॥१७॥

वैकारिकात्	वैकारिक (सात्त्विक अहंकारके)	यत् सङ्कल्प	जिसके
विकुर्वाणात्	विकारवान होनेपर	विकल्पाभ्यां	संकल्प विकल्पसे
मनः तत्त्वं	मनरूपी तत्त्व	कामसम्भवः	कामनाकी उत्पत्ति
अजायत	उत्पन्न हुआ,	वर्तते	होती है ॥२७॥

यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ।
शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८॥

यत् विदुः अनिरुद्ध आख्यं हृषीकाणां अधीश्वरं शारद इन्दीवर श्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८॥

यत्	जिस	श्यामं	श्यामवर्णका (यह)
हृषीकाणां	इन्द्रियोंके	योगिभिः	योगियों द्वारा
अधीश्वरं	स्वामीको	शनैः	धीरे-धीरे
अनिरुद्ध आख्यं	अनिरुद्ध नामसे	संराध्यं	वशमें करने योग्य
विदुः	जाना जाता है।		है ॥२८॥
शारद इन्दीवर	शरद्ऋतुके इन्दीवरके समान		

तैजसात्तु विकुर्वाणाद् बुद्धितत्त्वमभूत्सति ।
द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥२९॥

तैजसात् तु विकुर्वाणात् बुद्धि तत्त्वं अभूत् सति द्रव्य स्फुरण विज्ञानं इन्द्रियाणां अनुग्रहः ॥२९॥

सति	साध्वी !	द्रव्य स्फुरण	पदार्थोंकी प्रतीतिका
तैजसात् तु	तैजस (राजस अहंकार) के तो	विज्ञानं	विज्ञान (और)
विकुर्वाणात्	परिणामी होनेपर	इन्द्रियाणां	इन्द्रियोंकी
बुद्धि तत्त्वं	बुद्धि तत्त्व	अनुग्रहः	सहायता (इसके कार्य हैं) ॥२९॥
अभूत्	उत्पन्न हुआ,		

संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ।
स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥३०॥

संशयः अथ विपर्यासः निश्चयः स्मृतिः एव च स्वाप इति उच्यते बुद्धेः लक्षणं वृत्तिभिः पृथक् ॥३०॥

वृत्तिभिः पृथक्	अलग-अलग वृत्तियोंके भेदसे	अथ विपर्यासः	तथा विपर्यय (विपरीत ज्ञान)
संशयः	संशय	निश्चयः	निश्चय

च स्मृतिः	और स्मृति,	लक्षणं उच्यते	लक्षण कहे जाते हैं
एव स्वाप	एवं निद्रा		(यही प्रद्युम्न
इति बुद्धेः	ये बुद्धिके		है ।) ॥३०॥

तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ।
प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥

तैजसात् इन्द्रियाणि एव क्रिया ज्ञान विभागशः प्राणस्य हि क्रिया शक्तिः बुद्धेः विज्ञान शक्तिता ॥३१॥

तैजसात् एव	तैजस (अहङ्कार) से ही	प्राणस्य हि	प्राणकी ही क्रिया शक्ति (कर्मेन्द्रिय)
क्रिया ज्ञान विभागशः	क्रिया और ज्ञानके भेदसे	बुद्धेः विज्ञान शक्तिता	बुद्धिकी विज्ञान शक्ति (ज्ञानेन्द्रिय)हैं ॥३१॥
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ हुईं(जिनमें)		

तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ।
शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥३२॥

तामसात् तु विकुर्वाणात् भगवद् वीर्य चोदितात् शब्द मात्रं अभूत् तस्मात् नभः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥३२॥

तामसात् तु	तामस (अहङ्कार) के तो	तस्मात् नभः च शब्दगम्	उससे आकाश हुआ और शब्द जाननेवाली
भगवत् वीर्य चोदितात्	भगवान्के तेजसे प्रेरित होनेपर,	श्रोत्रं	श्रवणेन्द्रिय (उत्पन्न हुई) ॥३२॥
विकुर्वाणात्	परिणामी होनेपर		
शब्द मात्रं अभूत्	शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हुई,		

अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च ।
तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥

अर्थ आश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुः लिङ्गत्वं एव च तन्मात्रत्वं च नभसः लक्षणं कवयः विदुः ॥३३॥

शब्दस्य अर्थ आश्रयत्वं	शब्दके अर्थका आधार होता,	नभसः तन्मात्रत्वं च	आकाशकी तन्मात्रा होना
द्रष्टुः लिङ्गत्वं	द्रष्टा (आत्मा) का चिह्न (व्यापक) होना (उसे समझाता)	कवयः लक्षणं विदुः	विद्वान (शब्दका) लक्षण जानते हैं ॥३३॥

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च ।
प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥

भूतानां छिद्र दातृत्वं बहिः अन्तरं एव च प्राण इन्द्रिय आत्म धिष्ण्यत्वं नभसः वृत्ति लक्षणम् ॥३४॥

भूतानां	प्राणियोंको	प्राण इन्द्रिय आत्म	प्राण, इन्द्रिय तथा मनका
बहिः अन्तरं एव च	बाहर और भीतर भी	धिष्ण्यत्वं	आश्रय होना
छिद्र दातृत्वं	अवकाश देना	नभसः वृत्ति लक्षणम्	आकाशके वृत्ति रूप लक्षण हैं ॥३४॥

नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ।
स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥३५॥

नभसः शब्द तन्मात्रात् कालगत्या विकुर्वतः स्पर्शः अभवत् ततः वायुः त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥३५॥

कालगत्या नभसः शब्द तन्मात्रात्	कालकी गतिसे आकाशकी तन्मात्रा शब्दके	ततः वायुः च स्पर्शस्य संग्रहः	उससे वायु उत्पन्न हुआ तथा स्पर्शका अनुभव करने वाली
विकुर्वतः स्पर्शः अभवत्	विकारी होनेपर स्पर्श (तन्मात्रा) उत्पन्न हुई,	त्वक्	त्वक्-इन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥३५॥

मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ।
एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥३६॥

मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यं उष्णत्वं एव च एतत् स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥३६॥

मृदुत्वं	कोमलता	तन्मात्रत्वं	तन्मात्रा होना
च कठिनत्वं	और कठोरता,	स्पर्शस्य	स्पर्श तन्मात्राका ।
शैत्यं	शीतलता	एतत्	इतना
च उष्णत्वं एव	तथा उष्णता भी	स्पर्शत्वं	स्पर्श स्वरूप है ॥३६॥
नभस्वतः	वायुकी		

चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥३७॥

चालनं व्यूहनं प्राप्तिः नेतृत्वं द्रव्यशब्दत्योः सर्व इन्द्रियाणां आत्मत्वं वायोः कर्म अभिलक्षणम् ॥३७॥

चालनं	हिलाना (शाखादि को)	नेतृत्वं	ले जाना (अपने साथ)
व्यूहनं	इकट्ठा कर देना (तृणादिको)	सर्व इन्द्रियाणां आत्मत्त्वं	सब इन्द्रियोंका (कार्य शक्ति देकर) उनका स्वरूप होना
प्राप्तिः	पहुँचाना (गन्धादि-को)	वायोः	वायुके
द्रव्यशब्दत्योः	पदार्थ तथा शब्दको	कर्म अभिलक्षणं	कर्मोंके ये लक्षण हैं ॥३७॥

वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरितादभूत् ।
समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ॥३८॥

वायोः च स्पर्श तन्मात्रात् रूपं दैव ईरितात् अभूत् समुत्थितं ततः तेजः चक्षुः रूप उपलम्भनम् ॥३८॥

वायोः च	वायुकी भी	रूपं समुत्थितात्	उत्पन्न हुई रूप तन्मात्रा
स्पर्श तन्मात्रात्	स्पर्श तन्मात्रासे		
दैव ईरितात्	दैवकी प्रेरणासे		

ततः तेजः रूप उपलम्भनं	उससे तेज और रूपको उपलब्ध करने वाली	चक्षुः	नेत्रेन्द्रिय (उत्पन्न हुई) ॥३८॥

द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च ।
तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥३९॥

द्रव्य आकृत्वं गुणता व्यक्ति संस्थात्वं एव च तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूप मात्रस्य वृत्तयः ॥३९॥

साध्वि	साध्वी !	व्यक्ति संस्थात्वं	व्यक्तिकी स्थिति बनाये रखना,
द्रव्य आकृत्वं	पदार्थकी आकृति व तल लाना,	तेजसः तेजस्त्वं	तेजकी तन्मात्रा होना,
गुणता	उसी आकृतिका हो जाना,	रूप मात्रस्य वृत्तयः	रूप तन्मात्राके कार्य हैं ॥३९॥

द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ।
तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडेव च ॥४०॥

द्योतनं पचनं पानं अदनं हिममर्दनं तेजसः वृत्तयः तु एताः शोषणं क्षुत् तृट् एव च ॥४०॥

द्योतनं	प्रकाश करना,	क्षुत् तृट् एव	भूख-प्यास लगाना भी
अदनं पानं पचनं	खाये-पियेको पचाना,	एताः तु	इतनी तो
हिममर्दनं च	शीत मिटाना तथा	तेजसः वृत्तमः	तेज (अग्नि) के कार्य हैं ॥४०॥

रुपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ।
रसमात्रमभूत्तस्मादम्भो जिह्वा रसग्रहः ॥४१॥

रूपमात्रात् विकुर्वाणात् तेजसः दैव चोदितात् रसमात्रं अभूत् तात अम्भः जिह्वाः रसग्रहः ॥४१॥

तात	तात !	रसमात्रं अभूत्	रस तन्मात्रा उत्पन्न हुई,
तेजसः			
रूपमात्रात्	तेजकी रूपतन्मात्राके	अम्भः	(उससे) जल (तथा)
दैव चोदितात्	दैवकी प्रेरणासे	रसग्रहः जिह्वाः	रस ग्रहण करनेवाली जीभ हुई ॥४१॥
विकुर्वाणात्	विकारो होनेपर		

कषायो मधुरस्तिक्तः कटवम्ल इति नैकधा ।
भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥४२॥

कषायः मधुरः तिक्तः कटु अम्ल इति नैकधा भौतिकानां विकारेण रस एकः विभिद्यते ॥४२॥

भौतिकानां	भौतिक पदार्थोंके	कटु	कड़वा.
विकारेण	मिलनेसे	अम्ल	खट्टा
रस एकः	एक होनेपर भी रस	इति नैकधा	इस प्रकार अनेक रूपोंमें
कषायः	कसैला,		
मधुरः	मीठा,	विभिद्यते	बँट जाता है ॥४२॥
तिक्तः	चरपरा,		

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोन्दनम् ।
तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ॥४३॥

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनं आप्यायनः ओन्दनं ताप अपनोदः भूयस्त्वं अम्भसः वृत्तयः तु इमाः ॥४३॥

क्लेदनं	गीला करना,	ओन्दनं	नरम बना देना (कड़े पदार्थोंको)
पिण्डनं	पिण्डाकार कर देना (चूर्णको)	ताप अपनोदः	गर्मी दूर करना,
तृप्तिः	तृप्त करना,	भूयस्त्वं	(पदार्थको) बढ़ा देना.
प्राणनं	जीवित रखना,	अम्भसः	जलके
आप्यायनं	प्यास बुझाना,	तु वृत्तयः इमाः	तो ये कार्य हैं ॥४३॥

रसमात्राद्विकुर्वाणादम्भसो दैवचोदितात् ।
गन्धमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः ॥४४॥

रस मात्रात् विकुर्वाणात् अम्भसः दैव चोदितात् गन्धमात्रं अभूत् तस्मात् पृथ्वी घ्राणः तु गन्धगः ॥४४॥

दैव चोदितात्	दैव द्वारा प्रेरित	तस्मात्	उससे
अम्भसः	जलकी	पृथ्वी तु	पृथ्वी और
रस मात्रात्	तन्मात्रा रसके	गन्धगः घ्राणः	गन्ध ग्राहिणी घ्राणेन्द्रिय हुई ॥४४॥
विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर		
गन्धमात्रं	गन्ध तन्मात्रा		
अभूत्	उत्पन्न हुई,		

करम्भपूतिसौरभ्यशान्तोग्राम्लादिभिः पृथक् ।
द्रव्यावयववैषम्याद्गन्ध एको विभिद्यते ॥४५॥

करम्भः पूतिः सौरभ्यः शान्तः उग्र अम्ल आदिभिः पृथक् द्रव्य अवयव वैषम्यात् गन्ध एकः विभिद्यते ॥४५॥

गन्ध एकः	गन्ध एक ही (होनेपर भी)	शान्तः	मधुर
द्रव्य अवयव	द्रव्योंके अंगोंके	उग्र	तीक्ष्ण,
वषम्यात्	कम अधिक मिलनेसे	अम्ल	खट्टी
करम्भः	मिश्रित गन्ध,	आदिभिः	आदि रूपोंमें
पूतिः	दुर्गन्ध	पृथक्	अलग-अलग
सौरभ्यः	सुगन्धि,	विभिद्यते	बँट जाती है ॥४५॥

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ।
सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥४६॥

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सत् विशेषणं सर्व सत्त्व गुण उद्भेदः पृथिवी वृत्ति लक्षणम् ॥४६॥

ब्रह्मणः	(प्रतिमान रूपसे) ब्रह्माकी	धारणं	(सबको) धारण करना,
भावनं स्थानं	भावनाका आधार होना,	सत् विशेषणं	सत्ताका विशेषण होना,

सर्व सत्त्व गुण उद्भेदः	सब प्राणियोंके गुणोंको प्रकट करना,	पृथिवी वृत्ति लक्षणं	पृथ्वीका कार्य-रूप लक्षण है ॥४६॥

नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ।
वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

नभः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् श्रोत्रं उच्यते वायोः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

नभः विशेष गुण	आकाशका विशेष गुण	वायोः विशेष गुण	वायुका विशेष गुण
यस्य अर्थः	जिसका विषय है	यस्य अर्थः	जिसका विषय है
तत् श्रोत्रं उच्यते	उसे कान कहा जाता है,	तत् स्पर्शनं विदुः	उसे स्पर्शेन्द्रिय जाना जाता है ॥४७॥

तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ।
अम्भोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ।
भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥

तेजः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् चक्षुः उच्यते अम्भः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् रसनं विदुः भूमेः गुण विशेष अर्थः यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥

तेजः विशेष गुण	तेजका विशेष गुण	यस्य अर्थः	जिसका विषय है
यस्य अर्थः	जिसका विषय है	तत् रसनं विदुः	उसे रसना जाना जाता है,
तत् चक्षुः उच्यते	उसे नेत्र कहा जाता है,	भूमेः विशेष गुण	भूमिका विशेष गुण
अम्भः विशेष गुण	जलका विशेष गुण	यस्य अर्थः	जिसका विषय है
		स घ्राण उच्यते	उसे घ्राणेन्द्रिय कहा जाता है ॥४८॥

परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन् समन्वयात् ।
अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥४९॥

परस्य दृश्यते धर्मः हि अपरस्मिन् समन्वयात् अतः विशेषः भावानां भूमा एव उपलक्ष्यते ॥४९॥

हि	क्योंकि	अतः	अतः
परस्य	पहिलोंका	भावानां विशेषः	(दूसरे) सब तत्त्वों की विशेषता
धर्मः	गुण		
अपरस्मिन्	उनसे पीछे होने वालोंमें	भूमा एव उपलक्ष्यते	पृथ्वीमें ही पायी जाती है ॥४९॥
समन्वयात्	(उनके) व्याप्त होनेसे		
दृश्यते	दीखते हैं,		

एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ।
कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ॥५०॥

एतानि असंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै काल कर्म गुण उपेतः जगदादिः उपाविशत् ॥५०॥

यदा	जब	काल कर्म गुण उपेतः	(तब) काल, कर्म, गुणोंके साथ
महदादीनि सप्त	महत्तत्त्वादि सात (महत्तत्त्व, अहङ्कार और पंच महाभूत)	जगदादिः	जगत्के आदि (भगवान नारायण)ने
वै असंहत्य	निश्चित पृथक-पृथक रहे (परस्पर मिल न सके)	उपाविशत्	(इनमें) प्रवेश किया ।५०॥

ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् ।
उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥५१॥

ततः तेन अनुविद्धेभ्यः युक्तेभ्यः अण्डं अचेतनं उत्थितं पुरुषः यस्मात् उदतिष्ठत् असौ विराट् ॥५१॥

ततः तेन	तब उन (नारायण) द्वारा	अनुविद्धेभ्यः	क्षुब्ध किए गए

युक्तेभ्यः	परस्पर मिले हुए (तत्त्वों) से
अचेतनं	अचेतन
अण्डं उत्थितं	एक अण्डा उत्पन्न हुआ,
यस्मात्	जिससे
असौ विराट्	यह विराट्
पुरुषः उदतिष्ठत्	पुरुष अभिव्यक्त हुआ ॥५१॥

एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ।
तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ।
यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥५२॥

एतत् अण्डं विशेष आख्यं क्रम वृद्धैः दश उत्तरैः तोय आदिभिः परिवृतं प्रधानेन आवृतैः बहिः यत्र लोक वितानः अयं रूपं भगवतः हरेः ॥५२॥

एतत् अण्डं	यह अण्ड
विशेष आख्यं	'विशेष' नामवाला है ।
क्रम दश उत्तरैः	क्रमशः दस गुना
वृद्धैः	बढ़ते जानेवाले
तोय आदिभिः	जल आदि (अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व)से
परिवृतं	घिरा हुआ है ।
प्रधानेन बहिः आवृतैः	प्रकृति द्वारा बाहरसे घिरा है ।
यत्र अयं भगवतः हरेः	जिसमें यह भगवान श्रीहरिका
लोक वितानः	लोकोंके विस्तार वाला
रूपं	विराट् रूप है॥५२॥

हिरण्मयादण्डकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ।
तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥५३॥

हिरण्मयात् अण्डकोशात् उत्थाय सलिलेशयात् तं आविश्य महादेवः बहुधा निर्बिभेद खम् ॥५३॥

हिरण्मयात्	स्वर्णमय
सलिलेशयात्	पानीमें सोते
अण्डकोशात्	अण्डकोशमें
महादेवः	देवादि देव(भगवान)ने
तं आविश्य	उसमें प्रवेश करके
बहुधा	अनेक प्रकारकी
खं निर्बिभेद	छिद्र(इन्द्रिय गोलक) उत्पन्न किए ॥५३॥

निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ।
वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोतो घ्राण एतयोः ॥५४॥

निरभिद्यता अस्य प्रथमं मुखं वाणी ततः अभवत् वाण्या वह्निः अथ नासे प्राणः अतः घ्राणः एतयोः ॥५४॥

प्रथमं अस्य	पहिले इसके	**अथ एतयोः**	फिर इसके
मुखं निरभिद्यता	मुख प्रकट हुआ,	**नासे प्राण अतः**	नासिका छिद्र, उनमें प्राणके साथ
ततः वाणी			
अभवत्	उसमें वाणी (वाक् इन्द्रिय)	**घ्राणः**	घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥५४॥
वाण्या वह्निः	वाक् इन्द्रियसे (उसके अधिदेवता) अग्नि हुए ।		

घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः ।
तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः ॥५५॥

घ्राणात् वायुः अभिद्येतां अक्षिणीः चक्षुः एतयोः तस्मात् सूर्यः न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततः दिशः ॥५५॥

घ्राणात्	घ्राणेन्द्रियसे	**सूर्यः**	सूर्य प्रकट हुए,
वायुः अभिद्येतां	वायु प्रकट हुआ,	**कर्णौ**	फिर कर्ण गोलक
एतयोः अक्षिणीः	फिर इसके नेत्र गोलक हुए	**न्यभिद्येतां**	इसके प्रकट हुए,
		ततः श्रोत्रं	उनसे श्रवणेन्द्रिय और
चक्षुः	उससे नेत्रेन्द्रिय तथा		
तस्मात्	उससे (उसके अधिदेव)	**दिशः**	(उनके अधिदेवता) दिशामें हुईं ॥५५॥

निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्रूवादयस्ततः ।
तत ओषधयश्चासन् शिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥५६॥

निर्बिभेद विराजः त्वक् रोमश्मश्रु आदयः ततः ततः ओषधयः च आसन् शिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥५६॥

विराजः	विराट्के	**ततः रोमश्मश्रु आदयः**	उससे रोम, दाढ़ी, मूंछ आदि
त्वक् निर्बिभेदे	त्वचा प्रगट होनेपर		

ततः	और उनसे	ततः शिश्नं	
ओषधयः च		निर्बिभिदे	तब लिङ्ग
आसन्	ओषधियाँ भी उत्पन्न हुईं,		फूटा ॥५६॥

रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ।
गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥५७॥

रेतः तस्मात् आपः आसन् निरभिद्यत वै गुदं गुदात् अपानः अपानात् च मृत्युः लोक भयङ्करः ॥५७॥

तस्मात् रेतः	उससे वीर्य (और)	अपानात्	अपानसे (उसका
आपः आसन्	जल हुआ,		अभिमानी)
वै गुदं		लोक भयङ्करः	
निरभिद्यत्	फिर तो गुदा फूटी,	मृत्युः	लोक भयङ्कर मृत्यु
गुदात् अपानः	गुदासे अपान वायु		उत्पन्न हुआ ॥५७॥

हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ।
पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥५८॥

हस्तौ च निरभिद्यत् एतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् पादौ च निरभिद्येत् एतां गतिः ताभ्यां ततः हरिः ॥५८॥

एतां	इस (अण्ड) में	एतां पादौ च	इसके पैर भी
हस्तौ च	हाथ भी	निरभिद्यत	निकले
निरभिद्येत्	फूट आये-	ताभ्यां गतिः	उनसे गति आयी,
बलं ताभ्यां	उनसे बल हुआ,	ततः हरिः	उसमें (गतिके देव
ततः स्वराट्	उनमें (उनके देवता)		स्वयं) श्रीहरि
	इन्द्र हुए,		हुए ॥५८॥

नाड्योऽस्य निरभिद्यन्त ताभ्यो लोहितमाभृतम् ।
नद्यस्ततः समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥५९॥

नाड्यः अस्य निरभिद्य एतां ताभ्यः लोहितं आभृतं नद्यः ततः समभवन् उदरं निरभिद्यत ॥५९॥

एतां	इस (विराट् पुरुष) को	ततः नद्यः	उन (नाड़ियों) से नदियाँ
नाड्य निर्भिद्य	नाड़ियाँ प्रकट होनेपर	समभवन्	उत्पन्न हुईं,
लोहितं आभृतं	वे रक्तसे भर गयीं	उदरं निरभिद्यत	फिर उदर प्रकट हुआ ॥५८॥

क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ।
अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥६०॥

क्षुत् पिपासे ततः स्यातां समुद्रः तु एतयोः अभूत् अथ अस्य हृदयं भिन्नं हृदयात् मन उत्थितम् ॥६०॥

ततः क्षुत् पिपासे	उस (उदर) में	अथ अस्य	फिर इसके
स्यातां	भूख-प्यास लगने लगी,	हृदयं भिन्नं	हृदय उत्पन्न हुआ,
एतयोः	इसी (उदर) से	हृदयात्	हृदयसे
समुद्रः तु अभूत्	समुद्र भी उत्पन्न हुआ,	मन उत्थितं	मन उठ खड़ा हुआ ॥६०॥

मनसश्चन्द्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः ।
अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततोऽभवत् ॥६१॥

मनसः चन्द्रमाः जातः बुद्धिः बुद्धेः गिरां पतिः अहङ्कारः ततः रुद्रः चित्तं चैत्यः ततः अभवत् ॥६१॥

मनसः	मनसे (उसका अभिमानी देवता)	अहङ्कारः	(हृदयसे ही)अहंकार
चन्द्रमाः जातः	चन्द्रमा उत्पन्न हुआ,	ततः रुद्रः	उससे रुद्र हुए ।
बुद्धिः	(हृदयसे ही) बुद्धि और	चित्तं	(फिर) चित्त
बुद्धेः गिरां पतिः	बुद्धिसे (उसके देवता) ब्रह्मा हुए,	ततः चैत्यः	उससे (उसका अधिदेव) क्षेत्रज्ञ
		अभवत्	हुआ ॥६१॥

एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् ।
पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥६२॥

एते हि अभ्युत्थिताः देवाः न एव अस्य उत्थापने अशकन् पुनः आविविशुः खानि तं उत्थापयितुं क्रमात् ॥६२॥

हि	क्योंकि	अशकन्	समर्थ नहीं हुए,
अभ्युत्थिताः	उत्पन्न हुए	उत्थापयितुं	उठानेके लिए
एते देवाः	ये देवता	क्रमात्	क्रमशः
अस्य उत्थापने	इस (विराट्) को उठानेमें	पुनः खानि आविविशुः	फिर अपने गोलकोंमें प्रविष्ट हुए ॥६२॥

वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६३॥

वह्निः वाचा मुखं भेजे न उदतिष्ठत् तदा विराट् घ्राणेन नासिके वायुः न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६३॥

वह्निः वाचा	अग्निने वाणीके साथ	नासिके	नासिकामें (प्रविष्ट हुआ)
मुखं भेजे	मुखमें प्रवेश किया,	तदा विराट्	तब विराट्
तदा विराट्	तब विराट्	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६३॥
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,		
घ्राणेन वायुः	गन्धके साथ वायु		

अक्षिणी चक्षुषाऽऽदित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६४॥

अक्षिणी चक्षुषाः आदित्यः न उदतिष्ठत् तदा विराट् श्रोत्रेण कर्णौ च दिशः न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६४॥

चक्षुषाः आदित्यः	नेत्रोंके साथ सूर्य	श्रोत्रेण च दिशः	कानोंके साथ दिशाएँ भी
चक्षिणीः	आँखोंमें (प्रविष्ट हुए)	कर्णौ	कर्ण-गोलकोंमें (प्रविष्ट हुईं)
तदा विराट्	तब विराट्	तदा विराट्	तब विराट्
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६४॥

त्वचं रोमभिरोषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६५॥

त्वचं रोमभिः ओषध्यः न उदतिष्ठत् तदा विराट् रेतसा शिश्नं आपः तु न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६५॥

ओषध्यः		आपः तु रेतसा	जल तो वीर्यके साथ
रोमभिः	औषधियाँ रोमोंके साथ	शिश्नं	उपस्थमें (प्रविष्ट हुआ)
त्वचं	त्वचामें(प्रविष्ट हुईं)	तदा विराट्	तब विराट्
तदा विराट्	तब विराट्	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६५॥
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,		

गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
हस्तावि न्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६६॥

गुदं मृत्युः अपानेन न उदतिष्ठत् तदा विराट् हस्ताः इन्द्रः बलेन एव न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६६॥

मृत्युः अपानेन	मृत्यु अपान-वायुके साथ	इन्द्रः बलेन एव	इन्द्र बलके साथ ही
		हस्ताः	हाथोंमें (प्रविष्ट हुए)
गुदं	गुदामें (प्रविष्ट हुआ)	तदा विराट्	तब विराट्
तदा विराट्	तब विराट्	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६६॥
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,		

विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६७॥

विष्णुः गत्या एव चरणौ न उदतिष्ठत् तदा विराट् नाडीः नद्यः लोहितेन न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६७॥

विष्णुः		चरणौ	चरणोंमें (प्रविष्ट हुए)
गत्या एव	विष्णु भगवान् गतिके साथ ही	तदा विराट्	तब विराट्

न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,	तदा विराट्	तब विराट्
नद्यः लोहितेन	नदियां रक्तके साथ	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६७॥
नाड़ीः	नाड़ियोंमें (प्रविष्ट हुईं)		

क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिन्धुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
हृदयं मनसा चन्द्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६८॥

क्षुत् तृट्भ्यां उदरं सिन्धुः न उदतिष्ठत् तदा विराट् हृदयं मनसा चन्द्रः न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६८॥

क्षुत् तृट्भ्यां		न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,
सिन्धुः	भूख-प्यासके साथ समुद्र	मनसा चन्द्र	मनके साथ चन्द्रमा
		हृदयं	हृदयमें (प्रविष्ट हुए)
उदरं	उदरमें (प्रविष्ट हुआ)	तदा विराट्	तब विराट्
		न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६८॥
वदा विरट्	तब विराट्		

बुद्ध्या ब्रह्मापि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६९॥

बुद्ध्या ब्रह्मा अपि हृदयं न उदतिष्ठत् तदा विराट् रुद्रः अभिमत्या हृदयं न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६९॥

बुद्ध्या ब्रह्मा		अभिमत्या रुद्रः	अभिमानके साथ रुद्र
अपि	बुद्धिके साथ ब्रह्माजी भी		
		हृदयं	हृदयमें (प्रविष्ट हुए)
हृदयं	हृदयमें (प्रविष्ट हुए)	तदा विराट्	तब विराट्
तदा विराट्	तब विराट्	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६९॥
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा		

चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ।
विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥७०॥

चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशत् यदा विराट् तदा एव पुरुषः सलिलात् उदतिष्ठत ॥७०॥

चित्तेन चैत्यः क्षेत्रज्ञः	चित्तके साथ चैत्य क्षेत्रज्ञ	तदा एव विराट् पुरुषः सलिलात्	उसी समय विराट् पुरुष
यदा हृदयं प्राविशत्	जब हृदयमें प्रविष्ट हुआ ।	उदतिष्ठत्	पानीमें-से उठ खड़ा हुआ ॥७०॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रियमनोधियः ।
प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥७१॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राण इन्द्रिय मनः धियः प्रभवन्ति विना येन न उत्थापयितुं ओजसा ॥७१॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं	जैसे सोए पुरुषको	मनः धियः ओजसा	मन और बुद्धि
येन विना	जिस (क्षेत्रज्ञ) के बिना	उत्थापयितुं न प्रभवन्ति	बलपूर्वक उठानेमें नहीं समर्थ
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रियाँ,		होते ॥७१॥

तमस्मिन् प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ।
भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥७१॥

तं अस्मिन् प्रत्यगात्मानं धिया योग प्रवृत्तया भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्य आत्मनि चिन्तयेत् ॥७२॥

अस्मिन्	इस शरीरमें	विरक्त्या ज्ञानेन	वैराग्य सहित ज्ञानसे
तं प्रत्यगात्मानं	उस अन्तरात्माको	विविच्य आत्मनि	विवेक करके
योग प्रवृत्तया	योगमें लगी	चिन्तयेत्	अपनेमें ही चिन्तन करे ॥७२॥
धिया	बुद्धिसे		
भक्त्या	भक्तिपूर्वक		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ।
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥१॥

प्रकृतिस्थः अपि पुरुषः न अज्यते प्राकृतैः गुणैः अविकारात् अकर्तृत्वात् निर्गुणत्वात् जल अर्कवत् ॥१॥

जल अर्कवत्	जलमें पड़े सूर्य के प्रतिविम्बके समान	**अकर्तृत्वात्**	अकर्ता होनेसे,
प्रकृतिस्थः अपि	प्रकृतिमें स्थित होने पर भी	**निर्गुणत्वात्**	निर्गुण होनेसे
पुरुषः	पुरुष	**प्राकृतैः गुणैः**	प्रकृतिके गुणों (धर्मों) से
अविकारात्	निर्विकार होनेसे,	**न अज्यते**	लिप्त नहीं होता ॥१॥

स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ।
अहंक्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यते ॥२॥

स एष यर्हि प्रकृतेः गुणेषु अभिविषज्जते अहंक्रिया विमूढ आत्मा कर्ता अस्मि इति अभिमन्यते ॥२॥

स एष	वही यह	**अभिविषज्जते**	अत्यन्त लिप्त हो जाता है (तब)
यर्हि	जब	**कर्ता अस्मि**	मैं करने वाला हूँ
प्रकृतेः गुणेषु	प्रकृतिके गुणोंमें	**इति अभिमन्यते**	ऐसा मानने लगता है ॥२॥
अहंक्रिया	अपने कर्तृत्वके अहंकारसे		
विमूढ आत्मा	विमूढ चित्त		

तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृतः ।
प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥३॥

तेन संसार पदवीं अवशः अभ्येति अनिर्वृतः प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सत् असत् मिश्र योनिषु ॥३॥

तेन	उस (अहंकार) के कारण	अनिर्वृतः	दुःखी होकर
		सत् असत् मिश्र	उत्तम, अधम, मध्यम
प्रासङ्गिकैः	संसर्गमें रहने वालों (शरीरादि) के	योनिषु	योनियोंमें
		संसार पदवीं	संसारमें
कर्मदोषैः	कर्मोंके दोषसे	अभ्येति	बार-बार जन्म लेता है ॥३॥
अवशः	विवश होकर		

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥४॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥४॥

यथा स्वप्ने अनर्थ आगमः	जैसे स्वप्नमें (अनेक) अनर्थ (कष्ट) आते हैं,	विषयान् ध्यायतः	भोगोंका चिन्तन करनेसे
हि	वैसे ही	अस्य संसृतिः	इस (जीव) का जन्म-मरण चक्र
अर्थे अविद्यमाने आपि	पदार्थोंकी सत्ता न होने पर भी	न निवर्तते	नहीं मिटता ॥४॥

अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ।
भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥५॥

अत एव शनैः चित्तं प्रसक्तं असतां पथि भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेत् वशम् ॥५॥

अत एव	इसलिए ही	तीव्रेण विरक्त्या	तीव्र वैराग्यसे
असतां पथि	असन्मार्गमें	शनैः वशं नयेत्	धीरे-धीरे वशमें लावे ॥५॥
प्रसक्तं चित्तं	आसक्त चित्तको		
भक्तियोगेन	भगवानकी भक्तिसे और		

यमादिभिर्योगपथैरभ्यसञ् श्रद्धयान्वितः ।
मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥६॥

यम आदिभिः योगपथैः अभ्यसन् श्रद्धया अन्वितः मयि भावेन सत्येन मत्कथा श्रवणेन च ॥६॥

श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा सहित	मयि भावेन	
यम आदिभिः	यम (नियम) आदि	सत्येन	मुझमें सच्चे भावसे
योगपथैः	योगके साधनोंका	च मत्कथा	
अभ्यसन्	अभ्यास करते,	श्रवणेन	और मेरी कथा सुनने से ॥६॥

सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसङ्गतः ।
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥७॥

सर्वभूत समत्वेन निर्वैरेण अप्रसङ्गतः ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥७॥

सर्वभूत समत्वेन	सब प्राणियोंमें समभाव रखनेसे,	मौनेन	मौनसे,
निर्वैरेण	कहीं शत्रुता न रखनेसे,	बलीयसा स्वधर्मेण	बलवान (निष्ठापूर्वक) अपने धर्मके पालनसे ॥७॥
अप्रसङ्गतः	अनासक्तिसे,		
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य पालनसे,		

यदृच्छयोपलब्धेन सन्तुष्टो मितभुङ् मुनिः ।
विविक्तशरणः शान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥८॥

यदृच्छया उपलब्धेन सन्तुष्टः मितभुक् मुनिः विविक्त शरणः शान्तः मैत्रः करुण आत्मवान् ॥८॥

यदृच्छया	बिना मांगे स्वतः	विविक्त शरणः	एकान्तमें रहनेवाला
उपलब्धेन	मिले हुएसे	शान्तः	शान्त स्वभाव,
सन्तुष्टः	सन्तुष्ट,	मैत्रः	सबका मित्र,
मितभुक्	थोड़ा खाने वाला,	करुण	कृपा शील,
मुनिः	मननशील,	आत्मवान्	धैर्य शाली ॥८॥

सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ।
ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥९॥

स अनुबन्धे च देहे अस्मिन् न कुर्वन् असत् आग्रहं ज्ञानेन दृष्ट तत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥९॥

स अनुबन्धे	सम्बन्धियोंके साथ	प्रकृतेः	
अस्मिन् देहे च	इस शरीरमें भी	पुरुषस्य च	प्रकृत और पुरुषका
असत् आग्रहं	दुराग्रह	दृष्ट तत्त्वेन	तत्त्व विवेक करने वाले
न कुर्वन्	न करके,	ज्ञानेन	ज्ञानसे ॥९॥

निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ।
उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥१०॥

निवृत्त बुद्धि अवस्थानः दूरीभूत अन्य दर्शनः उपलभ्य आत्मना आत्मानं चक्षुषा एव अर्कं आत्मदृक् ॥१०॥

बुद्धि अवस्थानं	बुद्धिकी (जाग्रतादि) अवस्थाओंसे	आत्मना आत्मानं	अपने द्वारा आत्माका
निवृत्त	अतीत होकर	आत्मदृक्	आत्मदर्शी हो गया ॥१०॥
अन्य दर्शनः	दूसरेका दीखना		
दूरीभूतः	दूर हो गया,		
चक्षुषा एव अर्कं	नेत्रोंसे सूर्यके समान		

मुक्तलिङ्गं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ।
सतो बन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥११॥

मुक्तलिङ्गं सत् आभासं असति प्रतिपद्यते सतः बन्धुं असत् चक्षुः सर्व अनुस्यूतं अद्वयम् ॥११॥

मुक्तलिङ्गं	लिंग शरीरसे मुक्त हो गया,	सतः प्रतिपद्यते	सत्य (ब्रह्म) को प्राप्त हो जाता है,
असति सत् आभासं	असत् (अहंकारादि) में सत्य रूपसे भासनेवाले	बन्धुं	जो (सच्चा) मित्र है,
		असत् चक्षुः	असत् (जगत्) का प्रकाशक है,
		सर्व अनुस्यूतं	सबमें व्यापक है,
		अद्वयम्	अद्वितीय है ॥११॥

यथा जलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ।
स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥१२॥

यथा जलस्य आभासः स्थल स्थेन अवदृश्यते स्व आभासेन तथा सूर्यः जलस्थेन दिवि स्थितः ॥१२॥

यथा स्थल स्थेन	जैसे स्थल (दीवार) पर पड़नेसे	**तथा जलस्थेन**	वैसे ही जलमें पड़े
जलस्य आभासः	जलका (जलमें पड़ा) प्रतिबिम्ब	**आभासेन**	प्रतिबिम्बके द्वारा
अवदृश्यते	देखा जाता है,	**दिवि स्थितः**	आकाशमें स्थित
		सूर्यः	सूर्य (देखा जाता है ।) ॥१२॥

एवं त्रिवृदहङ्कारो भूतेन्द्रियमनोमयैः ।
स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥१३॥

एवं त्रिवृत् अहङ्कारः भूत इन्द्रिय मकोमयैः स्व आभासैः लक्षितः अनेन सत् आभासेन सत्यदृक् ॥१३॥

एवं	इसी प्रकार	**लक्षितः**	लक्षित होता है,
त्रिवृत् अहङ्कारः	तीन (वैकारिकादि) भेदवाल अहंकार	**सत् आभासेन**	परमात्माके आभास युक्त
भूत इन्द्रिय मनोमयैः	शरीर, इन्द्रिय तथा मनमें पड़े	**अनेन**	इस (अहंकार) द्वारा
स्व आभासैः	अपने आभाससे	**सत्यदृक्**	ज्ञान स्वरूप (परमात्मा लक्षित होता है) ॥१३॥

भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ।
लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहंक्रियः ॥१४॥

भूत सूक्ष्म इन्द्रिय मनः बुद्धि आदिषु इह निद्रया लीनेषु असति यः तत्र विनिद्रः निरहंक्रियः ॥१४॥

इह	इस (संसार) में	**असति**	न होने पर भी
निद्रया लीनेषु	निद्रामें लीन होनेसे	**यः तत्र**	जो वहाँ
भूत सूक्ष्म इन्द्रिय मन बुद्धि आदिषु	शरीर सूक्ष्म इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके	**विनिद्रः**	जागृत
		निरहंक्रियः	अहंकार रहित (रहता है) ॥१४॥

मन्यमानस्तदाऽऽत्मानमनष्टौ नष्टवन्मृषा ।
नष्टेऽहङ्करणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥१५॥

मन्यमानः तदा आत्मानं अनष्टौ नष्टवत् मृषा नष्टे अहङ्करणे द्रष्टा नष्ट वित्त इव आतुरः ॥१५॥

तदा अहङ्करणे	उस समय (सुषुप्तिमें) अहंकारके	**मृषा नष्टवत्**	झूठे ही नष्टके समान
		मन्यमानः	मानता हुआ
नष्टे	नाश (लय) हो जाने पर	**नष्ट वित्त इव**	जिसके धन नष्ट हुआ हो उसके समान
द्रष्टा	(उसको) देखने वाला आत्मा	**आतुरः**	व्याकुल होता है ॥१५॥
अनष्टौ	नष्ट न होने पर भी		

एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मनं प्रतिपद्यते ।
साहङ्कारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥१६॥

एवं प्रति अवमृश्य असा आत्मानं प्रति पद्यते स अहङ्कारस्य द्रव्यस्य यः अवस्थानं अनुग्रहः ॥१६॥

एवं प्रति अवमृश्य	इस प्रकार (आत्माके) सम्बन्धमें विचार करके	**यः अवस्थानं अनुग्रहः**	जो अधिष्ठान (और) प्रकाशक है
		असा आत्मानं प्रति पद्यते	यह आत्मा है (यह) जाना जाता है ॥१६॥
स अहङ्कारस्य द्रव्यस्य	अहंकार सहित सब पदार्थोंका		

देवहूतिरुवाच—

पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुञ्चति कर्हिचित् ।
अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥१७॥

पुरुषं प्रकृतिः ब्रह्मन् न विमुञ्चति कर्हिचित् अन्योन्य अपाश्रय त्वात् च नित्यत्वात् अनयोः प्रभो ॥१७॥

ब्रह्मन् प्रभो	ब्रह्मन् ! प्रभो !
अन्योन्य उपाश्रय	
त्वात्	एक दूसरे पर अवलम्बित होनेसे,
च अनयोः नित्य-	
त्वात्	और इन दोनोंके नित्य होनेसे
प्रकृतिः पुरुषं	प्रकृति पुरुषको
कर्हिचित्	कभी भी
न विमुञ्चति	नहीं छोड़ती ॥१७॥

यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ।
अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥१८॥

यथा गन्धस्य भूमेः च न भावः व्यतिरेकतः अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥१८॥

यथा गन्धस्य च	
भूमेः	जैसे गन्धका और पृथ्वीका
रसस्य च अपां	रसका और जलका
तथा बुद्धेः च	
परस्य	वैसे ही प्रकृतिका और पुरुषका
व्यतिरेकतः	पृथक
भावः न	सत्ता नहीं है ॥१८॥

अकर्तुः कर्मबन्धोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ।
गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥१९॥

अकर्तुः कर्म बन्धः अयं पुरुषस्य यत् आश्रयः गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेषु अतः कथम् ॥१९॥

यत् आश्रयः	जिनके सहारे रहनेसे
अकर्तुः पुरुषस्य	अकर्ता पुरुषका
अयं कर्म बन्धः	यह कर्मोंका बन्धन है,
तेषु प्रकृतेः	इन प्रकृतिके
गुणेषु सत्सु	गुणोंके रहते
अतः कैवल्यं कथं	फिर कैवल्य कैसे प्राप्त होगा ? ॥१९॥

क्वचित् तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ।
अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥२०॥

क्वचित् तत्त्व अवमर्शेन निवृत्तं भयं उल्बणं अनिवृत्त निमित्त त्वात् पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥२०॥

तत्त्व अवमर्शेन	तत्त्व विचारसे	निमित्त अनिवृत्त	(उसके) कारणके बने रहनेसे
क्वचित्	कभी	पुनः प्रत्यवष्ठिते	फिर आ जायगा ॥२०॥
उल्बणं भयं	भयानक (जन्म-मरणरूप) भय		
निवृत्तं	छूट भी जाय तो		

कपिल उवाच–

अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ।
तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसम्भृतया चिरम् ॥२१॥

अनिमित्त निमित्तेन स्वधर्मेण अमलात्मना तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुत सम्भृतया चिरम् ॥२१॥

अनिमित्त निमित्तेन	निष्काम भावसे पालन किए गये	च चिरं तीव्रया श्रुत सम्भृतया	और बहुत समय तक (कथा) सुननेसे उत्पन्न
स्वधर्मेण	अपने धर्मसे	मयि भक्त्या	मुझमें भक्तिसे ॥२१॥
अमलात्मना	निर्मल चित्त हुए		

ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ।
तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥२२॥

ज्ञानेन दृष्ट तत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेण आत्मसमाधिना ॥२२॥

दृष्ट तत्त्वेन	तत्त्व दर्शन कराने वाले	तपोयुक्तेन योगेन	तपस्या सहित योगसे,
ज्ञानेन	ज्ञानसे,	तीव्रेण	
बलीयसा वैराग्येण	बलवान वैराग्यसे,	आत्मसमाधिना	तीव्र चित्तकी एकाग्रतासे ॥२२॥

प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् ।
तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥२३॥

प्रकृतिः पुरुषस्य इह दह्यमाना तु अहर्निशं तिरोभवित्री शनकैः अग्नेः योनिः इव अरणिः ॥२३॥

अग्नेः योनिः	अग्निके उत्पत्ति स्थान	**अहर्निशं तु**	रात-दिन ही
अरणिः इव	काष्ठके समान	**दह्यमाना**	जलती हुई
इह पुरुषस्य	यहां (जीवनमें) पुरुषकी	**शनकैः**	धीरे-धीरे
प्रकृतिः	प्रकृति	**तिरोभवित्री**	लुप्त हो जाती है ॥२३॥

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ।
नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥२४॥

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः न ईश्वरस्य अशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥२४॥

नित्यशः दृष्टदोषा	नित्यप्रति दोष देखकर	**स्थितस्य च**	स्थित हुए और
भुक्तभोगा	भोग भोगकर	**ईश्वरस्य**	समर्थ पुरुषका
परित्यक्ता	त्यागी हुई (प्रकृति)	**अशुभं न धत्ते**	अकल्याण नहीं करपाती ॥२४॥
स्वे महिम्नि	अपनी महिमामें		

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ।
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥२५॥

यथा हि अप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापः बहु अनर्थभृत् स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥२५॥

हि यथा	क्योंकि जैसे	**स एव वै**	वही निश्चय
अप्रतिबुद्धस्य	सोते रहने वालेके लिए	**प्रतिबुद्धस्य**	जग जाने वालेको
प्रस्वापः	स्वप्न	**मोहाय न कल्पते**	मोह नहीं उत्पन्न करता ॥२५॥
बहु अनर्थभृत्	बहुत अनर्थ देने वाला होता है,		

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ।
युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥२६॥

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिः मयि मानसंयुञ्जतः न अपकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥२६॥

एवं	
विदिततत्त्वस्य	इसी प्रकार तत्त्वज्ञान हुए
मयि मानसः	मुझमें मन
युञ्जतः	लगाने वाले
आत्मारामस्य	आत्मारामका
प्रकृतिः न	
अपकुरुत	प्रकृति अपकार नहीं करती ॥२६॥

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ।
सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥२७॥

यत् एव अध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना सर्वत्र जात वैराग्यः आब्रह्मभुवनात् मुनिः ॥२७॥

बहुजन्मना	बहुत जन्मोंमें
कालेन	बहुत समयमें
आब्रह्मभुवनात्	ब्रह्मलोक तक
सर्वत्र जात	
वैराग्यः	सर्वत्र वैराग्य उत्पन्न होने पर
यत एव मुनिः	
अध्यात्मरतः	मुनि जब भी आत्म चिन्तनमें निमग्न होता है ॥२७॥

मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ।
निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥२८॥

मद्भक्तः प्रतिबुद्ध अर्थः मत्प्रसादेन भूयसा निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मत् आश्रयम् ॥२८॥

मद्भक्तः	मेरा भक्त होता है,
प्रतिबुद्ध अर्थः	तत्त्व ज्ञान होता है,
भूयसा	
मत्प्रसादेन	मेरी महती कृपासे
मत् आश्रयं	मेरे आश्रित
स्वसंस्थानं	अपने परमस्थान
निःश्रेयसं	आत्मन्तिक कल्याण
कैवल्याख्यं	जिसे कैवल्य कहते हैं ॥२८॥

प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरः स्वदृशाच्छिन्नसंशयः ।
यद्गत्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गाद्विनिर्गमे ॥२९॥

प्राप्नोति इह अञ्जसा धीरः स्वदृशा छिन्न संशयः यद् गत्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गात् विनिर्गमे ॥२९॥

धीरः	धीर पुरुष	यद् गत्वा	जहां जाकर
स्वदृशा	अपने ही ज्ञानसे (उसके सब)	योगी न निवर्तेत	योगी नहीं लौटता
छिन्न संशयः	संशय कट जाते हैं ।	इह अञ्जसा	इसी (जीवन) में सरलतासे
लिङ्गात् विनिर्गमे	लिंग शरीरसे निकल जानेपर	प्राप्नोति	इच्छा पाता है ॥२९॥

यदा न योगोपचितासु चेतो
मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग ।
अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्याद्
आत्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥३०॥

यदा न योगः उपचितासु चेतः मायासु सिद्धस्य विषज्जते अङ्ग अनन्यहेतुषु अथ मे गतिः स्यात् आत्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥३०॥

अङ्ग	प्यारी मां !	आत्यन्तिकी गति	आत्यन्तिक गति (परम-पद)
यदा योगः उपचितासु	जब योगसे प्राप्त	स्यात्	प्राप्त होती है
अनन्यहेतुषु	जिनको पानेका (योगके अतिरिक्त) दूसरा साधन नहीं है	यत्र मृत्यु-हासः न	जहाँ मृत्युका हास्य नहीं है (जो अविनाशी-पद है ।) ॥३०॥
मायासु	माया (सिद्धियों) में		
सिद्धस्य न विषज्जते	सिद्ध पुरुषकी आसक्ति नहीं होती		
अथ मे	तब मेरी (वह)		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथ अष्टविंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ।
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥१॥

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे मनः येन एव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥१॥

नृपात्मजे	राजपुत्री !	येन विधिना एव	जिस विधिसे ही
सबीजस्य	बीज (आलम्बन) युक्त	मनः प्रसन्नः	मन शुद्ध होकर
		सत्पथं	परमात्माके मार्गमें
योगस्य लक्षणं	योगका लक्षण	याति	जाता है ॥१॥
वक्ष्ये	बतलाता हूँ		

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ।
दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥२॥

स्वधर्म आचरणं शक्त्या विधर्मात् च निवर्तनं दैवात् लब्धेन सन्तोषः आत्मवित् चरण अर्चनम् ॥२॥

शक्त्या	शक्तिके अनुसार	दैवात् लब्धेन	प्रारब्धानुसार जो मिले
स्वधर्म आचरणं	अपने धर्मका आचरण,	सन्तोषः	उसमें सन्तुष्ट रहना,
च विधर्मात्	और विपरीत आचरणका	आत्मवित्	आत्मज्ञानी (पुरुषोंके)
निवर्तनं	परित्याग,	चरण अर्चनं	चरणोंकी पूजा ॥२॥

ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा ।
मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥३॥

ग्राम्य धर्म निवृत्तिः च मोक्षधर्म रतिः तथा मित मेध्य अदनं शश्वत् विविक्त क्षेम सेवनम् ॥३॥

च ग्राम्य धर्म	और कामासक्तिको	शश्वत् मित	निरन्तर परमित
निवृत्तिः	त्याग देना,	मेध्य अदनं	पवित्र भोजन करना,
तथा मोक्षधर्म	तथा मुक्त करने वाले साधनोंमें	विविक्त क्षेम	एकान्तमें उपद्रवहीन स्थानमें
रतिः	प्रीति होना,	सेवनम्	रहना ॥३॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ।
ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥४॥

अहिंसा सत्यं अस्तेयं यावत् अर्थः परिग्रहः ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुष अर्चनम् ॥४॥

अहिंसा सत्यं	अहिंसा, सत्य,	ब्रह्मचर्यं	ब्रह्मचर्यका पालन करना
अस्तेयं	चोरी न करना,	तपः, शौचं	तपस्या, पवित्रता,
यावत् अर्थः	जितना प्रयोजन हो	स्वाध्यायः	जप
परिग्रहः	(उतना ही) संग्रह रखना,	पुरुष अर्चनं	भगवानकी पूजा करना ॥४॥

मौनं सदाऽऽसनजयस्थैर्यं प्राणजयः शनैः ।
प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥५॥

मौनं सदा आसन जयः स्थैर्यं प्राणजयः शनैः प्रत्याहारः च इन्द्रियाणां विषयात् मनसा हृदि ॥५॥

मौनं	वाणीका संयम,	च इन्द्रियाणां	और इन्द्रियोंको
सदा आसनं		विषयात्	भोगोंसे
जयः	बराबर स्थिर बैठे रहना,	मनसा	मनके द्वारा
स्थैर्यं	स्थिर रहना,	हृदि प्रत्याहारः	हृदयमें खींचकर रोक रखना ॥५॥
शनैः प्राणजयः	धीरे-धीरे श्वास जीतना,		

स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ।
वैकुण्ठलीलाभिध्यानं समाधानं तथाऽऽत्मनः ॥६॥

स्वधिष्ण्यानां एकदेशे मनसा प्राण धारणं वैकुण्ठ लीला अभिध्यानं समाधानं तथा आत्मनः ॥६॥

स्वधिष्ण्यानां	अपने (मूलाधारादि) किसी केन्द्रमें	वैकुण्ठ लीला	भगवान नारायणकी लीलाओंका
एकदेशे	एक स्थानमें	अभिध्यानं	भली प्रकार चिन्तन करना,
मनसा प्राण धारण	मनके द्वारा प्राण लगाना,	तथा आत्मनः समाधानं	तथा चित्तको समाहित (एकाग्र) करना ॥६॥

एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ।
बुद्धया युञ्जीय शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥७॥

एतैः अन्यैः च पथिभिः मनः दुष्टं असत्पथं बुद्ध्या युञ्जीत् शनकैः जितप्राणः हि अतन्द्रितः ॥७॥

एतैः अन्यैः च	इनसे और दूसरे भी	जितप्राणः	श्वासको जीतकर
पथिभिः	साधनोंसे	बुद्ध्या	बुद्धि द्वारा
दुष्ट असत्पथं मनः	दुष्ट कुमार्गगामी चित्तको	शनकैः युञ्जीत्	धीरे-धीरे एकाग्र करे ॥७॥
हि अतन्द्रितः	निश्चित सावधान रहकर		

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ।
तस्मिन् स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८॥

शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य विजित आसन आसनं तस्मिन् स्वस्ति सम आसीनः ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८॥

विजित आसन	पहिले आसन जीत ले,
शुचौदेशे	पवित्र स्थानमें
आसनं प्रतिष्ठाप्य	आसन स्थापित करके*
तस्मिन् स्वस्ति	उस पर सुखपूर्वक
ऋजुकायः	शरीर सीधा करके
सम आसीनः	भली प्रकार बैठकर
समभ्यसेत्	अभ्यास करे ॥८॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।
प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम् ॥९॥

प्राणस्य शोधयेत् मार्गं पूर कुम्भक रेचकैः प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरं अचञ्चलम् ॥९॥

पूर कुम्भक रेचकैः	पूरक,कुम्भक, रेचक करके
वा	अथवा
प्रतिकूलेन	उलटे (रेचक, कुम्भक, पूरक करके)
प्राणस्य मार्गं	प्राणके मार्गको
शोधयेत्	शुद्ध करे,
यथा चित्तं	जिससे चित्त
स्थिरं अचञ्चलं	चञ्चलता छोड़कर स्थिर हो ॥९॥

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥१०॥

मनः अचिरात् स्यात् विरजं जितश्वासस्य योगिनः वायु अग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥१०॥

जितश्वासस्य योगिनः मनः	श्वास जीत लेने वाले योगीका मन
अचिरात्	अविलम्ब
विरजं स्यात्	निर्मल हो जाता है,
यथा	जैसे
वायु अग्निभ्यां	वायु तथा अग्निसे
ध्मातं लोहं	धौंका गया लोहा
वै मलं त्यजति	निश्चित मैलको छोड़ देता है ॥१०॥

---

* कुशासन, उसपर मृग-चर्म, उसपर वस्त्र बिछाकर इस योग-साधनाके आसनको हटावे नहीं ।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥११॥

प्राणायामैः दहेत् दोषान् धारणाभिः च किल्बिषान् प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेन अनीश्वरान् गुणान् ॥११॥

प्राणायामैः	प्राणायामसे	**संसर्गान्**	विषय-सम्बन्धको
दोषान्	(वात-पित्तादिसे उत्पन्न) दोषोंको,		(तथा)
		ध्यानेन	ध्यानके द्वारा
च धारणाभिः	और धारणासे	**अनीश्वरान्**	
किल्बिषान्	पाप वासनाको,	**गुणान्**	भगवद्विमुख करने वाले दुर्गुणोंको
प्रत्याहारेण	प्रत्याहार (इन्द्रियों-को बाहरसे हटाकर)	**दहेत्**	जला दे ॥११॥

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ।
काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥१२॥

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितः काष्ठां भगवतः ध्यायेत् स्वनासाग्र अवलोकनः ॥१२॥

यदा स्वं मनः	जब अपना मन	**स्व नासग्र**	अपनी नाकके अग्रभाग*
योगेन	योग करनेसे		
विरजं		**अवलोकनः**	देखते हुए
सुसमाहितः	निर्मल और अत्यन्त एकाग्र हो जाय	**भगवतः काष्ठां**	(तब) भगवानकी मूर्तिका
		ध्यायेत्	ध्यान करे ॥१२॥

---

* नासाग्रके अर्थमें आचार्योंमें मतभेद है—

१. अधिक लोक भ्रूमध्यको नासाग्र मानते हैं।

२. नाककी नोकको कुछ आचार्य नासाग्र मानते हैं।

३. नाककी हड्डी समाप्त होकर जहाँसे नरम भाग प्रारम्भ होता है उसे भी कुछ आचार्य नासाग्र मानते हैं।

प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१३॥

प्रसन्न वदन अम्भोजं पद्मगर्भ अरुण ईक्षणं नील उत्पलदल श्यामं शङ्ख चक्र गदा धरम् ॥१३॥

प्रसन्न वदन		**नील उत्पलदल**	नील कमलदलके समान
अम्भोजं	प्रफुल्लित मुख-कमल	**श्यामं**	श्याम वर्ण
पद्मगर्भ	कमलके भीतरी भागके समान	**शङ्ख चक्र गदा धरं**	शंख, चक्र, गदाधारी ॥१३॥
अरुण ईक्षणं	रतनारे नेत्र		

लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥१४॥

लसत् पङ्कज किञ्जल्क पीत कौशेय वाससं श्रीवत्स वक्षसं भ्राजत् कौस्तुभ आमुक्त कन्धरम् ॥१४॥

पङ्कज किञ्जल्क	कमल परागके समान	**भ्राजत् कन्धरं**	शोभायमान है, कन्धोंके मध्य (गलेमें)
पीत कौशेय वाससं	पीले रेशमी वस्त्रसे	**कौस्तुभ आमुक्तं**	कौस्तुभमणि पहिने हैं ॥१४॥
लसत् श्रीवत्स वक्षसं	सुशोभित, श्रीवत्स-चिह्न वक्षस्थलपर		

मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ।
परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥१५॥

मत्तद्विरेफ कलया परीतं वनमालया परार्ध्य हार वलय किरीट अङ्गद नूपुरम् ॥१५॥

मत्तद्विरेफ कलया परीतं	मतवाले भौंरोंकी गुंजारसे गुँजित	**वनमालया**	वनमाला (पहिने हैं)

परार्घ्य	बहुमूल्य	किरीट अङ्गद	
हार वलय	हार, कङ्कण,	नूपुरं	मुकुट, अङ्गद, नूपुर (से भूषित हैं) ॥१५॥

काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम् ।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥१६॥

काञ्ची गुण उल्लसत् श्रोणिं हृदय अम्भोज विष्टरं दर्शनीयतमं शान्तं मनः नयन वर्धनम् ॥१६॥

काञ्ची गुण	करधनीसे	शान्तं	शान्त
श्रोणि उल्लसत्	नितम्ब शोभित हैं,	मनः नयन	मन और नेत्रोंको
हृदय अम्भोज	हृदय कमलके	वर्धनं	आनन्द देनेवाले
विष्टरं	आसनपर आसीन		हैं ॥१६॥
दर्शनीयतमं	अत्यन्त दर्शनीय		

अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ।
सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥१७॥

अपीच्य दर्शनं शश्वत् सर्वलोक नमस्कृतं सन्तं वयसि कैशोरे भृत्य अनुग्रह कातरम् ॥१७॥

अपीच्य दर्शनं	मनोहर झाँकी है,	सन्तं वयसि	
शश्वत्	सदा	कैशोरे	किशोरावस्थाके हैं,
सर्वलोक		भृत्य अनुग्रह	भक्तोंपर कृपा
नमस्कृतं	सब लोकोंसे		करनेको
	नमस्कृत है,	कातरं	उत्सुक हैं ॥१७॥

कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ।
ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥१८॥

कीर्तन्य तीर्थ यशसं पुण्य श्लोक यशस्करं ध्यायेत् देवं समग्र अङ्गं यावत् न च्यवते मनः ॥१८॥

तीर्थ यशसः	उनका पावन यश	समग्र अङ्गं	(इस प्रकार) सम्पूर्ण शरीरका
कीर्तन्य	कीर्तनीय है,	ध्यायेत्	ध्यान करे,
पुण्य श्लोक	पवित्र कीर्ति (लोगों) के	यावत् मनः	जब तक मन
यशस्करं	यशको बढ़ानेवाले हैं,	च्यवते न	(वहाँसे) हटे नहीं ॥१८॥
देवं	भगवान नारायणके		

स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ।
प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥१९॥

स्थितं व्रजन्तं आसीनं शयानं वा गुहाशयं प्रेक्षणीय ईहितं ध्यायेत् शुद्ध भावेन चेतसा ॥१९॥

स्थितं व्रजन्तं	खड़े, चलते,	प्रेक्षणीय ईहितं	दर्शनीय चेष्टा करते (भगवानका)
आसीनं	बैठे,	शुद्ध भावेन	शुद्ध भाव सहित
शयानं	लेटे हुए	चेतसा ध्यायेत्	चित्तसे ध्यान करे ॥१९॥
वा गुहाशयं	अथवा अन्तर्यामी रूपमें		

तस्मिँल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ।
विलक्ष्यैकत्र संयुञ्ज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥२०॥

तस्मिन् लब्धपदं चित्तं सर्व अवयव संस्थितं विलक्ष्य एकत्र संयुञ्ज्यात् अङ्गे भगवतः मुनिः ॥२०॥

तस्मिन्	उस	मुनिः	योगी
सर्व अवयव संस्थितं	सर्वाङ्गपूर्ण मूर्तिमें	भगवतः	भगवान्के
लब्धपदं चित्तं	भली प्रकार लग गये चित्तको	एकत्र अङ्गे	एक-एक अङ्गमें
विलक्ष्य	ठीक-ठीक देखकर	संयुञ्जात्	(चित्त) लगावे ॥२०॥

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।

उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥२१॥

सञ्चिन्तयेत् भगवतः चरण अरविन्दं वज्र अंकुश ध्वज सरोरुह लाञ्छन आढ्यं उत्तुङ्ग रक्त विलसत् नख चक्रवाल ज्योत्स्नाभिः आहत् महत् हृदय अन्धकारम् ॥२१॥

वज्र अंकुश	वज्र, अंकुश,
ध्वज सरोरुह	ध्वजा, कमल,
लाञ्छन आढ्यं	चिह्नोंसे सम्पन्न
भगवतः	भगवानके
चरण अरविन्दं	चरण-कमलोंका
सञ्चिन्तयेत्	चिन्तन करे।
उत्तुंङ्ग रक्त	(जो) ऊँचे, लाल,
विलसत्	सुशोभित
नख चक्रवाल	नख-मण्डलकी
ज्योत्स्नाभिः	चन्द्रिकासे
महत्	घोर
हृदय अन्धकारं	हृदयके अन्धकारको
आहत	नष्ट कर रहे हैं ॥२१॥

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ।
ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥२२॥

यत् शौच निःसृत् सरित् प्रवर उदकेन तीर्थेन मूर्ध्नि अधिकृतेन शिवः शिवः अभूत् ध्यातुः मनः शमल शैल निसृष्ट वज्रं ध्यायेत् चिरं भगवतः चरणार विन्दम् ॥२२॥

यत् शौच	जिनको धोनेसे
निःसृत्	निकली हुई
सरित् प्रवर	नदी श्रेष्ठ (गंगाजी) के
तीर्थेन उदकेन	पावन जलको
मूर्ध्नि अधिकृतेन	मस्तकपर धारण करनेसे
शिवः शिवः	
अभूत्	शंकरजी कल्याण-रूप हो गये,
ध्यातुः मनः	ध्यान करने वालेके मनके
शमल शैल	पाप-रूपी पर्वतको (नष्ट करनेको)
निसृष्ट वज्रं	छोड़े हुए वज्रके समान
भगवतः	भगवानके
चरणार विन्दं	चरण-कमलोंका
चिरं ध्यायेत्	देर तक ध्यान करे ॥२२॥

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या
लक्ष्म्याखिलस्य सुरवन्दितया विधातुः ।
ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्
संलालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥२३॥

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याः अखिल सुरवन्दितया विधातुः उर्वोः निधाय करपल्लव रोचिषा यत् संलालितं हृदि विभोः अभवस्य कुर्यात् ॥२३॥

जलज-		**करपल्लव**	
लोचनयाः	कमल नयना,	**रोचिषा**	हस्त-पल्लवकी कान्तिमें
विधातुः जनन्याः	ब्रह्माजीकी जननी,	**यत् संलालितं**	जिसका लाड़ लड़ाया जाता है
अखिल		**विभोः अभवस्य**	सर्वव्यापक अजन्मा भगवानके
सुरवन्दितया	समस्त सुरोंसे वन्दिता	**जानुद्वयं**	दोनों पिण्डलियोंका
लक्ष्म्याः	लक्ष्मीजी द्वारा	**हृदि कुर्यात्**	हृदयमें (चिन्तन) करे ॥२३॥
उर्वोः निधाय	जांघपर रखकर		

ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमाना-
वोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ।
व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमान-
काञ्चीकलापपरिरम्भि नितम्बबिम्बम् ॥२४॥

ऊरू सुपर्ण भुजयोः अधिशोभमानः ओजोनिधिः अतसिका कुसुम अवभासौ व्यालम्बि पीतवर वाससि वर्तमान काञ्चीकलाप परिरम्भि नितम्बविम्बम् ॥२४॥

सुपर्ण भुजयोः	गरुड़की भुजाओंपर	**अतसिका कुसुम**	अलसीके पुष्पके
अधिशोभमानः	अत्यन्त सुशोभित	**अवभासौ**	रंगके समान
ओजोनिधिः	तेजोमय	**उरूः**	जाँघें

पीतवर वाससि	श्रेष्ठ पीताम्बर	परिरम्भि	घेरनेवाली
व्यालम्बि	लटकनेसे ढँके हैं,	काञ्चीकलाप	करधनीकी लड़ी
नितम्बविम्बं	नितम्बोंको	वर्तमान	पड़ी है ॥२४॥

नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं
यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ।
व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य
ध्यायेद् द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥२५॥

नाभि ह्रदं भुवनकोश गुह उदरस्थं यत्र आत्मयोनि धिषण अखिल लोक पद्मं व्यूढं हरित् मणि वृषः स्तनयोः अमुष्य ध्यायेत् द्वयं विशदहार मयूख गौरम् ॥२५॥

भुवनकोश गुह	सब लोकोंकी (निवास) गुफा रूप	अखिल लोक पद्मं	सर्वलोकमय कमल है ।
उदरस्थं	(भगवानके) उदरमें स्थित	अमुष्य वृषः हरित् मणि व्यूढं	(फिर) इन वरदके मरकत-मणिके समान
नाभि ह्रदं	नाभि सरोवरका (ध्यान करे)	विशदहार मयूख गौरं	शुभ्र हारकी किरणोंसे उज्ज्वल लगते
यत्र	जिसमें	द्वयोः स्तनयोः	दोनों स्तनोंका
आत्मयोनि धिषण	ब्रह्माजीका आधार स्थान	ध्यायेत्	ध्यान करे ॥२५॥

वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः
पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ।
कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं
कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥२६॥

वक्षः अधिवासं ऋषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनः नयन निर्वृतिं आदधानं कण्ठं च कौस्तुभमणेः अधिभूषणार्थं कुर्यात् मनसि अखिल लोक नमस्कृतस्य ॥२६॥

महाविभूतेः	महालक्ष्मीके
अधिवासं	निवास-स्थान,
मनः नयन	मन और नेत्रोंको
निर्वृतिं	
आदधानं	परमानन्द देनेवाले
पुंसां वक्षः	परमपुरुषके
	वक्षस्थलका
च कौस्तुभमणेः	तथा कौस्तुभमणिको
अधिभूषणार्थं	अधिक शोभित
	करनेके लिए
	(पहिने)
अखिल लोक	सब लोकोंसे
नमस्कृतस्य	
कण्ठं	नमस्कृत(भगवानके)
	कण्ठका
मनसि कुर्यात्	मनसे चिन्तन
	करे ॥२६॥

बाहूंश्च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन
निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् ।
सञ्चिन्तयेद्दशशतारमसह्यतेजः
शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥२७॥

बाहून् च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्त बाहुवलयान् अधिलोकपालान् सञ्चिन्तयेत् दशशत अरं असह्य तेजः शङ्खं च तत् करसरोरुह राजहंसम् ॥२७॥

अधिलोकपालान्	सब लोकोंकी
	पालिका एवं आश्रय-
	भूता
बाहून् च	चारों भुजाओंका
	तथा
मन्दरगिरेः	मन्दराचलको
	(अमृत मन्थन समय)
परिवर्तनेन	घुमाते समय रगड़
	लगनेसे)
निर्णिक्त	उज्ज्वल हुए
बाहुवलयान	(उन) भुजाओंमें
	पड़े कङ्कणोंका,
दशशत अरं	सहस्र धारवाले
असह्य तेजः	असह्यतेजा (चक्र)
	का
च तत् करसरोरुह	तथा उनके कर-
	कमलमें स्थित
राजहंसं शङ्खं	राजहंसके समान
	शङ्खका
सञ्चिन्तयेत्	चिन्तन करे ॥२७॥

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत
दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ।

मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां
चैतस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥२८॥

कौमोदकीं भगवतः दयितां स्मरेत दिग्धां अराति भट शोणित कर्दमेन मालां मधुव्रत वरूथ गिरः उपघुष्टां चैतस्य तत्त्वं अमलं मणिं अस्य कण्ठे ॥२८॥

अराति भट	शत्रु-शूरोंके
शोणित कर्दमेन	रक्त-कीचसे
दिग्धां	लथपथ
भगवतः दयितां	भगवानकी प्यारी
कौमोदकीं	कौमोदकी गदाका,
मधुव्रत वरूथ	भ्रमरावलीकी
गिरः उपघुष्टां	गुंजारसे गुंजित
मालां	वनमालाका,
चैतस्य अमलं तत्त्वं	चेतनाके निर्मल-तत्त्व (जीव) रूपका
अस्य कण्ठे	(जो) इन भगवानके कण्ठमें
मणिं स्मरेत	कौस्तुभ-मणि है, उनका स्मरण करे ॥२८॥

भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः
सञ्चिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम् ।
यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन
विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥२९॥

भृत्य अनुकम्पित धिया इह गृहीत मूर्तेः सञ्चिन्तयेत् भगवतः वदनारविन्दं यत् विस्फुरत् मकर कुण्डल वल्गितेन विद्योतितं अमल कपोल उदारनासम् ॥२९॥

भृत्य अनुकम्पित धिया	भक्तोंपर अनुग्रह करनेके विचारसे
इह गृहीत मूर्तिः	इस लोकमें साकार बने
भगवतः वदनारविन्दं	भगवानके मुख-कमलका
सञ्चिन्तयेत्	चिन्तन करे,
यत् विस्फुरत् मकर कुण्डल वल्गितेन	जिससे चमकते मकराकार कुण्डलोंके हिलनेसे
अमल कपोल विद्योतितं	निर्मल कपोल प्रकाशित हैं
उदारनासं	(और) ऊँची नाक-वाला है ॥२९॥

यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं
भूत्या स्वया कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्टम् ।
मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं
ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रित उल्लसद्भ्रु ॥३०॥

यत् श्रीनिकेतं अलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिल कुन्तलवृन्द जुष्टं मीनद्वय आश्रयं अधिक्षिपन् अब्ज नेत्रं ध्यायेत् मनोमयं अतन्द्रित उल्लसत् भ्रू ॥३०॥

कुटिल कुन्तल वृन्द	घुँघराली (काली) अलकावलीसे	अधिक्षिपन्	लज्जित करता (भगवानका श्रीमुख)
जुष्टं	सुशोभित	मीनद्वय	दो मछलियोंके (समान नेत्रोंका)
स्वया भूत्या	अपनी शोभासे	आश्रयं	स्थान
अलिभिः परिसेव्यमानं	भ्रमरोंसे सेवित	उल्लसत् भ्रू	उन्नत भौहोंवाला
श्रीनिकेतं	लक्ष्मी-निवास (कमल) को	मनोमयं	मनमें धारणासे लाया.
		अतन्द्रितं	आलस्यरहित होकर
		ध्यायेत्	ध्यान करे ॥३०॥

तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोर-
तापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ।
स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं
ध्यायेच्चिरं विततभावनया गुहायाम् ॥३१॥

तस्य अवलोकं अधिकं कृपया अतिघोर तापत्रय उपशमनाय निसृष्टं अक्ष्णोः स्निग्ध स्मित अनुगुणितं विपुल प्रसादं ध्यायेत् चिरं वितत भावनया गुहायाम् ॥३१॥

अतिघोर	अत्यन्त उग्र	अधिकं कृपया	अत्यन्त कृपासे
तापत्रय	तीनों तापोंको	स्निग्ध स्मित	मधुर मुसुकानसे
उपशमनाय	शान्त करनेके लिए	अनुगुणितं	बढ़ायी हुई

विपुल प्रसादं	असीम करुणा भरे	भावनया वितत	भावनासे स्पष्ट
अक्ष्णोः	नेत्रोंके	चिरं ध्यायेत्	देर तक ध्यान
अवलोकं विसृष्टं	कटाक्षपातको		करे ॥३१॥
गुहायां	हृदयगुहामें		

हासं हरेरवनताखिल लोकतीव्र-
शोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ।
सम्मोहनाय रचितं निजमाययास्य
भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥३२॥

हासं हरेः अवनत अखिल लोक तीव्र शोक अश्रु सागर विशोषणं अति उदारं सम्मोहनाय रचितं निज मायया अस्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥३२॥

अवनत	प्रणत	मकरध्वजस्य	कामको
अखिल लोक	समस्त लोकोंके	सम्मोहनाय	सम्मोहित करनेके लिए
तीव्र शोक	तीव्र शोकके	निज मायया रचितं	अपनी मायासे बनाये
अश्रु सागर	अश्रु समुद्रके	अस्य भ्रूमण्डलं	इन (भगवान) के भ्रूमण्डलका (ध्यान करे) ॥३२॥
विशोषणं	सुखा देनेमें		
अति उदारं	अतिशय उदार		
हरेः हासं	श्रीहरिके हास्यका (तथा)		
मुनिकृते	मुनियोंके हितके लिए		

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठ-
भासारुणायिततनुद्विजकुन्दपङ्क्ति ।
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णो-
र्भक्त्याऽऽर्द्रयार्पितमना न पृथग्दिदृक्षेत् ॥३३॥

ध्यान अयनं प्रहसितं बहुल अधर ओष्ठभासा अरुणायित तनु द्विज कुन्द पङ्क्ति ध्यायेत् स्वदेह कुहरे अवसितस्य विष्णोः भक्त्या आर्द्रया अर्पित मना न पृथक् दिदृक्षेत् ॥३३॥

ध्यान अयनं	ध्यान करने ही योग्य
विष्णोः	श्रीहरिके
बहुल प्रहसितं	पूरे खुलकर हँसनेसे
अधर ओष्ठ-भासा	नीचे-ऊपरके ओष्ठोंकी कान्तिसे
अरुणायित तनु	अरुणाभ हुई
द्विज कुन्द पङ्क्ति	पतली कुन्दकली-सी दन्तावलीका
स्वदेह कुहरे	अपने शरीरके हृदयाकाशमें
भक्त्या आर्द्रया	भक्तिसे पिघले
मना अर्पित	मनको लगाकर
ध्यायेत्	ध्यान करे,
पृथक्	(उनसे) भिन्न (कुछ)
न दिदृक्षेत्	नहीं देखे ॥३३॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।
औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमान-
स्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥३४॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्ध भावः भक्त्या द्रवत् हृदय उत्पुलकः प्रमोदात् औत्कण्ठ्य वाष्प कलया मुहुः अर्द्यमानः तत् च अपि चित्त बडिशं शनकैः वियुङ्क्ते ॥३४॥

एवं हरौ	इस प्रकार श्रीहरि
भगवति	भगवानमें
भावः प्रतिलब्ध	भक्ति प्राप्त होनेपर
भक्त्या द्रवत्	भक्तिसे द्रवित
हृदय	हृदय होनेसे
प्रमोदात्	हर्षसे
उत्पुलकः	रोमोत्थान होता है,
औत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे,
वाष्प कलया	आँसूसे
मुहुः	बार-बार
अर्द्यमानः	व्याकुल होनेपर
तत्	उस
चित्त बडिशं	(भगवानको खींचने वाले) वंशी कांटे जैसे चित्तको
अपि च	भी
शनकैः	धीरे-धीरे
वियुङ्क्ते	हटा लेता है ॥३४॥

मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं
निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः ।

आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक-
मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥३५॥

मुक्त आश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणं ऋच्छति मनः सहसा यथा अर्चिः आत्मानं अत्र पुरुषः अव्यवधानं एकं अन्वीक्षते प्रतिनिवृत्त गुणप्रवाहः ॥३५॥

यर्हि	(इस प्रकार) जब
आश्रयं	आश्रयको भी
मुक्त	छोड़कर
निर्विषयं	निर्विषय (और)
विरक्तं	विरक्त हो जाता है (तब)
यथा अर्चिः	जैसे अग्नि (काष्ठ जल जानेपर)
सहसा	अचानक
मनः	मन
निर्वाणं	
ऋच्छति	निर्वाण प्राप्त हो जाता है (मनकी पृथक सत्ता मिट जाता है)
गुणप्रवाहः	त्रिगुणोंकी धारा
प्रतिनिवृत्त	लौट जाती है।
अत्र पुरुषः	यहाँ (देहमें) जो पुरुष है (वह)
आत्मानं	अपनेको
अव्यवधानं	बिना रुकावट (अनवच्छिन्न)
एकं	अद्वितीय
अन्वीक्षते	देखता है ॥३५॥

सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या
तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ।
हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्
स्वात्मन् विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥३६॥

सः अपि एतया चरमया मनसः निवृत्त्या तस्मिन् महिम्नि अवसितः सुख दुःख बाह्ये हेतुत्वम् अपि असति कर्तरि दुःखयोः यत् स्वात्मन् विधत्त उपलब्ध परआत्म काष्ठः ॥३६॥

सः अपि	वह (योगी) भी
एतया चरमया	इस अन्तिम
मनसः निवृत्त्या	चित्तकी (अविद्या-रूप) निवृत्तिसे
तस्मिन्	उस
सुख-दुःख बाह्ये	सुख-दुःखसे अतीत
महिम्नि	अपनी महिमामें
अवसितः	स्थित होता है ।
यत् दुःखयोः हेतुत्वं	जिस दुःखके कारण
कर्तरि अपि	कर्तापनको भी
स्वात्मन् विधत्त	अपनेमें मानता था,
परआत्म कष्ठः	परमात्मामें स्थिति
उपलब्धः	प्राप्त करके (उस कर्तृत्वको)
असति	अविद्यामें (जान लेता है) ॥३६॥

देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा
सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ।
दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥३७॥

देहं च तं न चरमः स्थितं उत्थितं वा सिद्धः विपश्यति यतः अध्यगमत् स्वरूपं दैवात् उपेतं अथ दैववशात् अपेतं वासः यथा परिकृतं मदिरा मद अन्धः ॥३७॥

यथा	जैसे
मदिरा मद	शराबके नशेमें
अन्धः	धुत्
परिकृतं वासः	पहिने वस्त्रको (नहीं जानता)
तं चरमः	(उसी प्रकार) उस अन्तिम
देहं च	देहको भी
सिद्धः स्थितं उत्थितं वा	सिद्ध (महापुरुष) बैठे अथवा खड़े,
दैवात्	प्रारब्धवश
उपेतं	उपस्थित (रहते)
अथ	अथवा
दैववशात्	प्रारब्धवश
अपेतं	चले गये (मरनेको)
न विपश्यति	नहीं देखता
यतः स्वरूपं	क्योंकि अपने स्वरूपको
अध्यगमत्	जान चुका है ॥३७॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ।

तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥३८॥

देहः अपि दैववशगः खलु कर्म यावत् स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव स असुः तं सप्रपञ्चं अधिरूढ समाधियोगः स्वाप्नं पुनः न भजते प्रतिबुद्धः वस्तुः ॥३८॥

दैववशगः	प्रारब्धाधीन	अधिरूढ	पहुँचा हुआ
देहः अपि	(उसका) शरीर भी	वस्तुः प्रतिबुद्धः	वस्तु तत्त्व (परमात्माको) जान लेनेवाला
यावत्	जब तक		
स्वारम्भकं	उसे आरम्भ करने (जन्म देनेवाला)	तं सप्रपञ्चं	उस (शरीर) को संसारके साथ
कर्म खलु	प्रारब्ध कर्म शेष है,	स्वाप्नं	स्वप्नके समान (जानकर)
स असुः	(तब तक) सप्राण रहते	पुनः न भजते	फिर सेवन नहीं करता ॥३८॥
प्रतिसमीक्षत एव	प्रत्यक्ष जीवित रहता ही है,		
समाधियोगः	(किन्तु) समाधियोगमें		

यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ्मर्त्यः प्रतीयते ।
अप्यात्मत्वेनाभिमतादेहादेः पुरुषस्तथा ॥३९॥

यथा पुत्रात् च वित्तात् च पृथक् मर्त्यः प्रतीयते अपि आत्मत्वेन अभिमतात् देहादेः पुरुषः तथा ॥३९॥

यथा	जैसे	आत्मत्वेन अभिमतात् अपि	अपना आत्मा मान लेनेपर भी
पुत्रात् च	पुत्रसे और		
वित्तात् च	धनसे भी	देहादेः	शरीर (मन) आदि
मर्त्यः	मनुष्य	तथा पुरुषः	वैसे ही पुरुष (पृथक) है ॥३९॥
पृथक् प्रतीयते	पृथक (अपनेको) जानता है		

यथोल्मुकाद्विस्फुलिङ्गाद्धूमाद्वापि स्वसम्भवात् ।
अप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥४०॥

यथा उल्मुकात् विस्फुलिङ्गात् धूमात् वापि स्वसम्भवात् अपि आत्मत्वेन अभिमतात् यथा अग्नि पृथक् उल्मुकात् ॥४०॥

आत्मत्वेन	अपना आत्मा	स्वसम्भवात्	अपनेसे उत्पन्न
अभिमतात्	माने हुओंसे	धूमात् वापि	धुएँसे भी
अपि	भी	उल्मुकात्	लकड़ीमें उठती
यथा उल्मुकात्	जैसे जलती		अग्निसे भी
	लकड़ीसे,	अग्निः पृथक्	अग्नि पृथक
विस्फुलिङ्गात्	चिनगारीसे,		है ॥४०॥

भूतेन्द्रियान्तः करणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ।
आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः ॥४१॥

भूत इन्द्रिय अन्तःकरणात् प्रधानात् जीव संज्ञितात् आत्मा तथा पृथक् द्रष्टा भगवान् ब्रह्म संज्ञितः ॥४१॥

तथा	वैसे ही	द्रष्टा आत्मा	उनको देखनेवाला
भूत इन्द्रिय	पंचमहाभूत		आत्मा
	(शरीर) इन्द्रियों	पृथक्	पृथक है
अन्तःकरणात्	अन्तःकरणसे,	भगवान्	(वह) भगवान
प्रधानात्	प्रकृतिसे,	ब्रह्म संज्ञितः	ब्रह्म कहा जाता
जीव संज्ञितात्	जिसे जीव कहा		है ॥४१॥
	जाता है उससे		

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥४२॥

सर्व भूतेषु च आत्मानं सर्व भूतानि च आत्मनि ईक्षेत अनन्य भावेन भूतेषु इव तत् आत्मताम् ॥४२॥

भूतेषु	प्राणियोंमें	आत्मताम् इव	चेतन तत्त्वके
तत्	व्याप्त		समान

सर्व भूतेषु च	सब प्राणियोंमें तो	अनन्य भावेन	दूसरा कोई अन्यताका भाव किये बिना
आत्मानं	अपने आत्माको		
च आत्मनि	और अपनेमें		
सर्व भूतानि	सब प्राणियोंको	ईक्षेत	देखे ॥४२॥

स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ।
योनीनां गुणवैषम्यात्तथाऽऽत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥४३॥

स्वयोनिषु यथा ज्योतिः एकं नाना प्रतीयते योनीनां गुण वैषम्यात् तथा आत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥४३॥

यथा ज्योतिः	जैसे अग्नि	नाना प्रतीयते	अनेक जान पड़ता है,
एकं	एक होनेपर भी	तथा	वैसे ही
स्वयोनिषु	अपने प्रगट होनेकी लकड़ीमें	प्रकृतौ स्थितः	प्रकृतिमें स्थित
		आत्मा	आत्मा (शरीरोंके भेदसे अनेक लगता है) ॥४३॥
योनीनां गुण			
वैषम्यात्	उन लकड़ियोंके गुणोंमें विषमता होनेसे		

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ।
दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥४४॥

तस्मात् इमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सत् असत् आत्मिकां दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेण अवतिष्ठते ॥४४॥

तस्मात्	इसलिए	दुर्विभाव्यां	अचिन्त्य
इमां	इस	पराभाव्य	भगवत्कृपासे जानकर
स्वां प्रकृतिं	अपनी प्रकृतिको		
दैवीं	ईश्वरकी	स्वरूपेण	अपने स्वरूपमें
सत् असत् आत्मिकां	कारण-कार्यरूपा	अवतिष्ठते	स्थित हो जाता है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

देवहूतिरुवाच-

लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ।
स्वरूपं लभ्यतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥१॥

लक्षणं महत् आदीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च स्वरूपं लभ्यते अमीषां येन तत् पारमार्थिकम् ॥१॥

महत् आदीनां	महत्तत्त्व आदिका,	येन	जिसके द्वारा
प्रकृतेः	प्रकृतिका	स्वरूपं	स्वरूप
च पुरुषस्य	और पुरुषका भी	लभ्यते	जाना जाता है
लक्षणं	लक्षण (तथा)	तत् पारमार्थिकं	वह पारमार्थिक (उपदेश है) ॥१॥
अमीषां	इनका		

यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ।
भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥२॥

यथा सांख्येषु कथितं यत् मूलं तत् प्रचक्षते भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥२॥

प्रभो	प्रभो !	प्रचक्षते	बतलाया जाता है (उस)
यथा सांख्येषु	जैसा सांख्य शास्त्रमें	भक्तियोगस्य	भक्तियोगका
कथितं	बतलाया गया है,	मार्गं	साधन
तत् यत् मूलं	उसका जो कारण (प्रयोजन)	मे विस्तरशः	मुझे विस्तारसे
		ब्रूहि	बतलाइये ॥२॥

विरागो येन पुरुषो भगवन् सर्वतो भवेत् ।
आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतिः ॥३॥

विरागः येन पुरुषः भगवन् सर्वतः भवेत् आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतिः ॥३॥

भगवन्	भगवन् !	**आचक्ष्व**	बतलाइये
जीवलोकस्य	जीवोंकी	**येन पुरुषः**	जिससे पुरुषको
मम	मेरी भी	**सर्वतः विरागः**	सब ओरसे वैराग्य
संसृतिः	(जन्म-मरण रूप) गतियाँ	**भवेत्**	हो जाता है ॥३॥

कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ।
स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥४॥

काल इति ईश्वर रूपस्य परेषां च परस्य ते स्वरूपं बत कुर्वन्ति यत् हेतोः कुशलं जनाः ॥४॥

परेषां च	श्रेष्ठोंसे भी	**यत् हेतोः**	जिस कारण
परस्य ते	श्रेष्ठ आपके	**कुशलं जनाः**	चतुर लोग
ईश्वरस्य	सर्वसमर्थके	**बत स्वरूपं**	क्यों मूर्ति
काल इति	काल कहे जानेवाले	**कुर्वन्ति**	बनाते (उपासना करते) हैं ? ॥४॥
रूपस्य	रूपकी		

लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुष-
श्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ।
श्रान्तस्य कर्मस्वनुबिद्धया धिया
त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥५॥

लोकस्य मिथ्या अभिमतेः अचक्षुषः चिरं प्रसुप्तस्य तमसि अनाश्रये श्रान्तस्य कर्मसु अनुबिद्धया धिया त्वं आविरासीः किल योगभास्करः ॥५॥

मिथ्या अभिमतेः	झूठे अभिमानसे	**तमसि**	अन्धकारमें
अचक्षुषः	अन्धे होकर,	**चिरं प्रसुप्तस्य**	बहुत समयसे सोये
कर्मसु		**लोकस्य**	लोगों (को जगाने) के लिए
अनुबिद्धया	कर्मासक्त		
धिया	बुद्धि होनेसे	**किल त्वं**	निश्चय आप
श्रान्तस्य	थके	**योगभास्करः**	योगरूपी सूर्य
अनाश्रये	आश्रयहीन	**आविरासीः**	उदय हुए हैं ॥५॥

मैत्रेय उवाच-

इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः ।
आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥६॥

इति मातुः वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतः तां करुणार्दितः ॥६॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ विदुर !	**महामुनिः**	महामुनि कपिल
इति मातुः	इस प्रकार माताके	**करुणार्दितः**	कृपासे द्रवित होकर
श्लक्ष्णं वचः	मनोहर वचनोंकी	**प्रीतः तां**	प्रसन्न चित्त उनसे
प्रतिनन्द्य	प्रशंसा करके	**आबभाषे**	बोले ॥६॥

कपिल उवाच-

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥७॥

भक्तियोगः बहुविधः मार्गैः भामिनि भाव्यते स्वभाव गुण मार्गेण पुंसां भावः विभिद्यते ॥७॥

भामिनि	माताजी !	**स्वभाव गुण**	स्वाभाविक गुणों (तथा)
भक्तियोगः	भक्तियोग	**मार्गेण**	मार्ग (सम्प्रदायों) के कारण
बहुविधः मार्गैः	अनेक प्रकारके साधनोंसे	**पुंसां भावः**	पुरुषोंके भावोंमें
भाव्यते	भावित होता है ।	**विभिद्यते**	भेद होता है ॥७॥

अभिसंधाय यो हिंसा दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥८॥

अभिसंधाय यः हिंसां दम्भं मात्सर्यं एव वा संरम्भी भिन्नदृक् भावं मयि कुर्यात् स तामसः ॥८॥

यः भिन्नदृक्	जो भेददर्शी	मयि भावं	
संरम्भी	क्रोधी	कुर्यात्	मेरी भावना (पूजा)
हिंसां दम्भं	हिंसा, दम्भ		करता है।
वा मात्सर्यं एव	अथवा मात्सर्यका ही	स तामसः	वह तमोगुणी (भक्त)
अभिसंधाय	लक्ष्य रखकर		है ॥८॥

विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥९॥

विषयान् अभिसंधाय यशः ऐश्वर्यं एव वा अर्चादाः अर्चयेत् यः मां पृथक् भावः स राजसः ॥९॥

विषमान्	भोगोंकी,	यः मां	जो मेरी
वा यशः ऐश्वर्यं		पृथक् भावः	पृथकत्वकी भावनासे
एव	अथवा यश या	अर्चादाः	मूर्ति आदिमें
	ऐश्वर्यकी ही	अर्चयेत्	पूजा करता है,
अभिसंधाय	पानेकी इच्छा	स राजसः	वह रजोगुणी (भक्त)
	रखकर		है ॥९॥

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥१०॥

कर्मनिर्हारं उद्दिश्य परस्मिन् वा तत् अर्पणं यजेत् यष्टव्यं इति वा पृथक् भावः स सात्त्विकः ॥१०॥

पृथक् भावः	(मुझे) पृथक मानकर	वा यष्टव्यं इति	अथवा यजन करना
कर्मनिर्हारं	कर्मोंसे छुटकारा		कर्तव्य है ऐसा
	पानेके		मानकर
उद्दिश्य	उद्देश्यसे	यजेत्	(जो) यज्ञ (पूजा)
वा परस्मिन्	अथवा परमात्माको		करता है
तत् अर्पणं	उनका अर्पण करनेके	स सात्त्विकः	वह सात्त्विक (भक्त)
	लिए		है ॥१०॥

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥११॥

मद्गुण श्रुति मात्रेण मयि सर्वगुहाशये मनोगतिः अविच्छिन्ना यथा गङ्गा अम्भसः अम्बुधौ ॥११॥

मद्गुण	मेरे गुणोंके
श्रुति मात्रेण	कानमें जाते ही
सर्वगुहाशये	सबके हृदयमें स्थित
मयि मनोगतिः	मुझमें मनकी गति
अविच्छिन्ना	अखण्ड लग जाती है
यथा गङ्गा	
अम्भसः	जैसे गङ्गाका जल
अम्बुधौ	समुद्रमें जाता रहता है ॥११॥

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२॥

लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्य हि उदाहृतं अहैतुकी अव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२॥

पुरुषोत्तमे	भगवान पुरुषोत्तममें
या अहैतुकी	जो निष्काम
अव्यवहिता	अखण्ड
भक्तिः	भक्ति है
निर्गुणस्य हि	उस निर्गुण भक्तिके ही
भक्ति योगस्य	भक्ति-योगके
लक्षणं	लक्षणका
उदाहृतं	उदाहरण दिया गया है ॥१२॥

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥१३॥

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य एकत्वं अपि उत दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत् सेवनं जनाः ॥१३॥

जनाः	(मेरे) भक्त
मत् सेवनं	मेरी सेवाको
विना	छोड़कर
सालोक्य सार्ष्टि	सालोक्य, सार्ष्टि (ब्रह्मादि-पद)
सामीप्य सारूप्य	सामीप्य, सारूप्य
उत एकत्वं अपि	तथा एकत्व(सायुज्य) भी
दीयमानं	(मेरे) देने पर भी
न गृह्णन्ति	नहीं ग्रहण करते ॥१३॥

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥१४॥

स एव भक्तियोग आख्यः आत्यन्तिक उदाहृतः येन अतिव्रज्य त्रिगुणं मत् भावाय उपपद्यते ॥१४॥

स एव	यही	येन त्रिगुणं	जिसके द्वारा त्रिगुणोंको
आत्यन्तिक	परम (पुरुषार्थ)	अतिव्रज्य	पार करके
भक्ति योग आख्यः	भक्ति-योग नामसे	मत् भावाय	मेरे स्वरूपको
उदाहृतः	कहा जाता है,	उपपद्यते	प्राप्त हो जाता है ॥१४॥

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा ।
क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥१५॥

निषेवितेन अनिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा क्रिया योगेन शस्तेन न अतिहिंस्रेण नित्यशः ॥१५॥

अनिमित्तेन	निष्काम भावसे	शस्तेन क्रिया योगेन	प्रशस्त क्रिया-योगके
महीयसा स्वधर्मेण	महान् स्वधर्मका	नित्यशः	प्रतिदिन करनेसे ॥१५॥
निषेवितेन न अतिहिंस्रेण	पालन करनेसे, जिसमें बहुत हिंसा न होती हो उस		

मद्विष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च ॥१६॥

मत् विष्ण्य दर्शन स्पर्श पूजा स्तुति अभिवन्दनैः भूतेषु मत् भावनया सत्त्वेन असङ्गमेन च ॥१६॥

मत् विष्ण्य	मेरी मूर्तिका	भूतेषु मत् भावनया	प्राणियोंमें मेरी भावना करनेसे,
दर्शन स्पर्श	दर्शन, स्पर्श,	सत्त्वेन	धैर्यसे,
पूजा स्तुति अभिवन्दनैः	पूजन, स्तुति, वन्दना करनेसे,	असङ्गमेन च	तथा वैराग्यसे ॥१६॥

महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥१७॥

महतां बहुमानेन दीनानां अनुकम्पया मैत्र्या च एव आत्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥१७॥

महतां	महापुरुषोंका	**यमेन**	यम (अहिंसा, सत्य,
बहुमानेन	बहुत आदर करनेसे,		अस्तेय, ब्रह्मचर्य
दीनानां			अपरिग्रह)
अनुकम्पया	दीनोंपर दया करनेसे,	**च नियमेन**	तथा नियम (शौच,
च आत्मतुल्येषु			सन्तोष, जप, तप,
एव	तथा अपने समानोंसे		ईश्वर प्रणिधान) के
	तो		पालनसे ॥१७॥
मैत्र्या	मित्रता करनेसे,		

आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे ।
आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥१८॥

आध्यात्मिक अनुश्रवणात् नाम संकीर्तनात् च मे आर्जवेन आर्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥१८॥

आध्यात्मिक	आध्यात्मिक	**आर्जवेन**	सरलतासे,
	(शास्त्रों) को	**आर्यसङ्गेन**	सत्पुरुषोंके संगसे,
अनुश्रवण	बार-बार सुननेसे	**तथा**	
च मे नाम		**निरहंक्रियया**	और अहङ्कारके
संकीर्तनात्	तथा मेरे नामोंका		त्यागसे ॥१८॥
	कीर्तन करनेसे,		

मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ।
पुरुषस्याञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥१९॥

मत् धर्मणः गुणैः एतैः परिसंशुद्ध आशयः पुरुषस्य अञ्जसा अभ्येति श्रुतमात्र गुणं हि माम् ॥१९॥

मत् धर्मणः	मेरे (भागवत) धर्मोंका पालन करने वाले	परिसंशुद्ध	अतिशय शुद्ध हो जाता है,
पुरुषस्य	पुरुषका	हि श्रुतमात्रं गुणं	तब (मेरे) गुणोंको सुनते ही
एतैः गुणैः	इन गुणोंसे	माम् अभ्येति	मुझमें चला आता है ॥१९॥
आशयः	चित्त		

यथा वातरथो घ्राणमावृङ्क्ते गन्ध आशयात् ।
एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥२०॥

यथा वातरथः घ्राणं आवृङ्क्ते गन्ध आशयात् एवं योगरतं चेतः आत्मानं अविकारि यत् ॥२०॥

यथा वातरथः	जैसे वायुपर चढ़ने वाली	एवं यत् अविकारिः	इसी प्रकार क्योंकि निर्विकार हैं,
गन्ध आशयात्	गन्ध (अपने) निवास (पुष्प) से	योगरतं चेतः	योगमें लगेका चित्त
घ्राणं आवृङ्क्ते	नाक तक पहुँच जाती है,	आत्मानं	परमात्माको (पा लेता है) ॥२०॥

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥२१॥

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मा अवस्थितः सदा तं अवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुते अर्चा विडम्बनम् ॥२१॥

सर्वेषु भूतेषु	सब प्राणियोंमें	मर्त्यः तं मां	मनुष्य उस मेरी
भूतात्मा	उन प्राणियोंके आत्मारूपसे	अवज्ञाय	उपेक्षा करके
अहं सदा अवस्थितः	मैं सदा स्थित हूँ,	अर्चा विडम्बनं	पूजाकी विडम्बना (स्वांग)
		कुरुते	करता है ॥२१॥

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥२२॥

यः मां सर्वेषु भूतेषु सन्तं आत्मानं ईश्वरं हित्वा अर्चां भजते मौढ्यात् भस्मनि एव जुहोति सः ॥२२॥

सर्वेषु भुतेषु	सब प्राणियोंमें	**सः भस्मनि एव**	वह (मानो) भस्ममें ही
सन्तं मां	स्थित मुझ	**जुहोति**	(निष्फल) हवन करता है ॥२२॥
आत्मानं ईश्वरं	आत्मा परमेश्वरको		
हित्वा मौढ्यात्	छोड़कर मूर्खतावश		
अर्चां भजते	प्रतिमा-पूजनमें लगा रहता है,		

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥२३॥

द्विषतः परकाये मां मानिनः भिन्न दर्शिनः भूतेषु बद्ध बैरस्य न मनः शान्ति ऋच्छति ॥२३॥

भिन्न दर्शिनः	भेददर्शी	**परकाये मां**	दूसरे शरीरोंमें (स्थित) मुझसे
मानिनः	अभिमानी	**द्विषतः**	द्वेष करने वाले
भुतेषु बद्ध बैरस्य	प्राणियोंसे बैर बाँधने वाले	**मनः शान्ति**	मनकी शान्ति
		न ऋच्छति	नहीं पाते ॥२३॥

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥२४॥

अहं उच्च अवचयैः द्रव्यैः क्रियया उत्पन्नया अनघे न एव तुष्ये अर्चितः अर्चायां भूतग्राम अवमानिनः ॥२४॥

अनघे	निष्पापे !	**क्रियया उत्पन्नया**	अनेक क्रियाओंसे की गयी
भूतग्राम अवमानिनः	प्राणि समुदायका अपमान करने वालेकी	**अर्चायां**	प्रतिमामें
		अर्चितः	पूजित
उच्च अवचयैः द्रव्यैः	बड़ी-छोटी सामग्रीसे	**अहं न एव तुष्ये**	मैं नहीं ही सन्तुष्ट होता ॥२४॥

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥२५॥

अर्चादाः अर्चयेत् तावत् ईश्वरं मां स्वकर्मकृत् यावत् न वेद स्वहृदि सर्वभूतेषु अवस्थितम् ॥२५॥

स्वकर्मकृत्	अपने कर्तव्यका पालन करने वाला	स्वहृदि	अपने हृदयमें (तथा)
तावत् मां	तब तक मुझ	सर्वभूतेषु अवस्थितं	सब प्राणियोंमें स्थित
ईश्वरं	परमेश्वरको	न वेद	(मुझे) न जान ले ॥२५॥
अर्चादाः	मूर्ति आदिमें		
अर्चयेत्	पूजा करे,		
यावत्	जब तक		

आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ।
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥२६॥

आत्मनः च परस्य अपि यः करोति अन्तर उदरं तस्य भिन्नदृशः मृत्युः विदधे भयं उल्बणम् ॥२६॥

यः आत्मनः च परस्य अपि उदरं अन्तरं करोति	जो आत्मामें और परमात्मामें भी पेटका (शरीरोंका) अन्तर करता है	तस्य भिन्नदृशः मृत्युः भयं विदधे	उस भेददर्शीके लिए मृत्यु भयानक भय देता है ॥२६॥

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥

अथ मां सर्वभूतेषु भूत आत्मानं कृत आलयं अर्हयेत् दान मानाभ्यां मैत्र्या अभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥

अथ सर्वभूतेषु भूत आत्मानं	अतः सब प्राणियोंमें उन प्राणियोंके आत्मारूपसे	कृत आलयं मां अभिन्नेन चक्षुषा	निवास करते मुझे अभिन्न दृष्टिसे

दान मानाभ्यां	दान तथा सम्मान (एवं)	मैत्र्या अर्हयेत्	मित्रतापूर्वक सत्कृत करे ॥२७॥

जीवाः श्रेष्ठा अजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ।
ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥२८॥

जीवाः श्रेष्ठाः अजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ततः सचित्ताः प्रवराः ततः च इन्द्रिय वृत्तयः ॥२८॥

शुभे	शुभे !	ततः सचित्ताः	उनसे चित्त वाले (जिनमें मन है)
अजीवानां	निर्जीवों (पाषाणादि) से	प्रवराः	श्रेष्ठ हैं,
जीवाः श्रेष्ठाः	जीवन वाले श्रेष्ठ हैं,	ततः च इन्द्रिय	
ततः प्राणभृतः	उनसे श्वास लेने वाले (वृक्षादि)	वृत्तयः	उनसे इन्द्रिय व्यवहार वाले ॥२८॥

तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ।
तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥२९॥

तत्र अपि स्पर्श वेदिभ्यः प्रवराः रसवेदिनः तेभ्यः गन्धविदः श्रेष्ठाः ततः शब्दविदः वराः ॥२९॥

तत्र अपि	उनमें भी	तेभ्यः गन्धविदः	उनसे गन्ध जानने वाले
स्पर्श वेदिभ्यः	स्पर्श जानने वाले (केंचुए आदिसे)	श्रेष्ठाः	श्रेष्ठ हैं ।
रसवेदिनः	रस जानने वाले (चींटी आदि)	ततः शब्दविदः	शब्द जानने वाले
प्रवराः	श्रेष्ठ हैं,	वराः	श्रेष्ठ हैं ॥२९॥*

रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः ।
तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥३०॥

रूप भेद विदः तत्र ततः च उभयतः दतः तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाः चतुष्पादः ततः द्विपात् ॥३०॥

---

* इस प्रकारका प्राणियोंका वर्गीकरण वर्तमान प्राणि-शास्त्रमें नहीं है ।

तत्र रूप	उनमें आकृति भेदको
भेद विदः	जाननेवाले
ततः च	उनमें भी जिनके
उभयतः दतः	ऊपर नीचे दोनों ओर दांत होते हैं।
तेषां बहुपदाः	उनमें अनेक पैरवाले
चतुष्पादः	फिर चौपाये
ततः द्विपात्	उनसे दो पैरवाले
श्रेष्ठाः	श्रेष्ठ हैं ॥३०॥

ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः।
ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥३१॥

ततः वर्णाः चत्वारः तेषां ब्राह्मण उत्तमः ब्राह्मणेषु अपि वेदज्ञः हि अर्थज्ञः अभ्यधिकः ततः ॥३१॥

ततः चत्वारः	उनमें चारों
वर्णाः	वर्णवाले
तेषां ब्राह्मण	उनमें ब्राह्मण
उत्तमः	श्रेष्ठ हैं।
ब्राह्मणेषु अपि	ब्राह्मणोंमें भी
वेदज्ञः	वेदज्ञ
अर्थज्ञः हि	वेदार्थ जानने वाला तो
ततः अभ्यधिकः	उनसे भी श्रेष्ठ हैं ॥३१॥

अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत्।
मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥३२॥

अर्थज्ञात् संशयः छेत्ता ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत् मुक्तसङ्गः ततः भूयान् अदोग्धा धर्म आत्मनः ॥३२॥

अर्थज्ञात्	अर्थ जाननेवालेसे
संशयः छेत्ता	सन्देह दूर करनेवाला,
ततः श्रेयान्	उससे श्रेष्ठ है
स्वकर्मकृत्	अपने (वर्णाश्रम विहित) कर्मको करनेवाला,
ततः मुक्त सङ्गः	उससे अनासक्त
आत्मनः	अपने धर्मका फल
अदोग्धा धर्म	न लेनेवाले
भूयान्	उत्तम हैं ॥३२॥

तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः ।
मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ।
न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥३३॥

तस्मात् मयि अर्पित अशेष क्रिया अर्थ आत्मा निरन्तरः मयि अर्पित आत्मनः पुंसः मयि संन्यस्त कर्मणः न पश्यामि परं भूतं अकर्तुः समदर्शनात् ॥३३॥

तस्मात्	उससे	आत्मनः पुंसः	चित्तवाले पुरुषसे
अशेष क्रिया अर्थ	सम्पूर्ण कर्मोंके फलको	मयि संन्यस्त कर्मणः	(जिसने) सब कर्म मुझे अर्पित कर दिये हैं
आत्मा निरन्तर	(तथा) चित्तको बराबर	समदर्शनात्	समदर्शी
मयि अर्पित	मुझमें अर्पण करने वाला (श्रेष्ठ है)	अकर्तुः	अकर्तासे
मयि अर्पित	मुझमें लगाये	परं भूतं	श्रेष्ठ (कोई)
		न पश्यामि	नहीं देखता ॥३३॥

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥३४॥

मनसा एतानि भूतानि प्रणमेत् बहु मानयन् ईश्वरः जीवकलया प्रविष्टः भगवान् इति ॥३४॥

जीवकलया	जीवके रूपमें अंशसे	बहु मानयन्	श्रेष्ठ मानकर
ईश्वरः भगवान्	समर्थ भगवान्	एतानि भूतानि	इन सब प्राणियोंको
प्रविष्टः	(इनमें) प्रविष्ट हैं	मनसा प्रणमेत्	मनसे प्रणाम करे ॥३४॥
इति	ऐसा (समझकर)		

भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ।
ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥३५॥

भक्तियोगः च योगः च मया मानवि उदीरितः ययोः एकतरेण एव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥३५॥

मानवि	मनुपुत्री !	ययोः	जिनमें-से
मया	मैंने	एकतरेण एव	किसी एकसे ही
भक्ति योगः	भक्ति योग	पुरुषः पुरुषं	पुरुष परमपुरुषतक
च योगः	और योगका	व्रजेत्	पहुँच जाता
उदीरितः	वर्णन किया		है ॥३५॥

एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
परं प्रधानपुरुषं दैवं कर्मविचेष्टितम् ॥३६॥

एतत् भगवतः रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्म विचेष्टितम् ॥३६॥

एतत्	यह	प्रधानं	प्रकृति,
भगवतः	भगवान	पुरुषं	जीव,
ब्रह्मणः	परमात्मा	कर्म विचेष्टितं	कर्मकी चेष्टासे
परमात्मनः	परं ब्रह्मका	दैवम्	उत्पन्न प्रारब्ध ॥३६
रूपं	स्वरूप है ।		
परं	परमात्मा,		

रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ।
भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥३७॥

रूपभेद आस्पदं दिव्यं काल इति अभिधीयते भूतानां महत् आदीनां यतः भिन्नदृशां भयम् ॥३७॥

महत् आदीनां	महत्तत्त्वादिका,	इति अभिधीयते	इस नामसे कहा
भूतानां	महाभूतोंका,		जाता है,
रूपभेद आस्पदं	रूपभेदका आधार	यतः भिन्नदृशां	जिससे
दिव्यं	जो दिव्य (कारण)है		भेददर्शियोंको
काल	काल	भयम्	भय होता है ॥३७॥

योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्यखिलाश्रयः ।
स विष्ण्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥३८॥

यः अन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैः अत्ति अखिलाश्रयः स विष्णु अधियज्ञः असौ कालः कलयतां प्रभुः ॥३८॥

यः अखिलाश्रयः	जो सबका आश्रय	कलयतां प्रभुः	सृष्टिकर्ताओंका भी स्वामी
अन्तः प्रविश्य	भीतर प्रवेश करके	विष्णु आख्यः	विष्णु नामवाले
भूतैः भूतानि	प्राणियों द्वारा ही प्राणियोंको	अधियज्ञः	अधियज्ञ (यज्ञाधिष्ठाता)
अत्ति स	खाता है वही	असौ कालः	यह काल है ॥३८॥

न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः ।
आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥३९॥

न च अस्य कश्चित् दयितः न द्वेष्यः न च बान्धवः आविश्य अप्रमत्तः असौ प्रमत्तं जनं अन्तकृत् ॥३९॥

अस्य कश्चित्	इनका कोई	प्रमत्तं जनं	प्रमत्त लोगोंमें प्रवेश-
न दयितः	न प्रिय है,	आविश्य	करके
न द्वेष्यः	न द्वेष करने योग्य,	अन्तकृत्	उनका संहार
न च बान्धवः	न सम्बन्धी ही है,		करते हैं ॥३९॥
असौ अप्रमत्तः	ये सदा सावधान रहते		

यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ।
यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥४०॥

यत् भयात् वाति वातः अयं सूर्यः तपति यत् भयात् यत् भयात् वर्षते देवः भगणः भाति यत् भयात् ॥४०॥

यत् भयात्	जिसके भयसे	देवः वर्षते	देव (इन्द्र) वर्षा करते हैं,
अयं वातः वाति	यह वायु चलता है,	यत् भयात्	जिसके भयसे
सूर्यः यत् भयात्	सूर्य जिसके भयसे	भगणः भाति	तारे चमकते
तपति	तपता है,		हैं ॥४०॥
यत् भयात्	जिसके भयसे		

यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ।
स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥४१॥

यत् वनस्पतयः भीताः लताः च औषधिभिः सह स्वे स्वे काले अभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥४१॥

यत् भीताः	जिससे डरकर	**पुष्पाणि च**	पुष्पों तथा फलोंको
वनस्पतयः	वनस्पति वर्ग	**फलानि च**	भी
च लताः	और लताएँ	**गृह्णन्ति**	ग्रहण करते
औषधिभिः सह	औषधियोंके साथ		हैं ॥४१॥
स्वे स्वे काले	अपने-अपने समयपर		

स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ।
अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥४२॥

स्रवन्ति सरितः भीताः न उत्सर्पति उदधिः यतः अग्निः इन्धे सगिरिभिः भूः न मज्जति यत् भयात् ॥४२॥

यतः भीताः	जिससे डरकर	**यत् भयात्**	जिसके भयसे
सरितः स्रवन्ति	नदियाँ बहती हैं (और)	**अग्निः इन्धे**	अग्नि प्रज्वलित होता है तथा
उदधिः न उत्सर्पति	समुद्र (अपनी सीमासे) नहीं बढ़ता,	**सगिरिभिः भूः न मज्जति**	पर्वतोंके साथ पृथ्वी डूब नहीं जाती ॥४२॥

नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ।
लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिरावृतम् ॥४३॥

नभः ददाति श्वसतां पदं यत् नियम आददः लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिः आवृतम् ॥४३॥

यत् नियम आददः	जिसके नियमको स्वीकार करके	**नभः श्वसतां पदं ददाति**	आकाश श्वास लेने वालेको स्थान देता है,

महान्	महत्तत्त्व	**लोकं तनुते**	लोकोंके रूपमें विस्तार करता करता है ॥४३॥
सप्तभिः आवृतं	सात आवरणोंसे युक्त		
स्वदेहं	अपने शरीरका		

गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ।
वर्तन्तेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥४४॥

गुण अभिमानिनः देवाः सर्ग आदिषु अस्य यत् भयात् वर्तन्ते अनुयुगं येषां वश एतत् चराचरम् ॥४४॥

यत् भयात्	जिसके भयसे	**अस्य सर्गादिषु**	इस (संसार) की सृष्टि आदिके लिए
गुण	(सत्व, रज आदि)	**अनुयुगं**	युगोंके अनुसार
अभिमानिनः	गुणोंके अभिमानी	**वर्तन्ते**	व्यवहार करते हैं ॥४४॥
देवाः	देवता (ब्रह्मादि)		
येषां वश	जिनके वशमें		
एतत् चराचरं	यह चर-अचर (जगत्) है,		

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ।
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥४५॥

सः अनन्तः अन्तकरः कालः अनादिः आदिकृत् अव्ययः जनं जनेन जनयन् मारयन् मृत्युना अन्तकम् ॥४५॥

सः अनन्तः	वह अनन्त	**अव्ययः**	अविनाशी
अन्तकरः	सबका अन्त करनेवाला	**जनेन जनं**	लोगोंसे ही लोगोंको
कालः	काल	**जनयन्**	उत्पन्न करता है और
अनादिः	अनादि,	**मृत्युना**	मृत्युसे
आदिकृत्	सबका प्रारम्भक,	**अन्तकं**	यमराजको भी
		मारयन्	मार देता है ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ।
काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥१॥

तस्य एतस्य जनः नूनं न अयं वेद उरु विक्रमं काल्यमानः अपि बलिनः वायोः इव घनावलिः ॥१॥

नूनं	निश्चय
अयं जनः	यह मनुष्य
तस्य	उस
बलिनः	बलवान (काल भगवान द्वारा)
वायोः घनावलिः	वायु द्वारा मेघ
इव	मंडलके समान
काल्यमानः अपि	भटकाया जाता भी
एतस्य	इनके
उरु विक्रमं	महान् पराक्रमको
न वेद	नहीं जानता ॥१॥

यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ।
तं तं धुनोति भगवान् पुमाञ्छोचति यत्कृते ॥२॥

यं यं अर्थं उपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे तं तं धुनोति भगवान् पुमान् शोचति यत् कृते ॥२॥

सुखहेतवे	सुखके लिए
दुःखेन	कष्ट उठाकर
पुमान्	पुरुष
यं यं अर्थं	जिस जिस पदार्थको
उपादत्ते	प्राप्त करता है,
भगवान्	भगवान (काल)
तं तं धुनोति	उस-उसको नष्ट कर देते हैं,
यत् कृते	जिसके लिए
शोचति	(वह) शोक करता है ॥२॥

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ।
ध्रुवाणि मन्यते मोहाद् गृहक्षेत्रवसूनि च ॥३॥

यत् अध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ध्रुवाणि मन्यते मोहात् गृह क्षेत्र वसूनि च ॥३॥

यत्	क्योंकि	**दुर्मतिः**	दुर्बुद्धि (मनुष्य)
सानुबन्धस्य	सम्बन्धियोंके साथ	**मोहात्**	मोहवश
अध्रुवस्य	नाशवान	**ध्रुवाणि मन्यते**	स्थायी मान लेता है ॥३॥
देहस्य	शरीर (और)		
गृह क्षेत्र वसूनि च	घर, भूमि तथा धनको		

जन्तुर्वै भव एतस्मिन् यां यां योनिमनुव्रजेत् ।
तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥४॥

जन्तुः वै भव एतस्मिन् यां यां योनिं अनुव्रजेत् तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥४॥

जन्तुः	जीव	**निर्वृतिं लभते**	आनन्द पाने लगता है,
एतस्मिन् भव	इस संसारमें	**न विरज्यते**	(अतः) विरक्त नहीं होता ॥४॥
यां यां योनिं	जिस-जिस योनिमें		
अनुव्रजेत्	जाता है		
तां तां वै	उस-उसमें ही		

नरकस्थोऽपि देहं वै पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ।
नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥५॥

नरकस्थः अपि देहं वै न पुमान् त्यक्तुं इच्छति नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमाया विमोहितः ॥५॥

पुमान्	जीव	**नारक्यां देहं**	उस नारकीय शरीरको
नरकस्थः अपि	नरकमें होनेपर भी	**त्यक्तुं**	छोड़ना
निर्वृतौ सत्यां	(वहांके भोगमें भी) सुख होनेसे	**वै न**	निश्चित रूपसे नहीं
देवमाया	भगवानकी मायासे	**इच्छति**	चाहता ॥५॥
विमोहितः	मोहित होकर		

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।
निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥६॥

आत्मजाया सुत आगार पशु द्रविण बन्धुषु निरूढमूल हृदयः आत्मानं बहु मन्यते ॥६॥

आत्मजाया	अपनी पत्नी,	हृदयः	हृदय
सुत आगार	पुत्र, घर,	आत्मानं	अपनेको
पशु द्रविण	पशु, धन,	बहु मन्यते	भाग्यवान मानता
बन्धुषु	सम्बन्धियोंमें		है ॥६॥
निरूढमूल	अत्यन्त आसक्त		

सन्दह्यमानसर्वाङ्गः एषामुद्वहनाधिना ।
करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥७॥

सन्दह्यमानः सर्वाङ्गः एषां उद्वह आधिनां करोति अविरतं मूढः दुरितानि दुराशयः ॥७॥

एषां उद्वह	इनके भरण-पोषणकी	मूढः दुराशयः	(फिर भी यह) मूर्ख
आधिना	चिन्तासे		दुर्वासनाओंसे
सर्वाङ्गः	पूर्णतः	अविरतं	अविश्राम
सन्दह्यमानः	जलता रहता है,	दुरितानि करोति	पाप करता रहता
			है ॥७॥

आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ।
रहोरचितयाऽऽलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥८॥

आक्षिप्तं आत्म इन्द्रियः स्त्रीणां असतीनां च मायया रहः रचितया आलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥८॥

असतीनां स्त्रीणां	कुलटा स्त्रियोंके	शिशूनां	(तथा) शिशुओंकी
मायया च	छलपूर्ण	कलभाषिणाम्	मीठी बातोंमें
रहः आलापैः	एकान्तकी चर्चासे	आत्म इन्द्रियः	चित्त और इन्द्रियाँ
रचितया		आक्षिप्तः	उलझ जाती
			हैं ॥८॥

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ।
कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥९॥

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेषु अतन्द्रितः कुर्वन् दुःखप्रतीकारं सुखवत् मन्यते गृही ॥९॥

गृही	(इससे) गृहस्थ	**दुःखप्रतीकारं**	दुःखोंका प्रतिकार
कूटधर्मेषु	कपटपूर्ण कर्मोंवाले	**कुर्वन्**	करता हुआ
दुःखतन्त्रेषु	दुःखदायी	**सुखवत्**	(उसीको) सुखकी भाँति
गृहेषु	घरमें		
अतन्द्रितः	आलस्यरहित होकर	**मन्यते**	मानता है ॥९॥

विशेष—

सांसारिक सब सुख केवल दुःखके प्रतिकारमें प्राप्त यत्किञ्चित् सफलता मात्र हैं। अज्ञानसे ही इन्हें लोग सुख मानते हैं।

अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्तश्च तान् ।
पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥१०॥

अर्थैः आपादितैः गुर्व्या हिंसयेत् ततः च तान् पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुक् याति अधः स्वयम् ॥१०॥

ततः च तान्	जहाँ-तहाँ लोगोंको	**अधः याति**	अधःपतन होता है,
अर्थैः आपादितैः	धनोपार्जनमें	**तानि पुष्णाति**	उनका पालन करता है ।
गुर्व्या हिंसयेत्	बहुत उत्पीड़ित करता है,	**स्वयं शेष भुक्**	स्वयं उनसे बचा भोगता है ॥१०॥
येषां पोषेण	जिनके पालनसे		

वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ।
लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥११॥

वार्तायां लुप्यमानायां आरब्धायां पुनः पुनः लोभ अभिभूतः निःसत्त्वः पर अर्थे कुरुते स्पृहाम् ॥११॥

आरब्धायां	प्रारम्भ की हुई	निःसत्त्वः	अधीर होकर
वार्तायां	जीविकाके	पर अर्थे	दूसरेके धनको
पुनः पुनः	बार-बार	स्पृहां कुरुते	पानेकी इच्छा
लुप्यमानायां	नष्ट हो जानेसे		करता है ॥११॥
लोभ अभिभूतः	लोभाक्रान्त		

कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः ।
श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्वसिति मूढधीः ॥१२॥

कुटुम्ब भरण अकल्पः मन्दभाग्यः वृथा उद्यमः श्रिया विहीनः कृपणः ध्यायन् श्वसितः मूढधीः ॥१२॥

मन्दभाग्यः	मन्दभाग्य,	श्रिया विहीनः	धनहीन होकर
मूढधीः	मूढबुद्धि,	कृपणः	दुःखी होकर
कुटुम्ब भरण	कुटुम्ब पालनमें	ध्यायन्	चिन्ता करता
अकल्पः	असमर्थ·	श्वसितः	लम्बी सांस लेता
उद्यमः वृथा	उद्योगोंके व्यर्थ हो		है ॥१२॥
	जानेपर		

एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ।
नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥१३॥

एवं स्वभरण अकल्पं तत् कलत्रादयः तथा न आद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाश इव गोजरम् ॥१३॥

एवं	इस प्रकार	कीनाश गोजरं	किसान जैसे बूढ़े
स्वभरण अकल्पं	अपने पालनमें	इव	बैलका
	असमर्थका	यथा पूर्व तथा	जैसे पहिले करते
तत् कलत्र	उसकी पत्नी		थे वैसा
आदयः	(पुत्र) आदि	आदियन्ते न	आदर नहीं
			करते ॥१३॥

तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयम्भृतैः ।
जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥१४॥

तत्र अपि अजात निर्वेदः म्रियमाणः स्वयं भृतैः जरया उपात्त वैरूप्यः मरण अभिमुखः गृहे ॥१४॥

तत्र गृहे अपि	फिर भी उस घरमें	जरया वैरूप्यः	बुढ़ापेसे कुरूप
अजात निर्वेदः	वैराग्य नहीं होता,	उपात्त	होकर
स्वयं भृतैः	जिनका स्वयं पालन किया था	मरण अभिमुखः	मरणोन्मुख हो जाता है ॥१४॥
म्रियमाणः	(उनके द्वारा) पालित होता,		

आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ।
आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥१५॥

आस्ते अवमत्या उपन्यस्तं गृहपाल इव आहरन् आमय अव्यप्रदीप्त अग्निः अल्प आहारः अल्प चेष्टितः ॥१५॥

अवमत्या	अपमानपूर्वक	अग्निः अल्प	अग्निसे थोड़ा
उपन्यस्तं	फेंके (टुकड़ों) को	आहारः	भोजन,
गृहपाल इव	कुत्तेके समान	अल्प चेष्टितः	थोड़ी चेष्टा करता
आहरन्	ग्रहण करता,	आस्ते	रहता है । (किसी
आमय	रोगके कारण		प्रकार जीता
अव्य प्रदीप्त	दुर्बल हुई		है) ॥१५॥

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ।
कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥१६॥

वायुना उत्क्रमता उत्तारः कफसंरुद्ध नाडिकः कासश्वासकृत आयासः कण्ठे घुरघुरायते ॥१६॥

वायुना क्रमता	प्राण वायुका उत्क्रमण (निकलनेकी तैयारी) होनेपर	नाडिकः	नाड़ियां कफसे रुक
		कफ संरुद्धः	जाती हैं,
उत्तारः	(नेत्रकी) पुतलियाँ ऊपर चढ़ जाती हैं	कासश्वास	खांसीके कारण श्वास लेनेमें

आयसः कृत	प्रयत्न करना पड़ता है,	कण्ठे घुरघुरायते	गला घर्र घर्र करने लगता है ॥१६॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः ।
वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥१७॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः वाच्यमानः अपि न ब्रूते कालपाश वशं गतः ॥१७॥

परिशोचद्भिः	शोक करते हुए	वाच्यमानः अपि	बुलाये जानेपर भी
स्वबन्धुभिः	अपने सम्बन्धियोंसे	कालपाश वशं गतः	मृत्युके फन्देमें पड़ा
परिवीतः	घिरा		
शयानः	सोता	ब्रूते न	बोलता नहीं ॥१७॥

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माजितेन्द्रियः ।
म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः ॥१८॥

एवं कुटुम्ब भरणे व्यापृत आत्मा अजितेन्द्रियः म्रियते रुदतां स्वानां उरु वेदनया अस्त धीः ॥१८॥

अजितेन्द्रियः	इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाला	उरु वेदनया	बहुत पीड़ासे
		अस्त धीः	लुप्त बुद्धि
कुटुम्ब भरणे	कुटुम्ब-पालनमें	एवं मृयते	इस प्रकार मर जाता है ॥१८॥
व्यापृत आत्मा	व्यस्त चित्त (पुरुष)		
स्वानां रुदतां	स्वजनोंके रोते रहते,		

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ।
स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥१९॥

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभस इक्षणौ स दृष्ट्वा त्रस्त हृदयः शकृन् मूत्रं विमुञ्चति ॥१९॥

तदा	उस समय	सरभस ईक्षणौ	क्रोध भरे नेत्र वाले
भीमौ	भयानक		

यमदूतौ प्राप्तौ	(कम-से-कम) दो यमदूत आते हैं*	त्रस्त हृदयः	भयभीत हृदय
		शकृन् मूत्रं	मल-मूत्र
स दृष्ट्वा	वह (उन्हें) देखकर	विमुञ्चति	त्यागता है ॥१९॥

यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ।
नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥२०॥

यातना देह आवृत्य पाशैः बध्वा गले बलात् नयतः दीर्घं अध्वानं दण्ड्यं राजभटाः यथा ॥२०॥

यातना देह आवृत्य	यातना देहमें डालकर■	राजभटाः	राज्यके शूर (पुलिसवाले)
बलात् पाशैः	बलपूर्वक पाशसे	दीर्घं अध्वानं	लम्बे रास्तेमें
गले बध्वा	गला बाँधकर	नयतः	(घसीट) ले जाते हैं ॥२०॥
यथा दण्ड्यं	जैसे दण्डनीय (अपराधी) को		

तयोर्निभिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ।
पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥२१॥

तयोः निर्भिन्न हृदयः तर्जनैः जात वेपथुः पथि श्वभिः भक्ष्यमाणः आर्तः अघं स्वं अनुस्मरन् ॥२१॥

तयोः तर्जनैः	उन (यमदूतों) के डांटनेसे	जात वेपथुः	(शरीर) कांपता रहता है,
निर्भिन्न हृदयः	हृदय फटता लगता है,	पथि श्वभिः	मार्गमें कुत्ते
		भक्ष्यमाणः	काटते रहते हैं,

---

* दो ही यमदूत आवें— यह नियम नहीं है। अजामिलको लेने तीन यमदूत आये थे। (६.१.२८)

■ यातना देहका दूसरा नाम अतिवाहिक देह है। इस देहको काटने, छेदने, जलानेसे यह नष्ट नहीं होता; किन्तु बार-बार काटने, जलाने आदिकी पीड़ा इसमें होती रहती है।

आर्तः स्वं अघं	व्याकुल होकर अपने पापोंको	अनुस्मरन्	बार-बार स्मरण करता है ॥२१॥

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः
सन्तप्यमानः पथि तप्तवालुके ।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडित-
श्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥२२॥

क्षुत् तृट् परीतः अर्क दवानल अनिलैः सन्तप्यमानः पथि तप्त वालुके कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडिते चलति अशक्तः अपि निराश्रम उदके ॥२२॥

क्षुत् तृट् परीतः	भूख-प्याससे बेचैन,	पथि	मार्गमें
अर्क	सूर्य (की गर्मी) तथा	अशक्तः अपि	असमर्थ होनेपर भी
दवानल अनिलैः	दावाग्निकी वायु (लू) से	पृष्ठे कशया ताडिते	पीठपर कोड़ोंसे मारे जानेसे किसी
सन्तप्यमानः	संतप्त होता,	चलति च	प्रकार चलता है ॥२२॥
निराश्रम उदके	विराम एवं जलहीन		
तप्त वालुके	तपी रेतवाले		

तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ।
पथा पापीयसा नीतस्तरसा यमसादनम् ॥२३॥

तत्र तत्र पतन् श्रान्तः मूर्छितः पुनः उत्थितः पथा पापीयसा नीतः तरसा यम सादनम् ॥२३॥

श्रान्तः	थक कर	पथा पापीयसा	पापियोंके ले जानेके मार्गसे
मूर्छितः	मूर्छित होकर	तरसा	वेगपूर्वक यमलोक
तत्र तत्र पतन्	जहां-तहां गिर जाता है,	यम सादनं	लाया जाता
पुनः उत्थितः	फिर उठता है,	नीतः	है ॥२३॥

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ।
त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥२४॥

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव च अध्वनः त्रिभिः मुहूर्तैः द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥२४॥

सहस्राणि नवतिं नव च	निन्यानबे हजार
योजनानां	योजनका (वह)
अध्वनः	मार्ग
त्रिभिः मुहूर्तैः	तीन मुहूर्तमें
वा द्वाभ्यां	अथवा दोमें
नीतः यातनाः	लाया जाकर (वहां) यातनायें
प्राप्नोति	पाता है ॥२४॥

आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ।
आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥२५॥

आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वा उल्मुकादिभिः आत्म मांस अदनं क्वापि स्वकृतं परतः अपि वा ॥२५॥

उल्मुकादिभिः	जलती लकड़ियों आदिसे
वेष्टयित्वा	घेरकर
स्वगात्राणं	उसके शरीरको
आदीपनं	जलाया जाता है,
क्वापि आत्म मांस	कभी उसे अपना ही मांस
स्वकृतं अपि वा परतः अदनं	स्वयं उसे अथवा दूसरोंको खिलाया जाता है ॥२५॥

जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ।
सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥२६॥

जीवितः च अन्त्र अभ्युद्धारः श्वगृध्रैः यमसादने सर्प वृश्चिक दंश आद्यैः दशद्भिः च आत्म वैशसम् ॥२६॥

आत्म वैशसं	उसके अपने पापोंसे
यमसादने	यमपुरीके
श्वगृध्रैः	कुत्ते, गीधों द्वारा
जीवितः च	जीते हुए ही
अन्त्र अभ्युद्धारः	(उसकी) आँतें निकाल ली जाती हैं,

सर्प वृश्चिक दंश आद्यैः	सर्प, बिच्छू, डांस आदि	दशद्भिः च	डंसते ही रहते हैं ॥२६॥

कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् ।
पातनं गिरिशृङ्गेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥२७॥

कृन्तनं च अवयवशः गजादिभ्यः भिदापनं पातनं गिरिशृंगेभ्यः रोधनं च अम्बु गर्तयोः ॥२७॥

अवयवशः	टुकड़े-टुकड़े अंग	पातनं च	गिराया जाता है, और
कृतन्तं च	काटा भी जाता है,	अम्बु गर्तयोः	जलमें या गड्ढेमें
गजादिभ्यः	हाथी आदिसे	रोधनं	डालकर बन्द कर
भिदापनं	चिरवाया जाता है		देते हैं ॥२७॥
गिरिशृंगेभ्यः	पर्वत शिखरसे		

यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ।
भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥२८॥

याः तामिस्र अन्धतामिस्रा रौरव आद्याः च यातनाः भुङ्क्ते नरः वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥२८॥

याः तामिस्र अन्धतामिस्रा रौरवआद्यः च यातनाः	जो तामिस्र, अन्धतामिस्रा तथा रौरव आदि (नरकों) की यातनायें हैं	नरः वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः	पुरुष हो या स्त्री हो परस्परके संसर्गसे उत्पन्न (पापोंके फलसे)
		भुङ्क्ते	भोगते हैं ॥२८॥

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥२९॥

अत्र एव नरकः स्वर्गः इति मातः प्रचक्षते याः यातनाः वै नारक्याः ताः इह अपि उपलक्षिताः ॥२९॥

मातः	माता !	यातनाः	यातनायें हैं
अत्र एव	यहीं (इसी पृथ्वीपर)	ताः वै	वे तो निश्चय
नरकः स्वर्गः	नरक और स्वर्ग हैं,	इह अपि	यहाँ भी
इति प्रचक्षते	ऐसा कहा जाता है।	उपलक्षते	देखी जाती हैं ॥२९॥
याः नारक्याः	जो नारकीय		

एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा।
विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥३०॥

एवं कुटुम्बं विभ्राणः उदरंभर एव वा विसृज्य इह उभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत् फलं ईदृशम् ॥३०॥

एवं कुटुम्बं	इस प्रकार कुटुम्बके	विसृज्य	छोड़कर
विभ्राणं	भरण-पोषणमें लगा	प्रेत्य	मरकर
एव वा	अथवा	तत् ईदृशं	उसका ऐसा
उदरंभर	अपना पेट ही भरनेवाला	फलं भुङ्क्ते	फल भोगता है ॥३०॥
इह उभयं	यहीं दोनों (कुटुम्ब और देह) को		

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम्।
कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद् भृतम् ॥३१॥

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वा इदं स्वं कलेवरं कुशल. इतर पाथेयः भूत द्रोहेण यत् भृतम् ॥३१॥

इदं स्व कलेवरं	इस अपने शरीरको	यत् भृतं	जो इकट्ठा किया था (उस)
हित्वा	छोड़कर	कुशल इतर	पाप रूप
भूत द्रोहेण	प्राणियोंसे द्रोह करके		

पाथेयः	पाथेय (मार्गाहार) को लेकर	एकः ध्वान्तं प्रपद्यते	अकेला नरक जाता है ॥३१॥

दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ।
भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृतवित्त इवातुरः ॥३२॥

दैवेन आसादितं तस्य शमलं निरये पुमान् भुङ्क्ते कुटुम्ब पोषस्य हृतवित्त इव आतुरः ॥३२॥

हृतवित्त इव	जिसका धन हरण हो गया हो वैसा	दैवेन आसादितं	दैवके देनेसे
		पुमान्	पुरुष (जीव)
आतुरः	व्याकुल होकर	निरये भुङ्क्ते	नरकमें भोगता है ॥३२॥
कुटुम्ब पोषस्य	कुटुम्ब पोषणके		
तस्य शमलं	उस पापका (फल)		

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ।
याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥

केवलेन हि अधर्मेण कुटुम्ब भरण उत्सुकः याति जीवः अन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥

केवलेन	केवल	तमसः चरमं पदं	नरकमें अन्तिम कष्टके स्थान
अधर्मेण हि	अधर्मसे ही		
कुटुम्ब भरण	कुटुम्ब पालनमें	अन्धतामिस्रं	
उत्सुकः	उत्सुक	याति	अन्धतामिस्र जाता है ॥३३॥
जीवः	जीव		

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ।
क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्रावजेच्छुचिः ॥३४॥

अधस्तात् नर लोकस्य यावतीः यातना आदयः क्रमशः समनुक्रम्य पुनः अत्र आव्रतेत् शुचिः ॥३४॥

नर लोकस्य	मनुष्य लोक (पृथ्वी) के	**क्रमशः समनुक्रम्य**	क्रमशः उनको भोगकर
अधस्तात्	नीचे*		
यावतीः यातना आदयः	जितने यातनादि हैं	**शुचिः पुनः अत्र आव्रतेत्**	पवित्र होकर फिर इसी लोकमें आ जाता है ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धेत्रिंशोऽध्यायः ।

---

* पृथ्वी गोल है और आकाशमें घूम रही है, अतः इसके ऊपर-नीचेका कुछ अर्थ नहीं है। अतः यहाँ नीचेका अर्थ भीतर करना पड़ेगा। पृथ्वीके भीतर कल्पनातीत गर्मीमें पिघले द्रव्य हैं। उनमें ही कहीं यह नरक हैं—यह चिन्तनीय है।

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

कपिल उवाच*-

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये ।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥१॥

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुः देह उपपत्तये स्त्रियाः प्रविष्टः उदरं पुंसः रेतः कण आश्रयः ॥१॥

कर्मणा	प्रारब्ध कर्मानुसार	पुंसः रेतः कण	पुरुष वीर्यके कणका
दैवनेत्रेण	दैवके दिखाये स्थानपर	आश्रयः	सहारा लेकर
		स्त्रियाः उदरं	स्त्रीके पेटमें
देह उपपत्तये	शरीर प्राप्त करनेके लिए	प्रविष्टः	प्रवेश करता है ॥१॥
जन्तुः	जीव		

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥२॥

कललं तु एक रात्रेण पञ्च रात्रेण बुद्बुदं दश अहेन तु कर्कन्धूः पेशि अण्डं वा ततः परम् ॥२॥

कललं तु	कलल (लसलसा पदार्थ) तो	दश अहेन तु	दस दिनमें तो
		कर्कन्धूः	बेरके फलके समान
एक रात्रेण	एक रातमें (और)		कुछ कड़ा
पञ्च रात्रेण	पांच रातमें	ततः परं	उसके पश्चात्
बुद्बुदं	बुलबुला (बन जाता है)	पेशि अण्डं वा	मांस पेशी अथवा अंडा बनाता है ॥२॥

*गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है ।

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्याद्यङ्गविग्रहः ।
नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥३॥

मासेन तु शिरः द्वाभ्यां बाहु अङ्ग आदि विग्रहः नख लोम अस्थि चर्माणि लिङ्ग छिद्र उद्भवः त्रिभिः ॥३॥

मासेन तु	एक महीनेमें तो	अस्थि चर्माणि	हड्डी, चमड़ा,
शिरः	सिर (बनता है)	लिङ्ग छिद्रं	(स्त्री-पुरुष)
द्वाभ्यां	दो (महीने) में		पहचानको इन्द्रिय
बाहु आदि	भुजा आदि	त्रिभिः उद्भवः	तीन (महीने) में
अंग विग्रहं	शरीरके अंग (तथा)		उत्पन्न होती है ॥३॥
नख लोम	नख, रोम		

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः ।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥४॥

चतुर्भिः धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत् तृट् उद्भवः षट्भिः जरायुणा वीतः कुक्षि भ्राम्यति दक्षिणे ॥४॥

चतुर्भिः	चार (महीने) में	षट्भिः	छ (महीने) में
सप्त धातवः	(मांसादि) सातों	जरायुणा वीतः	जरायुसे घिरा
	धातुएँ,	दक्षिणे कुक्षि	(माताकी) दाहिनी
पञ्चभिः	पाँच (महीने) में		कोखमें
क्षुत् तृट् उद्भवः	भूख-प्यास उत्पन्न	भ्राम्यति	घूमने (हिलने)
	हो जाती है		लगता है ॥४॥

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते ।
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे ॥५॥

मातुः जग्ध अन्न पान आद्यैः एध धातुः असम्मते शेते विण्मूत्रयोः गर्ते स जन्तुः जन्तु सम्भवे ॥५॥

मातुः जग्ध	माताके खाये	एध धातुः	(उसके शरीरकी)
अन्न पान आद्यैः	अन्न-जलादिसे		धातुएँ बढ़ती
			रहती हैं,

विण्मूत्रयोः	विष्टा-मूत्रके	गर्ते	गड्ढे (आंत) में
असम्मते	न चाहने योग्य	स जन्तुः	वह जीव
जन्तु सम्भवे	जिसमें कीड़े उत्पन्न होते हैं	शेते	सोता है ॥५॥

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ।
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥६॥

कृमिभिः क्षत सर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणं मूर्छां आप्नोति उरु क्लेशः तत्रत्यैः क्षुधितैः मुहुः ॥६॥

क्षुधितैः	भूखे	क्षत सर्वाङ्गः	सब अंगोंमें घाव हो जाते हैं
तत्रत्यैः	वहाँ रहनेवाले		
कृमिभिः	कीड़ों द्वारा (काटे जानेसे)	प्रतिक्षणं मुहुः	हर क्षण बार-बार
		उरु क्लेशात्	अत्यन्त कष्टके कारण
सौकुमार्यात्	सुकुमार होनेसे	मूर्छां आप्नोति	मूर्छित होता रहता है ॥६॥

कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ॥७॥

कटु तीक्ष्ण उष्ण लवण रूक्ष अम्ल आदिभिः उल्बणैः मातृ भुक्तैः उपस्पृष्टः सर्वाङ्ग उत्थितः वेदनः ॥७॥

मातृ भुक्तैः	माताके खाये	उल्बणैः	आदि उग्र (पदार्थों) के
कटु तीक्ष्ण	कड़वे, तीखे,		
उष्ण लवण	गरम, नमकीन,	उपस्पृष्टः	स्पर्शसे (उसके)
रूक्ष अम्ल	रूखे, खट्टे	सर्वाङ्ग	सब अंगोंमें
आदिभिः		वेदनः उत्थितः	पीड़ा उठने लगती है ॥७॥

उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ।
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥८॥

उल्बेन संवृतः तस्मिन् अन्त्रैः च बहिः आवृतः आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठ शिरः अधरः ॥८॥

तस्मिन् कुक्षौ	उस कोखमें	कृत्वा	सिर नीचेकी ओर करके
उल्बेन संवृतः	जरायुसे लिपटा	भुग्नपृष्ठ	टेढ़ी (झुकी) पीठ
अन्त्रैः च	और आँतसे	आस्ते	रहता है ॥८॥
बहिः आवृतः	बाहरसे घिरा		
शिरः अधरः			

अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ।
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ।
स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥९॥

अकल्पः स्वाङ्ग चेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे तत्र लब्धः स्मृतिः दैवात् कर्म जन्म शतः उद्भवम् स्मरन् दीर्घं अनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥९॥

स्वाङ्ग चेष्टायां	अपने अंग हिलानेमें	कर्म स्मृतिः	कर्मोंकी स्मृति
पञ्जरे	पिंजड़ेमें पड़े	लब्धः	पाता है,
शकुन्त इव	पक्षीकी भाँति	स्मरन्	(उनको) स्मरण करके
अकल्पः	असमर्थ रहता है ।	दीर्घं अनुच्छ्वासं	लम्बी साँसें लेता,
तत्र दैवात्	वहाँ भाग्यकी प्रेरणासे	किं नाम शर्म विन्दते	भला कैसे शान्ति पा सकता है ॥९॥
जन्म शतः उद्भवं	सैकड़ों जन्मोंमें किये		

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ।
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥१०॥

आरभ्य सप्तमान् मासान् लब्ध बोधः अपि वेपितः न एकत्र आस्ते सूतिवातैः विष्ठाभूः इव सोदरः ॥१०॥

सप्तमान् मासान्	सातवें महीनेके	सूतिवातैः वेपितः	प्रसूति वायुसे हिलानेके कारण
आरभ्य	प्रारम्भसे	सोदरः	उसी उदरमें उत्पन्न
लब्ध बोधः अपि	ज्ञान-शक्ति पा जानेपर भी		

विष्ठाभूः इव	विष्ठामें उत्पन्न कीड़ोंकी भाँति	एकत्र न आस्ते	एक स्थानपर नहीं रह पाता ॥१०॥

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः ।
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥११॥

नाथमानः ऋषिः भीतः सप्त अवध्रिः कृत अञ्जलिः स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येन उदरे अर्पितः ॥११॥

सप्त अवध्रिः	सात (महीनेका) हो जानेपर	विक्लवया वाचा	व्याकुल वाणीसे
ऋषिः	(वह अनेक जन्मोंकी) स्मृति सम्पन्न	तं स्तुवीतः	उनकी स्तुति करता है,
नाथमानः	(जरायुसे) बँधा हुआ	येन उदरे	जिन्होंने (उसे) गर्भमें
भीतः	भयभीत होकर	अर्पितः	डाला है ॥११॥
कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर		

जन्तुरुवाच–

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्त-
नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे
येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥१२॥

तस्य उपसन्नं अवितुं जगत् इच्छया आत्त नाना तनुः भुवि चलत् चरणारविदं स अहं व्रजामि शरणं हि अकुतः भयं मे येन ईदृशी गतिः अदर्शयत् असतः अनुरूपा ॥१२॥

हि येन मे असतः	क्योंकि जिन्होंने	ईदृशी गतिः अदर्शयत्	ऐसी अवस्था (मुझे) दिखलायी,
अनुरूपा	मुझ जैसे अधमके अनुरूप	उपसन्नं	शरणागत

जगत् अवितुं	संसारकी रक्षाके लिए
इच्छया	स्वेच्छासे
नाना तनुः आत्त	नाना शरीर धारण करके
भुवि चलत्	पृथ्वीपर चलते
अकुतः भयं	सर्वत्रसे अभय देनेवाले
तस्य	
चरणारविदं	उनके चरण-कमलोंका
स अहं	वह मैं
शरणं व्रजामि	शरण जाता हूँ ॥१२॥

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा
भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ।
आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोध-
मातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥१३॥

यस्तु अत्र बद्ध इव कर्मभिः आवृत आत्मा भूत इन्द्रिय आशयमयीं अवलम्ब्य मायां आस्ते विशुद्धं अविकारम् अखण्ड बोधम् आतप्यमान हृदये अवसितं नमामि ॥१३॥

यस्तु अत्र	जो तो यहां (माताके उदरमें)
भूत इन्द्रिय आशयमयीं	शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण रूप
मायां अवलम्ब्य	मायाका आश्रय लेकर
कर्मभिः	(पाप-पुण्य रूप) कर्मोंसे
आवृतः	आच्छादित
बद्ध इव	बँधेके समान (लगते हैं),
आतप्यमान	(अपने) संतप्त हृदयमें
अवसितं	स्फुरित होते (उन)
विशुद्धं	
अविकारम्	विशुद्ध, निर्विकार
अखण्ड बोधं	अखण्ड ज्ञान रूपको
नमामि	नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरे-
च्छन्नो यथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ।

तेनाविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं
वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥१४॥

यः पञ्चभूत रचिते रहितः शरीरे छन्नः यथा इन्द्रिय गुण अर्थ चिदात्मकः अहं तेन अविकुण्ठ महिमानं ऋषिं तं एनं वन्दे परं प्रकृति पूरुषयोः पुमांसम् ॥१४॥

पञ्चभूत रचिते	पञ्चभूतोंसे बने
शरीरे	शरीरमें
इन्द्रिय गुण अर्थ	इन्द्रियों, गुणों, (शब्दादि) विषयोंसे
छन्नः यथा अहं	ढका जैसे मैं
रहितः	
चिदात्मकः	(इनसे) रहित ज्ञान-स्वरूप हूँ,
यः तेन	जो उन (शरीर इन्द्रियादि) से
अविकुण्ठ	
महिमानं	अकुंठित महिमावाले
ऋषिं	सर्वज्ञ हैं
तं एनं	उन इन
प्रकृति पूरुषयोः	प्रकृति तथा पुरुषसे
परं पुमांसं	परे परम पुरुषकी
वन्दे	वन्दना करता हूँ ॥१४॥

यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन्
सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ।
नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं
युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥१५॥

यत् मायया उरु गुण कर्म निबन्धने अस्मिन् सांसारिके पथि चरन् तत् अभिश्रमेण नष्ट स्मृतिः पुनः अयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महत् अनुग्रहं अन्तरेण ॥१५॥

यत् मायया	जिनकी मायासे
गुण कर्म	गुणों और कर्मके
उरु निबन्धने	बड़े,बन्धनसे (बँधा)
अस्मिन्	
सांसारिक	इस संसारके
पथि चरन्	मार्गमें चलता,
तत् अभिश्रमेण	उस अत्यन्त परिश्रमसे
नष्ट स्मृतिः	स्मृति नष्ट हो जानेसे
पुनः अयं लोकं	फिर इसी लोकको
प्रवृणीत	वरण करता (चाहता) है—

महत् अनुग्रहं	महापुरुषोंके अनुग्रहको	कया युक्त्या	(इससे छूटनेकी) दूसरी क्या युक्ति हो सकती है ॥१५॥
अन्तरेण	छोड़कर		

ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देव-
स्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ।
तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमाना-
स्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥१६॥

ज्ञानं यत् एतत् अदधात् कतमः स देवः त्रैकालिकं स्थिर चरेषु अनुवर्तित अंशः तं जीव कर्मपदवीं अनुवर्तमानः तापत्रय उपशमनाय वयं भजेम ॥१६॥

त्रैकालिकं एतत्	त्रैकालिक यह	तं	उनका
यत् ज्ञानं	जो ज्ञान (इस समय मुझे है)	कर्मपदवीं	कर्मानुसार स्थान (जन्म)
स कतमः देवः	वह किस देवताने	अनुवर्तमानः	प्राप्त कर
अदधात्	दिया है,	तापत्रय	
स्थिर चरेषु	स्थावर-जंगम (सब) में	उपशमनाय	त्रिताप नाशके लिए
		वयं भजेम	हम भजन करते हैं ॥१६॥
अंशः अनुवर्तित	अंश रूपसे विद्यमान		

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनासृग्-
विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ।
इच्छन्नितो विवसितुं गणयन् स्वमासान्
निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन् कदा नु ॥१७॥

देही अन्य देह विवरे जठराग्निना असृक् विट्मूत्र कूप पतितः भृश तप्त देहः इच्छन् इतः विवसितुं गणयन् स्वमासान् निर्वास्यते कृपण धीः भगवन् कदा नु ॥१७॥

अन्य देह विवरे	दूसरेके शरीरके उदरमें	कूप पतितः	कूएँमें गिरा
असृक् विटमूत्र	रक्त, विष्ठा, मूत्रके	जठराग्निना	जठराग्नि द्वारा

भृश तप्त देहः	अत्यन्त तपाये जाते शरीरसे	कृपण धीः	(इस) व्याकुल बुद्धिको
इतः विवसितं इच्छन्	यहाँसे निकलनेकी इच्छा करता है,	भगवन् कदा नु निर्वास्यते	भगवान कब तो निकालेंगे ॥१७॥
स्वमासान् गणयन्	अपने (जन्मके) महीनोंको गिनता है,		

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश
संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ।
स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः
को नाम तत्प्रति विनाञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥१८॥

येन इदृशीं गतिं असौ दशमास्य ईशः संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन स्वेन एव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः कः नाम तत् प्रति विना अञ्जलिं अस्य कुर्यात् ॥१८॥

येन ईशः	जिन समर्थने	स्वेन एव कृतेन	अपने ही (कृपा) करके
दशमास्य	दस महीनेके (जीवको)	तुष्यतु	सन्तुष्ट हों,
असौ इदृशीं गतिं	यह ऐसी (ज्ञानकी) अवस्था	तत् प्रति अस्य	उनके इस (उपकारक)
संग्राहितः	प्रदानकी है	विना अञ्जलिं	हाथ जोड़नेके अतिरिक्त
भवादृशेन	आपके समान	कः नाम कुर्यात्	ऐसा कौन है जो (पूरा) कर सके ॥१८॥
पुरुदयेन	अत्यन्त दयामय		
स दीननाथः	वे दीनोंके स्वामी		

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः
शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ।
यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं
पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥१९॥

पश्यति अयं धिषणया ननु सप्तधिधिः शारीरके दम शरीरः यः परः स्वदेहे यत् सृष्टया आसं तं अहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिः हृदि च चैत्यम् इव प्रतीतम् ॥१९॥

यः परः	जो दूसरे (पशु-पक्षी आदि) हैं
धिषणया	(अपनी) बुद्धिसे
अयं सप्तधिधिः	इस सात धातुवाले
शरीरः पश्यति	शरीरको ही देखते हैं,
दम शारीरके	(शम) दम करने योग्य शरीरके
स्वदेहे	इस (अपने) शरीरमें
यत् सृष्टया	जिनके बनानेसे
आसं	हूँ,
तं पुराणं पुरुषं	उन सनातन परम पुरुषको
अहं बहिः हृदि च	मैं बाहर और हृदयमें भी
चैत्य इव प्रतीतं	अपने आत्माके समान (आत्म रूपमें)
पश्ये	देखता हूँ ॥१९॥

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं
गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ।
यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया
मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥२०॥

सः अहं वसन् अपि विभो बहु दुःखवासं गर्भात् न निर्जिगमिषे बहिः अन्धकूपे यत्र उपयातं उपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिः यत् अनु संसृति चक्रं एतत् ॥२०॥

विभो	प्रभो !
सः अहं	वह मैं
बहु दुःखवासं	बहुत दुःखोंके निवासमें
वसन् अपि	रहते हुए भी
गर्भात् बहिः अन्धकूपे	गर्भसे बाहरके अन्धे-कुएमें
न निर्जिगमिषे	नहीं निकलूँगा,
यत्र उपयातं	जहाँ जानेपर
देवमाया	देवमायासे
मिथ्यामतिः	मिथ्या बुद्धि
उपसर्पति	पास आ जाती है,
यत् अनु	जिसके पीछे
एतत् संसृति चक्रं	यह आवागमनका चक्र (चल पड़ता) है ॥२०॥

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य
आत्मानमाशु तमसः सुहृदाऽऽत्मनैव ।
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं
मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥२१॥

तस्मात् अहं विगत विक्लव उद्धरिष्य आत्मानं आशु तमसः सुहृत् आत्मना एव भूयः यथा व्यसनं एतत् अनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यत् उपसादित विष्णुपादः ॥२१॥

तस्मात् अहं	इसलिए मैं	आत्मानं	अपना
विगत विक्लव	व्याकुलता त्यागकर	तमसः उद्धरिष्ये	अज्ञानसे उद्धार करूँगा,
आशु	शीघ्र	यथा एतत्	जिससे यह
विष्णुपादः	भगवान विष्णुके चरणोंका	अनेकरन्ध्रं	अनेक दोषोंवाला
उपसादित	आश्रय लेकर,	व्यसनं मे	क्लेश मुझे
सुहृत् आत्माना		भूयः मा	
एव	सुहृत् अपने आपसे ही	भविष्यत्	फिर न होवे ॥२१॥

कपिल उवाच–

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ।
सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥२२॥

एवं कृतमतिः गर्भे दश मास्यः स्तुवन् ऋषिः सद्यः क्षिपति अवाचीनं प्रसूत्यैः सूतिमारुतः ॥२२॥

एवं कृतमतिः	ऐसा निश्चय करके	सूतिमारुतः	प्रसव वायु
गर्भे स्तुवन्	गर्भमें (भगवानकी) स्तुति करते	प्रसूत्यै	प्रसवके लिए
		सद्यः अवाचीनं	तुरन्त नीचे
ऋषिः	ज्ञान सम्पन्न हुएको	क्षिपति	फेंकता है ॥२२॥

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाक् शिर आतुरः ।
विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो गतस्मृतिः ॥२३॥

तेन अवसृष्टः सहसा कृत्वा अवाक् शिरः आतुरः विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासः गत स्मृतिः ॥२३॥

तेन सहसा	उसके द्वारा अचानक	गत स्मृतिः	स्मृति नष्ट हो
अवसृष्टः	धक्का दिए जानेपर		जाती है,
अवाक् शिरः	नीचे सिर	कृच्छ्रेण	कष्टसे
कृत्वा आतुरः	करके व्याकुल होकर	विनिष्क्रामति	बाहर निकलता
निरुच्छ्वासः	श्वासकी गति रुक		है ॥२३॥
	जाती है,		

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ।
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४॥

पतितः भुवि असृङ्मूत्रे विष्ठाभूः इव चेष्टते रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४॥

असृङ्मूत्रे	रक्त-मूत्रमें	गते ज्ञाने	ज्ञान नष्ट हो जानेसे
भुवि पतितः	पृथ्वीपर गिरकर	विपरीतां गतिं	उलटी दशाको
विष्ठाभूः इव	विष्ठामें उत्पन्न होने	गतः रोरूयति	पहुँचा रोता
	वाले कीड़ोंके समान		है ॥२४॥
चेष्टते	चेष्टा करता है,		

परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ।
अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥२५॥

परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणः जनेन सः अनभि प्रेतं आपन्नः प्रत्याख्यातुं अनीश्वरः ॥२५॥

न विदुषा	(उसकी स्थिति) न	आपन्नः	आनेपर
	जाननेवाले	प्रत्याख्यातुं	प्रतिवाद (मना)
जनेन पुष्यमाणः	लोगोंसे पालित		करनेमें
	होता	अनीश्वरः	असमर्थ होता
परच्छन्दं	परवश होता है,		है ॥२५॥
अनभि प्रेतं	प्रतिकूल स्थिति		

शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुः स्वेदजदूषिते ।
नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥२६॥

शायितः अशुचि पर्यङ्के जन्तुः स्वेदज दूषिते न ईशः कण्डूयने अङ्गानां आसन उत्थान चेष्टने ॥२६॥

स्वेदज जन्तुः	पसीनेसे उत्पन्न जीवों (जूँ-खटमलों)से	अङ्गानां कण्डूयने	अङ्गोंको खुजलानेमें,
दूषिते	दूषित	आसन उत्थान	बैठने, उठनेमें,
अशुचि पर्यङ्के	अपवित्र (गन्दे) पलंगपर	चेष्टने	कोई चेष्टा करनेमें
शायिते	सुला देनेपर	न ईशः	समर्थ नहीं रहता ॥२६॥

तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ।
रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥२७॥

तुदन्ति आमत्वचं दंशाः मशकाः मत्कुण आदयः रुदन्तं विगत ज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥२७॥

यथा कृमिकं	जैसे कीड़ेको	रुदन्तं	रोते हुए
कृमयः	(दूसरे) कीड़े (काटते हैं,)	आमत्वचं	(उसकी) कच्ची त्वचाको
दंशाः मशकाः	डांस, मच्छर,	तुदन्ति	काटते रहते हैं ॥२७॥
मत्कुण आदयः	खटमल आदि		
विगत ज्ञानं	ज्ञान रहित होकर		

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च ।
अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ॥२८॥

इति एवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डं एव च अलब्धा अभीप्सितः अज्ञानात् इद्धमन्युः शुचार्पितः ॥२८॥

इति एवं	इस प्रकारके	भुक्त्वा	भोगकर
शैशवं	शिशु अवस्थाको	पौगण्डं एव च	पौगण्डावस्थामें भी
		दुःखं	दुःख पाता है,

अभीप्सितः	जो पाना चाहता है	इद्धमन्युः	क्रोध बढ़ता है,
अलब्धा	उसे न पाकर	शुचार्पितः	शोकाकुल हो जाता
अज्ञानात्	नासमझीसे		है ॥२८॥

सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ।
करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥२९॥

सह देहेन मानेन वर्ध मानेन मन्युना करोति विग्रहं कामी कामिषु अन्ताय च आत्मनः ॥२९॥

देहेन सह	देहके साथ-साथ	अन्ताय	विनाशके लिए
मानेन मन्युना	अभिमान और क्रोध	कामिषु	(दूसरे) कामियोंसे
वर्ध मानेन	बढ़ते जानेसे	विग्रहं करोति	शत्रुता कर लेता
कामी	कामनावश		है ॥२९॥
आत्मनः च	अपने ही		

भूतैः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ।
अहंममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥३०॥

भूतैः पञ्चभिः आरब्धे देहे देही हि अबुधः असकृत् अहं मम इति असत् ग्राहः करोति कुमतिः मतिम् ॥३०॥

भूतैः पञ्चभिः	पञ्च महाभूतोंसे	अहं मम इति	'मैं मेरा' ऐसी
आरब्धे देहे	बने शरीरमें	असत् ग्राहः	असत्को पकड़े
हि अबुधः	क्योंकि अज्ञानी है		रहनेवाली
कुमतिः देही	दुर्बुद्धि जीव	मतिं	समझ
असकृत्	निरन्तर	करोति	कर लेता है ॥३०॥

तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ।
योऽनुयाति ददत्क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ॥३१॥

तत् अर्थं कुरुते कर्म यत् बद्धः याति संसृतिं यः अनुयाति ददत् क्लेशम् अविद्या कर्म बन्धनः ॥३१॥

तत् अर्थं	उस (अन्तःकरण)	कर्म कुरुते	कर्म करता है
	की तुष्टिके लिए	यः क्लेशं ददत्	क्लेश देता

अनुयाति	(इसके) पीछे (जन्मान्तरोंमें भी) जाता है	कर्म बन्धनः	कर्मके बन्धनसे
		यत् बद्धः	जिससे बँधा
		संसृतिं याति	जन्म-मरणके चक्रमें पड़ता है ॥३१॥
अविद्या	अविद्या (और)		

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥३२॥

यत् असत्भिः पथि पुनः शिश्न उदर कृत उद्यमैः आस्थितः रमते जन्तुः तमः विशति पूर्ववत् ॥३२॥

यत् पुनः	जिससे फिर	जन्तुः रमते	(इसीमें) जीव सुख मानता है,
असत्भिः पथि	कुमार्गसे (चलता)		
शिश्न उदर	उपस्थ और पेटके लिए	पूर्ववत्	पहिलेके समान
		तमः विशति	नरक जाता है ॥३२॥
कृत उद्यमः	प्रयत्न करता		
आस्थितः	रहता है,		

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति सङ्क्षयम् ॥३३॥

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीः ह्रीः यशः क्षमाः शमः दमः भगः च इति यत् सङ्गात् याति संक्षयम् ॥३३॥

यत् सङ्गात्	जिस (शरीर) की आसक्तिसे	क्षमा, शमः	क्षमा,मनकी शान्ति,
		दमः भगः च	इन्द्रिय संयम और ऐश्वर्य
सत्यं शौचं	सत्य, पवित्रता,		
दयां मौनं	दया, मौन,	इति	ये सब
बुद्धिः श्रीः	बुद्धि, लक्ष्मी,	संक्षयं याति	नष्ट हो जाते हैं ॥३३॥
ह्रीः यशः	लज्जा, यश,		

तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु ।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥३४॥

तेषु अशान्तेषु मूढेषु खण्डित आत्मसु असाधुषु सङ्गं न कुर्यात् शोच्येषु योषित् क्रीडामृगेषु च ॥३४॥

तेषु अशान्तेषु	उन अशान्त,	च योषित्	
मूढेषु	अज्ञानी,	क्रीडामृगेषु	और स्त्रियोंके खिलौनों,
खण्डित आत्मसु	खण्डित (विक्षिप्त)-चित्त,	शोच्येषु	शोचनीय लोगोंका
असाधुषु	दुष्ट,	सङ्गं न कुर्यात्	साथ न करे ॥३४॥

न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥३५॥

न तथा अस्य भवेत् मोहः बन्धः च अन्य प्रसङ्गतः योषित् सङ्गात् यथा पुंसः यथा तत् सङ्गि सङ्गतः ॥३५॥

अस्य	इस (जीव) का	योषित् सङ्गात्	स्त्रीमें आसक्त होने तथा
तथा मोहः	वैसा मोह	तत् पुंस सङ्गि	उनमें आसक्त पुरुषके
च बन्धः	और बन्धन	सङ्गतः	साथसे
अन्य प्रसङ्गतः	न दूसरी आसक्तियोंसे नहीं होता	यथा भवेत्	(उसके) जैसा हो जाय ॥३५॥
यथा	जैसा		

प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ।
रोहिद्भूतां सोऽन्वधावद्दृक्षरूपी हतत्रपः ॥३६॥

प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तत् रूप धर्षितः रोहित् भूतां सः अन्वधावत् ऋक्ष रूपी हतत्रपः ॥३६॥

प्रजापतिः	ब्रह्माजी	रोहित् भूतां	मृगी होकर (भागती) के
स्वां दुहितरं	अपनी पुत्रीको	ऋक्ष रूपी	मृग होकर
दृष्ट्वा	देखकर	हतत्रपः	निर्लज्ज होकर
तत् रूप	उसके रूपपर	सः अन्वधावत्	वह (उसके) पीछे दौड़े ॥३६॥
धर्षितः	मोहित होकर		

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु को न्वखण्डितधीः पुमान् ।
ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥३७॥

तत् सृष्ट सृष्ट सृष्टेषु कः नु अखण्डित धीः पुमान् ऋषिं नारायणं ऋते योषित् मयि इह मायया ॥३७॥

तत् सृष्ट	उन (ब्रह्माजी) के बनाये (मरीचि आदि)	**ऋते इह**	छोड़कर इस संसारमें
सृष्ट	उनके बनाये (कश्यपादि)	**योषित् मयि**	स्त्री रूपिणी
सृष्टेषु	उनके बनाये लोगोंमें	**मायया**	मायासे
ऋषिं नारायणं	श्रीनारायण ऋषिको	**कः नु पुमान्**	कौन-सा पुरुष है
		अखण्डित धीः	जिसकी बुद्धि विचलित न हो ॥३७॥

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ।
या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण केवलम् ॥३८॥

बलं मे पश्य मायायाः स्त्री मय्या जयिनः दिशां या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण केवलम् ॥३८॥

मे स्त्री मय्या	मेरी स्त्रीमयी	**दिशां जयिनः**	दिग्विजयीको
मायायाः	मायाका	**पदाक्रान्तान्**	
बलं पश्य	बल देखो	**करोति**	पैरोंसे कुचल देती है ॥३८॥
या केवलं	जो केवल		
भ्रूविजृम्भेम्ण	भृकुटि विलाससे		

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु
योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो
वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥३९॥

सङ्गं न कुर्यात् प्रमदासु जातुः योगस्य पारं परं आरुरुक्षुः मत् सेवया प्रतिलब्ध आत्मलाभः वदन्ति या निरयद्वारं अस्य ॥३९॥

योगस्य पारं परं	योगके परम पार
आरुरुक्षः	चढ़ने (पहुँचने) की इच्छा वालेको
मत् सेवया	(अथवा) मेरी सेवासे
प्रतिलब्ध आत्मलाभः	आत्मज्ञान प्राप्त
जातुः	किसीको
प्रमदासु	स्त्रियोंमें
सङ्गं न कुर्यात्	आसक्ति नहीं करनी चाहिए
या अस्य	जिसे इन लोगोंके लिए
निरयद्वारं	नरकका द्वार
वदन्ति	बतलाते हैं ॥३९॥

योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ।
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥४०॥

यः उपयाति शनैः माया योषित् देव विनिर्मिता तां इक्षेत् आत्मनः मृत्युं तृणैः कूपं इव आवृतम् ॥४०॥

यः देव विनिर्मिता	जो भगवानकी बनायी
योषित् माया	स्त्री रूपिणी माया
शनैः उपयाति	(सेवादिके बहाने) धीरे-धीरे पास आती है
तां तृणैः आवृतं	उसे तिनकोंसे ढँके
कूपं इव	कुएँके समान
आत्मनः मृत्युं	अपनी मृत्यु
इक्षेत्	देखे ॥४०॥

यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् ।
स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥४१॥

यां मन्यते पतिं मोहात् मत मायां ऋषभायतीं स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तः वित्त अपत्य गृहप्रदम् ॥४१॥

स्त्रीसङ्गतः	स्त्रीमें आसक्तिके कारण
स्त्रीत्वं प्राप्तः	स्त्री-शरीर पानेके कारण
यां मोहात्	जिसे अज्ञानवश
वित्त अपत्य गृहप्रदं	धन, सन्तान, घर देनेवाला
पतिं मन्यते	पति मानती है,
ऋषभायतीं	श्रेष्ठ बनी (वह)
मत् मायां	मेरी माया है ॥४१॥

तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् ।
दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥४२॥

तां आत्मनः विजानीयात् पति अपत्य गृहात्मकं दैव उपसादितं मृत्युं मृगयोः गायनं यथा ॥४२॥

तां पति अपत्य	पति-पुत्र,	**विजानीयात्**	जाने,
गृहात्मकं	गृहादि रूपमें	**मृगयोः**	हिरनोंके लिए
दैव उपसादितं	विधाता द्वारा भेजी	**यथा**	जैसे (बहेलियेका)
आत्मनः मृत्युं	अपनी मृत्यु	**गायनं**	संगीत ॥४२॥

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥४३॥

देहेन जीव भूतेन लोकात् लोकं अनुव्रजन् भुञ्जान एव कर्माणि करोति अविरतं पुमान् ॥४३॥

जीव भूतेन देहेन	जीव-स्वरूप सूक्ष्म शरीरसे	**पुमान् कर्माणि**	पुरुष कर्म (फलों) को
		भुञ्जान एव	भोगता हुआ भी
लोकात् लोकं	एक लोकसे दूसरे लोक	**अविरतं करोति**	अविराम (कर्म ही) करता रहता
अनुव्रजन्	बार-बार जाता		है ॥४३॥

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥४४॥

जीवः हि अस्य अनुगः देहः भूत इन्द्रिय मनोमयः तत् निरोधः अस्य मरणं आविर्भावः तु सम्भवः ॥४४॥

देहः भूत इन्द्रिय	शरीर पंचमहाभूत, इन्द्रिय	**अस्य अनुगः**	इसके पीछे चलने वाला है
मनोमयः	मनोमय है,	**तत् निरोधः**	इन दोनोंके (सहयोगका) रुकना
जीवः हि	जीव क्योंकि (सूक्ष्म शरीर)		

अस्य मरण	इस जीवकी मृत्यु (है)	**आविर्भावः तु सम्भवः**	(दोनोंका) साथ-साथ प्रकट होना ही जन्म है ॥४४॥

द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षायोग्यता यदा ।
तत्पञ्चत्वमहं मानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥४५॥

द्रव्य उपलब्धि स्थानस्य द्रव्य ईक्षा अयोग्यता यदा तत् पञ्चत्वं अहं मानात् उत्पत्तिः द्रव्य दर्शनम् ॥४५॥

द्रव्य उपलब्धि	पदार्थोंकी उपलब्धिके	**तत् पञ्चत्वं**	वह (इसकी) मृत्यु है ।
स्थानस्य	स्थान इस (स्थूलदेह) में	**अहं मानात्**	(इस स्थूल देहको) मैं मानकर
यदा द्रव्य ईक्षा अयोग्यता	पदार्थोंको देखनेकी योग्यता नहीं रहती,	**द्रव्य दर्शनं उत्पत्तिः**	पदार्थोंको देखना इसका जन्म है ॥४५॥

विशेष—

जन्म या मृत्युमें न कोई तत्त्व घटता, न बढ़ता । शरीरमें संसारको देखनेकी योग्यता स्थायी रूपसे चली गयी और देहके पञ्चभूत बिखरकर पञ्चभूतोंमें मिल गये, यह मृत्यु है और किसी शरीरमें संसार देखनेकी शक्ति आयी तथा उस देहको 'मैं' माना चेतनाने तो यह उसका जन्म कहलाता है।

यथाक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा ।
तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यतानयोः ॥४६॥

यथा अक्ष्णोः द्रव्य अवयव दर्शन अयोग्यता यदा तदा एव चक्षुषः द्रष्टुः द्रष्टृत्व अयोग्यता अनयोः ॥४६॥

यथा यदा	जैसे जब	**दर्शन अयोग्यता**	देखनेकी योग्यता नहीं रहती,
अक्ष्णोः	नेत्रोंमें		
द्रव्य अवयव	पदार्थोंके अंगोंको	**तदा एव**	उसी समय

चक्षुषः द्रष्टुः अनयोः	नेत्रोंके द्रष्टाकी— (तथा नेत्रकी) इन दोनोंकी	द्रष्टृत्व अयोग्यता	देखनेकी शक्ति नहीं रहती ॥४६॥

तस्मान्न कार्यः सन्त्रासो न कार्पण्यं न सम्भ्रमः ।
बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसङ्गश्चरेदिह ॥४७॥

तस्मात् न कार्यः सन्त्रासः न कार्पण्यं न सम्भ्रमः बुद्ध्वा जीव गतिं धीरः मुक्त सङ्गः चरेत् इह ॥४७॥

तस्मात्	इसलिए	धीरः	धीर पुरुष
न सन्त्रासः	न (मृत्यु आदिसे) भय,	जीव गतिं	जीवके स्वरूपको
		बुद्ध्वा	जानकर
न कार्पण्यं	न दीनता	मुक्त सङ्गः	अनासक्त होकर
न सम्भ्रमः	न अकुलाहट	इह चरेत्	इस संसारमें
कार्यः	करना चाहिए,		विचरण करे ॥४७॥

सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ।
मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥४८॥

सम्यक् दर्शनया बुद्धया योग वैराग्य युक्तया माया विरचिते लोके चरेत् न्यस्य कलेवरम् ॥४८॥

योग वैराग्य युक्तया	योग तथा वैराग्यसे युक्त	लोके	संसारमें
		कलेवरं	शरीरको
सम्यक् दर्शनया	सम्यक् ज्ञानमयी	न्यस्य	धरोहरके समान (अनासक्त) रखते
बुद्धया	बुद्धिसे		
माया विरचिते	माया निर्मित	चरेत्	विचरण करे ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धेएकत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानेवावसन् गृहे ।
काममर्थं च धर्मान् स्वान् दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥१॥

अथ यः गृहमेधीयान् धर्मान् एव आवसन् गृहे कामं अर्थं च धर्मान् स्वान् दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥१॥

अथ यः	फिर जो	**दोग्धि**	दुहकर (उनके फलसे)
गृहे आवसन्	घरमें रहकर	**कामं अर्थं च**	भोग और धनको चाहता है
गृहमेधीयान्		**भूयः तान्**	बार-बार उनका ही
एव	गृहस्थ धर्मका ही (पालन करता)	**पिपर्ति**	पोषण (अनुष्ठान) करता है ॥१॥
स्वान् धर्मान्	उन अपने धर्मोंको		

स चापि भगवद्धर्मात्काममूढः पराङ्मुखः ।
यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयान्वितः ॥२॥

स च अपि भगवत् धर्मात् काममूढः पराङ्मुखः यजते क्रतुभिः देवान् पितॄन् च श्रद्धयान्वितः ॥२॥

स च अपि	वह भी	**क्रतुभिः देवान्**	यज्ञ करके देवताओंना
काममूढ	कामनाओंके कारण मूढ़ हुआ	**च पितॄन्**	तथा पितरोंका
भगवत् धर्मात्	भागवत धर्मोंसे	**यजते**	यजन (पूजन) करता है ॥२॥
पराङ्मुखः	विमुख होकर		
श्रद्धयान्वितः	श्रद्धा सहित		

तच्छ्रद्धयाक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ।
गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥३॥

तत् श्रद्धया आक्रान्त मतिः पितृ देवव्रतः पुमान् गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनः एष्यति ॥३॥

पितृ देवव्रतः	पितर तथा देवताओंका उपासक	**गत्वा सोमपाः**	जाकर (देवताओंके साथ) सोमपान करके
तत् श्रद्धया	उस श्रद्धासे		
आक्रान्त मतिः	आविष्ट बुद्धि	**पुनः एष्यति**	(पुण्य समाप्त होनेपर) फिर लौट आता है ॥३॥
पुमान्	पुरुष		
चान्द्रमसं लोकं	चन्द्रलोक (स्वर्ग)		

यदा चाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनन्तासनो हरिः ।
तदा लोका लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥४॥

यदा च अहीन्द्र शय्यायां शेते अनन्त आसनः हरिः तदा लोकाः लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥४॥

यदा च	जब भी	**गृहमेधिनां**	गृहस्थोंके
अनन्त आसनः		**त एते लोकाः**	वे इतने (सब) लोक
हरिः	शेषशायी श्रीहरि	**लयं यान्ति**	लीन हो जाते हैं ॥४॥
अहीन्द्र शय्यायां	शेष-शय्यापर		
शेते तदा	सोते हैं तभी		

ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे ।
निःसङ्गा न्यस्तकर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः ॥५॥

ये स्वधर्मान् न दुह्यन्ति धीराः काम अर्थ हेतवे निःसङ्गा न्यस्त कर्माणः प्रशान्ताः शुद्ध चेतसः ॥५॥

ये धीराः	जो धैर्यशाली (पुरुष)	**स्वधर्मान् न दुह्यन्ति**	अपने धर्मोंको नहीं दुहते (वे)
काम अर्थ हेतवे	भोग और धनके लिए	**निःसङ्गा**	अनासक्त,

न्यस्त कर्माणः	भगवदर्पित कर्म करनेवाले	**प्रशान्ताः**	पूर्ण शान्त
		शुद्ध चेतसः	शुद्ध चित्त ॥५॥

निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहङ्कृताः ।
स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥६॥

निवृत्ति धर्म निरताः निर्ममा निरहङ्कृताः स्वधर्म आख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥६॥

निवृत्ति धर्म निरताः	निवृत्ति धर्म परायण	**स्वधर्म आख्येन सत्त्वेन**	स्वधर्म पालन रूप शक्तिसे
निर्ममा	ममताहीन	**परिशुद्धेन चेतसा**	चित्तके अत्यन्त शुद्ध होनेसे ॥६॥
निरहङ्कृताः	अहङ्कारहीन		

सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् ।
परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥७॥

सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतः मुखं परावरेशं प्रकृतिं अस्य उत्पत्ति अन्त भावनम् ॥७॥

ते सूर्यद्वारेण	वे सूर्य मार्ग (देवयान) से	**अस्य उत्पत्ति**	इस (जगत) की सृष्टि
विश्वतः मुखं	सर्वव्यापक	**अन्त भावनं**	प्रलय तथा पालनके
परावरेशं	कारण-कार्यके स्वामी	**प्रकृतिं**	स्वभाववाले
		पुरुषं यान्ति	परम पुरुषके पास जाते हैं ॥७॥

द्विपरार्द्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ।
तावदध्यासते लोकं परस्य परचिन्तकाः ॥८॥

द्विपरार्ध अवसाने यः प्रलयः ब्रह्मणः तु ते तावत् अध्यासते लोकं परस्य पर चिन्तकाः ॥८॥

द्विपरार्ध अवसाने यः ब्रह्मणः प्रलयः	दो परार्ध बीतनेपर जो ब्राह्मी प्रलय	**तु ते तावत् परस्य**	तुमसे कही है, तब तक परम पुरुषके

लोकं पर चिन्तकाः	लोकमें उनका ध्यान करनेवाले	अध्यासते	विराजते हैं ॥८॥

क्ष्माम्भोऽनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थ-
भूतादिभिःपरिवृतं प्रतिसञ्जिहीर्षुः ।
अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा
कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयम्भूः ॥९॥

क्ष्मा अम्भः अनल अनिल वियत् मन इन्द्रिय अर्थ भूतादिभिः परिवृतं प्रतिसञ्जिहीर्षुः अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रय आत्मा कालं पराख्यं अनुभूय परः स्वयम्भूः ॥९॥

क्ष्मा अम्भः	पृथ्वी, जल,	यर्हि गुणत्रय आत्मा	जब त्रिगुण स्वरूपा
अनल अनिल	अग्नि, वायु,	अव्याकृतं	प्रकृतिके साथ
वियत् मन	आकाश, मन,	स्वयम्भूः	ब्रह्माजी
इन्द्रिय अर्थ	इन्द्रियाँ, विषय (शब्दादि) और	पराख्यं कालं अनुभूय	दो परार्ध कालका अनुभव (भोग) करके
भूतादिभिः	अहंकारसे		
परिवृतं	घिरे (ब्रह्माण्डको)	परः विशति	परमात्मामें लीन हो जाते हैं ॥९॥
प्रति-सञ्जिहीर्षुः	प्रलयमें खींच लेनेकी इच्छासे		

एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा
ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ।
तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं
ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥१०॥

एवं परेत्य भगवन्तं अनुप्रविष्टाः ये योगिनः जित मरुत् मनसः विरागाः तेन एव साकं अमृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानं उपयान्ति अगता अभिमानाः ॥१०॥

ये योगिनः	जो योगीजन
जित मरुत्	प्राणको जीतकर
मनसः विरागाः	वैराग्य युक्त मनसे
अगता	
अभिमानाः	(परन्तु व्यक्तित्वके) अभिमान घटे बिना
एवं परेत्य	इस प्रकार मरकर (ब्रह्मा)
भगवन्तं	
अनुप्रविष्टाः	भगवानके लोकमें आये हैं
तेन एव साकं	(वे) उन ब्रह्माजीके साथ
अमृतं पुराणं	
पुरुषं	अविनाशी सनातन पुरुष
ब्रह्म प्रधानं	परम ब्रह्ममें
उपयान्ति	लीन हो जाते हैं ॥१०॥

अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ।
श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥११॥

अथ तं सर्वभूतानां हृत् पद्मेषु कृत आलयं श्रुत अनुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥११॥

भामिनी	माताजी !
अथ सर्वभूतानां	अतः सब प्राणियोंके
हृत् पद्मेषु	हृदय कमलमें
कृत आलयं	निवास किए
श्रुत अनुभावं	जिनका प्रभाव (तुमने मुझसे) सुना है
तं भावेन	उन (भगवानकी) भावसे
शरणं व्रज	शरण जाओ ॥११॥

आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ।
योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥१२॥

आद्यः स्थिर चराणां यः वेदगर्भः सहर्षिभिः योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैः योग प्रवर्तकैः ॥१२॥

यः स्थिर	
चराणां	जो (सब) स्थावर-जंगम प्राणियोंके
आद्यः	आदि कारण
वेदगर्भः	ब्रह्माजी हैं,
सहर्षिभिः	ऋषियोंके साथ

कुमाराद्यैः योग प्रवर्तकैः	सनत्कुमार आदि योग (साधनों) के प्रवर्तक	**सिद्धैः योगेश्वरैः**	सिद्ध योगेश्वरों सहित ॥१२॥

भेददृष्ट्याभिमानेन निःसङ्गेनापि कर्मणा ।
कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥१३॥

भेद दृष्ट्या अभिमानेन निःसङ्गेन अपि कर्मणा कर्तृत्वात् सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥१३॥

भेद दृष्ट्या	भेद बुद्धि होनेसे,	**कर्मणा अपि**	कर्मसे भी
कर्तृत्व		**स गुणं ब्रह्म**	सगुण ब्रह्म
अभिमानेन	कर्तापनके अभिमानके क रण	**पुरुषर्षभं पुरुषं**	पुरुषोत्तम पुरुष (श्रीहरिकी)
निःसङ्गेन	आसक्ति रहित		(सेवा करके)॥१३॥

स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ।
जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥१४॥

स संसृत्य पुनः काले कालेन ईश्वर मूर्तिना जाते गुणव्यतिकरे यथा पूर्वं प्रजायते ॥१४॥

स संसृत्य	उनके समीप जाकर (उनमें लीन होकर भी)	**काले**	समय
		जाते	(सृष्टि काल) आनेपर
ईश्वर मूर्तिना	सर्व-समर्थ-स्वरूप	**यथा पूर्वं**	जैसे पहिले
कालेन पुनः	कालके द्वारा फिर		(उत्पन्न हुए थे)
गुणव्यतिकरे	गुणोंमें वैषम्यका	**प्रजायते**	उत्पन्न होते हैं ॥१४

ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ।
निषेव्य पुनरायान्ति गुणव्यतिकरे सति ॥१५॥

ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च ते अपि धर्म विनिर्मितं निषेव्य पुनः आयान्ति गुण व्यतिकरे सति ॥१५॥

धर्म विनिर्मितं	(अपने) धर्माचरणसे बने (मिले)	गुण व्यतिकरे सति	गुणोंमें विकार (सृष्टि काल) आनेपर
पारमेष्ठ्यं च	ब्रह्मलोकके भी	पुनः आयान्ति	फिर (संसारमें) आते हैं ॥१५॥
ऐश्वर्यं निषेव्य	ऐश्वर्यको भोगकर		
ते अपि	वे भी		

ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयान्विताः ।
कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥१६॥

ये तु इह आसक्त मनसः कर्मसु श्रद्धया अन्वितः कुर्वन्ति अप्रतिषिद्धानि नित्यानि अपि च कृत्स्नशः ॥१६॥

ये तु	जो तो	कर्मसु	कर्मोंको
इह आसक्त	इस (संसार) में आसक्त	च नित्यान् अपि	और नित्य कर्मोंको भी
मनसः	चित्तवाले	श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा सहित
अप्रतिषिद्धानि	अनिषिद्ध (शास्त्र विहित)	कृत्स्नशः कुर्वन्ति	पूरी तरह करते हैं ॥१६॥

रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः ।
पितॄन् यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥१७॥

रजसा कुण्ठ मनसः कामात्मानः अजितेन्द्रियाः पितॄन् यजन्ति अनुदिनं गृहेषु अभिरत आशयाः ॥१७॥

रजसा कुण्ठ मनसः	रजोगुणसे कुंठित-मन,	गृहेषु अभिरत आशयाः	घरोंमें आसक्त-चित्तवाले
कामात्मानः	सकाम चित्तवाले,	अनुदिनं	प्रतिदिन
अजितेन्द्रियाः	अजितेन्द्रिय	पितॄन् यजन्ति	पितरोंकी पूजा करते हैं ॥१७॥

त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः ।
कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥१८॥

त्रैवर्गिकाः ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः कथायां कथनीयः उरु विक्रमस्य मधुद्विषः ॥१८॥

ते पुरुषा	वे पुरुष	**मधुद्विषः**	भगवान मधुसूदनकी
त्रैवर्गिकाः	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) चाहनेवाले हैं,	**कथनीयः**	कीर्तनीय
		कथायां	कथासे
हरिमेधसः	भवभयहारी	**विमुखा**	विमुख रहते हैं ॥१८॥
उरु विक्रमस्य	अनन्त पराक्रम		

नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ।
हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥१९॥

नूनं दैवेन विहता ये च अच्युत कथा सुधां हित्वा शृण्वन्ति असत् गाथाः पुरीषं इव विड्भुजाम् ॥१९॥

विड्भुजां	गुबरैले, सूअर आदि विष्ठा भोगी	**हित्वा**	छोड़कर
		असत् गाथाः	निन्दित चर्चाओंको
पुरीषं इव	विष्ठा के समान	**शृण्वन्ति**	सुनते हैं
ये च	जो लोग भी	**नूनं दैवेन**	निश्चय दैवके
अच्युत कथा		**विहता**	मारे हैं ॥१९॥
सुधां	भगवानकी कथा-रूपी अमृतको		

दक्षिणेन पथार्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते ।
प्रजामनु प्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥२०॥

दक्षिणेन पथाः यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते प्रजां अनु प्रजायन्ते श्मशान अन्त क्रियाकृतः ॥२०॥

श्मशान अन्त	(गर्भाधानसे लेकर) अन्त्येष्टि तक	**यम्णः पितृलोकं**	अर्यमाके पितृलोक
		व्रजन्ति प्रजां अनु	जाते हैं और अपनी सन्तानोंके पीछे (वंशमें)
क्रियाकृतः	(सब) संस्कार-कर्म करनेवाले		
दक्षिणेन पथाः ते	(सूर्यसे) दाहिने मार्गसे वे	**प्रजायन्ते**	उत्पन्न होते हैं ॥२०॥

ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति ।
पतन्ति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥२१॥

ततः ते क्षीण सुकृताः पुनः लोकं इमं सति पतन्ति विवशा देवैः सद्यः विभ्रंशित उदयः ॥२१॥

सति	साध्वी !	**विभ्रंशित उदयः**	ऐश्वर्य भ्रष्ट कर देने पर
ततः ते	तब उनके	**सद्यः विवशा**	तुरन्त विवश बने,
क्षीण सुकृताः	पुण्य (भोगसे) क्षीण हुए लोग	**पुनः इमं लोकं**	फिर इस लोकमें
देवैः	देवताओं द्वारा	**पतन्ति**	गिरते (जन्म लेते) हैं ॥२१॥

तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ।
तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम् ॥२२॥

तस्मात् त्वं सर्व भावेन भजस्व परमेष्ठिनं तत् गुणाश्रयया भक्त्या भजनीय पदाम्बुजम् ॥२२॥

तस्मात् त्वं	इसलिए तुम	**तत् गुणाश्रयया**	उन्हींके गुणोंका आश्रय लेनेवाली
भजनीय	भजन करने योग्य	**भक्त्या सर्व**	
पदाम्बुजं	चरण-कमल	**भावेन**	भक्तिसे सर्वभावसे
परमेष्ठिनं	सर्वेश्वर भगवानका	**भजस्व**	भजन करो ॥२२॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२३॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः जनयति आशु वैराग्यं ज्ञानं यत् ब्रह्म दर्शनम् ॥२३॥

भगवति-वासुदेवे	भगवान वासुदेवमें	**यत् ब्रह्मदर्शनं**	जिससे ब्रह्म साक्षात्कार होता है
प्रयोजितः-भक्तियोगः	प्रयुक्त भक्तियोग	**ज्ञानं जनयति**	(वह) ज्ञान उत्पन्न करता है ॥२३॥
आशु वैराग्यं	शीघ्र वैराग्य (और)		

यदास्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ।
न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥२४॥

यदा अस्य चित्तं अर्थेषु समेषु इन्द्रिय वृत्तिभिः न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियं अप्रियं इति उत ॥२४॥

यदा अस्य	जब इसका
चित्तं समेषु	चित्त (वस्तुतः) समान
अर्थेषु	विषयोंमें
इन्द्रिय वृत्तिभिः	इन्द्रियोंकी वृत्तिसे
वैषम्यं उत	विषमता तथा
प्रियं अप्रियं इति	यह प्रिय है, यह अप्रिय है ऐसा
न विगृह्णाति	नहीं ग्रहण करता ॥२४॥

स तदैवात्मनाऽऽत्मानं निःसङ्गं समदर्शनम् ।
हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥२५॥

स तत् एव आत्माना आत्मानं निःसङ्गं समदर्शनं हेय उपादेय रहितं आरूढं पदं ईक्षते ॥२५॥

स तत् एव आत्मना	वह उसी समय ही
आत्मानं	अपनें आप अपनेको
निःसङ्गं	अनासक्त
समदर्शनं	समदर्शी
हेय उपादेय	त्याज्य एवं ग्रहण योग्य (गुणोंसे)
रहितं पदं	रहित पदपर
आरूढं ईक्षते	आरूढ देखता है ॥२५॥

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ।
दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥२६॥

ज्ञान मात्रं परं ब्रह्म परमात्मा ईश्वरः पुमान् दृश्य आदिभिः पृथक् भावैः भगवान् एक ईयते ॥२६॥

परं ब्रह्म	परमब्रह्म
परमात्मा	परमात्मा
ईश्वरः	ईश्वर
पुमान्	पुरुषोत्तम
ज्ञान मात्रं	ज्ञानमात्र (ज्ञान ही) हैं
दृश्य आदिभिः	दृश्य (इन्द्रियादि) द्वारा
एक भगवान्	एक ही भगवान्
पृथक् भावैः	भिन्न-भिन्न रूपोंमें
ईयते	प्रतीत हो रहे हैं ॥२६॥

एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः ।
युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः ॥२७॥

एतावान् एव योगेन समग्रेण इह योगिनः युज्यते अभिमतः हि अर्थः यत् असङ्गः तु कृत्स्नशः ॥२७॥

इह योगिनः	इस (लोक) में योगियोंका	**अर्थः युज्यते**	प्रयोजन उपयुक्त है
समग्रेण योगेन	समस्त योग साधनोंका	**यत् कृत्स्नशः**	जो सम्पूर्ण (संसार) से
एतावान् एव हि	इतना ही	**असङ्गः तु**	अनासक्त हो जाता ॥२७॥
अभिमतः	अत्यन्त अभीष्ट		

ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ।
अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा ॥२८॥

ज्ञानं एकं पराचीनैः इन्द्रियैः ब्रह्म निर्गुणं अवभाति अर्थ रूपेण भ्रान्त्या शब्दादि धर्मिणा ॥२८॥

ज्ञानं एकं	ज्ञान स्वरूप, अद्वितीय	**भ्रान्त्या**	भ्रान्तिसे
निर्गुणं ब्रह्म	निर्गुण ब्रह्म	**शब्दादि धर्मिणा**	शब्द (रूप,स्पर्शादि) धर्मवाले
पराचीनैः इन्द्रियैः	बहिर्मुखी इन्द्रियों द्वारा	**अर्थ रूपेण अवभाति**	विषयोंके रूपमें प्रतीत हो रहा है ॥२८॥

यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पञ्चविधः स्वराट् ।
एकादशविधस्तस्य वपुरण्डं जगद्यतः ॥२९॥

यथा महान् अहं रूपः त्रिवृत् पञ्चविधः स्वराट् एकादशविधः तस्य वपुः अण्डं जगत् यतः ॥२९॥

यथा महान् त्रिवृत् अहं	जैसे महत्तत्त्व तीन प्रकार (वैकारिकादि) अहंकार	**पञ्चविधः एकादशविधः**	पञ्च महाभूत रूप ग्यारह (मनसहित) इन्द्रियोंवाला

तस्य वपुः अण्डं	उसका शरीर ब्रह्माण्ड रूप	**जगत्**	विश्व बन गया है ॥२९॥
यतः स्वराट्	जैसे (वह) स्वयं प्रकाश ही		

एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ।
समाहितात्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपश्यति ॥३०॥

एतत् वै श्रद्धया भक्त्या योग अभ्यासेन नित्यशः समाहित आत्मा निःसङ्गः विरक्त्या परिपश्यति ॥३०॥

एतत् वै	इसको निश्चित ही	**निःसङ्ग आत्मा**	अनासक्त चित्त,
श्रद्धया भक्त्या	श्रद्धायुक्त भक्तिसे,	**विरक्त्या**	वैराग्यसे (युक्त ही)
योग अभ्यासेन	योगाभ्याससे,	**परिपश्यति**	सर्वत्र देखता है ॥३०॥
नित्यशः			
समाहित	सदा एकाग्र,		

इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद्ब्रह्मदर्शनम् ।
येनानुबुद्ध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥३१॥

इति एतत् कथितं गुर्वि ज्ञानं तत् ब्रह्मदर्शनं येन अनुबुद्ध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥३१॥

गुर्वि	पूजनीय माताजी !	**येन प्रकृतेः**	जिससे प्रकृतिका
तत् ब्रह्मदर्शनं	वह ब्रह्म साक्षात्कार करानेवाला	**च पुरुषस्य**	और पुरुषका
ज्ञानं इति एतत्	ज्ञान इस प्रकार यह	**तत्त्वं अनुबुद्ध्यते**	तत्त्व जाना जाता है ॥३१॥
कथितं	(मैंने) कहा,		

ज्ञानयोगश्च मनिष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ।
द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥३२॥

ज्ञानयोगः च मनिष्ठः नैर्गुण्यः भक्तिलक्षणः द्वयोः अपि एक एव अर्थः भगवत् शब्द लक्षणः ॥३२॥

नैर्गुण्यः	निर्गुण विषयक
ज्ञानयोगः च	ज्ञानयोग तथा
मनिष्ठः	मुझमें निष्ठायुक्त
भक्तिलक्षणः	भक्तियोग
द्वयोः अपि	दोनोंका ही
एक एव अर्थः	एक ही प्रयोजन है
भगवत् शब्द लक्षणः	उसे ही भगवान कहते हैं ॥३२॥

यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ।
एको नानेयते तद्वद्भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः ॥३३॥

यथा इन्द्रियैः पृथक् द्वारैः अर्थः बहुगुण आश्रयः एकः नाना ईयते तद्वत् भगवान् शास्त्र वर्त्मभिः ॥३३॥

यथा एकः	जैसे एक ही
बहुगुण आश्रयः	(शब्द-स्पर्शादि) अनेक गुणोंवाला
अर्थः इन्द्रियैः	पदार्थ इन्द्रियोंके
पृथक् द्वारैः	भिन्न-भिन्न द्वारोंसे
नाना ईयते	अनेक रूप जाना जाता है,
तद्वत् भगवान् शास्त्र वर्त्मभिः	इसी प्रकार भगवान् शास्त्रके (अनेक) मार्गोंसे (अनेक रूपोंमें अनुभूत होते हैं) ॥३३॥

क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपः स्वाध्यायमर्शनैः ।
आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥३४॥

क्रियया क्रतुभिः दानैः तपः स्वाध्याय मर्शनैः आत्म इन्द्रिय जयेन अपि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥३४॥

क्रियया क्रतुभिः	अनेक कर्मोंसे, यज्ञसे,
दानैः तपः	दानसे, तपसे,
स्वाध्याय	वेदाध्ययनसे,
मर्शनैः	वेद-विचारसे,
आत्म इन्द्रिय जयेन अपि	अपनी इन्द्रियोंको जीतनेसे भी
च कर्मणां संन्यासेन	तथा कर्मोंके त्यागसे ॥३४॥

योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि ।
धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥३५॥

योगेन विविध अङ्गेन भक्तियोगेन च एव हि धर्मेण उभय चिह्नेन यः प्रवृत्ति निवृत्तिमान् ॥३५॥

विविध अङ्गेन	अनेक अंगोंवाले	**यः प्रवृत्ति**	जो प्रवृत्तिपरक
योगेन	योगसे,		(तथा)
च भक्तियोगेन		**निवृत्तिमान्**	निवृत्तिपरक
एव हि	तथा भक्तियोगसे भी	**उभय चिह्नेन**	दोनों लक्षणोंवाले
		धर्मेण	धर्मसे ॥३५॥

आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ।
ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः पुमान् ॥३६॥

आत्म तत्त्व अवबोधेन वैराग्येण दृढेन च ईयते भगवान् एभिः सगुणः निर्गुणः पुमान् ॥३६॥

आत्म तत्त्व		**सगुणः निर्गुणः**	सगुण-निर्गुण रूप
अवबोधेन	आत्म तत्त्वके	**पुमान् भगवान्**	परमपुरुष
	ज्ञानसे,		भगवानको
दृढेन च		**ईयते**	प्राप्त किया जाता
वैराग्येण	तथा दृढ़ वैराग्यसे,		है ॥३६॥
एभिः	इन (साधनों) से		

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ।
कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥३७॥

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधं कालस्य च अव्यक्त गतेः यः अन्तःधावति जन्तुषु ॥३७॥

चतुर्विधं	चारों प्रकारके	**यः जन्तुषु**	जो प्राणियोंके
	(सात्त्विक, राजस,	**अन्तः धावति**	भीतर गतिशील है
	तामस, निर्गुण)		(उस)
भक्तियोगस्य	भक्तियोगका	**कालस्य च**	कालका भी
स्वरूपं	स्वरूप,	**ते प्रावोचं**	तुमसे वर्णन कर
अव्यक्त गतेः	अव्यक्त गति		चुका ॥३७॥

जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ।
यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥३८॥

जीवस्य संसृतिः बह्वीः अविद्या कर्म निर्मिताः या स्वङ्ग प्रविशन् आत्मा न वेद गतिं आत्मनः ॥३८॥

अविद्या निर्मिताः	अविद्यासे उत्पन्न	**या स्वङ्ग**	
जीवस्य बह्वीः	जीवकी बहुत-सी	**प्रविशन्**	जिनमें स्वयं जानेपर
कर्म संसृतिः	कर्मसे मिलनेवाली गतियाँ	**आत्मा**	जीव
		आत्मनः गतिं	अपनी गति
		न वेद	नहीं जानता ॥३८॥

नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ।
न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥३९॥

न एतत् खलाय उपदिशेत् न अविनीताय कर्हिचित् न स्तब्धाय न भिन्नाय न एव धर्म ध्वजाय च ॥३९॥

एतत् खलाय	यह (उपदेश) दुष्टको नहीं,	**भिन्नाय न**	दुराचारी (भेददर्शी) को नहीं
अविनीताय	दुर्विनीतको	**च धर्म ध्वजाय**	तथा पाखण्डीको
कर्हिचित् न	कभी नहीं,	**न एव उपदिशेत्**	नहीं ही उपदेश करे ॥३९॥
स्तब्धाय न	घमंडीको नहीं,		

न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ।
नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥४०॥

न लोलुपाय उपदिशेत् न गृहारूढ चेतसे न अभक्ताय च मे जातुः न मद्भक्त द्विषां अपि ॥४०॥

लोलुपाय न	लालचीको नहीं,	**चेतसे न**	गृहासक्त चित्तको नहीं,
गृहारूढ			

मे अभक्ताय	जिसकी मुझमें भक्ति नहीं	मद्भक्त द्विषां अपि	मेरे भक्तोंसे द्वेष करने वालोंको भी
जातुः च न	उत्पन्न हुई है उसको भी नहीं,	उपदिशेत् न	उपदेश न करे ॥४०॥

श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ।
भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥४१॥

श्रद्दधानाय भक्ताय विनीताय अनसूयवे भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषा अभिरताय च ॥४१॥

श्रद्दधानाय भक्ताय विनीताय अनुसूयवे	श्रद्धालु भक्तको, विनीत, असूया न करने वालेको,	भूतेषु कृत-मैत्राय शुश्रूषा अभिरताय च	प्राणियोंसे मित्रता करने वालेको, और सेवा परायणको ॥४१॥

बहिर्जातविरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् ।
निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥४२॥

बहिर्जात विरागाय शान्त चित्ताय दीयतां निर्मत्सराय शुचये यस्य अहं प्रेयसां प्रियः ॥४२॥

बहिर्जात विरागाय	जिसका वैराग्य प्रकट है,	शुचये	पवित्रको,
शान्त चित्ताय	शान्त चित्त,	यस्य अहं	जिसका मैं
निर्मत्सराय	मत्सर रहित,	प्रेयसां प्रियः	प्रियोंसे भी प्रिय हूँ
		दीयतां	(उसे यह उपदेश) दो ॥४२॥

य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ।
यो वाभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥४३॥

यः इदं शृणुयात् अम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् यः वा अभिधत्ते मत् चित्तः स हि एति पदवीं च मे ॥४३॥

अम्ब यः इदं	माताजी ! जो इसको	**अभिधत्ते**	(इसे) धारण करता है
पुरुषः सकृत् श्रद्धया शृणुयात्	पुरुष एक बार भी श्रद्धापूर्वक सुनता है,	**स हि च मे पदवीं एति**	वह तो निश्चय मेरे परमपदको आवेगा ॥४३॥
वा यः मत् चित्तः	अथवा जो मुझमें चित्त लगाकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री
सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ।
विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य
तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥१॥

एवं निशम्य कपिलस्य वचः जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः विस्रस्त मोहपटला तं अभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्व विषय अङ्कित सिद्धि भूमिम् ॥१॥

एवं कपिलस्य	इस प्रकार कपिलजीके	**देवहूतिः**	देवहूति
वचः निशम्य	वचनोंको सुनकर	**तत्त्व विषय**	तत्त्वज्ञानके विषयमें
विस्रस्त		**सिद्धि भूमिं**	आधार भूमि (सांख्य शास्त्री)
मोहपटला	मोहका पर्दा फट गया,	**अङ्कित**	के उपदेष्टा
सा कर्दमस्य	वे महर्षि कर्दमकी	**तं अभिप्रणम्य**	उनको प्रणाम करके
किल दयिता	अत्यन्त प्रिय पत्नी	**तुष्टाव**	स्तुति करने लगीं ॥१॥
जनित्री	(कपिलकी) जननी		

देवहूतिरुवाच–

अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं
भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ।
गुणप्रवाहं सदशेषबीजं
दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥२॥

अथ अपि अजः अन्तः सलिले शयानं भूत इन्द्रिय अर्थ आत्ममयं वपुः ते गुण प्रवाहं सत् अशेषबीजं दध्यौ स्वयं यत् जठर अब्जजातः ॥२॥

अब्जजातः	(आपकी) नाभि कमलसे उत्पन्न
अजः अपि	ब्रह्माजीने भी
अन्तः सलिले	प्रलय जलके भीतर
शयानं	सोते हुए
भूत इन्द्रिय अर्थ आत्ममयं	पञ्चभूत, इन्द्रिय, विषय तथा मनोमय
ते वपुः	आपके शरीरका
जठर	(जो) पेट
गुण प्रवाहं	गुणोंका प्रवाह,
सत्	सत्वस्वरूप,
अशेषबीजं	सम्पूर्ण (कार्य-कारणका) बीज है
स्वयं	स्वयं
यत् दध्यौ	क्योंकि ध्यान ही किया था ॥२॥

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते
गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धि-
रात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥३॥

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते गुण प्रवाहेण विभक्त वीर्यः सर्गादि अनीहः अवितथ अभिसन्धिः आत्मेश्वरः अतर्क्य सहस्र शक्तिः ॥३॥

स एव भवान्	वही आप
अवितथ	
अभिसन्धिः	अव्यर्थ संकल्प,
आत्मेश्वरः	जीवोंके स्वामी,
अतर्क्य	अचिन्त्य
सहस्र शक्तिः	अनन्त शक्ति
अनीहः	इच्छाहीन होनेपर भी
गुण प्रवाहेण	गुणोंके प्रवाहसे
विभक्त वीर्यः	अपनी विभूतियोंको (ब्रह्मादि रूपमें) बाँटकर
विश्वस्य	संसारकी
सर्गादि विधत्ते	सृष्टि आदिका विधान करते हैं ॥३॥

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ
कथं नु यस्योदर एतदासीत् ।

विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः
शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥४॥

स त्वं भृतः मे जठरेण नाथ कथं नु यस्य उदर एतत् आसीत् विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म माया शिशुः अङ्घ्रिपानः ॥४॥

नाथ	नाथ !		है; क्योंकि)
यस्य उदर	जिसके पेटमें	**युगान्ते**	कल्पान्तके समय
एतत् विश्व		**अङ्घ्रिपानः**	अपने चरण
आसीत्	यह सम्पूर्ण जगत है		(का अंगूठा) पीते
स त्वं मे	वही आप मेरे	**माया शिशुः**	मायासे शिशु
जठरेण	पेटमें		बनकर
नु कथं	भला कैसे	**वटपत्र**	वरगदके पत्तेपर
भृतं	धारण किए गये ?	**एकः शेते**	(आप) अकेले सोते
	(पर यह सम्भव		हैं ॥४॥

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां
निदेशभाजां च विभो विभूतये ।
यथावतारास्तव सूकरादय-
स्तथायमप्यात्मपथोपलब्धये ॥५॥

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां निदेश भाजां च विभो विभूतये यथा अवतारा: तव सूकर आदयः तथा अयं अपि आत्मपथ उपलब्धये ॥५॥

विभो	प्रभो !	**यथा तव**	जैसे आपके
पाप्मनां		**सूकर आदयः**	वाराहादि
प्रशमाय च	पापियोंका दमन	**अवतारा:**	अवतार हुए
	और	**तथा अयं अपि**	वैसे ही यह भी
निदेश भाजां	आज्ञाकारियों	**आत्मपथ**	आत्मज्ञानका मार्ग
	(भक्तों) के	**उपलब्धये**	दिलानेके लिए
विभूतये	अभ्युदयके लिए		(हुआ) है ॥५॥
त्वं देहतन्त्रः	आप अवतार		
	लेते हैं ।		

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥६॥

यत् नामधेय श्रवणात् अनुकीर्तनात् यत् प्रह्वणात् यत् स्मरणात् अपि क्वचित् श्वादः अपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनः ते भगवन् नु दर्शनात् ॥६॥

क्वचित् अपि	कभी भी
यत् नामधेय	जिनके नामोंको
श्रवणात्	सुननेसे या
अनुकीर्तनात्	बार-बार कीर्तन करनेसे,
यत् प्रह्वणात्	जिनको प्रणाम करनेसे,
यत् स्मरणात्	जिनका स्मरण करनेसे
सद्यः श्वादः अपि	तुरन्त चाण्डाल भी
सवनाय कल्पते	याज्ञिक (ब्राह्मण)के समान हो जाता है,
भगवन्	भगवन् !
ते दर्शनात् नु	आपके दर्शनसे तो
पुनः कुतः	फिर क्या पूछना ॥६॥

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥७॥

अहो बत श्वपचः अतः गरीयान् यत् जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यं तेपुः तपः ते जुहुवुः सस्नुः आर्या ब्रह्मान् उचुः नाम गृणन्ति ये ते ॥७॥

यत् जिह्वाग्रे	जिनकी जीभकी नोकपर
तुभ्यं नाम वर्तते	आपका नाम आता है,
अहो बत	अरे वह तो
श्वपचः	चाण्डाल भी
अतः गरीयान्	इससे श्रेष्ठ है ।
ये ते नाम गृणन्ति	जो आपके नामको लेते हैं,

ते तपः तेपुः	उन्होंने तपस्यायें करलीं,	आर्या सस्नुः	उत्तम तीर्थोंमें स्नान कर लिया,
जुहुवुः	यज्ञ कर लिए,	ब्रह्मान् ऊचुः	वेदपाठ कर लिये ॥७॥

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं
प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं
वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥८॥

तं त्वां अहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक् स्रोतसि आत्मनि संविभाव्यं स्वतेजसा ध्वस्त गुण प्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥८॥

तं त्वां ब्रह्म	उस आप ब्रह्म,	ध्वस्त गुण प्रवाहं	त्रिगुणोंके प्रवाहको निरस्त करनेवाले
परं पुमांसं	परम पुरुष,	वेदगर्भं	सम्पूर्ण वेद अपने भीतर रखनेवाले
स्रोतसि प्रत्यक् आत्मनि	वृत्तियोंको अन्तर्मुख करके	कपिलं विष्णुं	कपिल रूपमें विष्णु भगवान्‌की
संविभाव्यं	अन्तःकरणमें ध्यान करने योग्य,	वन्दे	वन्दना करती हूँ ॥८॥
स्वतेजसा	अपने तेजसे		

मैत्रेय उवाच–

ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ।
वाचाविक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥९॥

ईडितः भगवान् एवं कपिलाख्यः परः पुमान् वाचा अविक्लवया इति आह मातरं मातृवत्सलः ॥९॥

कपिलाख्यः	कपिल नामवाले	भगवान्	भगवान्
परः पुमान्	परम पुरुष	मातृवत्सलः	मातृवत्सल

एवं ईडितः	इस प्रकार स्तुति किये जानेपर	**मातरं इति आह**	मातासे यह बोले ॥६॥
अविक्लवया वाचा	गम्भीर वाणीसे		

कपिल उवाच–

मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ।
आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥१०॥

मार्गेण अनेन मातः ते सुसेव्येन उदितेन मे आस्थितेन परां काष्ठां अचिरात् अवरोत्स्यसि ॥१०॥

मातः	माता !	**आस्थितेन**	(उस पर) स्थित होनेसे
मे उदितेन	मेरे द्वारा बतलाये		
अनेन मार्गेण	इस मार्गसे	**परां काष्ठां**	परमपदपर
ते सुसेव्येन	तुम्हारे द्वारा भली प्रकार आचरण करते	**अचिरात्**	शीघ्र
		अवरोत्स्यसि	चढ़ जाओगी ॥१०॥

श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभिः ।
येन मामभवं याया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥११॥

श्रद्धत्स्व एतत् मतं मह्यं जुष्टं यत् ब्रह्मवादिभिः येन मां अभवं याया मृत्युं ऋच्छन्ति अतत् विदः ॥११॥

एतत् मह्यं मतं श्रद्धत्स्व	इस मेरे मतपर श्रद्धा करो,	**येन मां अभवं याया**	जिसके द्वारा मुझ मोक्ष स्वरूपको पहुँचोगी ।
यत् ब्रह्मवादिभिः	क्योंकि वेदवादी लोगोंने	**अतत् विदः**	इसे न जाननेवाले
जुष्टं	(इसे) अपनाया है ।	**मृत्युं ऋच्छन्ति**	मृत्युके चक्रमें पड़ते हैं ॥११॥

मैत्रेय उवाच–

इति प्रदर्श्य भगवान् सतीं तामात्मनो गतिम् ।
स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥१२॥

इति प्रदर्श्य भगवान् सतीं तां आत्मनः गतिं स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलः अनुमतः ययौ ॥१२॥

इति	इस प्रकार	**ब्रह्मवादिन्या**	
आत्मनः गतिं	आत्मज्ञानका	**अनुमतः**	(उन) ब्रह्मवादिनीसे अनुमति लेकर
तां सतीं			
स्वमात्रां	उन सती अपनी माताको	**भगवान् कपिलः**	भगवान कपिल
		ययौ	(वहाँसे) चले गये ॥१२॥
प्रदर्श्य	उपदेश करके		

सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ।
तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥१३॥

सा च अपि तनय उक्तेन योगादेशेन योगयुक् तस्मिन् आश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥१३॥

सा च अपि	वह (देवहूति) भी	**आपीडे**	उस आश्रम शिरोमणिमें
तनय उक्तेन	पुत्रके बतलाये		
योगादेशेन	योगोपदेशसे	**योगयुक्**	योग करके
सरस्वत्याः	सरस्वती तटके	**समाहिता**	समाधिस्थ हो गयीं ॥१३॥
तस्मिन् आश्रम			

अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान् कुटिलालकान् ।
आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥१४॥

अभीक्ष्ण अवगाह कपिशान् जटिलान् कुटिल अलकान् आत्मानं च उग्र तपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥१४॥

अभीक्ष्ण अवगाह	तीनों समय स्नान करनेसे	**कुटिल अलकान्**	घुँघराली अलकें (जो)

कपिशान्		**उग्र तपसा**	उग्र तपस्यासे
जटिलान्	भूरी होकर जटाबनी	**कृशं आत्मानं च**	
चीरिणं च	चीर वस्त्र पहिनें और	**बिभ्रती**	दुबले शरीरको ही धारण करती ॥१४॥

प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् ।
स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥१५॥

प्रजापतेः कर्दमस्य तपः योग विजृम्भितं स्वगार्हस्थ्यं अन उपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैः अपि ॥१५॥

प्रजापतेः		**अन उपम्यं**	अनुपम
कर्दमस्य	प्रजापति कर्दमके	**वै मानिकैः अपि**	देवताओंके लिए भी
तपः योग		**प्रार्थ्यं**	चाहने योग्य
विजृम्भितं	तप तथा योगबलसे प्राप्त	**स्वगार्हस्थ्यं**	अपने गृहस्थ सुखको (त्याग दिया)॥१५॥

पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥१६॥

पयःफेननिभाः शय्याः दान्ता रुक्मपरिच्छदाः आसनानि च हैमानि सुस्पर्श आस्तरणानि च ॥१६॥

पयःफेननिभाः	दूधके फेनके समान	**च हैमानि**	
शय्याः	(जिसमें) पलंग थे,	**आसनानि**	तथा सोनेके आसन थे,
दान्ताः			
रुक्मपरिच्छदाः	हाथी दांतके तथा सोनेके उपकरण थे,	**च सुस्पर्श आस्तरणानि**	एवं कोमल स्पर्शवाले बिछौने थे ॥१६॥

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
रत्नप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥१७॥

स्वच्छ स्फटिक कुड्येषु महामारकतेषु च रत्नप्रदीपाः आभान्ति ललनारत्न संयुताः ॥१७॥

स्वच्छ स्फटिक च महामारकतेषु	स्वच्छ स्फटिक एवं महामरकत-मणिकी
कुड्येषु	दीवारोंमें
ललनारत्न संयुताः	श्रेष्ठ रमणियोंकी मूर्तियोंमें
रत्नप्रदीपाः आभान्ति	रत्नोंके दीपक जगमगाते थे ॥१७॥

गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥१८॥

गृह उद्यानं कुसुमितैः रम्यं बहु अमरद्रुमैः कूजत् विहंग मिथुनं गायन् मत्त मधुव्रतैः ॥१८॥

गृह उद्यानं बहु अमरद्रुमैः कुसुमितैः	घरेलू बगीचा बहुतसे दिव्य वृक्षोंसे पुष्पित था ।
विहंग मिथुनं कूजत्	पक्षियोंके जोड़े (उसमें) कलरव करते थे
मत्त मधुव्रतैः गायन्	मतवाले भौंरे गुंजार करते थे ॥१८॥

यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ।
वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥१९॥

यत्र प्रविष्टं आत्मानं विबुधा अनुचराः जगुः वाप्यां उत्पल गन्धिन्यां कर्दमेन उपलालिताम् ॥१९॥

उत्पल गन्धिन्यां वाप्यां	कमल-गन्धवाली वावली थी,
यत्र प्रविष्टं	जिसमें प्रवेश करनेपर
कर्दमेन उपलालितां	कर्दमजी द्वारा लाड़ करते समय
विबुधा अनुचराः आत्मानं जगुः	देवताओंके सेवक (गन्धर्व) उसका गान करते थे ॥१९॥

हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम् ।
किञ्चिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥२०॥

हित्वा तत् ईप्सित तमं अपि आखण्डल योषितां किञ्चित् चकार वदनं पुत्र विश्लेषण आतुरा ॥२०॥

आखण्डल योषितां अपि	इन्द्रकी पत्नियोंके लिए भी	**पुत्र विश्लेषण**	पुत्रके वियोगसे
तत् ईप्सित तमं हित्वा	उस परम अभीष्ट (घरको) छोड़कर	**किञ्चित् वदनं आतुरा चकार**	मुख कुछ व्याकुल बनाया ॥२०॥

वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ।
ज्ञाततत्त्वाप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥२१॥

वनं प्रव्रजिते पत्याः अपत्य विरह आतुरा ज्ञाततत्त्व अपि अभूत् नष्टे वत्से गौः इव वत्सला ॥२१॥

पत्याः वनं प्रव्रजिते	पतिके संन्यास लेकर वनमें चले जानेपर	**ज्ञाततत्त्व अपि**	तत्त्वज्ञान हो जानेपर भी
अपत्य विरह आतुरा	पुत्रके वियोगमें व्याकुल	**वत्से नष्टे**	बछड़ेके मर जानेपर
		वत्सला गौः इव	बछड़ेवाली गायके समान
		अभूत्	हो गयीं ॥२१॥

तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ।
बभूवाचिरतो वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥२२॥

तं एव ध्यायती देवं अपत्यं कपिलं हरिं बभूव अचिरतः वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥२२॥

वत्स	वत्स विदुर !	**अचिरतः**	शीघ्र
तं एव हरिं	उन्हीं श्रीहरि	**तादृशे गृहे**	वैसे (अनुपम) घरसे
अपत्यं कपिलं	अपने पुत्र कपिल	**निःस्पृहा बभूव**	निःस्पृह हो गयीं ॥२२॥
देवं ध्यायती	भगवानका ध्यान करती		

ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ।
सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया ॥२३॥

ध्यायती भगवत् रूपं यत् आह ध्यान गोचरं सुतः प्रसन्न वदनं समस्त व्यस्त चिन्तया ॥२३॥

सुतः यत् आह	पुत्र (कपिल) ने जो बतलाया था
ध्यान गोचरं	ध्यान करने योग्य
प्रसन्न वदनं	प्रसन्न मुखवाले
भगवत् रूपं	भगवानके रूपका
समस्त	सम्पूर्ण और
व्यस्त चिन्तया	एक-एक अंग चिन्तनपूर्वक
ध्यायती	ध्यान करने लगीं ॥२३॥

भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा ।
युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥२४॥

भक्ति प्रवाह योगेन वैराग्येण बलीयसा युक्ता अनुष्ठान जातेन ज्ञानेन ब्रह्म हेतुना ॥२४॥

भक्ति प्रवाह	भक्तिके प्रवाहसे,
योगेन	योगसे,
बलीयसा	
वैराग्येण	बलवान वैराग्यसे
युक्ता	युक्त होकर
अनुष्ठान जातेन	अनुष्ठान करनेसे
ब्रह्म हेतुना	
ज्ञानेन	ब्रह्म साक्षात्कार करानेवाले ज्ञानसे ॥२४॥

विशुद्धेन तदाऽऽत्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ।
स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥२५॥

विशुद्धेन तदा आत्मानं आत्मना विश्वतः मुखं स्व अनुभूत्या तिरोभूत माया गुण विशेषणम् ॥२५॥

तदा विशुद्धेन	तब अत्यन्त शुद्ध
आत्मना	चित्तसे
आत्मानं	अपनेको
विश्वतः मुखं	सर्वव्यापक रूपमें
स्व अनुभूत्या	अपनी अनुभूतिसे
माया गुण विशेषणं	मायाके गुणोंकी विशेषता (व्यक्तित्वका अहंकार)
तिरोभूत	लुप्त हो गया ॥२५॥

ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ।
निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाऽऽप्तनिर्वृतिः ॥२६॥

ब्रह्मणि अवस्थित मतिः भगवति आत्मसंश्रये निवृत्त जीव आपत्तित्वात् क्षीण क्लेश आप्त निर्वृतिः ॥२६॥

भगवति	भगवानमें	**क्षीण क्लेश**	(अविद्या, अस्मितादि) क्लेश नष्ट हो गये
आत्मसश्रये	चित्त लग जानेसे		
मतिः ब्रह्मणि	बुद्धि (निर्गुण) ब्रह्ममें		
अवस्थित	लग गयी,	**निवृतिः आप्त**	परमानन्द प्राप्त हो गया ॥२६॥
निवृत्त जीव आपत्तित्वात्	जीव भाव निवृत्त हो जानेसे		

नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ।
न सस्मार तदाऽऽत्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥२७॥

नित्य आरूढ समाधित्वात् परावृत्त गुण भ्रमा न सस्मार तदा आत्मानं स्वप्ने दृष्टं इव उत्थितः ॥२७॥

नित्य आरूढ समाधित्वात्	सदा समाधि लगी रहनेसे	**तदा आत्मानं स्वप्ने दृष्टं उत्थितः इव**	तब अपने शरीरको स्वप्नमें देखेको जागे हुएके समान
गुण भ्रमा	विषयों में सत्यत्वका भ्रम	**न सस्मार**	स्मरण नहीं करती थीं ॥२७॥
परावृत्त	मिट गया,		

तद्देहः परतःपोषोऽप्यकृशश्चाध्यसम्भवात् ।
बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥२८॥

तत् देहः परतः पोषः अपि अकृशः च आधि असम्भवात् बभौ मलैः अवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥२८॥

सधूम पावकः इव	धुएं सहित अग्निके समान	**परतः पोषः अपि**	दूसरों द्वारा पोषित होनेपर भी

तत् देहः	उनका शरीर	च मलैः	
आधि		अवच्छन्नः	और मैलसे ढका
असम्भवात्	चिन्ता न होनेसे।	बभौ	सुशोभित था ॥२८॥
अकृशः	दुबला नही था		

स्वाङ्गं तपोयोगमयं मुक्तकेशं गताम्बरम्।
दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥२९॥

स्व अङ्गं तपः योगमयं मुक्तकेशं गत अम्बरं दैव गुप्तं न बुबुधे वासुदेव प्रविष्ट धीः ॥२९॥

वासुदेव	भगवान वासुदेवमें	गत अम्बरं	वस्त्रहीन,
प्रविष्ट धीः	बुद्धिके प्रवेश कर	दैव गुप्तं	भाग्यसे रक्षित
	जानेसे	स्व अङ्गं	अपने शरीरका
तपः योगमयं	तप एवं योगमय	न बुबुधे	बोध नहीं रहता
मुक्तकेशं	खुले केशवाले,		था ॥२९॥

एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम्।
आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥३०॥

एवं सा कपिल उक्तेन मार्गेण अचिरतः परं आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं भगवन्तं अवाप ह ॥३०॥

एवं सा	इस प्रकार वह	भगवन्तं	भगवानमें
कपिल उक्तेन	कपिल द्वारा	ब्रह्म निर्वाणं	ब्रह्म निर्वाण
	उपदिष्ट	अवाप ह	प्राप्त हो
मार्गेण अचिरतः	मार्गसे शीघ्र		गयीं ॥३०॥
परं आत्मानं	परमात्मा		

तद्वीरासीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥३१॥

तत् आविरासीत् पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्य विश्रुतं नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिं उपेयुषी ॥३१॥

यत्र सा	जहाँ उन्होंने
संसिद्धिं उपेयुषि	परमसिद्धि प्राप्त किया
तत् पुण्यतमं	वह परम पवित्र
त्रैलोक्य विश्रुतं	त्रिलोकीमें प्रसिद्ध
सिद्धपदं नाम्ना	सिद्धपुर नामका
क्षेत्रं	तीर्थ
आविरासीत्	प्रकट हो गया ॥४१॥

तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ।
स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥३२॥

तस्याः तद् योग विधुत मार्त्यं मर्त्यं अभूत् सरित् स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्ध सेविता ॥३२॥

सौम्य	सौम्य विदुर !
तद् योग	उनके योग साधनसे
मार्त्य विधुत	मरण धर्मिता नष्ट हुए
तस्याः मर्त्यं	उनका शरीर
स्रोतसां प्रवरा	नदियोंमें श्रेष्ठ
सिद्धिदा	सिद्धि देनेवाली
सिद्ध सेविता	सिद्धोंसे सेवित
सरित् अभूत्	सरिता हो गया ॥३२॥

कपिलोऽपि महायोगी भगवान् पितुराश्रमात् ।
मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥

कपिलः अपि महायोगी भगवान् पितुः आश्रमात् मातरं सं अनुज्ञाप्य प्राक् उदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥

महायोगी भगवान्	महायोगी भगवान
कपिलः अपि	कपिल भी
मातरं	मातासे
सं अनुज्ञाप्य	भली प्रकार अनुमति लेकर
पितुः आश्रमात्	पिताके आश्रमसे
प्राक् उदीचिं दिशं	पूर्वोत्तर (ईशान) दिशामें
ययौ	गये ॥३३॥

सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ।
स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥३४॥

सिद्ध चारण गन्धर्वैः मुनिभिः च अप्सरः गणैः स्तूयमानः समुद्रेण दत्तः अर्हण निकेतनः ॥३४॥

सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,
गन्धर्वैः	गन्धर्वोंसे,
अप्सरः गणैः	अप्सराओंसे,
च मुनिभिः	तथा मुनियोंसे
स्तूयमानः	स्तुत होते
समुद्रेण अर्हण	समुद्र द्वारा पूजा तथा
निकेतनः दत्तः	निवास दिये जाने पर ॥३४॥

आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ।
त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः ॥३५॥

आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैः अभिष्टुतः त्रयाणां अपि लोकानां उपशान्त्यै समाहितः ॥३५॥

सांख्याचार्यैः	सांख्याचार्योंसे
अभिष्टुतः	स्तुत होते
त्रयाणां लोकानां अपि	तीनों लोकोंको ही
उपशान्त्यैः	शान्ति प्रदान करनेके लिए
योगं समास्थाय	योगमें भली प्रकार स्थित होकर
समाहितः आस्ते	समाधिमें स्थित हैं ॥३५॥

एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ।
कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥३६॥

एतत् निगदितं तात यत् पृष्टः अहं तव अनघ कपिलस्य च संवादः देवहूत्याः च पावनः ॥३६॥

अनघ तात	निष्पाप तात ! विदुर !
तव यत् पृष्टः	तुमने जो पूछा था
एतत् कपिलस्य	यह कपिलका
च देवहूत्याः	तथा देवहूतिका
पावनः संवादः	पवित्र संवाद
अहं निगदितं	मैंने सुना दिया ॥३६॥

य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते
कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ।
भगवति कृतधीः सुपर्णकेता-
वुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥३७॥

यः इदं अनुशृणोति यः अभिधत्ते कपिलमुनेः मतं आत्मयोग गुह्यं भगवति कृतधीः सुपर्णकेताः उपलभते भगवत् पदारविन्दम् ॥३७॥

यः इदं	जो इस	**भगवति**	भगवानमें
कपिलमुनेः	कपिल मुनिके	**कृतधीः**	(उसकी) बुद्धि लग जाती है,
गुह्यं आत्मयोग मतं	रहस्यमय आत्मयोग-मतको	**सुपर्णकेताः भगवत्**	गरुड़ध्वज
अनुशृणोति	बार-बार सुनना है,	**पदारविन्दं**	भगवानके चरण-कमलको
यः अभिधत्ते	जो (इसे) धारण करता है,	**उपलभते**	पाता है ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

॥ इति तृतीयः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत्